स्वतन्त्रता
संग्राम
का
इतिहास

पुस्तक स्वातंत्र्य वीरों को निम्नलिखित मनोभावों के साथ सादर समर्पित

प्रणाम है :

उन पराक्रमी सूरों को
जो विजय इतिहास का
एक गौरवमयी
अध्याय बन गए।

अपनी वीरता से
देश का नाम
उज्ज्वल कर गए।

वन्दन है :

उन बलिदानी वीरों का
जो मर कर भी
अमर हो गए
विजय-श्री से विमुख।

नींव का पत्थर बनकर
मात अर्चना में
न्यौछावर हो गए।

पूजन है :

उन अज्ञात कर्मवीरों को
जो बिना रुके बिना झुके
सतत चलते रहे।

संघर्ष की ज्योति को
प्रकाशित करने के लिए
स्वयं अंधकार में खो गए।

स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास

[1857 से 1947 तक]

लेखक

गोवर्धनलाल पुरोहित

राजस्थान प्रकाशन, जयपुर

प्रकाशक :
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-2
फोन : 2322443

मूल्य :
525/- (पाँच सौ पच्चीस) रुपये मात्र

टाइपसैटिंग :
अभिषेक ग्राफिक्स
बनीपार्क, जयपुर

मुद्रक :
शीतल ऑफसेट प्रिन्टर्स
जयपुर

I.S.B.N. : 81-88557-29-3

भूमिका

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम पर अब तक छोटी बड़ी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु 1857 से लेकर 1947 ई. तक के स्वतन्त्रता संग्राम पर एकीकृत पुस्तक अभी देखने में नहीं आयी। अत: दिल्ली प्रशासन ने इस कमी को पूरा करने के लिये स्वतन्त्रता संग्राम पर सांगोपांग पुस्तक लिखने के लिए देश के लेखकों को प्रेरित किया, परिणामस्वरूप प्रस्तुत पुस्तक इसी सन्दर्भ में लिखी गई है।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम विदेशी शासन के विरुद्ध एक व्यापक जन-विद्रोह था, न कि केवल सैनिक विद्रोह। इस तथ्य को पुस्तक में ठोस प्रमाणों द्वारा उभारा गया है। 1857 की क्रान्ति में हिन्दू व मुसलमानों ने एक जुट होकर विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने का एक सबल प्रयास किया था। मुगल बादशाह व हिन्दू पेशवाओं की एकता तो इस क्रान्ति में देखते ही बनती है। प्रारम्भिक शानदार विजय के बाद क्रान्ति के पराभव के मुख्य कारण सबल केन्द्रीय शक्ति का अभाव एवं अनुशासन की कमी थी। कोई भी शक्ति बिना संगठन के उपयोगी नहीं है, तो कोई भी संगठन बिना अनुशासन के स्थायी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इस निर्विवाद सत्य का ज्ञान हमें इस क्रान्ति में हुआ।

विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने में तो क्रान्ति को सफलता नहीं मिली, परन्तु क्रान्ति में अन्तर्निहित उद्देश्यों को प्राप्त करने में कुछ सफलता अवश्य मिली। कम्पनी का क्रूर शासन समाप्त हुआ। देशी राजाओं को गोद लेने का अधिकार वापिस मिल गया। महारानी विक्टोरिया की घोषणा से भारतीयों के साथ अपेक्षाकृत न्याय की आशा बंधने लगी, परन्तु मुख्य उपलब्धि यह रही है कि इस क्रान्ति से हमारी आजादी की लड़ाई का संगठित शुभारम्भ हो गया जिसकी अन्तिम परिणति देश की स्वतन्त्रता में हुई। भावी स्वातन्त्र्य समर के लिये क्रान्ति प्रेरणा का स्रोत बन गई।

स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष निरन्तर जारी रहा। वासुदेव बलवन्त फड़के व गुरु रामसिंह जी के नेतृत्व में कूका क्रान्ति-वीरों ने ब्रिटिश शासन को चैन से नहीं बैठने दिया। चारों ओर विदेशी शासन के विरुद्ध घृणा का भयंकर दावानल दहकने लगा। केवल सबल नेतृत्व की कमी थी। इधर अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से लोगों में राष्ट्रीय भावना जोर पकड़ रही थी। अत: ब्रिटिश शासन को यह भय सताने लगा कि कहीं क्रान्ति का नेतृत्व बुद्धिजीवियों के हाथ में न पड़ जाये। यदि ऐसा हुआ तो ऐसी हिंसक क्रान्ति जन्म लेगी, जिसमें ब्रिटिश शासन का भस्म होना निश्चित है। अत: शिक्षित भारतीयों का एक ऐसा वैध संगठन बनाया जाये, जिसके माध्यम से रोष का वातावरण शान्तिपूर्ण वार्ता में बदल जाये और संगठन सेफ्टी बाल्व का काम करे। इसके लिये वायसराय लॉर्ड डफरिन ने एक सेवा निवृत्त अंग्रेज सज्जन ए.ओ. ह्यूम साहब को तैयार किया। उन्हीं के प्रयास से 28 दिसम्बर, 1885 ई. को बम्बई के तेजपाल हाई स्कूल भवन में अखिल भारतीय कांग्रेस ने जन्म लिया। प्रारम्भ में कांग्रेस शिक्षित भारतीयों की एक सभा थी, जिसके द्वारा पढ़े लिखे भारतीयों के हितों की रक्षा की जाने लगी।

लॉर्ड कर्जन के बंगाल विभाजन ने भारतीयों के विचारों को बहुत प्रभावित किया। अब वे बंगाल के विभाजन के विरोध में उठ खड़े हुए और बहिष्कार आन्दोलन

का श्रीगणेश हुआ। ब्रिटिश शासन ने दमन चक्र में कमी न रक्खी। इसका जवाब देने के लिए भारतीय युवक उठ खड़े हुए। खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी एवं कन्हैयालाल दत्त ने उन अंग्रेज अधिकारियों का सफाया करने का अभियान छेड़ दिया जो स्वाधीनता प्रेमियों को सताते थे। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने आपकी बलि चढ़ा दी।

इधर कांग्रेस में भी ऐसे लोग तैयार हुए जो याचना करके ब्रिटिश शासन से सुधारों की भीख माँगने में विश्वास नहीं करते थे। इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल एवं लाला लाजपत राय थे, जो इतिहास में बाल-पाल-लाल के नाम से विख्यात हुए। लोकमान्य तिलक ने "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, इसे हम लेकर रहेंगे" की घोषणा करके राष्ट्र को एक नई चेतना प्रदान की। इस चेतना को हमारे महामनीषी स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द घोष, बंकिमचन्द्र चटर्जी एवं राष्ट्र कवि सुब्रह्मण्यम् भारती ने अपनी रचनाओं से नया संबल प्रदान किया।

प्रबल राष्ट्रीय भावना से अभिभूत हो प्रवासी भारतीयों के सहयोग से परम देश भक्त रासबिहारी बोस ने एक बार पुनः 1857 ई. जैसी सशस्त्र क्रान्ति की रूपरेखा तैयार की। गदर पार्टी के पंजाबी भाइयों का इस क्रान्ति के लिए अद्‌भुत उत्साह था, परन्तु भेद खुल जाने के कारण क्रान्ति न हो सकी। अनेक क्रान्ति-वीर पकड़े गये। उनमें से कितने ही हँसते-हँसते मातृभूमि की बलिवेदी पर चढ़ गए। इतिहास की यह कैसी विड़म्बना है कि हमारी असफलता के पीछे हम ही लोग थे। प्रवासी भारतीयों की शौर्यपूर्ण गाथाओं को पुस्तक में विशेष रूप से उभारा गया है।

इसी बीच भारत के राजनैतिक क्षितिज पर श्री मोहनदास कर्मचन्द गाँधी नामक महामानव एक देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में चमके, जिन्होंने हमारे स्वतन्त्रता संग्राम को एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने अहिंसात्मक सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात किया। उनकी मान्यता थी कि विदेशी शासन हमारे सहयोग से ही चल रहा है। यदि हम सब मिल कर सरकार का असहयोग कर दें तो विदेशी शासन एक दिन भी नहीं चल सकता। बिना किसी प्रतिशोध के अपने सत्य पक्ष के लिये अड़े रहने का उन्होंने पाठ पढ़ाया। संक्षेप में उन्होंने महावीर तथा गौतम की अहिंसा एवं भक्त प्रहलाद व मीराबाई के सत्याग्रह को एक व्यापक रूप प्रदान किया। प्रथम असहयोग आन्दोलन में मुसलमान भाइयों का अभूतपूर्व सहयोग रहा। देश के युवक भी बापू के असहयोग आन्दोलन में आशा की किरण देखने लगे, परन्तु चौरी चौरा की घटना के बाद असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया तो रणबांकुरे क्रान्तिकारियों ने अपने शस्त्र संभाल लिये। यद्यपि वे संख्या में कम थे, परन्तु अपने पराक्रम से उन्होंने ब्रिटिश शासन को हिला कर रख दिया। अपने प्रिय नेता लालाजी की पिटाई के लिए उत्तरदायी सान्डर्स की हत्या करके उन्होंने दिखा दिया कि भारतीय पौरुस अभी मरा नहीं है। यदि शान्तिपूर्ण स्वतन्त्रता आन्दोलन को कुचला गया तो देश के युवक ईंट का जवाब पत्थर से देने को तैयार हैं। इससे सम्बन्धित भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव तथा चटगाँव सशस्त्र विद्रोह की शौर्यपूर्ण गाथाओं को पुस्तक में विशेष स्थान दिया गया है।

पूज्य बापू ने विदेशी शासन को अपने आपको सुधारने व उसे आत्म-निरीक्षण का पूरा अवसर दिया, परन्तु विदेशी शासन सामान्य मूलभूत समस्याओं पर विचार करने के लिए भी तैयार नहीं हुआ तो बापू ने सन् 1930 का महान सविनय अवज्ञा आन्दोलन दाण्डी मार्च से शुरू कर दिया। इस आन्दोलन से देश में अद्‌भुत जन-जागरण हुआ। देश का कोना-कोना सत्याग्रह में शामिल हुआ। महिलाओं की जागृति इस आन्दोलन की

मुख्य उपलब्धि रही। इस आन्दोलन के मुख्य सेनापति पंडित जवाहरलाल नेहरू थे, जिन्होंने घूम-घूम कर देश को आजादी की लड़ाई के लिये तैयार किया। पूर्ण स्वराज्य तथा स्वराज्य का उद्देश्य समाजवाद की घोषणा करके उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम को नई गति प्रदान की।

अंत में सरकार को 1935 के शासन सुधार से भारतीयों को प्रान्तीय स्वायत्तता देनी पड़ी। भारत की आजादी को निकट आती देख विदेशी शासन अपना मानसिक संतुलन खो बैठा। आजादी के मार्ग में रोड़े अटकाने के लिए एक बार फिर उसने साम्प्रदायिकता का जहर फैलाना शुरू किया और नेताओं की धर- पकड़ शुरू कर दी।

इधर सुभाष बाबू को विदेशी शासन से न्याय की कुछ भी आशा न रही। अत: विदेशों में जाकर इंग्लैण्ड के शत्रुओं से मिलकर उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध एक विशाल आजाद हिन्द फौज खड़ी की और भारत की पवित्र भूमि पर कुछ समय के लिए ही सही, परन्तु तिरंगा झण्डा लहराने में सफल हुए। इन समस्त घटनाओं को पुस्तक में विशेष स्थान दिया गया है। यहाँ पर इस भ्रांत धारणा को भी निर्मूल किया गया है कि सुभाष बाबू व भारतीय नेताओं के उद्देश्य अलग-अलग थे। वास्तव में असहयोग आन्दोलन व सशस्त्र क्रान्ति एक दूसरे के विरोधी नहीं, वरन् पूरक थे। ये हमारे स्वतन्त्रता संग्राम की दो प्रमुख धारणायें थी, जिनका संगम स्थल भारत की आजादी थी। इस तथ्य को पुस्तक में विशेष रूप से उभारा गया है।

सन् 1942 की महान् जन क्रान्ति व आजाद हिन्द फौज के सैनिक अभियान ने अंग्रेजों की साम्राज्यवादी लिप्सा को ठिकाने लगा दिया। भारी संताप के साथ उन्होंने सोच लिया कि अब उन्हें भारत छोड़ना ही पड़ेगा। अन्त में उनको जाना पड़ा। यद्यपि जाते-जाते भी उन्होंने देश का विभाजन कर अपनी कुटिलता एवं क्रूरता का परिचय दे ही दिया, तथापि हमारे जन नेताओं ने जिस धैर्य एवं आत्म-विश्वास के साथ ब्रिटिश शासन द्वारा बिगाड़ी गई स्थिति को सुधारा, वह हमारे इतिहास की ही नहीं, वरन् विश्व इतिहास की प्रमुख घटना है। धर्म-निरपेक्षता, स्वतंत्रता, समानता को हमारे लोकतंत्र का आधार घोषित कर राष्ट्र निर्माताओं ने संसार को बता दिया कि भारत कभी भी सत्य व न्याय पथ से विचलित नहीं हो सकता।

पुस्तक के अन्त में रियासती जनता के स्वतन्त्रता संग्राम पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के शहीदों व देश भक्तों के जीवन चरित्र को विशेष रूप से उभारा गया है ताकि हमें उनके जीवन से प्रेरणा मिल सके। पुस्तक में स्वतन्त्रता संग्राम के शहीदों व मुख्य सेनानियों के चित्र भी जुटाये गये हैं। साथ ही आवश्यक मानचित्र एवं रेखाचित्र भी प्रचुर मात्रा में लगाये गये हैं, ताकि विषय-वस्तु अधिक बोधगम्य हो सके।

इतना सब कुछ होने पर भी पुस्तक की सार्थकता इसी में है कि इसे पढ़ने के बाद देश-प्रेम व देश-सेवा की भावना कितनी जाग्रत होती है ? यदि ऐसा नहीं हुआ तो लेखक के श्रम का कोई मूल्य नहीं है, अस्तु लेखक की सार्थकता इसी में है कि हम सब राष्ट्र-सेवा के लिये अग्रसर हों।

–लेखक
गोवर्धन लाल पुरोहित

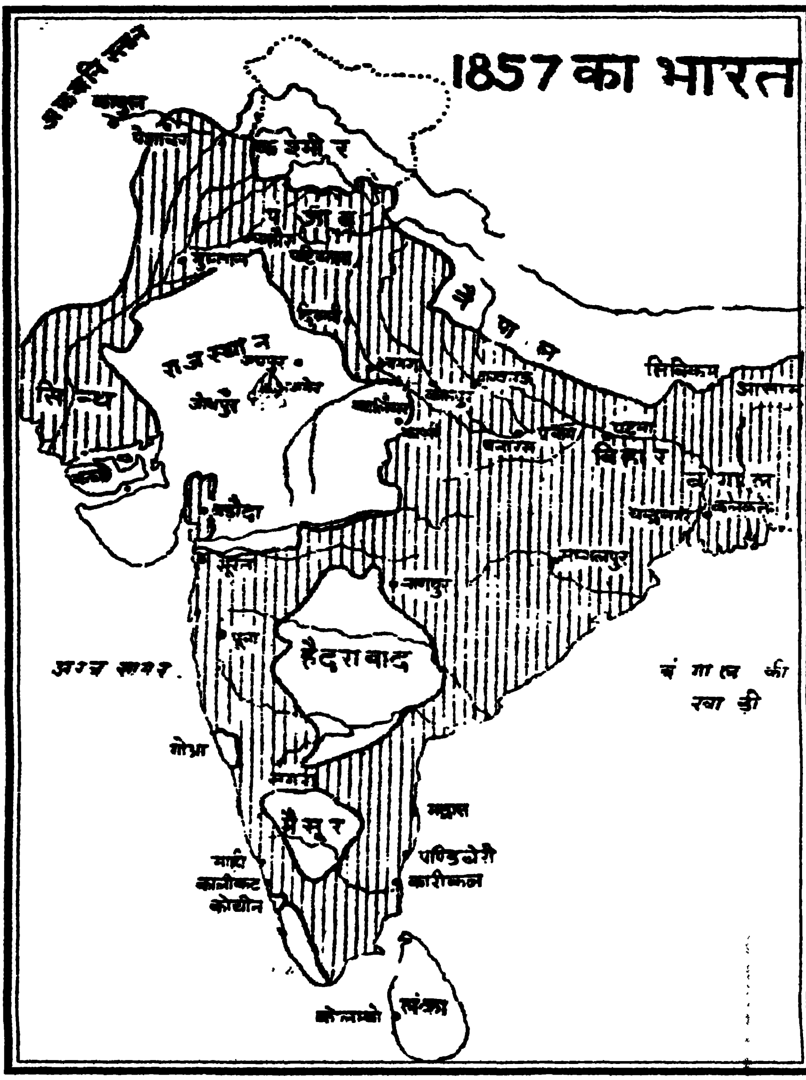
76, प्रताप नगर
टोंक रोड, जयपुर

विषय सूची

□

चित्रों की सूची

मानचित्रों की सूची


1857 का भारत
कश्मीर
पंजाब
नेपाल
सिक्किम
राजस्थान
जोधपुर
सिन्ध
दिल्ली
बनारस
बिहार
बड़ौदा
सूरत
नागपुर
पूना
हैदराबाद
बंगाल की खाड़ी
गोआ
मैसूर
मद्रास
पाण्डिचेरी
माही
कालीकट
कारीकल
कोचीन
कोलम्बो
लंका

इकाई 1

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम
(1857 की क्रान्ति)

किसी भी शासन में जब अन्याय व जनता का दमन अपनी सीमा लांघ जाता है, तब क्रान्ति अवश्यम्भावी होती है। अत: ईस्ट इण्डिया कम्पनी शासन भी इसका अपवाद नहीं रहा। यों तो भारत पर अनेक विदेशी आक्रमण हुए, परन्तु वे विदेशी आक्रमणकारी विदेशी नहीं रहे और कालान्तर में भारतीय समाज में ही मिल गए। भारत को ही अपनी मातृभूमि मान कर, इसकी समृद्धि के लिए काम करने लगे। भारत का धन भारत के ही काम आने लगा। यहाँ की कृषि, उद्योग तथा कला की अभूतपूर्व उन्नति में इन्होंने हाथ बँटाया, परन्तु कम्पनी शासन ने इसके विपरीत कार्य किया। इस सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं—

"अंग्रेज पहले विजेता थे, जिनकी हिन्दुस्तान की सभ्यता तक पहुँच नहीं थी। उन्होंने ग्राम समाज की जड़ें हिला कर भारतीय उद्योग धन्धों को चौपट करके इस सभ्यता का नाश किया। भारतीय समाज में जो कुछ भी महान् व गौरवपूर्ण था, उन्होंने उसे धूल में मिला दिया। हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राज्य ने धन लूटने के अलावा कुछ भी तो नहीं किया।"

(अमेरिका के न्यूयार्क हेरल्ड में 8 अगस्त, 1853 को प्रकाशित विचार)

अत: इस प्रकार की शोषण वृत्ति के विरुद्ध जन असंतोष भड़कना अवश्यम्भावी था, परन्तु खेद है कि इस व्यापक जन-असन्तोष व क्रान्ति को अंग्रेजी सरकार ने केवल सैनिक विद्रोह का नाम दिया। अत: क्रान्ति के कारणों पर विस्तार से विचार करने के पहले हमें यह देखना है कि 1857 की क्रान्ति एक व्यापक जन विद्रोह था, न कि एक मात्र सैनिक विद्रोह।

क्रान्ति एक जन-विद्रोह के रूप में :

श्री विनायक दामोदर सावरकर ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारत का स्वातंत्र्य युद्ध' में प्रबल युक्तियों व सुदृढ़ प्रमाणों से यह सिद्ध किया है— "सन् 1857 का

विद्रोह वास्तव में कोई मात्र आकस्मिक सैनिक विद्रोह नहीं था, वरन् व्यापक जन विद्रोह था। इसे गर्व से भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम कह सकते हैं।" हमारे प्रथम प्रधानमंत्री व राष्ट्रीय आन्दोलन के अमर सेनानी पंडित नेहरू ने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में लिखा है "यह केवल सैनिक विद्रोह ही नहीं था, वरन् एक जन विद्रोह था जो बहुत ही शीघ्र भारत के अधिकांश भाग में फैल गया और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में बदल गया।"

वास्तव में यह राष्ट्रीय आन्दोलन था। हिन्दू व मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर ब्रिटिश सत्ता को भारत से उखाड़ फेंकने का सबल प्रयास किया था। स्त्री-पुरुष, बूढ़े-जवान यहाँ तक कि बालकों ने भी इस जन विद्रोह में भाग लिया था। सभी जातियों के लोग इसमें शामिल थे। पिछड़ी जातियों के भाइयों का तो इस आन्दोलन में अद्भुत सहयोग रहा था, जिसका विस्तृत वर्णन हम आगे पढ़ेंगे।

1857 की क्रान्ति से पहले भी समय समय पर कम्पनी के अन्याय व अत्याचारों से घबरा कर देशवासियों ने कम्पनी शासन के विरुद्ध तलवार उठाई थी। जैसे 1826-27 ई. में उमाजी नायक के नेतृत्व में पूना में भयंकर विद्रोह हुआ, जिससे पूना नगर में अशान्ति फैल गई। 1831-33 ई. में बिहार में कोल विद्रोह बहुत ही व्यापक था। लगभग 5 हजार वर्ग मील क्षेत्र का सारा देश वीरान हो गया था।

सन् 1844 ई. में महाराष्ट्र में सावंतवाड़ी राज्य में इतना जोरदार किसान आन्दोलन भड़का कि कम्पनी शासन आश्चर्य में पड़ गया। अंग्रेज सेनापति 'आउट्रम' को इस आन्दोलन को दबाने के लिए 10 हजार सैनिक भेजने पड़े। 1848 ई. में कांगा, जसबार और दातापुर के राजाओं ने नूरपुर के वजीर के सहयोग से कम्पनी शासन के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाया और यह घोषित कर दिया कि ब्रिटिश राज्य समाप्त हो चुका है।

कम्पनी शासन बड़े जमींदारों व साहूकारों के शोषण के विरुद्ध संथालों का विद्रोह तो एक प्रकार से स्वतन्त्रता संग्राम ही था। कार्ल मार्क्स ने लिखा है—"1855-56 ई. में भारत में जिस व्यापक पैमाने पर संथालों ने जो अंग्रेजों से संघर्ष किया, उसे बहुत अधिक रक्त बहाने पर ही दबाया जा सका। 15 हजार संथाल वीरों ने स्वतन्त्रता के लिए अपनी बलि दी।"

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट विदित होता है कि 1857 की क्रान्ति एक आकस्मिक सैनिक विद्रोह नहीं था, वरन् एक भीषण जन क्रान्ति थी। स्वयं अंग्रेज लेखकों ने भी इसकी पुष्टि की है। इतिहास के प्रसिद्ध लेखक सर जॉन मालकम लिखते हैं —

"1857 के पहले देश भर में ऐसे गस्ती पत्रों का काफी प्रचार था जिनमें यह बताया गया था कि अंग्रेजों ने धोखेबाजी से इस देश पर कब्जा किया है और वे ऐसे अत्याचारी हैं, जिन्होंने भारत का बुरी तरह से शोषण किया है। धर्म व रीति रिवाजों का नाश किया और वे हिन्दुस्तान क़ा हर तरह से बरबाद कर रहे हैं। इस प्रकार के गश्ती पत्र बड़े उत्साह से पढ़े जाते थे।"

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कर्नल मालेसन ने 'डिसीजीव बैटल आफ इण्डिया' में लिखा है— "किसानों में अंग्रेजी राज्य के प्रति बुरी भावनाएँ बढ़ रही थीं और इसके परिणामस्वरूप कितने ही किसान विद्रोह हुए। इस समय कितने ही प्रान्तों में उस असंतोष की आग प्रकट या अप्रकट रूप में सुलग रही थी और उसी ने आगे चलकर भयंकर विद्रोह का रूप धारण किया जो इतिहास में 1857 के विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध है।"

भारत के चार बड़े प्रान्त— अवध, रुहेलखण्ड, बुन्देलखण्ड, सागर और नर्मदा के तटवर्ती राज्यों में समस्त जनता ने कम्पनी शासन के विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा किया। पश्चिमी बिहार, पटना व मेरठ में सेना के साथ जनता ने भी विद्रोह में भाग लिया। दोआब की ग्रामीण जनता ने अंग्रेजों के विरुद्ध जं. संघर्ष किया, उससे स्पष्ट विदित होता है कि 1857 की क्रान्ति एक भीषण जन विद्रोह था। फील्ड मार्शल राबर्ट्स ने अपनी पुस्तक 'फोर्टीवन इयर्स इन इण्डिया' में पृष्ठ 248 पर लिखा है— "1857 की लड़ाई में जब हमारी फौज कानपुर से लखनऊ के लिए ग्रान्ट ट्रंक रोड़ से गुजर रही थी तो देहाती जैसे लोगों ने हमारा रास्ता रोका और हमसे जमकर लोहा लिया।"

विद्रोह का प्रारम्भ यद्यपि मेरठ के सैनिकों द्वारा हुआ, परन्तु इस सैनिक क्रान्ति के होते ही उत्तर-पूर्व व मध्य भारत की जनता इस सैनिक क्रान्ति में शामिल हो गई। ऐसे भी अनेक स्थल थे, जहाँ पर सिपाहियों की कोई भी रेजीमेन्ट नहीं थी। यहाँ पर किसानों व दस्तकारों ने बड़े पैमाने पर क्रान्ति में भाग लिया। इस कारण हम इसे बिना किसी विवाद के जन-आन्दोलन कह सकते हैं।

सैनिक क्रान्ति असफल हो जाने के बाद भी जनता ताँत्या टोपे के नेतृत्व में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध छापामार युद्ध प्रणाली से लोहा लेती रही। जनता का मनोबल कभी नहीं टूटा। इस सम्बन्ध में रेवरेन्ड डफ ने लिखा है— "यह सैनिक बगावत नहीं बल्कि एक विद्रोह या जन क्रान्ति थी जो इस बात से साफ हो जाती है कि उसे दबाने में काफी समय लगा, फिर भी सफलता नाम मात्र को ही मिली।"

लन्दन टाइम्स के संवाददाता 'रसेल' ने तो यहाँ तक लिखा है कि "अंग्रेजों को असल में भारत को दुबारा जीतना पड़ा।" तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड

केनिंग को भी स्वीकार करना पड़ा कि "मध्य भारत हमारे हाथ से जा चुका है, हमें उसे पुनः जीतना है।"

अवध में तो लगभग एक लाख से भी अधिक नागरिकों ने क्रान्ति में भाग लिया। एक अनुमान के अनुसार अवध में अंग्रेज सैनिकों के साथ 1,50,000 लोग मारे गए, जिनमें 1,00,000 से अधिक नागरिक थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह केवल सैनिक विद्रोह ही नहीं था वरन् भीपण जन क्रान्ति थी।

यह एक प्रबल जन आन्दोलन था। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि दिल्ली, आगरा, अवध, उत्तर पश्चिम प्रान्तों, मध्य भारत, पश्चिम बिहार के लोगों का भीषण दमन करना पड़ा। गाँव के गाँव जलाये गए। शहरी जनता का कत्ले आम किया गया। सामूहिक जुर्माने किए गए। यदि केवल सैनिक क्रान्ति होती तो आम जनता को इतने कठोर दण्ड क्यों दिए जाते ?

जन क्रान्ति के साथ इस आन्दोलन का राष्ट्रीय स्वरूप भी स्पष्ट रूप से झलकता है। मेरठ में क्रान्तिकारी चुम्बक की भाँति दिल्ली की ओर क्यों खिंचे चले गए, क्योंकि वे भारत के अन्तिम मुगल सम्राट को अपना नेता मानते थे। पेशवा नाना साहब बहादुरशाह को सम्राट मानकर उसके सूबेदार के रूप में काम करने लगे।

मुगल सम्राट बहादुरशाह राष्ट्रीय हित व स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अपना राज्य छोड़ने के लिए भी तैयार हो गए थे। उन्होंने अपने हाथ से एक पत्र जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, अलवर आदि राजाओं को लिखा—

"फिरंगी लोग (अंग्रेज) भारतवर्ष से खदेड़ दिए जाएँ, यह मेरी हार्दिक इच्छा है। मैं सारे भारतवर्ष को स्वतंत्र देखना चाहता हूँ, किन्तु यह बगावत तब तक सफल नहीं होगी जब तक कि योग्य व शक्तिशाली व्यक्ति इसके संचालन का भार अपने ऊपर लेने को तैयार न हो जाएँ और अपनी पूरी शक्ति के साथ इसका संचालन कर समस्त भारतवासियों को एकता के सूत्र में बाँध दें। यदि अंग्रेज भारतवर्ष से चले जाएँ तो उसके पश्चात् मैं ही भारतवर्ष का राज्य करूँ, यह मेरी कतई इच्छा नहीं है। यदि समस्त राजा लोग मिलकर यह भार लेने को तैयार हों तो मैं अपने राज्य के समस्त अधिकार उनको सौंपने को तैयार हूँ।"

बरेली के नवाब खान बहादुर खाँ ने भी गौ हत्या पर प्रतिबन्ध लगा कर राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया। नाना साहब के निजी सलाहकार अजीमुल्ला खाँ ने इस क्रान्ति को राष्ट्रीय रूप देने में बहुत बड़ा काम किया। संक्षेप में क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी के सामने एक ही उद्देश्य था—

"1857 का विद्रोह किसी जाति विशेष अथवा किसी वर्ग विशेष द्वारा संचालित नहीं था, यह तो एक देशव्यापी विद्रोह था, जिसमें हिन्दू व मुसलमानों ने

साम्प्रदायिकता के बंधनों को तोड़कर अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी थी। अंग्रेजों ने हिन्दू मुसलमानों को लड़ाने में कोई कसर नहीं रखी, परन्तु उन्हें इसमें मुँह की खानी पड़ी। इतिहासकार 'इचिसन' ने तो यहाँ तक लिखा है—

"इस विद्रोह में हिन्दू व मुसलमानों को लड़ाने की हमारी नीति सफल न हो सकी। अंग्रेजी सरकार क्रान्ति पर बहुत जल्दी काबू न पा सकी इसका मुख्य कारण यही था कि इसमें आदि से लेकर अन्त तक हिन्दू व मुसलमानों ने एक-दूसरे का साथ दिया।" हिन्दू पेशवाई तथा मुगल बादशाहत ने मिलकर जो कार्य किया वह हमारे इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। क्रान्ति का अपना झण्डा गीत था। कमल व रोटी चिन्ह थे। इस तरह से 1857 की क्रान्ति मात्र सैनिक विद्रोह नहीं था। वरन् एक व्यापक जन विद्रोह था, जिसके कारण भी उतने ही व्यापक थे, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) आर्थिक कारण :

भारत के माल पर 80 से 85 प्रतिशत तक कर लगाकर उसकी खपत को रोका गया, जबकि इंग्लैण्ड में बने माल पर केवल 2.50 प्रतिशत कर था। इंग्लैण्ड में बना माल तो कभी-कभी बिना कर भी भारत में बेचा जाता था। इसका नतीजा यह निकला कि हमारे उद्योग धन्धे ठप्प होने लगे। उद्योग धन्धों में लगे करोड़ों लोग बेकार हो गए, उन्हें दोनों समय रोटी मिलना ही दूभर हो गया। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश इतिहासकार 'एच.एच.विल्सन' ने बड़ा मार्मिक चित्र खींचा है—

"हिन्दुस्तान का सूती और रेशमी माल सन् 1823 ई. तक इंग्लैण्ड के बाजार में इंग्लैण्ड के बने माल से 50 प्रतिशत या 60 प्रतिशत कम मूल्य में आसानी से बिक जाता था। इसीलिए कम्पनी शासन ने भारत में बने माल पर 70 से 80 प्रतिशत तक कर लगाया। अगर ऐसा नहीं किया जाता तो लंकाशायर व मैनचेस्टर के कारखाने शुरू से ही बंद हो जाते और भाप की शक्ति से भी शायद ही पनप पाते। वे भारतीय उद्योग को ध्वस्त करके ही जिन्दे रखे गए।"

"अगर भारत स्वतन्त्र होता तो वह इसका बदला चुकाता और वह भी ब्रिटिश माल पर प्रतिबन्ध के लिए भारी कर लगाता और अपने उद्योग धन्धों को नाश होने से बचा लेता। भारत को आत्म-रक्षा का कोई अधिकार नहीं था। विदेशी कारीगरों के लिए राजनैतिक अन्याय का सहारा लिया गया और राजनैतिक सत्ता के बल पर भारतीय उद्योगों का ऐसा गला घोंटा गया कि वे दुबारा कभी मुकाबले में खड़े न हो सके।"

इससे स्पष्ट है कि 1757 ई. से 1857 ई. तक जो लूट कम्पनी शासन ने भारत में मचाई, वही क्रान्ति का मुख्य कारण था। इस सम्बन्ध में एक अंग्रेज सज्जन ने ठीक ही लिखा है—

"कम्पनी शासन की व्यवस्था बहुत कुछ स्पंज की भाँति थी, जिसके जरिये गंगा तट की सारी अच्छी चीजों को सोखकर, उसे टेम्स नदी के किनारे निचोड़ा जाता था।"

(2) भू-राजस्व नीति :

उद्योग धन्धों को नष्ट करने के बाद कम्पनी शासन की गिद्ध-दृष्टि भारतीय किसानों पर पड़ी। जमींदारी प्रथा को जन्म देकर तो आगरा व अवध में किसानों की कमर ही तोड़ दी। सकल उत्पादन का 45 से 55% तक कम्पनी शासन कर के रूप में हड़प जाता था। 15% बिचौलिए खा जाते थे। अपनी उपज का केवल 35 या 40% ही किसानों को मिल पाता था। स्थायी बन्दोबस्त के बाद तो कर का भार अधिक हो गया। यही कारण था कि मुगल शासन से कम्पनी शासन की राजस्व आय दुगुनी थी।

भूमि पर से किसानों के परम्परागत अधिकार क्षीण होते गए। नये कानूनों के अनुसार किसान अब अपनी भूमि सारे देश में बंधक रख सकता था और बेच सकता था। अतः पूँजीपति, किसानों की जमीन हड़पने लगे। वह अब जमीन का मालिक न रहकर, नौकर बन गया। इससे भारतीय भू-व्यवस्था का मूल ढाँचा ही नष्ट हो गया।

हमारी ग्राम व्यवस्था बिल्कुल चरमरा गई। किसान अब पूँजीपतियों का दास बनकर खेती करने लगा। संथाल विद्रोह के पीछे यही तो सबसे बड़ा कारण था कि पूँजीपति भू-स्वामी बनकर किसानों का शोषण करने लगे।

कम्पनी शासन केवल कर लेना ही जानती थी। कृषि के विकास तथा किसानों के हित के लिए उसने कुछ भी नहीं किया। इसके अतिरिक्त अन्य कर भार से भी बुरी तरह दबा हुआ था। क्रान्तिकारियों के स्वाधीनता घोषणा पत्र में कम्पनी कर प्रणाली पर बड़ा रोष प्रकट किया गया है।

(3) राजनैतिक उत्पीड़न :

ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में केवल व्यापार करने आई थी, परन्तु भारत की राजनैतिक अराजकता से लाभ उठाकर छल कपट से उसने एक-एक करके सारे भारत पर अधिकार कर लिया। जब तक भारतीय शासक ताकतवर रहे, हमारा केन्द्रीय शासन मजबूत रहा तब तक कम्पनी सरकार दीनता प्रकट कर हाथ जोड़कर अपना उल्लू सीधा करती रही, परन्तु ज्योंही हमारे शासक कमजोर हुए, वह हमें आँख दिखाने लग गई। कम्पनी शासन अपने स्वार्थ में इतना अंधा हो गया कि अपने किए वायदे से भी वह मुकर गया।

बंगाल, बिहार, अवध की मालगुजारी के लिए 56 लाख रुपये कम्पनी ने मुगल सम्राट को देना मंजूर किया था, परन्तु घटाते-घटाते उसे 26 लाख कर दिया गया। प्लासी के युद्ध के बाद तो कम्पनी शासन ने बंगाल के कठपुतली नवाबों की कमजोरी से पूरा लाभ उठाया। इतना ही नहीं मुगल सम्राट बहादुरशाह की तोहीन करने में कम्पनी ने कोई कसर न रखी। 1849 ई. में लॉर्ड डलहौजी ने घोषणा कर दी थी कि "बहादुरशाह के बाद उसके उत्तराधिकारियों को लाल किला छोड़ना पड़ेगा।" लॉर्ड केनिंग ने तो 1856 ई. में यहाँ तक कह दिया था कि "बहादुरशाह के बाद मुगलवंश के शाहजादे, बादशाह की पदवी धारण न कर सकेंगे।"

पेशवा बाजीराव द्वितीय की 8 लाख रुपये की वार्षिक पेन्शन, उसके दत्तक पुत्र नाना साहब को मिलनी चाहिये थी, परन्तु कम्पनी ने पेन्शन बन्द कर दी। लॉर्ड डलहौजी की हड़प नीति से कितने ही नि:संतान मरने वाले राजाओं की रियासतें अंग्रेजी राज्य में मिला ली गईं। झाँसी की रानी इस अन्याय को सहन न कर सकी और उसने अंग्रेजी शासन के अन्याय के विरुद्ध अपनी तलवार उठाई।

नवाब पर झूँठे आरोप लगाकर लॉर्ड डलहौजी ने अवध को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। इस तरह से मनमाने ढंग से भारतीय शक्तियों के विनाश को कैसे सहन किया जा सकता था। बिहार में भी अनेक राजाओं तथा ताल्लुकदारों को कम्पनी शासन ने अपनी विस्तारवादी नीति का शिकार बनाया। प्रारम्भ में कम्पनी शासन ने जनता को आश्वासन दिया कि उसको अच्छा शासन देने के लिए यह सब किया जा रहा है, परन्तु किसानों पर जब कर भार बढ़ा तो उनकी आँखें खुली। साँस्कृतिक कार्यों में लगे अनेक कलाकार भी देशी रियासतों के समाप्त होते रहने से निराश्रित होते गए। वे भी नाराज हो गए।

इन सभी राजनैतिक धोखेबाजी व अनाचार ने विद्रोह को भड़काने में आग में घी का काम किया। अप ाी अपनी शक्ति के अनुसार सभी ने अपने साथ हुए अन्याय का बदला चुकाने के लिए क्रान्ति में भाग लिया।

(4) धार्मिक हस्तक्षेप :

भारतीय जीवन सदा से ही धर्म के मामले में संवेदनशील रहा है। वे अपने धर्म तथा विश्वासों में बलात् हस्तक्षेप कभी सहन नहीं कर सकते थे। जब उन्हें यह भय सताने लगा कि ब्रिटिश राज उनके धर्म के लिए खतरा है, तो वे चुप बैठने वाले नहीं थे। ईसाई धर्म के प्रचार में कम्पनी सरकार पूरी मदद कर रही थी। धर्म प्रचार में ईसाई लोग भारतीय विश्वास व मान्यताओं की खुले आम हँसी उड़ाने लगे। अस्पताल, स्कूल व जेलों को ईसाई धर्म प्रचार का माध्यम बनाया जा रहा था। इतना ही नहीं सरकार ने 1850 में एक ऐसा कानून बना दिया था जिसके अनुसार ईसाई बन जाने पर वह अपनी पैतृक सम्पत्ति का मालिक बन सकता था।

धन तथा सरकारी नौकरियों का लालच देकर नवयुवकों को ईसाई बनाया जा रहा था। मन्दिरों, मस्जिदों की लोकोपकारी संस्थाओं की जमीन छीनी जा रही थी। इन सभी बातों से भारतीय जनमानस में यह धारणा घर कर गई थी कि अंग्रेजों ने हमारी आर्थिक व राजनैतिक स्वायत्तता पर तो हाथ साफ कर ही दिया। अब हमारी धार्मिक व साँस्कृतिक स्वतन्त्रता का भी नाश करने पर तुले हैं। सैनिकों में यह भावना बलवती हो रही है कि अंग्रेज हमारे धर्म व संस्कृति को नष्ट करने के लिए अनेक हथकंडे रच रहे हैं।

(5) विदेशीपन :

अंग्रेजों से पहले भी अनेक जातियाँ किसी न किसी प्रयोजन से भारत आईं, परन्तु उनमें से बहुत-सी जातियाँ तो भारतीय समाज में ही घुल-मिल गईं। मुसलमान जाति ने अपना अलग अस्तित्व अवश्य बनाए रखा। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मुस्लिम विजेताओं ने भारत को अपना घर समझा। इसकी स्वतन्त्रता व समृद्धि के लिए अपने प्राणों की बलि दी, परन्तु अंग्रेज जाति के साथ ऐसी बात नहीं थी। वे भारत में बसने के लिए नहीं, वरन् भारत का धन चूसने आए थे। अंग्रेज भारतीयों को कभी अपना न बना सके। मजबूरी में उनकी नौकरी करने वाले भी उनसे खुश नहीं थे। पंडित नेहरू ने 'भारत की खोज' पुस्तक में इसका अच्छा चित्रण किया है—

"इस शासन की सम्पूर्ण विचारधारा स्वामी जाति की थी और सरकार का ढाँचा भी उसी पर आधारित था। सचमुच स्वामी जाति का विचार साम्राज्यवाद का ही दूसरा रूप है। अंग्रेज हमेशा विदेशी बने रहे और हमसे नफरत करते रहे।"

(6) कम्पनी का भ्रष्ट शासन :

लॉर्ड क्लाइव से लेकर लॉर्ड डलहौजी तक का कम्पनी शासन भ्रष्टाचार से भरा पड़ा है। कम्पनी के नौकर भी रिश्वत खाने में पीछे नहीं रहे। स्वयं लॉर्ड क्लाइव ने निजी तौर पर करोड़ों रुपये भारत के राजा व नवाबों से ऐंठे थे। वारेन हेस्टिंग्ज तो धन के पीछे पागल ही हो गया था। शासन के साधारण मूलभूत नियमों को ताक में रखकर कम्पनी के नौकर किसानों व कारीगरों को लूटने में लग गए। अत: भ्रष्ट शासन के विरुद्ध समय आने पर विक्षोभ अवश्यम्भावी था।

(7) सैनिक असंतोष :

जब किसी शासन व समाज में समानता की भावना का लोप होकर ऊँच नीच की भावना आ जाती है, तब उसके विनाश की परिस्थितियाँ पैदा हुए बिना नहीं रहतीं। नौजवान ब्रिटिश सैनिक अफसर भारतीय सैनिकों को हब्सी तथा सुअर कहने से बाज नहीं आते थे। उनकी नजर में भारतीय सैनिक एक निकृष्ट प्राणी

था। इस सामाजिक अपमान के साथ-साथ आर्थिक क्षेत्र में भी उनके साथ सौतेला व्यवहार हो रहा था। शूरवीरता तथा योग्यता में वे किसी गोरे सैनिक से कम नहीं थे, परन्तु तीस वर्ष की निष्ठापूर्वक सेवा के बाद भी वे सूबेदार के पद से आगे नहीं बढ़ सकते थे। उनका वेतन भी एक साधारण अंग्रेज सिपाही से भी कम रहता था। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार टी.आर. होल्मस का कथन उल्लेखनीय है—

"भारतीय सैनिक में हैदर अली जैसी सैनिक प्रतिभा होते हुए भी वह जानता था कि उसके आगे बढ़ने के कोई अवसर नहीं हैं। तीस साल की सेवा के बाद भी, वह इंग्लैण्ड से आए नये कमीशन प्राप्त अफसर के बदतमीजी भरे हुक्मों से अपने को नहीं बचा पायेगा।"

सेना में रंगभेद की नीति व्याप्त थी। भारतीय सैनिकों को निम्न श्रेणी का नाश्ता व भोजन दिया जाता था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए भारतीय सैनिकों को बाहर भेजने लगी थी। 1824 ई. में बैरकपुर के सैनिकों को बर्मा जाने का आदेश दिया, परन्तु सैनिकों ने इसे मानने से मना कर दिया। नतीजा यह निकला कि सभी सैनिक गोली से उड़ा दिए गए।

अवध के सैनिकों को पंजाब जाने पर भी विदेश भत्ता मिलता था, परन्तु सरकार ने इसे बन्द कर दिया। अवध सैनिक इस बात को भी न भूल पा रहे थे कि किस तरह से लॉर्ड डलहौजी ने निर्दयता पूर्वक उनकी मातृभूमि को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया था। भारतीय सैनिक कम्पनी शासन के दमन चक्र से बड़े दु:खी थे। समय-समय पर अनेक छोटे मोटे विद्रोह हुए। 1844 ई. में वेतन के प्रश्न को लेकर भारतीय सैनिकों ने आपत्ति प्रकट की तो दो सूबेदारों को जिनमें एक हिन्दू व दूसरा मुसलमान था गोली से उड़ा दिए गए। इन्हीं सब कारणों से सैनिकों में विद्रोह की भावना बलवती हो रही थी, जिसका विकराल रूप 1857 की क्रान्ति में देखने को मिला।

(8) तात्कालिक कारण :

कम्पनी शासन के प्रति घोर घृणा फैल चुकी थी। किसान, सैनिक, हाथ के कारीगर सभी रुष्ट थे। क्रान्ति के लिए काफी मसाला तैयार था, उसे प्रज्ज्वलित करने के लिए एक चिनगारी की आवश्यकता थी। अन्त में चरबी लगे कारतूस के उपयोग के प्रश्न को लेकर विद्रोह की चिनगारी फूट पड़ी जो भयंकर दावानल बन गया।

सेना को एक प्रकार की नयी एनफिल्ड राइफल पहली बार दी गई थी। उसके कारतूसों पर चिकनाई लगा कागज होता था, जिसके किनारों को दांतों से काटना पड़ता था और फिर राइफल में रखना पड़ता था। सैनिकों की ऐसी धारणा

बन गई थी कि कारतूस पर लगा चिकनाई वाला पदार्थ गाय व सूअर की चर्बी है। अत: हिन्दू व मुसलमान सैनिकों का इस बात से क्रोधित होना स्वाभाविक था।

सबसे पहले 29 मार्च, 1857 ई. को मंगल पाण्डे नामक एक सैनिक ने चर्बी लगे कारतूसों का प्रयोग करने से मना कर दिया और आदेश देने वाले अधिकारी को मौत के घाट उतार दिया। मंगल पाण्डे पकड़े गए और उन्हें फाँसी दी गई। वे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्रथम शहीद थे। इसके बाद 24 अप्रेल को तीसरी नेटिव रेजीमेन्ट के 99 सिपाहियों ने चर्बी लगे कारतूसों को लेने से मना कर दिया। उनमें 85 को नौकरी से हटा दिया और 10 वर्ष की कठोर कारावास की सजा दी, बेड़ियों से जकड़कर उन्हें मेरठ जेल में डाल दिया गया।


मंगल पाण्डे

फिर क्या था ? अपने सैनिक भाइयों का इस तरह से दमन शेष सिपाही सहन न कर सके और उन्होंने 10 मई रविवार 1857 ई. को विद्रोह कर दिया। जेल पर धावा बोल कर अपने साथियों को छुड़ा लाये। अंग्रेज सैनिक अफसरों को मौत के घाट उतार कर, दिल्ली की ओर चल पड़े। आगे चलकर यह विद्रोह राष्ट्रीय विप्लव के रूप में बदल गया, जिसका विस्तृत वर्णन हम अगली इकाई में पढ़ेंगे।

क्रान्ति का प्रारम्भ तथा विस्तार

जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं कि 1857 की क्रान्ति एक सैनिक विद्रोह मात्र नहीं था वरन् एक व्यापक जन विद्रोह था। अनेक इतिहासकारों ने इसे एक व्यापक एवं सुसंगठित विद्रोह बताया है। इनमें वीर सावरकर का नाम प्रमुख है। उनके अनुसार सशस्त्र क्रान्ति की प्रथम रूप-रेखा तैयार करने वाले पेशवा नाना साहब के सलाहकार अजीमुल्ला खाँ थे।

हम यह भी पहले पढ़ चुके हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार ने नाना साहब को मिलने वाली 8 लाख रुपये पेन्शन बन्द कर दी। कम्पनी के संचालकों के सामने नाना साहब की न्यायोचित माँग को रखने स्वयं अजीमुल्ला खां लंदन तक गए। वहाँ से इस सम्बन्ध में इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया से भी मिले, परन्तु उन्हें निराशा ही हाथ लगी। उसी समय उन्होंने निर्णय कर लिया था कि लातों को खाने वाले बातों से नहीं मानेंगे।

उन्हीं दिनों सतारा रियासत को भी डलहौजी ने हड़प लिया था। अत: सतारा के राजा का मामला (केस) लेकर रंगोजी बापू भी लंदन गए थे, परन्तु उन्हें

भी अपने कार्य में सफलता नहीं मिली। अत: अजीमुल्ला खाँ तथा रंगोजी बापू ने लन्दन की होटलों में यह योजना बनाली थी कि खाँ साहब रूस, फ्रांस, तुर्की, जर्मनी तथा इटली आदि यूरोपीय देशों का भ्रमण कर, विदेशी सहायता प्राप्त करने का प्रयास करें और रंगोजी बापू भारत जाकर अपने शासकों से मिलकर उन्हें क्रान्ति के लिए तैयार करें।

अजीमुल्ला खाँ ने इटली तथा जर्मनी के एकीकरण तथा स्वतन्त्रता संग्राम से प्रेरणा ली। रूस से भी भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के लिए सहायता का वचन लेकर वे भारत लौटे। भारत आकर अपने स्वामी नाना साहब को उन्होंने यूरोप में राष्ट्रीय आन्दोलन तथा इटली व जर्मनी के एकीकरण की पूरी जानकारी दी और ऐसी ही राष्ट्रीय क्रान्ति भारत में भी करने के लिए उन्हें तैयार किया। अब नाना साहब तथा फैजाबाद के मौलवी अहमदउल्ला खाँ क्रान्ति के लिए गुप्त रूप से स्थानीय राजाओं तथा जनता से सम्पर्क करने लगे।

परन्तु कोई भी सशस्त्र क्रान्ति सेना के सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकती। अत: नाना साहब तथा अजीमुल्ला खाँ ने उत्तरी भारत की सैनिक छावनियों से सम्पर्क करने की एक गुप्त योजना बनाई। इसके लिए उन्होंने तीर्थ यात्रा की योजना बनाई। इस तीर्थ यात्रा के बारे में लन्दन टाइम्स के संवाददाता लॉर्ड 'रसेल' ने 'माई डायरी इन इण्डिया भाग एक पृष्ठ 170' पर लिखा है कि "अलीमुल्ला खाँ" व नाना साहब की संयुक्त तीर्थ यात्रा का उद्देश्य धार्मिक न होकर राजनीतिक था। इस तीर्थ यात्रा के बहाने वे उत्तरी भारत की प्रमुख सैनिक छावनियों, जैसे— मैरठ, अम्बाला तथा लखनऊ का दौरा कर आये।"

जिस प्रकार मेजनी इटली के राष्ट्रीय आन्दोलन के मस्तिष्क थे, उसी प्रकार पेशवा नाना साहब स्वतन्त्रता संग्राम के मस्तिष्क थे। वीर सावरकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में लिखा है कि "नाना साहब क्रान्ति के विचार को फैलाने का द्रुतगति से काम कर रहे थे। देहली से लेकर मैसूर तक अनेक राजाओं को स्वतन्त्रता संग्राम में सहयोग देने के लिए दूत भेजे गए। स्वयं नाना साहब ब्रह्मव्रत के राजमहलों से निकल कर विभिन्न कड़ियों को मिलाने में लग गए। दिल्ली जाकर मुगल सम्राट बहादुरशाह से मंत्रणा की। वहाँ से वे अम्बाला गए और अम्बाला से लखनऊ पहुँचे, वहाँ पर बेगम हजरत महल तथा लखनऊ की जनता ने आपका हार्दिक स्वागत किया। एक विशाल जुलूस निकाला गया जिसमें क्रान्तिकारी नारे लगाये गए। लखनऊ से नाना साहब तथा अजीमुल्ला खाँ कालपी गए, वहीं पर जगदीशपुर के वयोवृद्ध क्रान्तिकारी नेता बाबू कुँवरसिंह से भेंट हुई। ग्रान्ड ट्रंक रोड स्थित सभी सैनिक छावनियों से सम्पर्क कर यह सुनिश्चित किया गया कि 31 मई, सन् 1857 ई. को कम्पनी शासन को उखाड़

फेंकने के लिए सशस्त्र क्रान्ति की जाए। इसके लिए उत्तर भारत की सभी सैनिक चौकियों को पूरी तरह से तैयार कर लिया गया था।''

इधर जनता में जागृति भरने के लिए फैजाबाद के मौलवी अहमद उल्ला खाँ ने बहुत जोशीले भाषण दिए। साधु-संन्यासी, फकीर, मदारियों व मन्दिर के पुजारियों ने गाँव-गाँव क्रान्ति का संदेश पहुँचाना शुरू कर दिया। इस तरह से क्रान्ति की पूरी तैयारी गुप्त रूप से सुनियोजित ढंग से की जा रही थी। 31 मई, 1857 ई. को क्रान्ति का शुभारम्भ होना था।

ध्वज गीत क्रान्ति चिन्ह :

सैनिक छावनियों में क्रान्ति का संदेश भेजने का प्रतीक कमल का फूल था। कमल का फूल एक सैनिक छावनी से दूसरी छावनी को जब पहुँचाया जाता तो इसका अर्थ यह लगाया जाता था कि क्रान्ति के लिए तैयार हो जाओ।

जनता में क्रान्ति का संदेश पहुँचाने के लिए चपाती एक गाँव से दूसरे गाँव भेजी जाती थी। वास्तव में आम जनता की रोटी ही तो अंग्रेजों ने छीनी थी। अत: उस रोटी को पुन: प्राप्त करने के लिए ही जन-जागरण के लिए चपाती क्रान्ति के प्रतीक के रूप में गाँव-गाँव में भेजी जाती थी।

क्रान्ति की भावना को बलवती करने के लिए पयामे आजादी नामक एक पत्र उर्दू में निकाला जाता था। इस पत्र के प्रमुख पृष्ठ पर ध्वज गीत छपा रहता था। पयामे आजादी के कुछ अंक अब भी लंदन म्यूजियम में सुरक्षित हैं। यहाँ पयामे आजादी से हो ध्वज गीत उद्धृत किया जा रहा है—

''यह है आजादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा,
पाक वतन है कौम का उन्नत से भी प्यारा।
यह है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा,
इसकी रूहानियत से रोशन है जग सारा।
कितना कदीम, कितना नईम, सब दुनियाँ से न्यारा,
करती है जरखेज, जिसे गंगो-जमन की धारा।
ऊपर बर्फीला पर्वत पहरेदार हमारा,
नीचे साहिल पर बजता सागर का नक्कारा।
इसकी खानें उगल रही हैं सोना, हीरा, पारा,
इसकी शानो-शौकत का दुनियाँ में जय जयकारा।
आया फिरंगी दूर से ऐसा मंत्र मारा,
लूटा दोनों हाथ से प्यारा वतन हमारा।

आज शहीदों ने है, तुमको अहले वतन ललकारा,
तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा।
हिन्दू मुसलमान, सिक्ख, हमारा भाई-भाई प्यारा,
यह है आजादी का झण्डा इसे सलाम हमारा।"

क्रान्ति के इस झण्डा गीत से क्रान्ति का अन्तर्निहित उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है। क्रान्ति की योजनाएँ इतनी गुप्त रखी गईं थीं कि कम्पनी शासन को इसकी भनक तक नहीं पड़ी।

क्रान्ति का विस्फोट .

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि क्रान्ति 31 मई, 1857 को होनी थी, परन्तु 9 मई, 1857 ई. को नेटिव (देशी) रेजीमेन्ट के 85 सिपाहियों को इसलिए नौकरी से हटा दिया था कि उन्होंने चर्बी लगे कारतूसों को लेने से मना कर दिया था, इतना ही नहीं उन्हें बेड़ियों से जकड़ कर जेल में ठूँस दिया और दस-दस वर्ष का कठोर कारावास 10 मई को सुना दिया गया।

दूसरे दिन मेरठ छावनी के कुछ सैनिक मेरठ के बाजार में घूम रहे थे। स्थानीय महिलाओं ने सैनिकों को ताने मारते हुए कहा कि "आपके भाई तो जेलों में पड़े हैं, आप आजादी से घूम रहे हैं।" इन व्यंग्य बाणों से मेरठ के सैनिकों का खून खौल उठा। छावनी स्थित बाबा ओघड़नाथ के मन्दिर में अपने साथियों को छुड़ाने की प्रतिज्ञा की। फिर क्या था ? दूसरे ही दिन 10 मई रविवार को सारा नगर अल्लाहो अकबर तथा हर-हर महादेव के नारों से गूँज उठा। सर्व प्रथम क्रान्तिकारियों ने जेल पर आक्रमण कर अपने साथियों को छुड़ाया। जहाँ भी अंग्रेज सैनिक तथा अधिकारी दिखाई दिये, उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया।



क्रान्ति का विस्तार :

इस तरह से दिल्ली से 36 मील दूर मेरठ में क्रान्ति प्रारम्भ हुई और देखते-देखते समस्त उत्तरी भारत में आग की तरह फैल गई। कुछ ही दिनों में उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में नर्मदा तथा पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम में राजपूताना तक के सम्पूर्ण क्षेत्र में क्रान्ति फैल गई।

10 मई रविवार को मेरठ में क्रान्ति का शंखनाद कर सूर्यास्त के बाद मेरठ के क्रान्तिकारी दिल्ली की ओर कूच करने लगे। जब 11 मई को प्रातः क्रान्तिकारी दिल्ली पहुँचे तो दिल्ली की स्थानीय सेना अपने अंग्रेज अधिकारियों को मारकर क्रान्ति में शामिल हो गई। दिल्ली पर क्रान्तिकारियों ने अधिकार कर लिया। बहादुरशाह को क्रान्ति का नेता तथा भारत का सम्राट घोषित किया गया। अब दिल्ली विद्रोहियों का केन्द्र स्थल बन गई और बहादुरशाह स्वतंत्र भारत का प्रतीक बन गया।

इस तरह से यह सैनिक क्रान्ति राजनीतिक क्रान्ति में बदल गई, क्योंकि मुगल शासन लम्बे समय से भारत की राजनैतिक एकता का प्रतीक था।

दिल्ली के स्वतन्त्र होने तथा मुगल सम्राट बहादुरशाह द्वारा क्रान्ति का नेतृत्व स्वीकार करने से क्रान्ति में नवजीवन का संचार हो गया और इसने राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया। देश भर के सैनिक 'दिल्ली चलो' का नारा बुलन्द करने लगे। इस तरह से दिल्ली में तीस हजार स्वतन्त्रता सैनिक एकत्रित हो गए।

समस्त उत्तरी भारत में क्रान्ति तेजी के साथ फैल गई। अवध, रुहेलखण्ड, दोआब, बुन्देलखण्ड, मध्य भारत, बिहार तथा आसाम के अधिकांश भाग से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंका। यद्यपि अनेक देशी राजा, जयपुर, जोधपुर, ग्वालियर आदि ब्रिटिश राज के प्रति वफादार बने रहे, परन्तु यहाँ के छोटे-छोटे जागीरदारों व स्थानीय सेना तथा जनता ने क्रान्ति में बड़े उत्साह से भाग लिया। इन्दौर के सैनिक विद्रोही सेना से मिल गए। ग्वालियर के 20 हजार सैनिक ताँत्या टोपे व लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में आ गए। हैदराबाद तथा बंगाल में भी स्थानीय विद्रोह हुए।

यद्यपि सैनिकों ने क्रान्ति की शुरूआत की थी, परन्तु जनता का सहयोग भी कम नहीं रहा। उत्तरी भारत की अधिकांश जनता भालों, कुल्हाड़ी, तीर कमान, हसिया जैसे देशी हथियारों से अंग्रेजी सेना से लड़ने लगी। इस प्रकार के विद्रोह में किसानों तथा दस्तकारों ने भारी संख्या में भाग लिया। इन्होंने अंग्रेजी खजानों तथा अंग्रेजों के समर्थक पूँजीपतियों व जमींदारों के प्रतिष्ठानों पर खुले आम हमले किए और उनकी सम्पत्ति को लूटा। इन सब घटनाओं से ही तो सैनिक क्रान्ति जन क्रान्ति के रूप में प्रसिद्ध हुई। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि क्रान्तिकारियों की विजय पर, विद्रोह में भाग न ले सकने वाले भारतीय

अधिकारियों व जनता ने भी गुप्त रूप से खुशियाँ मनाई। इससे स्पष्ट विदित होता है कि ब्रिटिश राज के प्रति कितनी व्यापक घृणा फैल गई थी। डब्ल्यू. एच. रसेल टाइम्स पत्र के संवाददाता के रूप में भारत आए थे, उन्होंने लिखा— "गोरे लोगों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, सभी लोग हमें अपना शत्रु समझते थे।" अब हम संक्षेप में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में लड़े गए स्वतन्त्रता संग्राम का परिचय प्राप्त करेंगे।

दिल्ली विजय :

मेरठ से क्रान्तिकारी सीधे दिल्ली पहुँचे, दिल्ली के लाल किले पर हरा झण्डा फहरा दिया गया और बहादुरशाह स्वाधीन भारत के सम्राट घोषित किए गए। ..., अवध स्थित बंगाल की सेना ने क्रान्ति में अद्‌भुत शौर्य का परिचय दिया। वास्तव में दिल्ली विजय विद्रोहियों की शानदार सफलता थी। 11 मई 1857 ई. को दिल्ली से विदेशी शासन का पूरी तरह से सफाया कर दिया गया। 24 मई तक समस्त अंग्रेज नागरिक व अधिकारी दिल्ली से निकल भागे। अंग्रेजों व एँग्लो इण्डियन की दरियागंज बस्ती देखते-देखते खाली हो गई। दिल्ली पर क्रान्तिकारियों ने पूरी तरह नियंत्रण कर बादशाह बहादुरशाह जफर को भारत का पुनः सम्राट घोषित कर दिया। सारे उत्तरी भारत में बहादुरशाह के नाम से आदेश प्रसारित किए गए।

रुहेलखण्ड में क्रान्ति :

रविवार 31 मई को भारतीय सैनिकों ने बरेली छावनी में क्रान्ति कर दी। जनरल बख्त खाँ उन क्रान्तिकारी सैनिकों के नेता बन गए। देखते-देखते ही पूरे बरेली नगर को अंग्रेजी सेना से मुक्त कर लिया गया और नवाब खानबहादुरखाँ को रुहेलखण्ड का नवाब घोषित किया गया। नगर में विजय जुलूस निकाला गया। कुछ ही दिनों बाद मुगल सम्राट बहादुरशाह ने भी नवाब खानबहादुरखाँ को अपनी ओर से रुहेलखण्ड का सूबेदार घोषित किया।

खानबहादुरखाँ ने केवल एक सप्ताह में पूरे रुहेलखण्ड की शासन व्यवस्था को सुदृढ़ कर लिया। रुहेलखण्ड की इस स्वतन्त्र शासन व्यवस्था में हिन्दू तथा मुसलमानों की एकता सराहनीय रही। खानबहादुरखाँ ने 16 हजार सैनिक जनरल बख्तखाँ के नेतृत्व में मुगल सम्राट की सहायता के लिए दिल्ली भेजे गए। रास्ते में बरेली की इस सेना के दिल्ली प्रयाण से अन्य क्रान्तिकारी सेना को बहुत बल मिला। बख्तखाँ का मुगल दरबार में भव्य स्वागत किया गया और उसे दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना का प्रधान नियुक्त किया गया और 'सिपहसालार बहादुर' की उपाधि से भी विभूषित किया गया।

नवाब खानबहादुरखाँ ने हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित कर समस्त रुहेलखण्ड के स्वतन्त्र ताल्लुकों (जागीरदारों) को अपने अधिकार में कर लिया और इस तरह से स्वतन्त्र रुहेलखण्ड की स्थापना की, जो एक वर्ष से अधिक समय तक स्वतन्त्र रहा। इतना ही नहीं नाना साहब तथा ताँत्या टोपे को भी अपने यहाँ शरण दी। इतना ही नहीं उन्होंने नैनीताल पर भी तीन बार लगातार आक्रमण किए, परन्तु इसमें उसे अधिक सफलता नहीं मिली।

अवध में क्रान्ति :

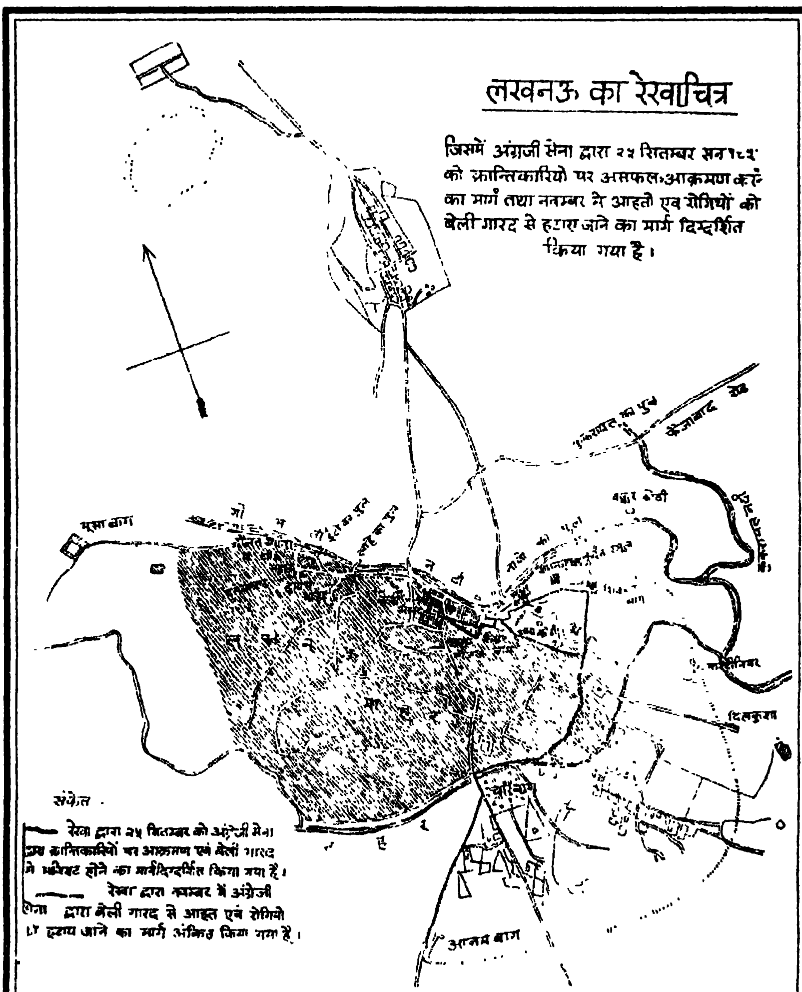
जैसा कि हम पूर्व पृष्ठों में पढ़ चुके हैं कि लॉर्ड डलहौजी ने अवध के नवाब वाजिद अलीशाह पर कुशासन का आरोप लगाकर अवध को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया, परन्तु वहाँ की आम जनता कम्पनी सरकार के इस अन्यायपूर्ण कार्य पर काफी क्षुब्ध थी। ऐसी स्थिति में मौलवी अहमद उल्ला शाह के जोशीले भाषणों ने आग में घी का काम किया। मौलवी साहब के बारे में विस्तृत जानकारी अगले पृष्ठों में प्राप्त करेंगे।

लखनऊ में क्रान्ति 30 मई, 1857 ई. की रात को 9 बजे हुई और सैनिक छावनी के सैनिकों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। लखनऊ में क्रान्ति की बिगुल बजते ही अवध के सभी जनपदों में क्रान्ति हो गयी। लखनऊ से क्रान्तिकारी फैजाबाद गए और सरकारी खजाने पर अधिकार कर लिया। खजाने में उस समय 2 लाख 20 हजार रुपये थे। इसके बाद बन्दीगृह की ओर गए जहाँ पर उनका प्रिय नेता मौलवी अहमद उल्ला शाह कैद था। बन्दीगृह के दरवाजे तोड़ दिए गए और मौलवी साहब को मुक्त करा लिया गया। फिर क्या था क्रान्तिकारियों को एक महान् नेता मिल गया। इसी बीच आजमगढ़, बनारस तथा जौनपुर के क्रान्तिकारी भी फैजाबाद पहुँच गए। क्रान्तिकारियों की शक्ति को देखकर अंग्रेजों को फैजाबाद छोड़ना पड़ा। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि क्रान्तिकारियों ने बहुत ही उदारता तथा सौजन्यता से अंग्रेजों को वहाँ से जाने दिया और गंगा पार करने के लिए नावों का भी प्रबन्ध कर दिया।

फैजाबाद को स्वतन्त्र कराकर शुजाउद्दौला के पोते मिर्जा अब्बास को सिंहासन पर बैठाया गया, परन्तु वह काफी वृद्ध था अतः शासन का संचालन नहीं कर सका। अतः राजा मानसिंह को शासन का भार सौंपकर क्रान्तिकारी मौलवी साहब के नेतृत्व में लखनऊ की ओर चल पड़े। उधर अंग्रेज सेनापति क्रान्तिकारी सेना को लखनऊ की ओर बढ़ती देख घबरा उठे। कैप्टिन लारेन्स के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना लोहे का पुल पार करके सुबह होते-होते कुकराल पहुँची। महावीरजी के मन्दिर के पास दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। अंग्रेजी सेना बुरी तरह से पराजित हुई। वह पीछे हटने लगी। कैप्टिन हन्डरसन के अनुसार 999 गोरे सिपाही

मारे गए और बहुत-सी अंग्रेजी तोपें, क्रान्तिकारियों के अधिकार में आ गईं। अंग्रेज भागते-भागते मिर्जा सुलेमान शुकोह के घर से बेलीगारद में प्रवेश कर गए।

अब अंग्रेज कर्मचारी, सैनिक, सेनापति सभी बेलीगारद में बन्दी का जीवन व्यतीत करने लगे। लखनऊ में अब केवल दो स्थान ही अंग्रेजों के अधिकार में थे—एक बेलीगारद व दूसरा मच्छी भवन। मौलवी साहब के कारण लखनऊ निवासियों में अद्भुत जोश का संचार हुआ। सभी ने मिलकर मौलवी साहब के नेतृत्व में मच्छी भवन पर धावा बोल दिया। अंग्रेजी सेना बुरी तरह पराजित हुई। विवश होकर रात को 12 बजे लैफ्टिनेन्ट थामस को मच्छी भवन खाली करना पड़ा और उसने बेलीगारद में शरण ली।



अब क्रान्तिकारियों ने बेलीगारद पर आक्रमण करने की योजना बनाई। 12 जुलाई, 1857 ई. को बेलीगारद नामक अंग्रेज कोठी पर भीषण आक्रमण किया गया। स्वयं मौलवी साहब क्रान्तिकारियों को जोश दिलाते हुए बेलीगारद के फाटक तक पहुँच गए। इसी दिन क्रान्तिकारियों की गोलाबारी से हेनरी लारेन्स घायल हो गया और मारा गया, परन्तु बेलीगारद के अन्दर से निरन्तर गोलाबारी होती रहने से क्रान्तिकारी कोठी में प्रवेश न कर सके।

लखनऊ की मुक्ति के साथ सारे अवध पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया था। ऐसी स्थिति में मौलवी, अहमद उल्ला शाह ने एक सैनिक समिति बनाई जिसकी देखरेख में क्रान्ति का संचालन होने लगा। वाजिदअली शाह के 11 वर्षीय पुत्र ब्रिजिस कादर को पुन: अवध का नवाब घोषित किया गया और उसकी माता हजरत महल को उसकी संरक्षिका नियुक्त किया गया, परन्तु उन पर यह प्रतिबंध अवश्य लगा दिया गया कि वे कोई भी आज्ञा बिना सैनिक कौंसिल की स्वीकृति के प्रसारित नहीं कर सकेंगी। 5 जुलाई , 1857 को सम्पूर्ण अवध एक तरह से स्वतन्त्र हो गया और ब्रिजिस कादर नवाब बने। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि मौलवी अहमद उल्ला शाह अवध क्रान्ति के सर्वमान्य नेता होते हुए भी वे पद लिप्सा से दूर रहे। उनका एकमात्र उद्देश्य अंग्रेजों को भारत से खदेड़ना था।

शासन व्यवस्था को सुगठित करने के बाद 31 जुलाई, 1857 ई. को मौलवी साहब के नेतृत्व में बेलीगारद पर दूसरी बार जोर-शोर से आक्रमण किया गया, परन्तु मम्मू खाँ नामक सेनापति के विश्वासघात के कारण अंग्रेज बेलीगारद की चार दीवारी में कैदियों के रूप में पड़े रहे।

जब हेवलाक को बेलीगारद में अंग्रेजों के फंसे रहने का समाचार मिला तो वह कानपुर से लखनऊ की ओर बढ़ा। उधर आउट्रम तथा नील भी इलाहाबाद में क्रान्तिकारियों का नृशंस दमन कर 23 सितंम्बर, 1857 को लखनऊ के निकट पहुँच गए। तब तीन-तीन प्रसिद्ध अंग्रेज सेनापति लखनऊ की मुक्ति के लिए दौड़ पड़े, परन्तु वे तत्काल हमला करने का साहस न कर सके 25 सितम्बर तक निकम्मों की भाँति सेना पड़ी रही। फिर आलम बाग की ओर बढ़ने लगी। क्रान्तिकारियों ने आलम बाग पर उनसे युद्ध किया और उन्हें आगे बढ़ने से रोका, परन्तु अंग्रेजी सेना किसी प्रकार चार बाग पहुँच गई। यहाँ पर भी क्रान्तिकारी सेना ने जमकर लोहा लिया, परन्तु हेवलाक व आउट्रम की संयुक्त सेना ने 25 सितम्बर की रात होते-होते बेलीगारद में प्रवेश करने में सफलता प्राप्त कर ली, परन्तु अंग्रेजों को इस सफलता की भारी कीमत चुकानी पड़ी। 'ऐ लेडीज डायरी आव दी सीज ऑव लखनऊ' की लेखिका का कथन है कि "प्रत्येक इंच भूमि के लिए युद्ध हुआ। 30 अफसर तथा 500 सैनिक मारे गए।" इस संघर्ष की भीषणता का

अंदाज इससे भी लगाया जा सकता है कि बर्बर सेनापति हेनरी लारेन्स इस संघर्ष में मारा गया। इतना होने पर भी हैवलक बेलीगारद से अंग्रेज बंदियों को मुक्त कराने के स्थान पर वह स्वयं बेलीगारद में बन्द हो गया। यह क्रान्तिकारी सेना की भारी विजय थी। क्रान्तिकारियों ने शहर से बाहर जाने वाले सब पुल तोड़ डाले ताकि शत्रु बाहर न जा सके।

लखनऊ का घेरा क्रान्ति के इतिहास में बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध हुआ। पूरे अक्टूबर मास तक क्रान्तिकारियों द्वारा अंग्रेजी ठिकानों पर हमले होते रहे। उधर बेलीगारद में रसद की कमी से अंग्रेजी सैनिकों की हालत बिगड़ने लगी। प्रतिदिन मुख्य सेनापति कैम्पबेल के पास लखनऊ से सहायता की पुकार होने लगी। अन्त में कैम्पबेल ने 16 अक्टूबर को सिकन्दर बाग की ओर बढ़ने का प्रयास किया। यद्यपि क्रान्तिकारी चारों ओर से घिरे हुए थे, परन्तु क्रान्तिकारी बड़ी वीरता से लड़े और अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। दोनों ओर से गोलीबारी के कारण मैदान अंग्रेजों के हाथ रहा। लगभग दो हजार क्रान्तिकारियों ने अपने प्राणों की आहूति दी।

सिकन्दर बाग से अंग्रेजी सेना पील के नेतृत्व में शहर की ओर आगे बढ़ी। तीन घण्टे तक तोपों से आग के गोले उगलने के बाद भी पील क्रान्तिकारियां को हतोत्साह नहीं कर सका। स्वयं अंग्रेजों ने क्रान्तिकारियों द्वारा इस स्थान पर प्रदर्शित वीरता की प्रशंसा की, परन्तु देशद्रोहियों द्वारा अंग्रेजों का पथ-प्रदर्शन कर देने के कारण विजयश्री अंग्रेजों के हाथ लगी। मेल हाउस हिरनखाना तथा मोती महल पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। अब बेलीगारद से अंग्रेजों को निकलने का मार्ग सुगम हो गया। 19 से 23 अक्टूबर के बीच अंग्रेजों ने बेलीगारद खाली कर दिया। स्त्रियों तथा तोपों को क्रमशः दिलकुशा एवं सिकन्दर बाग भेज दिया गया। अन्त में 27 नवम्बर को कैम्पबेल लखनऊ का भार आउट्रम को सौंप कर स्वयं कानपुर में ताँत्या टोपे की शक्ति को दबाने चल पड़ा।

मौलवी अहमद उल्ला शाह ने कैम्पबेल की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर आउट्रम पर आक्रमण की योजना बनाई। यह योजना शत्रु पर दो ओर से आक्रमण कर दो पाटों में पीस डालने की थी। इस योजना से कानपुर से शत्रु का सम्बन्ध बिल्कुल टूट जाने की आशा थी। इस योजना की मैलसन नामक अंग्रेज सेनापति ने बहुत प्रशंसा की। यदि यह सफल हो जाती तो अंग्रेजों की बड़ी दुर्दशा होती, परन्तु इस योजना को कार्यरूप में परिणत होने के दो दिन पूर्व ही विश्वामघाती कुछ गुप्तचरों ने इसकी सूचना आउट्रम को दे दी। फलस्वरूप आउट्रम ने ब्रिगेडियर स्टेड, रॉबर्ट्सन तथा अलफर्ड को साथ लेकर क्रान्तिकारियों पर आक्रमण कर दिया। क्रान्तिकारी बड़ी वीरता से लड़े, परन्तु एक विश्वासघाती के कारण इतनी बुद्धिमतापूर्ण योजना भी विफल हो गई।

फिर भी क्रान्तिकारियों के नेता मौलवी साहब हिम्मत हारने वाले नहीं थे। लखनऊ में अंग्रेजी फौज के लिए कानपुर से रसद लाने के लिए भेजी इस सूचना के क्रान्तिकारियों को मिलते ही वे आपस में विचार विमर्श करने लगे, परन्तु किन्हीं मतभेदों के कारण किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके, परन्तु मौलवी साहब ने सबके सामने शपथ लेकर यह प्रतिज्ञा की कि आने वाली गाड़ियों पर अपना अधिकार कर वे स्वयं फिरंगियों के मध्य से लखनऊ में प्रवेश करेंगे। इस कार्य के लिए मौलवी 14 जनवरी को लखनऊ से चल पड़े, परन्तु इसकी सूचना कुछ देशद्रोहियों ने पहले ही आउट्रम को दे दी। अत: उसने अलफर्ड को मौलवी से लड़ने भेजा। मौलवी खुले मैदान में थे फिर भी उन्होंने युद्ध से मुँह नहीं मोड़ा और अलफर्ड की सेना से युद्ध करने में घायल हो गए। टाइम्स के संवाददाता रसेल ने लिखा है—"फैजाबाद के मौलवी महानता के अधिकारी थे। उन्होंने दुर्बल एवं मूर्ख लोगों के मध्य रह कर भी अपने आपको साहसी बनाए रखा। यदि क्रान्तिकारी एक मत रहकर अपने नेता की आज्ञा का पालन करते तो क्रान्ति का इतिहास कुछ और ही होता।" इसके बाद बेगम हजरत महल तथा मौलवी साहब के बीच में कुछ मतभेद हो गया, परन्तु अधिकांश क्रान्तिकारी मौलवी साहब के साथ थे। अत: मौलवी साहब ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि कैम्पबेल के पुन: कानपुर से लौटने के पहले ही आलम बाग स्थित आउट्रम की सेना को नष्ट कर दिया जाए, परन्तु यहाँ भी विश्वासघात व सैनिकों की कायरता के कारण मौलवी को पराजित होना पड़ा। इस स्थान पर यह उल्लेखनीय है कि 'राइस होम्स' नामक लेखक मौलवी साहब के साहस व वीरता को देखकर कह उठा—"यद्यपि अधिकांश विद्रोही कायर हैं, परन्तु उनका नेता मौलवी अहमद उल्ला शाह वास्तव में साहस व शक्ति में एक बड़ी सेना का नेतृत्व करने योग्य हैं।"

इतनी विपरीत परिस्थितियों के होने पर भी मौलवी बराबर आउट्रम पर आक्रमण करते रहे। 25 फरवरी, 1858 ई. को आलम बाग पर भीषण आक्रमण किया। प्रात: 10 बजे से सायं 5 बजे तक क्रान्तिकारी सेना ने जमकर मोर्चा लिया। इतिहासकार मैलसन के अनुसार इतने दृढ़ निश्चय से क्रान्तिकारी कभी नहीं लड़े। क्रान्तिकारियों के पीछे हटने का कारण शत्रु के पास कानपुर से नई कुमुक का पहुँच जाना था। यदि क्रान्तिकारी आलम बाग से आउट्रम को हटा पाने में सफल हो जाते तो भारत का इतिहास कुछ और ही होता। इस सफलता से क्रान्तिकारी कैम्पबेल को सबसे अलग कर सकते थे, कानपुर पर अधिकार कर सकते थे और जहाँ चाहते अपनी पताका फहरा सकते थे।

अब मौलवी आक्रामक नीति को छोड़कर लखनऊ नगर की सुरक्षा की तैयारी में जुट गए। इधर अंग्रेजों का ध्यान भी लखनऊ लेने पर केन्द्रित था।

इतिहासकार मैलसन के अनुसार कैम्पबेल ने 27 फरवरी को बन्धरा में घेरा डाला, अन्य स्थानों पर क्रान्ति के पतन के कारण लगभग सभी क्रान्तिकारी लखनऊ में जमा हो गए थे। मैलसन के अनुसार इनकी संख्या 1 लाख 21 हजार थी। इसके विपरीत अंग्रेजों के साथ राणा जंगबहादुर की सेना सहित 31 हजार सेना थी।

क्रान्तिकारियों ने तीन रक्षा पंक्तियाँ बनाई। पहली हजरत गंज पर, दूसरी इमाम बाड़े से लेकर मोती महल तक, तीसरी केसर बाग पर थी। शहर की सभी मुख्य सड़कों पर रक्षा हेतु किले बन्दी की गई थी। केवल शहर के उत्तरी भाग को बिना किले बन्दी के छोड़ दिया गया था, क्योंकि इस ओर से पहले कोई आक्रमणकारी नहीं आया था। ह्वेवलाक तथा आउट्रम ने सितम्बर 1857 ई. में पश्चिम से तथा कैम्पबेल ने दक्षिण से हमला किया था।

उत्तर का उपेक्षित भाग लखनऊ के क्रान्तिकारियों के लिए अभिशाप बन गया। कैम्पबेल को गुप्त रूप से यह सूचना मिल गई थी कि उत्तर की ओर क्रान्ति सेना की कोई रक्षा पंक्ति नहीं है। अतः उसने पहले उत्तर से ही अपनी सेना आगे बढ़ाई। इतने पर भी क्रान्तिकारी विचलित नहीं हुए। वे बहुत ही वीरता से लड़े। बहुत ही खून खराबा के बाद 11 मार्च, 1858 को बेगम कोठी क्रान्तिकारियों के हाथ से निकल गई।

फिर भी क्रान्तिकारी डटे रहे। हर गली व हर कूचा युद्ध स्थल बन गया। स्वयं कैम्पबेल को यह कहना पड़ा कि लखनऊ के एक वर्ष के घेरे में यह सबसे भीषण युद्ध था। 14 मार्च तक इमामबाड़ा, केसर बाग, मोती महल, छतर मंजिल व तारा कोठी पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। 18 मार्च, 1858 ई. को क्रान्तिकारियों को भारी मन से लखनऊ छोड़ने को विवश होना पड़ा।

परन्तु भागकर भी क्रान्तिकारियों ने स्थान-स्थान पर अंग्रेजों से मोर्चा लिया। मूसा बाग पर घमासान युद्ध हुआ। क्रान्तिकारी अंग्रेजों की पकड़ में नहीं आए और लड़ते भिड़ते भागते रहे। मौलवी ने सहादतगंज में डेरा डाला और बेगम हजरत महल अपने 6 हजार साथियों सहित बैतोली पहुँच गई। लखनऊ से 29 मील हटकर बाड़ी नामक स्थान पर क्रान्तिकारियों की अंग्रेजी सेना से भिड़न्त हुई। अंग्रेज सेनापति होपग्रान्ट ने भी बेगम हजरत महल तथा मौलवी साहब को कैद करने का बहुत प्रयास किया, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली।

बाड़ी के बाद मौलवी साहब शाहजहाँपुर पहुँच गए। उधर कानपुर तथा ग्वालियर पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने के कारण पेशवा नाना साहब भी शाहजहाँपुर पहुँच गए। दोनों ही प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के उच्च कोटि के नेता थे। दोनों का शाहजहाँपुर में मिलना अंग्रेजों के लिए गंभीर खतरा बन गया। जब कैम्पबेल को यह समाचार मिला तो 30 अप्रेल को बालपोल को लेकर शाहजहाँपुर पर झपटा।

वह दोनों महान् क्रान्तिकारियों को बन्दी बनाना चाहता था, परन्तु दोनों ही अंग्रेजों की आँखों में धूल झोंक कर बच निकलने में सफल हो गए। नाना साहब तथा बेगम हजरत महल तो नेपाल की तराई की ओर अग्रसर हो गए, परन्तु मौलवी साहब अवध में ही डटे रहे। कैम्पबेल के शाहजहाँपुर से बरेली चले जाने के बाद मौलवी साहब ने एक बार फिर शाहजहाँपुर पर धावा बोल दिया। मौलवी साहब शाहजहाँपुर के निकट पहुँचे ही थे कि अंग्रेज सेनापति हेल भाग कर नव निर्मित सुरक्षित लेज के भवन में छिप गया। उसकी बाहर निकलने की हिम्मत नहीं हुई। उधर बरेली में कैम्पबेल को यह समाचार मिला तो उसने जान जैन सेनापति को हेल की सहायता के लिए भेजा, परन्तु उसकी मौलवी साहब पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं हुई। अन्त में बरेली पतन के बाद ही कैम्पबेल शाहजहाँपुर पहुँचा। उस समय मौलवी साहब शाहजहाँपुर के स्वतंत्र शासक बन गए थे।

कैम्पबेल ने आते ही क्रान्तिकारियों पर आक्रमण किया। क्रान्तिकारी दोपहर तक अंग्रेजी सेना से लोहा लेते रहे, परन्तु मौलवी साहब के हमले रुक-रुक कर होते थे। इतिहासकार मैलसन का कथन है कि यदि मौलवी साहब की सेना एक साथ पूरी शक्ति लगाकर हमला करती तो अंग्रेजों की हार निश्चित थी। राइस होम्स का कथन है कि अद्भुत शक्ति व प्रतिभा के होते हुए भी कमजोर अनुयायियों के कारण मौलवी साहब को पराजय का मुँह देखना पड़ा। वहाँ से 5 जून, 1858 को पौबायाँ के राजा की गढ़ी गए। वहाँ का राजा जगन्नाथसिंह अंग्रेजों से मिला हुआ था। उसने बातचीत के समय मौलवी साहब का वध करवा दिया और उसका सिर काट कर शाहजहाँपुर के मजिस्ट्रेट के पास ले गया। राजा जगन्नाथसिंह को इस देशद्रोह के काम के लिए 50 हजार चाँदी के टुकड़े पुरस्कार में मिले। मौलवी साहब की मृत्यु से मानो समस्त क्रान्ति का ही अन्त हो गया। भारतीय इतिहास की यह विडम्बना ही रही है कि हमारी पराजय का कारण हम लोग ही थे।

मध्य भारत में क्रान्ति का बिगुल

कानपुर तथा इलाहाबाद में क्रान्ति :

नाना साहब पेशवा धुँधूपन्त क्रान्ति के प्रमुख सूत्रधार थे। वे उन दिनों कानपुर के निकट बिठुर में निवास करते थे। नाना साहब ने ही देश की विभिन्न सैनिक छावनियों तथा क्रान्तिकारियों से सम्पर्क करके 31 मार्च, 1857 ई. को ईस्ट इण्डिया कम्पनी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई थी, परन्तु क्रान्ति 10 मई को ही मेरठ में भड़क उठी। अत: अब 31 मई तक रुकना संभव नहीं था।

दिल्ली तथा मेरठ में क्रान्ति के श्रीगणेश की सूचना 16 मई, 1857 ई. तक कानपुर पहुँच गई। कानपुर में उस समय तीन भारतीय पलटनें थीं। मेसी व्हीलर

उस सेना का सेनापति था। जब उसने मेरठ की घटनाओं का विवरण सुना तो उसने दो पुरानी बैरकों में अपने खजाने तथा तोपखाने की सुरक्षा का प्रबन्ध किया। इस समय नाना साहब ने बहुत ही बुद्धिमानी से काम लिया और अपने आपको अंग्रेजों का शुभ चिन्तक बनाए रखा। अंग्रेजों ने खजाने की रक्षा का भार नाना साहब को सौंप दिया। इस कार्य के लिए 1500 नये सैनिक भर्ती करने की स्वीकृति भी उन्हें मिल गई। नाना साहब ने 200 मराठों को तोपखाने के साथ खजाने पर तैनात कर दिया।

इतना सब कुछ होने पर भी मेसी व्हीलर को यह भय बराबर बना रहा कि कानपुर के सैनिक विद्रोह किए बिना नहीं रहेंगे। वास्तव में उसकी चिन्ता ठीक ही निकली। 4 जून की रात्रि के दो बजे घुड़सवारों ने कानपुर में क्रान्ति का शुभारंभ कर दिया। क्रान्तिकारी सीधे हाथीखाने गए और वहाँ से 36 हाथी लेकर खजाने पर धावा बोल दिया। खजाने के रक्षक मराठा सैनिक पहले ही उनसे मिले हुए थे। खजाने के 8.50 लाख रुपये क्रान्तिकारियों के हाथ लग गए। प्रात:काल होते होते तोपखाने पर भी क्रान्तिकारियों ने अधिकार कर लिया। अंग्रेज सैनिक अपने बैरकों वाले गढ़ में कैद हो गए।

इसके बाद सभी क्रान्तिकारी कल्याणपुर में एकत्रित हुए और उन्होंने दिल्ली की ओर कूच करने का निश्चय किया, परन्तु नाना साहब ने दिल्ली कूच की योजना को मूर्खतापूर्ण बताया और क्रान्ति सेना को सलाह दी कि हमें सबसे पहले कानपुर पर पूरी तरह से नियंत्रण करना चाहिए। कानपुर पर आक्रमण करने से अनेक लाभ थे। एक तो कानपुर गंगा की नहर में 40 नावें गोला बारूद से भरी रुड़की भेजी जा रही थी। उन पर अधिकार करना आवश्यक था। अत: कल्याणपुर से आते ही क्रान्तिकारियों ने इस भारी गोलाबारूद को अपने हाथ में ले लिया। दूसरा लाभ यह था कि कानपुर पर अधिकार हो जाने के बाद बनारस तथा इलाहाबाद से अंग्रेजों को खदेड़ा जा सकता था। दूसरी तरफ अंग्रेज भी कानपुर को छोड़ना नहीं चाहते थे, क्योंकि कानपुर पर अधिकार रख कर ही वे लखनऊ व बरेली जीतना चाहते थे। इसके अतिरिक्त कानपुर उनके अधिकार में रहने से ही दिल्ली तथा आगरा से उनका सम्बन्ध बना रह सकता था।

अत: दोनों पक्षों के लिए ही कानपुर का विशेष महत्त्व था। इसीलिए अंग्रेजों तथा क्रान्तिकारियों के बीच तीन भीषण युद्ध हुए। फिर भी क्रान्तिकारी कानपुर पर अपनी स्थायी विजय प्राप्त न कर सके। इसका मुख्य कारण इलाहाबाद तथा बनारस में क्रान्ति का बहुत जल्दी ही असफल हो जाना था।

इलाहाबाद की क्रान्ति व अंग्रेजों की बर्बरता :

इलाहाबाद में मौलवी लियाकत अली के नेतृत्व में 6 जून को स्वतन्त्रता की घोषणा हुई, परन्तु कर्नल नील ने बनारस से आकर 11 जून को इलाहाबाद के दुर्ग

पर पुनः अधिकार कर लिया और वहाँ सैनिक शासन की स्थापना कर दी। उस सैनिक शासन में क्रान्तिकारियों पर जो अमानुषिक अत्याचार हुए वे क्रान्ति के इतिहास में सदा निन्दनीय ही रहेंगे। इस दुःखद दृश्य का वर्णन एक यात्री भोलानाथ चन्दर द्वारा लिखित पुस्तक 'ट्रेवेल्स ऑफ ए हिन्दू' से मिलता है। इसके अलावा अंग्रेज इतिहासकार के द्वारा रचित 'हिस्ट्री ऑफ दि सिप्वाय वार इन इण्डिया पृ. 668 परिशिष्ट 'इलाहाबाद खण्ड' पृ. 270 पर लिखा है —

"इलाहाबाद में जो सैनिक शासन स्थापित हुआ वह अमानुषिक था। उसकी तुलना पूर्वीय अत्याचारों के स्वप्न में भी नहीं की जा सकती। प्रतिशोध की लहर में अन्धाधुन्ध हत्याएँ की गईं।"

"लगभग 6 हजार लोगों की हत्या की गई। पेड़ों पर उनकी लाशें प्रत्येक टहनी पर दो या तीन लटकी हुई थीं। तीन माह तक लगातार, प्रातःकाल से संध्या तक 8 बैलगाड़ियाँ पेड़ों तथा स्तम्भों से शव उतारकर ले जाती थीं और गंगा में प्रवाहित कर देती थीं।"

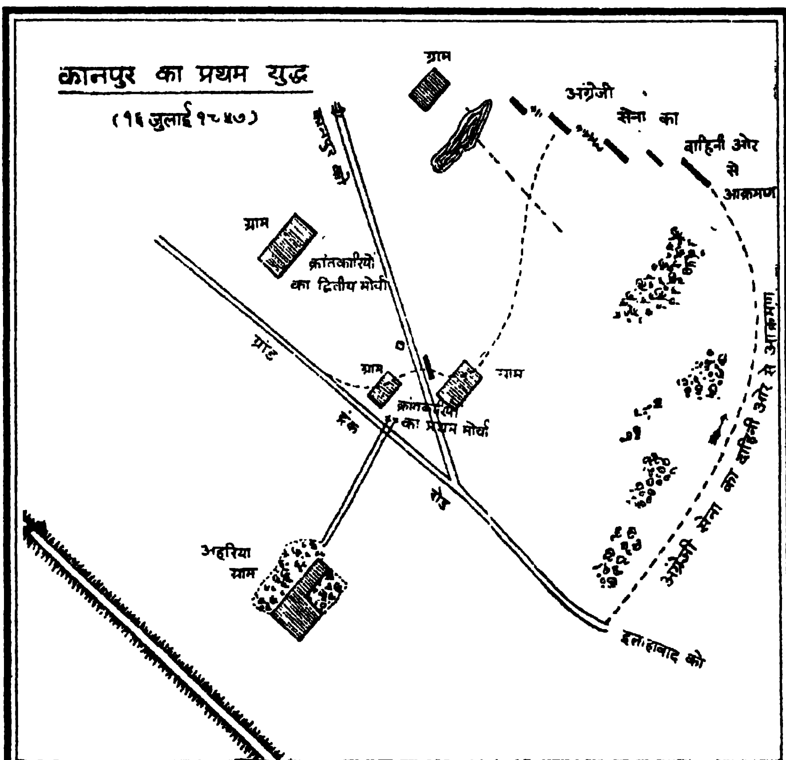
मौलवी लियाकत अली ने स्वयं दयनीय दशा का वर्णन बहादुरशाह को दिल्ली भेजे गए एक पत्र में इस प्रकार किया है —

"अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचार के कारण इलाहाबाद के लोग गाँवों की ओर भाग रहे हैं तथा नील गाँवों को भी जला रहा है। गाँव के गाँव बरबाद हो गए हैं। अतः बचे खुचे क्रान्तिकारियों को कानपुर तथा लखनऊ जाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है।"

कानपुर का प्रथम युद्ध :

जैसा कि पूर्व पृष्ठों में पढ़ चुके हैं कि कल्याणपुर से क्रान्तिकारियों ने नाना साहब की सलाह से दिल्ली के स्थान पर कानपुर पर अधिकार करने की योजना बना ली। कानपुर आते ही नाना साहब ने कर्नल व्हीलर को पत्र द्वारा सूचित किया कि "हम तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं।" कितना महान् आदर्श था। शत्रु पर अचानक आक्रमण करना नाना साहब के धर्म के विरुद्ध था। फलतः 6 जून, 1857 ई. को बैरकों में स्थित अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया। उन्हें पराजित करना इतना आसान नहीं था, क्योंकि अंग्रेजों ने सुदृढ़ मोर्चा बन्दी कर ली थी। नाना साहब ने कानपुर की बैरकों को चारों ओर से घेर लिया और उन पर गोलाबारी शुरू कर दी। इतना ही नहीं उन्होंने समस्त कानपुर जिले व इसके आसपास के क्षेत्र में क्रान्ति की विशद योजना शुरू कर दी। फलतः उन्होंने अपने सैनिकों को कई दलों में बाँट दिया— ताँत्या टोपे तथा राव साहब ने कानपुर के दक्षिण भाग में यमुना पार बुन्देलखण्ड तथा ग्वालियर तक क्रान्ति का बीड़ा उठाया। बाँदा में नवाब अली बहादुर ने 14 जून, 1857 ई. को क्रान्तिकारी शासन

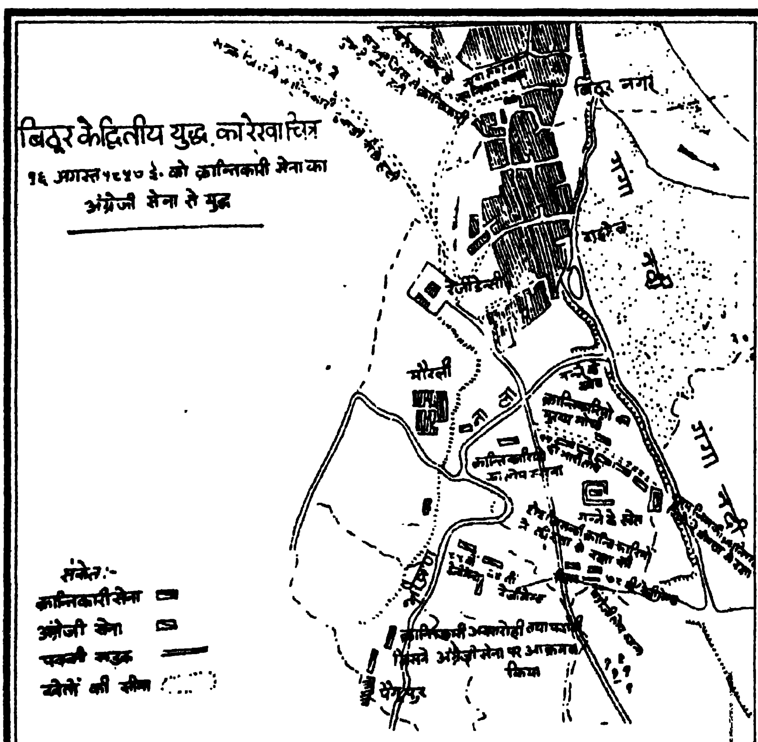
की स्थापना कर दी। 27 जून तक जिले के सभी खजानों पर उनका अधिकार हो गया। तहसीलदार व अन्य पदाधिकारी भी स्वतंत्र शासन के अधीन आ गए थे। बाँदा की क्रान्ति के बाद कर्वी में क्रान्ति की घोषणा कर दी गई। यहाँ पर भी पेशवाई राज्य स्थापित हो गया। बाँदा को भी नवाब अली बहादुर ने दो भागों में बाँटा। दोनों ही भाग पेशवा नाना साहब की अधीनता स्वीकार करते थे। इस तरह से कानपुर जिले पर पूरी तरह से क्रान्तिकारियों का नियंत्रण हो गया। कानपुर की बैरकों में बन्द अंग्रेजी सेना बहुत ही दयनीय स्थिति में थी। 23 जून, 1857 प्लासी के युद्ध की शताब्दी के दिन क्रान्तिकारी सेना ने बड़े उत्साह से बैरकों पर हमला किया।



अंग्रेज सैनिक बहुत ही परेशानी में थे। एक तो उन्हें सहायता की कोई आशा नजर नहीं आ रही थी। दूसरी खाद्य सामग्री का भी अभाव होता जा रहा था। अन्त में नाना साहब द्वारा भेजे गए संदेश के अनुसार हथियार डालने वाले सैनिकों को नावों द्वारा सुरक्षित इलाहाबाद पहुँचाने का बीड़ा क्रांति सैनिकों ने ले लिया था। फलतः अंग्रेज हाथी, घोड़े व पालकी आदि लेकर सतीचोरा घाट की ओर रवाना हुए। वहाँ पर उनके लिए 39 नावों का प्रबन्ध था।

परन्तु इलाहाबाद में जनरल नील द्वारा निहत्थे ग्रामीणों के कत्ले आम तथा अग्निकाण्ड की खबरें सतीचोरा घाट पर पहुँची तो क्रान्तिकारी सैनिकों में प्रतिशोध की आग भड़क गई। अतः नावों में आग लगा दी गई। भागती हुई अंग्रेजी सेना पर गोलियों की बौछारें की गयीं। अनेक गोरे सैनिक मारे गए। यह सूचना जब नाना साहब को मिली तो उन्होंने स्त्रियों तथा बच्चों की सुरक्षा का प्रबन्ध किया और उनको बन्दी बनाकर कानपुर लाया गया। इतने पर भी अंग्रेज इतिहासकारों द्वारा नाना साहब पर सतीचोरा हत्याकाण्ड का आरोप लगाना कितना हास्यास्पद है।

जून की समाप्ति तक वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो गई थी। अंग्रेजों के पास सुदृढ़ नौ सैनिक बेड़ा था। अतः कलकत्ता से स्टीमरों व नावों द्वारा नदी मार्ग से अंग्रेजी कुमुक पहुँचने लगी। क्रान्तिकारी सेना के पास नावों का बेड़ा नहीं था। अतः बनारस तथा इलाहाबाद के पश्चात् कानपुर की पराजय भी अवश्यंभावी थी।



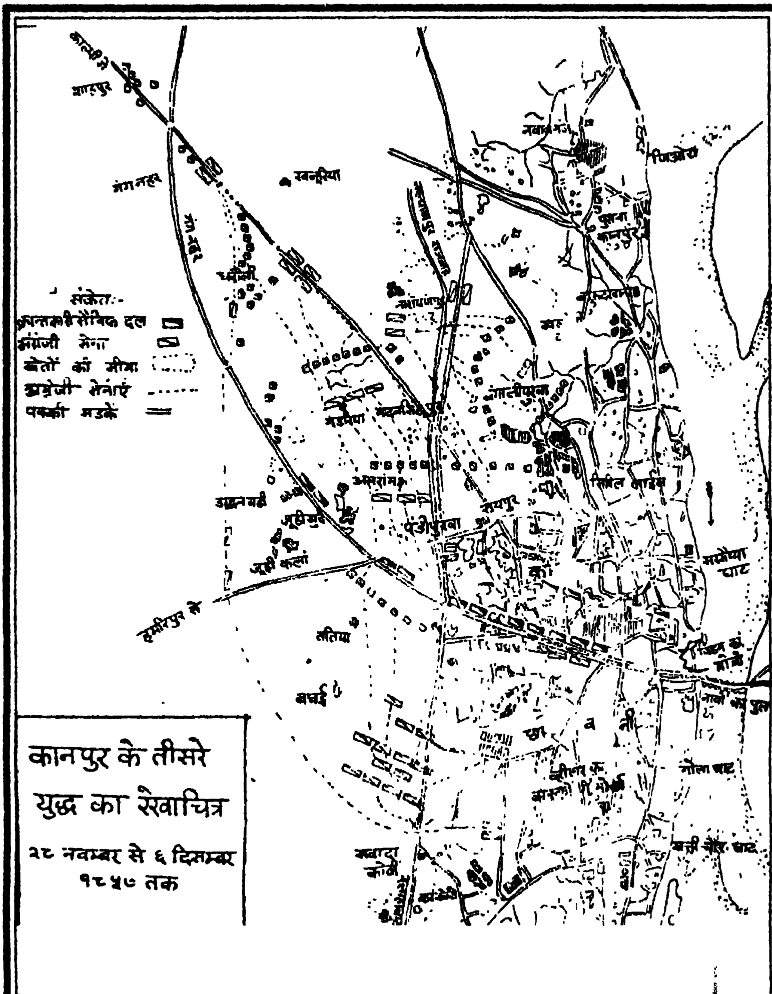
इलाहाबाद में क्रान्ति के बाद मौलवी लियाकत अली कानपुर पहुँचे और नाना साहब को इलाहाबाद के समाचार सुनाये और कहा कि इलाहाबाद से भारी अंग्रेजी सेना कानपुर की ओर आ रही है। अतः क्रान्तिकारियों ने फतहपुर में अंग्रेजी सेना से लोहा लेने का निश्चय किया। फतहपुर में 9 जून, 1857 ई. में ही डिप्टी मजिस्ट्रेट

हिकमत उल्ला खाँ के नेतृत्व में स्वतंत्र हो चुका था। अतः नाना साहब पेशवा ने 3500 सैनिकों को मेजर रेनाड की सेना से लड़ने के लिए भेजा। 12 जुलाई को फतहपुर नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना से जमकर युद्ध हुआ, परन्तु हेवलाक के भारी कुमुक के साथ फतहपुर पहुँचने से क्रान्तिकारियों को पीछे हटना पड़ा। 15 जुलाई, 1857 ई. को पुनः अंग्रेजों से मुठभेड़ हुई। नाना साहब ने पाण्डु नदी तट पर पहुँच कर क्रान्तिकारियों को पुनः संगठित किया और अंग्रेजी सेना पर धावा बोल दिया। घमासान युद्ध हुआ, परन्तु दोनों पक्षों को कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

उस समय कानपुर के बीबीघर में अनेक अंग्रेज नागरिक बन्दी थे। हेवलाक को उनको बचाने की बहुत चिन्ता थी, परन्तु सरबरखाँ ने बेगम के आदेश से बीबी घर के अंग्रेज स्त्री पुरुषों को मार डाला। नाना साहब का इसमें कोई हाथ नहीं था, क्योंकि वे तो अंग्रेजी सेना को आगे बढ़ने से रोकने के लिए फतहपुर में थे, परन्तु उनकी सेना अंग्रेजी तोपखाने के सामने नहीं टिक सकी फलतः अंग्रेजी सेना कानपुर पर आक्रमण करने में सफल हो गई। 16 जुलाई, 1857 को नाना साहब तथा अंग्रेजी सेना में भीषण युद्ध हुआ। अंग्रेजी तोपों की मार से क्रान्तिकारियों के पाँव उखड़ गए और क्रान्तिकारी पराजित हुए। 17 जुलाई, 1857 ई. को कानपुर पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। कानपुर की इस पराजय से क्रान्ति की बहुत ही क्षति हुई। नाना साहब कानपुर से बिठुर चले गए। बिठुर में अंग्रेजी सेना ने उनका पीछा किया। अतः विवश होकर गंगा पार फतहपुर चौरासी में अपने डेरे डाले। यह स्थान ऐसा था कि यहाँ लखनऊ जाने वाली अंग्रेजी सेना पर पीछे से धावा बोला जा सकता था तथा कानपुर तथा बिठुर पर भी अपनी निगाह रखी सकती थी।

जिस समय अंग्रेजी सेना लखनऊ मुक्ति में व्यस्त थी, नाना साहब ने मौका पाकर कानपुर व बिठुर पर पुनः अधिकार करने का प्रयास किया। इस समय दानापुर के सैनिकों ने भी क्रान्ति कर दी थी और वे नाना साहब की मदद के लिए आ पहुँचे। फतहपुर तथा ग्वालियर से भी सहायता मिल गई। इस कारण 6 अगस्त 1857 ई. को बशीरगंज से अंग्रेजों को पुनः पीछे हटना पड़ा। 18 अगस्त तक तो अंग्रेजी सेना कानपुर की बैरकों में छिप गई। नाना साहब तथा ताँत्या टोपे के प्रयत्नों से 42वीं पलटन, द्वितीय घुड़सवार सेना तथा अवध की सेना की सहायता से बिठुर पुनः क्रान्तिकारियों के अधिकार में आ गया और क्रान्तिकारी सेना ने कानपुर को घेर लिया। चारों ओर से कानपुर पर आक्रमण करने की पूरी तैयारी थी। इसी बीच 20 सितम्बर, 1857 ई. की दिल्ली पराजय की सूचना से क्रान्तिकारियों को धक्का अवश्य लगा, परन्तु क्रान्तिकारी हतोत्साह नहीं हुए और कानपुर पर आक्रमण की तैयारी करने लगे।

कानपुर के अंग्रेज सेनाध्यक्ष विंटम भी क्रान्तिकारियों को कानपुर पहुँचने से पहले ही परास्त करने के लिए चल पड़ा 26 नवम्बर, 1857 ई. को ताँत्या टोपे व ब्रिटेन की सेना के बीच पाण्डु नदी के तट पर युद्ध हुआ। इसमें अंग्रेजों की बुरी तरह से हार हुई और ताँत्या टोपे ने कानपुर तक अंग्रेजी सेना का पीछा किया।



कानपुर का तीसरा युद्ध :

27 नवम्बर, 1857 ई. को कानपुर में क्रान्तिकारियों तथा अंग्रेजों के बीच भीषण युद्ध हुआ। ताँत्या टोपे ने अर्ध-वृत्ताकार व्यूह बनाया और संध्या तक अंग्रेजी सेना को हतोत्साहित कर दिया। अंग्रेजों के पूरे कैम्प व साज सामान पर ताँत्या टोपे की सेना ने अधिकार कर लिया। क्रान्तिकारियों की यह शानदार विजय थी। पूरा

कानपुर उनके चंगुल में था। व्हिंटम जैसे प्रसिद्ध जनरल को हराना क्रान्ति की एक मुख्य घटना थी। व्हिंटम की पराजय व कानपुर के संकट की खबर जब कैम्पबेल को मिली तो अवध से भारी सेना लेकर कानपुर की रक्षा के लिए दौड़ पड़ा। ताँत्या टोपे ने अंग्रेजी सेना को गंगा पार करने से रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिली। अब क्रान्तिकारियों ने कैम्पबेल का डटकर सामना करने का निश्चय किया। 5 दिसम्बर को छुटपुट युद्ध हुए, परन्तु 6 दिसम्बर को कैम्पबेल की सेना से ताँत्या टोपे को पराजित होना पड़ा। अंग्रेजों ने कालपी और बिठुर के मार्ग को बन्द करके ताँत्या टोपे को पकड़ने का प्रयास किया, परन्तु ताँत्या टोपे अपनी सेना के अधिकांश भाग व तोपों सहित बिठुर के रास्ते से भाग निकले और क्रान्तिकारी कालपी पहुँचने में सफल हो गए। यहीं से उन्होंने अंग्रेजों के भक्त चखौरी के राज्य पर आक्रमण कर ताँत्या टोपे ने अधिकार कर लिया। चखौरी में ताँत्या टोपे के रणकौशल की अंग्रेज सेनापतियों ने प्रशंसा की। चखौरी से भारी सैनिक साज सामान लेकर ताँत्या टोपे कालपी आ गए। इसी बीव उन्हें झाँसी से महारानी लक्ष्मीबाई का संदेश मिला कि वे झाँसी की सहायता के लिए अविलम्ब आ जाए। अत: पेशवा की सेना लेकर वे झाँसी की ओर बढ़े।

झाँसी तथा ग्वालियर में क्रान्ति :

मेरठ क्रान्ति की खबर पहुँचते ही झाँसी तथा नौगाँव स्थित पदाति सेना की 12 टुकड़ी के सैनिकों में असंतोष की लहर फैल गई। 4 जून, 1857 ई. को जिस दिन कानपुर में क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ था, झाँसी में क्रान्ति का विस्फोट हुआ। सबसे पहले तारागढ़ पर आक्रमण कर तोपखाने पर अधिकार कर लिया गया। 6 जून, 1857 ई. को कप्तान डनलप तथा एनसाईनटेलर को सैनिकों ने परेड ग्राउन्ड पर ही गोली मार दी। 50 सवार सहित थोड़े से पदाति सैनिकों ने किले को घेर लिया जिसमें अंग्रेजी सेना शरण ली हुई थी। 2 दिन में ही किले के अंग्रेज घबरा गए और लक्ष्मीबाई से सहायता की याचना करने लगे, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। झाँसी की रानी ने क्रान्तिकारियों का पूरा साथ दिया। 8 जून, 1857 ई. को झाँसी नगर में घोषणा की गयी कि "खल्क खुदा की मुल्क बादशाह का. हुकूमत महारानी लक्ष्मीबाई की।" 12 जून तक अंग्रेजों ने किला खाली कर दिया और झाँसी स्वतंत्र हो गया। क्रान्तिकारी सेना की एक टुकड़ी मुहम्मद बख्त अली के नेतृत्व में दिल्ली चल पड़ी। उरई, कालपी, इटावा, मैनपुर आदि जिलों में क्रान्ति की मशाल जलाती हुई यह सेना 16 जुलाई , 1857 ई. को दिल्ली दरबार में पहुँची।

झाँसी में क्रान्ति की सफलता का प्रभाव ग्वालियर पर पड़े बिना न रहा। वहाँ की सेना ने 14 जून, 1857 ई. को अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विवश हो वहाँ स्थित अंग्रेजों ने आगरा में शरण ली। क्रान्तिकारी जोश में

कानपुर तथा दिल्ली की ओर अग्रसर होने वाले थे, परन्तु सिंधिया ने उन्हें 3 माह का अग्रिम वेतन देकर वहीं रोक लिया।

यद्यपि रीवाँ के महाराजा, ग्वालियर के सिंधिया तथा इन्दौर के होल्कर नरेश अंग्रेजों के पक्ष में थे, परन्तु स्थानीय जनता, जागीरदार व सेना क्रान्तिकारियों के साथ थी। एक तरह से सम्पूर्ण नर्बदा एवं बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अंग्रेजी प्रभुत्व प्रायः समाप्त हो गया था। उनके मित्र राजा नाम मात्र के शासक थे।

झाँसी की स्वतन्त्रता तथा मध्य प्रदेश में क्रान्ति की लहर को देखने हुए अंग्रेजों की दक्षिण स्थित सभी सेना को मध्य भारत की ओर कूच करने का आदेश दिया गया। इंग्लैण्ड से भी सेना तथा सेनानायक आने लगे। माना हुआ सेनानायक ह्यूरोज भारी तोप खाने के साथ क्रान्ति को कुचलने के लिए आगे बढ़ा। रामगढ़ के दुर्ग पर क्रान्तिकारियों से उसकी पहली मुठभेड़ हुई। इसी बीच ग्वालियर की प्रमुख सेना क्रान्ति में कूद पड़ी और कालपी को केन्द्र बनाकर क्रान्तिकारी कानपुर तक छापे मारने लगे। रानी लक्ष्मीबाई भी झाँसी की रक्षा के लिए जुट गई और बाणपुर के राजा को अपना भाई बनाकर झाँसी के दक्षिणी भाग की सुरक्षा का प्रबन्ध किया। बाणपुर के राजा ने रहटगढ़ तथा गढ़रा घोटे नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना से मोर्चा लिया, परन्तु हैदराबाद तथा भोपाल से अंग्रेजों को सहायता मिलने के कारण क्रान्तिकारियों को पीछे हटना पड़ा। ह्यूरोज के सागर पर अधिकार कर झाँसी की ओर अग्रसर होने की योजना बनाई, परन्तु झाँसी के दुर्ग की सुदृढ़ता व रानी लक्ष्मीबाई की शौर्य गाथाओं को सुनकर वह भयभीत होने लगा।

सागर से 27 फरवरी, 1858 ई. को ह्यूरोज भारी भरकम सेना व तोपखाने के साथ झाँसी की ओर बढ़ा, उधर महारानी ने भी दुर्ग रक्षा की पूरी तैयारी कर ली थी। 10 हजार बुन्देल व अफगान सैनिक दुर्ग रक्षा के लिए 40 तोपों के साथ सन्नद्ध थे। 21 मार्च, 1858 ई. ह्यूरोज को झाँसी नगर के सम्मुख पहुँच गया, दूसरे ही दिन युद्ध छिड़ गया। रानी के तोपखाने ने दुर्ग से अंग्रेजी सेना के तोपखाने पर गोले बरसाना शुरू कर दिए। 8 दिन रात तक प्रलयंकारी युद्ध चलता रहा। दुर्ग के तोप चित्रों की बहुत प्रशंसा की गई। रानी स्वयं गोलन्दाजी के पास जाकर उनका उत्साह बढ़ाती थी। विष्णुदत्त गोडसे ने 'माझा प्रवास' नामक ग्रंथ में इस युद्ध का आँखों देखा वर्णन किया है जिससे रानी की अद्वितीय प्रतिभा, रण कौशल व अदम्य साहस का पता चलता है। 23 वर्षीय अबला नारी के चमत्कार को देखकर ह्यूरोज भी दाँतों तले अँगुली दबाने लगा। 30 मार्च, 1858 ई. तक दुर्ग व शहर की अनेक बुर्जियाँ टूट-फूट गयीं। बहुत-सी तोपें बेकार हो गयीं। फिर भी क्रान्तिकारी साहस के साथ दुर्ग रक्षा के लिए डटे रहे। हजारों क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता के इस महान यज्ञ में अपनी बलि दे चुके थे। इसी समय ताँत्या टोपे कानपुर के पतन के

बाद पेशवा नाना साहब की 20 हजार सेना लेकर झाँसी के निकट बेतवा आ पहुँचा। 31 मार्च को ह्यूरोज को इसकी सूचना मिली तो वह घबरा गया। यदि कुछ समय और उसे ताँत्या टोपे की सेना का पता नहीं लगता तो अंग्रेजी सेना का सफाया हो जाता। सूचना मिलते ही ह्यूरोज ताँत्या टोपे को परास्त करने के लिए बेतवा पहुँचा। घमासान युद्ध हुआ। ताँत्या टोपे की सेना ने ब्यूह रचना करके युद्ध नहीं किया था। अतः वह अंग्रेजी तोपों की मार से इधर-उधर बिखर गई। ताँत्या अपनी सेना को लेकर कालपी की ओर कूच कर गया। बेतवा की इस विजय से अंग्रेजों की हिम्मत बढ़ गई, परन्तु रानी भी आसानी से हार मानने वाली नहीं थी। पुनः गोलाबारी शुरू हुई, परन्तु एक भेदिए से इस बात का पता लगने से दक्षिण, पश्चिम की ओर किले की बुर्ज टूट गई, अंग्रेजों ने रात को 2 बजे ही उसी ओर से किले पर आक्रमण शुरू कर दिया।

दुर्ग रक्षक अपने प्राणों की बाजी लगाकर युद्ध करते रहे। ह्यूरोज भी नगर की ओर घुस आया और रानी के महल की ओर झपटा। नगर में घर-घर पर अंग्रेजी सेना से मोर्चा लिया गया। महल पर आक्रमण हुआ। महल के अन्दर बिलायती अफगान सैनिकों ने ह्यूरोज के छक्के छुड़ा दिये, परन्तु शस्त्र व गोला बारूद के अभाव में वे परास्त हुए। महारानी लक्ष्मीबाई को ह्यूरोज कैद करना चाहता था, परन्तु वह वीरांगना अपने साथियों सहित अपने दत्तक पुत्र दामोदर राव को पीठ पर बाँध कर किले के भांडेरी फाटक से अंग्रेजों की आँखों में धूल झोंक कर निकलने में सफल हो गई। रानी अनवरत 24 घंटे में 102 मील की यात्रा पूरी कर कालपी पहुँच गई।

कालपी में क्रान्तिकारी पहले ही अंग्रेजों से युद्ध करने की तैयारी कर रहे थे। कानपुर के तीसरे युद्ध की पराजय के बाद नाना साहब व उनकी सेना भी कालपी पहुँच गई थी। उधर से राव बाँदा भी अपनी सेना सहित कालपी आ पहुँचे। 18 अप्रेल से 20 अप्रेल, 1858 ई. तक कालपी में अंग्रेजी सेना से युद्ध हुआ। इन तीनों में अंग्रेजों को अनेक बार मुँह की खानी पड़ी। कड़ाके की धूप में अंग्रेजी सेना परेशान हो गई। 22 अप्रेल को पुनः क्रान्ति सेना ने अंग्रेजों पर ऐसा जबरदस्त धावा बोला कि कर्नल रॉबर्टसन की सेना को पीछे हटना पड़ा, ब्रिगेडियर स्टुअर्ट की तोपें शान्त हो गईं। ह्यूरोज घबरा गया, परन्तु ह्यूरोज के पास ऊँटों की एक सुरक्षित सेना थी। उस ताजा सेना का थके हुए क्रान्तिकारी सामना न कर सके। उनके पैर उखड़ने लगे और लक्ष्मीबाई के परामर्श से अब क्रान्ति सेना ने ग्वालियर पर अधिकार करने की योजना बनाई। इस योजना का सप्ताहों तक अंग्रेजों को पता नहीं लगा।

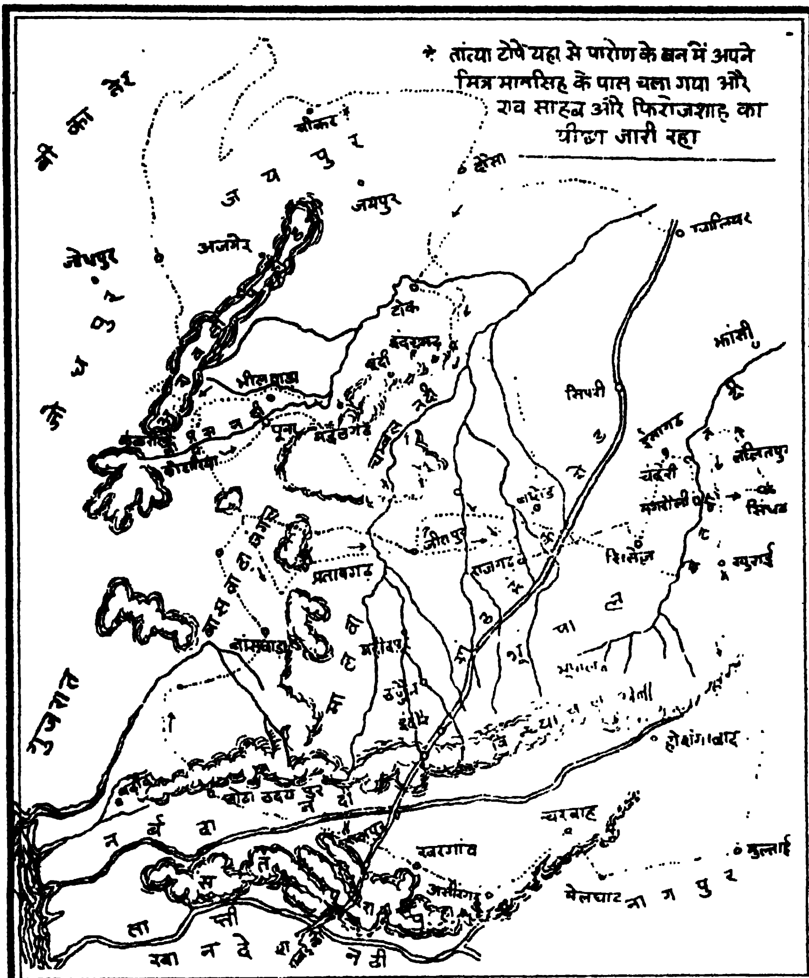
कालपी के युद्ध में क्रान्तिकारियों की बहुत-सी युद्ध सामग्री अंग्रेजों के हाथ लगी। इससे ह्यूरोज मन ही मन बड़ा प्रसन्न हो रहा था, परन्तु जब उसे समाचार मिला कि क्रान्तिकारी सेना ग्वालियर पर अधिकार करने चल पड़ी है तो वह अवाक रह गया। ऐसे संकट के समय में ताँत्या टोपे भी गोपालपुर में क्रान्तिकारी सेना में आ मिला। इससे पेशवाई सेना में नवजीवन का संचार हो गया। क्रान्तिकारी एकत्र हो मुरार की छावनी पर टूट पड़े। इस घटना से ग्वालियर का शासक सिंधिया घबरा गया और वह अपने दीवान के साथ अंग्रेजों की शरण में आगरा चला गया। झाँसी की रानी के नेतृत्व में क्रान्तिकारी सेना के दो सौ घुड़सवार ग्वालियर के महल में पहुँचे। ग्वालियर पर अधिकार क्रान्तिकारियों की एक महान् विजय थी। इस विजयोल्लास में वे भावी विपत्ति को भूल गए और आनन्दोत्सव में लग गए। प्रतिदिन ब्रह्म भोज होने लगे। राग रंग में सारा नगर डूब गया।

ग्वालियर का युद्ध :

महारानी लक्ष्मीबाई इन सब बातों को देखकर बड़ी खिन्न हुयी और उसने नाना साहब तथा नवाब बाँदा को समझाया कि अंग्रेज बड़े चतुर एवं उद्यमी हैं। वे चुप बैठने वाले नहीं हैं। अत: हमें ग्वालियर की रक्षा के लिए पूरी तैयारी करनी चाहिए। अत: झाँसी की रानी व ताँत्या टोपे ने ग्वालियर की रक्षा के लिए सभी संभव प्रयत्न किए। उधर अंग्रेजी सेना ने भी ग्वालियर पर पुन: अधिकार करने की योजना बनाई। एक विशाल सेना ह्यूरोज के नेतृत्व में कालपी से ग्वालियर की ओर चल पड़ी। 16 जून को अंग्रेजी सेना ने बहादुरपुर के निकट मुरार की छावनी से 6 किलोमीटर की दूरी पर अपना डेरा डाल दिया। क्रान्तिकारी सेना भी मुरार की छावनी के सामने पहले से ही डटी हुई थी। छावनी के दोनों ओर अश्वारोही सुसज्जित थे। दाहिनी ओर तोपें चढ़ी हुई थीं तथा पैदल सेना थी। 26 जून को क्रान्तिकारी सेना ने अंग्रेजी सेना पर 6 तोपें दाग कर युद्ध का श्रीगणेश किया। दूसरे दिन कोटा सराय में दोनों पक्षों में जोरदार झड़प हुई। विवश हो अंग्रेजी सेना को अधिक सहायता प्राप्त करने के लिए पीछे हटना पड़ा। अंग्रेजी सेना घिरते ही जा रही थी कि उन्हें आगरा से भारी सैनिक सहायता प्राप्त हो गई। युद्ध जारी था। इसी बीच अंग्रेजों ने देखा कि सीधे ग्वालियर पर आक्रमण करना कठिन है। अत: उन्होंने जंगली मार्ग से पूर्वी पहाड़ियों के ऊपर से आक्रमण का प्रयास किया।

17 जून, 1858 ई. को वीरांगना लक्ष्मीबाई ने ग्वालियर की रक्षा की कमान संभाली। एक बार तो उनके नेतृत्व में क्रान्तिकारी सेना ने अंग्रेजी सेना को पीछे खदेड़ दिया और विवश हो अंग्रेजी सेना को फूल बाग पर पुन: लौटना पड़ा, परन्तु उसी दिन बम्बई से नया तोपखाना व अंग्रेजी कुमुक आ जाने से अंग्रेजों की शक्ति

ताँत्या टोपे के ग्वालियर के युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों से युद्ध
18 जून 1858 से अप्रेल 1859 तक



बढ़ गई। फूल बाग के पास ही महारानी व अंग्रेजी सेना के बीच भीषण युद्ध हुआ। महारानी देश रक्षा के लिए लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुई। लक्ष्मीबाई के निधन से क्रान्तिकारी सेना के हौंसले उड़ गए और उनके पैर उखड़ने लगे। पेशवा तथा राव साहब बाँदा तथा ताँत्या टोपे ने ग्वालियर खाली कर गुना की ओर प्रस्थान किया। ग्वालियर की पराजय तथा महारानी के निधन से क्रान्तिकारियों की कमर टूट गई। अब क्रान्ति का रूप बदल गया और छापामार युद्ध प्रणाली से लगातार 2 वर्ष तक स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी जाती रही।

बिहार में क्रान्ति :

मेरठ क्रान्ति के बाद दिल्ली पर क्रान्तिकारियों का शासन स्थापित हो जाने के बाद देश के अनेक स्थानों पर स्वतन्त्रता की लहर फैल गई। 3 जुलाई 1857 ई. को पटना में बहावी सम्प्रदाय ने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष की घोषणा कर दी। टेयलर इस क्रान्ति को दबा भी न पाये थे कि 25 जुलाई को दानापुर में 7वीं, 8वीं तथा 40वीं भारतीय पैदल सेना ने क्रान्ति की घोषणा कर दी। अंग्रेजी अफसरों को मौत के घाट उतारा जाने लगा। अंग्रेज जनरल लॉयड ने क्रान्तिकारी सेना से मोर्चा लिया और उसे नगर छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। अब भारतीय सैनिक सोन नदी पार कर आरा की ओर चले गए।

27 जुलाई सोमवार 1857 ई. को प्रात: 8 बजे ही क्रान्तिकारो सेना ने आरा नगर में प्रवेश किया। आते ही उन्होंने बन्दीगृह के द्वार तोड़ दिए। 400 कैदियों को रिहा कर सरकारी खजाने पर अधिकार कर लिया। इससे क्रान्तिकारी सेना को 85,000 रुपये प्राप्त हुए। जगदीशपुर के जागीरदार बाबू कुँवरसिंह ने आरा में क्रान्तिकारी सेना के प्रवेश का समाचार सुना तो वे स्वयं जगदीशपुर से राजपूत सेना के साथ क्रान्तिकारियों से आ मिले और क्रान्तिकारी सेना का नेतृत्व संभाल लिया।

बाबू कुंवरसिंह के नेतृत्व में क्रान्ति सेना ने बोयल के बंगले को घेर लिया। 30 जुलाई को अंग्रेजी सेना तथा क्रान्तिकारियों के बीच भीषण युद्ध हुआ। इसमें कुँवरसिंह ने अंग्रेजों को बुरी तरह से पराजित किया। इसके बाद गंगा नदी के तट पर कैप्टन दुन्वर की सेना से संघर्ष हुआ। इसमें भी कुँवरसिंह ने अंग्रेजी सेना पर पीछे से आक्रमण कर बुरी तरह से पराजित किया और कैप्टेन दुन्वर को मौत के घाट उतार दिया। कैप्टन की मृत्यु व अंग्रेजों की पराजय के समाचार सुनकर मेजर बिन्सेन्ट इर 2 अगस्त को आरा के निकट बीबीगंज गाँव में आ धमका। 13 अगस्त, 1857 ई. को क्रान्तिकारी सेना व अंग्रेजी सेना में भयंकर युद्ध हुआ। इसमें क्रान्तिकारियों की पराजय हुई। कुँवरसिंह अपने साथियों सहित जगदीशपुर चले गए।

जगदीशपुर तथा भोजपुर के राजपूत जागीरदार व अवकाश प्राप्त सैनिक अंग्रेजों के अत्याचारों से नाराज थे। कुँवरसिंह के आते ही उनके नेतृत्व में वे सभी संगठित हो गए। इस समय 1500 क्रान्तिकारी सैनिकों सहित लगभग 4 हजार सैनिक बाबू कुँवरसिंह के नेतृत्व में थे। मेजर इर क्रान्तिकारियों को दबाने के लिए जगदीशपुर की ओर अग्रसर हुआ और 12 अगस्त, 1857 ई. को दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। क्रान्तिकारियों को पराजित होना पड़ा। बाबू कुँवरसिंह अपनी 40वीं पलटन के साथ शाहबाद के पहाड़ी इलाकों में सैनिक संगठन कर सासाराम की ओर आये। इसके बाद वे अपने छोटे भाई के साथ रोहतास पहुँचे। सासाराम

तथा रोहतास में पठान अंग्रेजों से पहले क्रुद्ध थे। अतः उनमें क्रान्तिकारी भावना भर कर कुँवरसिंह रीवाँ आ गए। उस समय उनके पास दानापुर व रामगढ़ के 5 हजार सैनिक थे। रीवाँ में क्रान्ति की भावना फैलाकर कुँवरसिंह उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों की ओर बढ़ गए। बाँदा व कानपुर में क्रान्तिकारी मोर्चे स्थापित करते हुए आजमगढ़ में एक जबरदस्त क्रान्ति का संचालन किया। आजमगढ़ व उसके आस-पास के इलाकों पर अधिकार कर लिया गया। लुइस तथा हाबिन्सन अंग्रेज सेनापति इसी युद्ध में मारे गए।

आजमगढ़ में क्रान्ति की खबर सुनकर बाबू कुँवरसिंह घाघरा नदी पार कर 200 सैनिकों सहित गाजीपुर पहुँचे। यहाँ पर क्रान्तिकारियों का शासन स्थापित कर आजमगढ़ के पास उतरैलिया नामक गढ़ पर अपना डेरा डाल दिया। उस समय आजमगढ़ पर मिलमेन का कब्जा किया हुआ था। क्रान्तिकारियों पर उसने कोल्स नामक स्थान पर हमला किया। उधर उतरैलिया से आगे बढ़ कर कुँवरसिंह ने छापामार युद्ध प्रणाली से अंग्रेजों पर धावा बोलना शुरू कर दिया। मिलमेन बुरी तरह पराजित हुआ और बनारस, इलाहाबाद तथा लखनऊ से सहायता की माँग करने लगा। बनारस से आए कर्नल होम्स ने 27 मार्च को कुँवरसिंह पर आक्रमण कर दिया, परन्तु इस युद्ध में भी कुँवरसिंह ने होम्स को पूरी तरह पराजित किया। होम्स की पराजय से लॉर्ड कैनिंग (वायसराय) को बहुत दुःख हुआ और उसने लॉर्ड मार्क जैसे दिग्गज सेनापति को आजमगढ़ पर आक्रमण करने के लिए भेजा। लॉर्ड मार्क 22 अफसरों तथा 444 सैनिकों सहित 6 अप्रेल को आजमगढ़ पहुँचा। उस समय कुँवरसिंह ने आजमगढ़ को घेर रखा था। प्रारम्भ में कुँवरसिंह ने अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर उससे पीछे हटने के लिए विवश कर दिया, परन्तु कुछ समय बाद लॉर्ड मार्क, लागडेन तथा हेनाबिल की सेना ने संयुक्त रूप से कुँवरसिंह पर आक्रमण कर दिया। इससे क्रान्तिकारियों को पीछे हटना पड़ा। वे कुँवरसिंह के नेतृत्व में छापामार युद्ध में व्यस्त हो गए।

छापामार युद्ध प्रणाली से कुँवरसिंह ने अंग्रेजों के हौसले पस्त कर दिए। जनरल हेनाबिल तथा हैमिल्टन को मौत के घाट उतारकर कुँवरसिंह टोंस नदी को पार कर गाजीपुर होते हुए जगदीशपुर की ओर बढ़ गया। रास्ते में अनेक स्थानों पर अंग्रेजों से उनका संघर्ष हुआ, जिसमें वे विजय प्राप्त करते रहे। जी.बी. मैलसन ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन म्युटिनी' भाग 3 पृ. 333 पर कुँवरसिंह के रणकौशल की प्रशंसा की गई है। शिवपुर घाट पर जनरल डगलस व बेली की सेनाओं से कुँवरसिंह का संघर्ष हुआ परन्तु अंग्रेजों की आँखों में धूल झोंक कर वे जगदीशपुर पहुँचने में सफल हो गए।

23 अप्रेल को जनरल ली ग्रान्ड ने आरा से आकर जगदीशपुर को घेर लिया। कुँवरसिंह अंग्रेजों की विशाल सेना को आते देख कटनीतिज्ञता से

जगदीशपुर के जंगलों में अपनी सेना सहित चले गए। ली ग्रान्ड कुँवरसिंह को नगर में न पा कर उनके दमन के लिए जँगल की ओर अग्रसर हुआ। जंगल में आते ही कुँवरसिंह की सेना ने चारों ओर से आक्रमण करना शुरू कर दिया। 200 अंग्रेज सैनिकों में से केवल 80 ही वापिस लौटे। ली ग्रान्ड स्वयं इस युद्ध में गोली का शिकार बना। क्रान्तिकारियों की यह महान् विजय थी। 23 अप्रेल, 1858 को कुँवरसिंह ने बड़ी धूमधाम से जगदीशपुर में प्रवेश किया और सिंहासन पर बैठ कर जगदीशपुर को स्वतंत्र घोषित कर दिया, परन्तु स्वतन्त्रता का यह सुख उन्हें देखने को नहीं मिला और घाव के विशाक्त हो जाने के कारण 26 अप्रेल, 1858 ई. को वे इस संसार को छोड़ चले, परन्तु भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में उनका नाम सदा स्वर्ण अक्षरों में लिखा रहेगा।

आसाम में क्रान्ति :

भारत की अनेक रियासतों पर झूँठे आरोप लगाकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार ने अंग्रेजी राज्य में मिला लिया था। इसी क्रम में उत्तरी भारत को भी वहाँ के राजा पुरन्दरसिंह पर कुशासन के आरोप लगा कर 17 सितम्बर, 1830 ई. को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया था। इसके अतिरिक्त अनेक जमींदारों में गहरा असंतोष था। इन कुलीन अहोम जागीरदारों की समस्याओं को सरकार के सामने लाने का काम मनीराम दत बरुआ ने अपने हाथ में लिया। उसने उत्तरी आसाम राज्य के उत्तराधिकारी कन्दर्पेश्वरसिंह को इस बात के लिए तैयार किया कि वह अपने दादा पुरन्दरसिंह के राज्य की अंग्रेजों से पुन: माँग करे। इसी बात को लेकर मनीराम बंगाल के लैफ्टिनेन्ट गबर्नर से मिलने 16 मई, 1857 ई. को कलकत्ता पहुँचे। यहीं पर उत्तरी भारत में क्रान्ति की सफलता के समाचार उसे मिले और मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर द्वारा जारी संदेश की एक पर्ची भी उनके हाथ लगी, जिसमें कहा गया था कि ब्रिटिश शासन के अत्याचारों का खुलकर विरोध करें। इस पर्ची ने मनीराम के मन में क्रान्ति की भावना जाग्रत कर दी और उसने कन्दर्पेश्वरसिंह को अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति के लिए तैयार कर लिया। उसने बंगाली मुख्तियार मधु मल्लिक को जोरहाट भेजा ताकि क्रान्ति की भूमिका बनाई जा सके।

उस समय आसाम में नियमित सेना की केवल दो रेजीमेन्ट थी — पहली डिब्रूगढ़ तथा दूसरी गौहाटी। सेना में बिहारी, नेपाली, मणिपुरी, दोयनीया तथा जारो सैनिक थे। जब इन लोगों को बिहार में दानापुर छावनी की क्रान्ति के समाचार मिले तो ये भी शस्त्र उठाने की सोचने लगे। सूबेदार शेख भीखम ने सिपाहियों में निश्चित समय पर क्रान्ति करने के गुप्त संदेश भेजे।

उधर कन्दर्पेश्वरसिंह कलकत्ता से मनीराम द्वारा लिखे गए पत्रों से अत्यधिक प्रभावित हुआ और जोरहाट में अपने विश्वासपात्र लोगों की एक गुप्त बैठक

आयोजित की। इसमें पियाला बरुआ, मधु मल्लिक, रूट्र बरुआ, मुहम्मद बहादुर, गाँव बेरा, फारमद अली, मायाराम, नजीर, भीनयान, इलीराम बरुआ तथा मारंगी खोवा मोहन आदि ने भाग लिया। इस बैठक में यह योजना बनाई गई कि अक्टूबर, 1857 के प्रारम्भ में उस समय जोरहाट पर आक्रमण कर देगी जब मनीराम कलकत्ता से अस्त्र-शस्त्र लेकर आएगा। आसाम लाइट इन्फेन्टरी के सिपाही क्रान्ति में पूरा सहयोग देंगे। फलस्वरूप सभी अंग्रेज अफसरों की हत्या कर कन्दर्पेश्वरसिंह को आसाम का राजा घोषित कर दिया जाएगा।

परन्तु योजना की क्रियान्विति के पहले ही भेद खुल जाने से सभी प्रमुख नेताओं को पकड़ लिया गया। मनीराम को भी कलकत्ता से पकड़ कर जोरहाट लाया गया। नाम मात्र का मुकदमा चलाकर अनेक सैनिकों को आजन्म कारावास की सजा दी गई। कैप्टन हालराड ने मनीराम बरुआ तथा पियाली बरुआ आदि पर मुकदमे चला कर मृत्यु दण्ड की सजा दी गई। 27 फरवरी, 1858 ई. को उन्हें जनता के सामने फाँसी पर लटका दिया गया। इस घटना से आसाम के गौहाटी व कामरूप रेजीमेन्ट में भी असन्तोष फैला, परन्तु विद्रोह को दबाकर अनेक सैनिकों को नौकरी से निकाल दिया गया। इस तरह से आसाम से भी अनेक वीरों ने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया।

उधर पूर्वी बंगाल में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध शस्त्र उठाए गए। 27वीं नेटिव इन्फेन्ट्री रेजीमेन्ट की कम्पनी ने ढाका में क्रान्ति का शंख फूँका तथा ग्वाल पाड़ा में प्रवेश कर फेराबारी थाने को तहस नहस कर दिया। इसी समय 34 नेटिव इन्फेन्ट्री रेजीमेन्ट की तीन कम्पनियों ने चटगाँव में स्वाधीनता संघर्ष छेड़ दिया। सिलहट तथा कानूर में प्रवेश कर अंग्रेजी ठिकानों पर धावा बोल दिया और कमाण्डर मेजर बिंग को मौत के घाट उतार दिया। अत: बिहार ही नहीं पूरे बंगाल व आसाम में क्रान्तिकारी वीरों ने विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए भरपूर प्रयास किया।

पंजाब तथा राजस्थान में क्रान्ति :

यद्यपि पंजाब तथा राजस्थान के बड़े-बड़े राजाओं ने क्रान्ति में हिस्सा नहीं बँटाया, परन्तु यहाँ की जनता व छोटे-छोटे जागीरदार क्रान्ति के साथ थे। झज्झर के नवाब अब्दुर्रहमान खाँ व रेवाड़ी के राव तुलाराम ने क्रान्ति में भरपूर सहयोग दिया। रोहतक की जनता ने क्रान्ति का शंखनाद किया तो नवाब स्वयं वहाँ पहुँचे और क्रान्ति का नेतृत्व किया। अंग्रेज अधिकारियों को रोहतक से खदेड़कर वहाँ स्वतन्त्रता का झण्डा लहराया, परन्तु दिल्ली के पतन के बाद ब्रिगेडियर शॉबर्स व लारेन्स के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना झज्झर की ओर दौड़ पड़ी। नवाब ने शत्रु का सामना करने की पूरी तैयारी कर रक्खी थी, परन्तु दीवान रिछपालसिंह के

विश्वासघात के कारण नवाब अंग्रेजों की पकड़ में आ गए और उन्हें दिल्ली ले जाकर फाँसी दे दी गई।

रिवाड़ी के जागीरदार राव तुलाराम ने भी अंग्रेजों को नाकों चने चबा दिए। 16 नवम्बर, 1857 ई. को राव तुलाराम की क्रान्ति सेना ने कमाण्डर रिचर्ड को बुरी तरह हराया। इस युद्ध में अनेक पंजाबी वीरों ने अपने प्राणों की बलि दी। इनमें राजा नाहरसिंह व मुंशी निजामुद्दीन, कप्तान फतहखाँ, पंडित हरदेव, नाना नूरबक्षसिंह व समदखाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, परन्तु पटियाला व जिन्द के राजाओं को अंग्रेजों की मदद आ जाने से राव तुलाराम को पंजाब छोड़ना पड़ा।

राजस्थान के बड़े-बड़े राजा अंग्रेजों के साथ थे, परन्तु छोटे सामंत व जनता क्रान्तिकारियों के साथ थी। ठाकुर कुशलसिंह ने मारवाड़ के जागीरदारों का नेतृत्व कर जोधपुर के महाराजा व अंग्रेजी सेना को आउवा में बुरी तरह पराजित किया। 21 अगस्त को जोधपुर राज्य के एरनपुरा छावनी के भारतीय दस्तों ने बगावत का झण्डा खड़ा किया और बागी सैनिक ए.जी.जी. (रेजीडेन्ट) मुख्यालय आबू पहुँच गए। वहाँ पर एजेन्ट कर्नल हाल तथा कई अंग्रेज अधिकारियों को मौत के घाट उतार दिया। वहाँ से 'चलो दिल्ली, मारो फिरंगी' के नारे लगाते हुए उन्होंने दिल्ली की ओर कूच किया। रास्ते में आसोप गूलर, आलानियास के ठाकुर भी दल बल सहित क्रान्ति में शामिल हो गए। आहूजा के ठाकुर कुशलसिंह के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश सेना को बुरी तरह हराया। पोलिटिकल एजेन्ट मेसन मारा गया। सेनानायक पैट्रिक लारेन्स रणक्षेत्र छोड़कर भाग गया। आहूवा के लोकगीतों में क्रान्तिकारी सेना की शूरवीरता आज भी गूँज रही है—

"ढोल बाजे चंग बाजे,
भेलो बाजे बाँकियो।
एजेन्ट को मार कर,
दरवाजे पर टाँकियो।
झूझे आहूवो ये झूझे आहूवो।
मुल्का में ठावो हियो आहूवो॥"

कोटा राज्य में भी कोटा कण्टिजेन्ट ने 15 अक्टूबर, 1857 को विद्रोह कर दिया। कोटा स्थित पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल बर्टन व कुछ अन्य अंग्रेज अधिकारी मारे गए। कोटा राज्य के कई क्षेत्रों पर क्रान्ति-सेना का अधिकार हो गया। कोटा महाराव भीमसिंह एक तरह से नजरबन्द कर लिए गए, परन्तु बाद में कर्नल रॉबर्टसन ने क्रान्ति को कुचल दिया। प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानी जय दयाल तथा मेहराबखाँ फाँसी के तख्ते पर लटका दिए गए। नसीराबाद छावनी की दो रेजीमेन्टों ने भी मेरठ क्रान्ति की खबर पाकर 12 मई को विद्रोह कर दिया और अंग्रेज

ठिकानों को जला दिया। क्रान्ति सेना दिल्ली चल पड़ी। यदि यह दिल्ली न जाकर निकट ही अजमेर स्थित अंग्रेजों के शस्त्रागार पर कब्जा कर लेते तो क्रान्ति का इतिहास कुछ और ही होता।

बाद में वीरवर ताँत्या टोपे जब राजस्थान में आए तो यहाँ की जनता ने टोपे की छापामार टुकड़ियों की मदद की। यदि बड़ी रियासतों के राजा ताँत्या टोपे का साथ दे देते तो भारत 90 वर्ष पहले ही स्वतंत्र हो जाता।

क्रान्ति का अंतिम चरण :

जैसा कि हमने पूर्व पृष्ठों में पढ़ा है कि प्रारम्भ में क्रान्ति को बड़ी सफलता मिली। दिल्ली विजय क्रान्ति की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। 16 मई से 20 सितम्बर, 1857 ई. तक भारत एक तरह से स्वतंत्र राष्ट्र ही बन गया था। 14 सितम्बर को ब्रिटिश सेना ने दिल्ली पर पुनः धावा बोला। 6 दिन तक क्रान्तिकारी दिल्ली की रक्षा के लिए प्राण पण से जुटे रहे, परन्तु पास पड़ौस के राजा महाराजा, नेपाल के गोरखे व सिक्ख अंग्रेजों की पूरी मदद कर रहे थे। अतः हमारे लोग ही हमारी पराजय के कारण बने। 21 सितम्बर को मुगल सम्राट बहादुरशाह धोखे से बंदी बना लिए गए और उन्हें रंगून भेज दिया गया।

परन्तु दिल्ली के पतन के बाद भी लखनऊ, बरेली, झाँसी, ग्वालियर कानपुर आदि स्थानों पर क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजी सेना के अनेक बार दाँत खट्टे किए, परन्तु शस्त्रों की कमी व परस्पर समन्वय के अभाव में हमें इन ठिकानों को छोड़ना पड़ा, लेकिन क्या यह कम गौरव की बात है कि हमारे स्वतन्त्रता सेनानियों ने यहाँ कभी आत्म समर्पण नहीं किया और अंतिम दम तक विदेशी शासन से लोहा लेते रहे। भारी दबाव व घेराबन्दी को तोड़कर क्रान्तिकारी नेता अंग्रेजों की आँख में धूल झोंककर बच निकलने में सफल रहे। पेशवा नाना साहब व अवध की बेगम हजरत महल ने कभी हिम्मत न हारी। कठिन परिस्थितियों में भी वीरवर ताँत्या टोपे अंग्रेजी सेना को परेशान करते रहे।

नाना साहब व बेगम हजरत महल नेपाल की तराई में पहुँच कर अपना मोर्चा संगठित करने लगे। अंग्रेजी सेना भी उनका पीछा करती हुई वहाँ पहुँची, परन्तु वहाँ राणा बेणीमाधव व नाना साहब की सैनिक टुकड़ियों ने लॉर्ड क्लाइव की सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया। उधर नेपाल के राणा जंगबहादुर भी अंग्रेजों की धोखा धड़ी से तंग आ चुके थे। अतः इस बार उन्होंने ब्रिटिश सेना की ऐसी मदद न की जैसी अवध अभियान के समय की थी। अतः अंग्रेजों को निराश हो नेपाल की तराई से पुनः लौटना पड़ा। इसी बीच क्रान्तिकारियों ने तुलसीपुर तथा बुटवाल पर अधिकार कर लिया। लॉर्ड रिचर्डसन को भारी सेना के साथ वहाँ जाना पड़ा। 28 मार्च, 1859 ई. तक क्रान्तिकारी वहाँ जमे रहे। इस तरह अप्रेल,

1859 तक हमारा स्वातंत्र्य संग्राम किसी न किसी रूप में चलता रहा। अंग्रेजों के लाख प्रयत्न करने पर भी स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानी नाना साहब व बेगम हजरत महल कभी पकड़ में न आये। महाराणा प्रताप की भाँति अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए जंगलों में विचरण करते रहे, परन्तु कभी दीनता नहीं दिखाई। ये अमर सेनानी नेपाल की तराई में ही स्वतंत्र नागरिक की तरह स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त हुए होंगे। यह भी इतिहास का एक रहस्य ही बना हुआ है।

हमारी असफलता के कारण व क्रान्ति का मूल्याँकन

1857 की क्रान्ति एक व्यापक जन विद्रोह था और भारत से अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए देशभक्त वीरों ने अपने प्राणों की बलि दे दी थी, परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य ही था कि हमें इसमें सफलता नहीं मिली। इसका मतलब यह नहीं है कि हम में अंग्रेजों से कम ताकत थी या हम उनसे कमजोर थे। अंग्रेजों ने बल से नहीं छल से ही भारत में राज्य स्थापित किया था और छल कपट से ही 1857 ई. की क्रान्ति में बाजी मार ले गए, लेकिन छल कपट का शिकार होना क्या हमारे राष्ट्रीय चरित्र को एक गंभीर चुनौती नहीं है ?

देखा जाए तो भारतवर्ष का इतिहास अनेक दु:खान्त घटनाओं से परिपूर्ण है। राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय चेतना का अभाव इस देश की पराधीनता के मुख्य कारण रहे हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए राष्ट्रीय हित को गौण समझना हमारी प्रमुख निर्बलता रही है। हमारे प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की विफलता के पीछे भी राष्ट्रीय चरित्र की कमी ही मुख्य कारण था। यों छोटे-मोटे और भी कारण थे जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

(1) राष्ट्रीयता का अभाव :

राष्ट्रीयता के अभाव के कारण क्रान्ति को बड़ा धक्का लगा। जब अनेक स्वातंत्र्य वीर अपने जीवन की बाजी लगाकर विदेशी शासन को समाप्त करने का प्रयास कर रहे थे, तब यहाँ ऐसे लोगों की भी कमी नहीं थी जो अपने क्षणिक स्वार्थों के लिए अंग्रेजों का साथ दे रहे थे। भारत के बड़े- बड़े राजाओं में राष्ट्रीय चेतना का नितान्त अभाव था। वे कूप मण्डूक की तरह अपने क्षणिक स्वार्थ पूर्ति में ही लगे रहे। यदि ये सभी मिलकर विदेशी-शासन से लोहा लेते तो हमारी विजय सुनिश्चित थी। लन्दन टाइम्स के संवाददाता रसेल ने 'माइ डायरी इन इण्डिया' में इसी तथ्य को उजागर किया है—

"यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि यदि देशी लोग सबके सब हमारे विरोधी हो जाते तो भारत से ब्रिटिश राज का पूर्णरूप से नाश हो जाता। हमारी विजय के पीछे निश्चित रूप से देशी लोगों की मदद थी। हमारा दिल्ली का घेरा

नितान्त असफल हो जाता यदि पटियाला व जीन्द के राजा हमारी मदद नहीं करते। सिक्खों की मदद के बिना तो लखनऊ पर हम पुन: कब्जा कर ही नहीं सकते थे।'' इस तथ्य से स्पष्ट है कि हमारी पराजय के मूल में हम ही लोग थे। सच तो यह है कि ''घर को आग लग गई घर के चिराग से।''

(2) एकता का अभाव :

अंग्रेजों ने फूट डालो व राज करो की नीति शुरू से अपना रखी थी। इसी नीति को वे क्रान्ति के दमन के लिए काम में लेते रहे। हिन्दू तथा मुसलमानों में फूट डालने के उद्देश्य तो उनके पूरे नहीं हुए, परन्तु सिक्खों को अवश्य क्रान्ति से अलग कर दिया। इस एकता की कमी से दिल्ली पर पुन: अंग्रेजों का कब्जा हो सका।

एक समय था जब मराठा संघ की दिल्ली तक धाक थी। संघ के अध्यक्ष पेशवा के नेतृत्व में सभी का पूरा विश्वास था, परन्तु 1857 ई. की क्रान्ति में यह विश्वास व एकता समाप्त हो गई। पेशवा नाना साहब जब समस्त मध्य भारत में क्रान्ति का शंख फूँक रहे थे, तब ग्वालियर का सिंधिया राजा क्रान्ति के दमन में अंग्रेजों का साथ दे रहा था। गवर्नर जनरल लॉर्ड केनिंग ने तो यहाँ तक लिखा है कि ''यदि सिंधिया सरकार बलवे में शामिल होती है, तो मुझे कल ही भारत से अपने डेरे-डण्डे उठाने पड़ेंगे।'' इन सब बातों से स्पष्ट है कि यदि सिक्ख राजा व ग्वालियर का राजा क्रान्ति के साथ होते तो हमारी विजय निश्चित थी, परन्तु 'एकता की कमी ने सभी गुड़ गोबर कर दिया।'

(3) विश्वासघात :

सदियों से भारत की परतंत्रता का मुख्य कारण यहाँ के निवासियों का परस्पर विश्वासघात रहा है। 1757 ई. के प्लासी का युद्ध हम मीर जाफर के विश्वासघात से ही हारे थे। इस विश्वासघात के कारण हम जीती बाजी हार गए। यही हाल प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का हुआ। जब स्वतन्त्रता सेनानी प्राणों की बाजी लगाकर भी दिल्ली की रक्षा के लिए डटे हुए थे तब ही सम्राट बहादुरशाह का सम्बंधी सेनापति इलाही बक्ष अंग्रेजों से जा मिला। इतना ही नहीं परम देशभक्त बहादुरशाह को भी धोखे से पकड़वा दिया। इसके विश्वासघात के कारण ही शाहजादे पकड़े गए और कत्ल किए गए।

महान् क्रान्तिकारी कुशल रणनायक वीरवर ताँत्या टोपे भी अपने मित्र नरवर के राजा मानसिंह के विश्वासघात के कारण अंग्रेजों द्वारा पकड़े गए। 'घर का भेदी लंका ढाये' की कहावत यहाँ पूरी तरह से चरितार्थ हो रही थी।

(4) सशक्त केन्द्रीय शक्ति का अभाव :

वास्तव में केन्द्रीय शक्ति के अभाव से ही तो हम विदेशी आक्रमणों के शिकार हुए थे। क्रान्ति यद्यपि समस्त उत्तरी भारत में प्रचण्ड ज्वाला की भाँति फैल चुकी थी, परन्तु समस्त प्रचण्ड क्रान्तिकारी शक्तियों को एकता के सूत्र में बाँध कर उसे अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा करने वाली केन्द्रीय शक्ति का अभाव था। यद्यपि बहादुरशाह क्रान्तिकारियों द्वारा सर्वमान्य नेता घोषित कर दिए गए थे, परन्तु उनमें नेतृत्व करने की अपेक्षित क्षमताएँ नहीं थीं। कूटनीति का तो उसमें नितान्त अभाव था। यदि कोई सबल केन्द्रीय शक्ति क्रांति का संचालन करती तो विजय सुनिश्चित थी।

(5) अनुशासन व समन्वय का अभाव :

विभिन्न प्रदेशों से आई क्रान्तिकारी सैनिक टुकड़ियाँ एक कमान के अधीन काम नहीं करती थीं। सबके अपने सेनापति थे, जो उचित अनुशासन कायम न कर सके। इस सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स का कथन उल्लेखनीय है— "रंगारंग के विद्रोही सैनिकों की भीड़, जिन्होंने अपने अंग्रेज अफसरों को मार डाला है, अनुशासन के सभी नियम तोड़ डाले हैं और जिन्हें अभी तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसे वे अपनी सर्वोच्च कमान सौंप सकते। ऐसी भीड़ से गंभीर दीर्घकालिक प्रतिरोध की आशा कम से कम करनी चाहिए। कोई भी शक्ति बिना संगठन और शक्तिशाली संगठन के बिना संयत अनुशासन की सफलता की ओर आगे नहीं ले जा सकते।"

यह क्या कम आश्चर्य की बात है कि दिल्ली में एकत्रित 65 हजार क्रान्तिकारी सैनिक दिल्ली की दीवारों से मात्र 6 हजार की ब्रिटिश सेना को न धकेल सके, क्योंकि हमारी सेना में अनुशासन व परस्पर समन्वय की बहुत कमी थी। ऐसी ही स्थिति लखनऊ में थी। परस्पर समन्वय व अनुशासन के अभाव में 2 लाख क्रान्तिकारी सैनिक भी मुट्ठी भर विदेशी सैनिकों को समाप्त न कर सके। यह कैसी विडम्बना है?

कानपुर, दिल्ली, लखनऊ, बरेली क्रान्ति के प्रमुख केन्द्र थे, इनमें परस्पर समन्वय न था। इन स्थानों पर क्रान्तिकारी अपने-अपने ढंग से काम कर रहे थे। ये लोग अपने ही क्षेत्र के लिए लड़ते रहे। एक केन्द्रीय कमान के अन्तर्गत यह युद्ध राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का रूप न ले सका। जिसका नतीजा यह निकला कि एक-एक करके क्रान्तिकारियों के सभी विजयगढ़ ढहते चले गए।

(6) आक्रामक नीति का अभाव :

यद्यपि प्रारम्भ में क्रान्तिकारी सेना ने अंग्रेजी ठिकानों पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधिकार में कर लिया, परन्तु बाद में विजय किए हुए ठिकानों की

रक्षा ही करते रहे। इसका नतीजा यह निकला कि बहुत से अंग्रेजी ठिकाने स्वतंत्र रह गए। इसलिए उन्हें पुन: सेना जुटाने का अवसर मिल गया। इलाहाबाद, आगरा तथा बनारस जैसे अंग्रेज सैनिक ठिकाने क्रान्तिकारियों की मार से अछूते रह गए। मेरठ से दिल्ली पहुँचने के पहले इलाहाबाद तथा आगरे से अंग्रेज सैनिक ठिकानों को समाप्त करना था। इसी तरह से ग्वालियर पर कब्जा होने के बाद क्रान्ति सेना को आगरा पर धावा बोलना था, परन्तु वे दिल्ली तथा ग्वालियर में रक्षात्मक युद्ध ही करते रहे।

इसके अतिरिक्त क्रान्तिकारी नेताओं में कूटनीति का भी अभाव था। संक्षेप में क्रान्तिकारी अपने उद्देश्य के लिए बहादुरी से मरना अवश्य जानते थे, परन्तु कूटनीति का उनमें अभाव था।

(7) प्रशिक्षित सैनिक व नवीन शस्त्रों की कमी :

क्रान्ति में भाग लेने वाले सैनिक प्रशिक्षित तो थोड़े बहुत थे, परन्तु उनमें व्यूह रचना की क्षमता नहीं थी। वे प्राय: अंग्रेज अफसरों की युद्ध योजना व उनके आदेश से ही लड़ते थे। उनमें व्यूह रचना करने वाले सैनिक अधिकारियों की कमी थी। यही कारण था कि दिल्ली तथा लखनऊ में भारी क्रान्तिकारी सेना को मुट्ठी भर प्रशिक्षित अंग्रेज सैनिक पराजित करने में सक्षम हो गए।

सैनिक प्रशिक्षण की तो कमी थी ही, परन्तु नवीनतम शस्त्रों का भी नितान्त अभाव था। क्रान्तिकारियों के पास अधिकतर तलवारें थीं जबकि अंग्रेजी सेना के पास दूर मारक पिस्तौलें थीं। अंग्रेजों के पास सुसंगठित तोपखाना था, जबकि क्रान्तिकारियों के पास तोपों की कमी थी।

(8) नौ सेना का अभाव :

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में नदियों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। अंग्रेजों के पास नावों तथा स्टीमरों का अच्छा बेड़ा था। बनारस से इलाहाबाद तक उन्होंने स्टीमरों से ही सैनिक सहायता पहुँचाई। कलकत्ता से इलाहाबाद सैनिक साज सामान पहुँचाने में नावों का अच्छा उपयोग हुआ जबकि क्रान्तिकारियों के पास नावों की बहुत कमी थी।

(9) समय से पूर्व :

सुसंगठित ढंग से क्रान्ति 31 मई, 1857 को होनी थी, परन्तु चरबी लगे कारतूसों के प्रयोग को लेकर मेरठ में 10 मई रविवार को सैनिक क्रान्ति फूट पड़ी। 11 मई को तो क्रान्तिकारी दिल्ली जा पहुँचे। समय से पूर्व क्रान्ति की पूरी तैयारी न हो सकी और न ही परस्पर समन्वय कायम हो सका। इस प्रकार की जल्दी में अनेक कमियाँ रह गईं।

क्रान्ति का मूल्याँकन

सन् 1857 की क्रान्ति भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण सीमा चिन्ह है। इसने ब्रिटिश शासन की कमजोरी को प्रकट किया तथा उसके प्रति जन-साधारण की गहरी नफरत को स्थायी कर दिया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'भारत की खोज' में लिखा है कि "गदर ने सीधे तौर पर हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों को ही प्रभावित किया, परन्तु उसने सारे हिन्दुस्तान को विशेष करके अंग्रेज हुकूमत को हिला दिया। इसी प्रकार के विचार लंदन टाइम्स के संवाददाता 'रसेल' ने भी पहले प्रकट किए थे — "1857 ई. की लड़ाई से हिन्दुस्तानियों व अंग्रेजों के बीच प्रबल द्वेष और दुर्भावना पैदा हो गई है और इन दोनों में विश्वास होने की कोई संभावना नहीं है।"

स्वतन्त्रता संग्राम ने भावी क्रान्ति के लिए एक प्रेरणादायक वातावरण तैयार किया। विशेष करके सशस्त्र क्रान्तिकारी तो इस युद्ध को अपने लिए एक प्रकाश स्तम्भ के रूप में देखते थे। 'दिल्ली चलो' नारे को आजाद हिन्द फौज ने हृदय से अपनाया तथा इससे प्रेरणा ली। इस क्रान्ति ने भारत की आजादी के लिए लड़ने का एक सिलसिला शुरू कर दिया, जो अनवरत रूप से सन् 1947 ई. तक चलता रहा।

यद्यपि अनेक कारणों से पूरी ताकत लगाने पर भी विदेशी-शासन को समाप्त करने में हमें सफलता नहीं मिली, परन्तु हमने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के क्रूर शासन से अवश्य मुक्ति पा ली। कम्पनी के शासन के स्थान पर भारत का शासन इंग्लैण्ड की संसद के हाथ में चला गया। इंग्लैण्ड की महारानी ने ऐसी अनेक रियायतों की घोषणा की जिसके लिए क्रान्तिकारियों ने आवाज उठाई थी। महारानी विक्टोरिया को नवम्बर 1858 ई. में घोषणा करनी पड़ी जिसके अनुसार राजाओं को गोद लेने का अधिकार मिल गया। दूसरे शब्दों में, झाँसी की रानी एवं नाना साहब की बात मान ली गई। धर्म में अनुचित हस्तक्षेप न करने का वचन दिया गया। अनेक सैनिक सुधार किए गए। भारतीयों को उच्च पदों पर लगाने का भी आश्वासन दिया गया। प्रशासनिक सुधार की ओर भी कदम उठाए गए, परन्तु इन सभी सुधारों का उद्देश्य उच्च पदों पर काम करने वाले भारतीयों व सामंतों को ब्रिटिश सरकार का समर्थक बनाना मात्र था। किसान एवं कारीगरों की हालत दिन प्रतिदिन खराब होती गई। भारत का शोषण यथावत बना रहा। अतः विदेशी शासन को हटाने का निरन्तर संघर्ष चलता रहा, जिसका विस्तृत वर्णन हम अगली इकाइयों में पढ़ेंगे।

☐☐

इकाई 2

स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानी

गत इकाई में हमने स्वतन्त्रता संग्राम का विस्तृत वर्णन पढ़ा है। इस स्वतन्त्रता के महान् यज्ञ में अनेक लोगों ने अपने प्राणों की आहूति दी। स्थानाभाव के कारण सभी का परिचय देना यहाँ संभव नहीं है, तथापि अग्रणी स्वतन्त्रता सेनानियों का संक्षिप्त जीवन परिचय दिए बिना इस पुस्तक का काम अधूरा ही रहेगा। अत: प्रारम्भ के कुछ पृष्ठों में स्वतन्त्रता संग्राम के प्रणेता तथा उसमें आजीवन लगे रहने वाले वीरों का यहाँ संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है। अन्तिम कुछ पृष्ठों में उन रण बाकुरों के क्रिया कलापों पर प्रकाश डाला गया है, जिनका हृदय देश प्रेम से ओत-प्रोत था और अपने-अपने क्षेत्र में देश काल व परिस्थितियों के अनुसार अनवरत रूप से स्वतन्त्रता संग्राम में यथा शक्ति योगदान करते रहे। वास्तव में ये स्वतन्त्रता सेनानी नींव के पत्थर हैं, जिन पर बना स्वतन्त्रता का भवन आज हमें दिखाई देता है।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम एक व्यापक राष्ट्रीय विद्रोह था। यह किसी एक राजा द्वारा संचालित युद्ध नहीं था। अत: निर्विवाद रूप से यह कह सकना बड़ा कठिन है कि व्यक्ति विशेष ही स्वतन्त्रता संग्राम का संचालक था। भारत के कोने-कोने में आजादी की लड़ाई लड़ी गई थी। अत: प्रत्येक क्षेत्र में स्थानीय वीरों ने क्रान्ति का संचालन किया था। फिर भी इन सभी का एक ही ध्येय था— 'भारतवर्ष से अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकना।'

इस उद्देश्य को मूर्त रूप देने वाले थे— पेशवा नाना धुँधूपन्त व उनके सलाहकार अजीमुल्ला खाँ जिन्होंने सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई थी, परन्तु कोई भी सशस्त्र सैनिक क्रान्ति बिना जन-जागरण व जन-समर्थन के व्यापक रूप धारण नहीं कर सकती। इस प्रकार जन-जागरण करने वाले थे— दक्षिण भारत के मौलवी अहमद उल्ला शाह, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

(1) मौलवी अहमद उल्ला शाह :

मौलवी साहब की मान्यता थी कि सशस्त्र विद्रोह की सफलता के लिए सेना से अधिक जनता के सहयोग की आवश्यकता है। यही कारण है कि लोगों में स्वतन्त्रता की भावना भरने का उन्होंने बीड़ा उठाया। अवध में स्वतन्त्रता संग्राम को जन-आन्दोलन का रूप देना उन्हीं का काम था। इतिहासकार मैलसन के अनुसार चपाती योजना के प्रणेता मौलवी साहब ही थे। जैसा कि हम पहले जान चुके हैं कि चपाती व कमल का फूल दो क्रान्ति प्रेरक चिन्ह थे। साधू व फकीर एक गाँव से दूसरे गाँव चपाती पहुँचाकर जनता को क्रान्ति के लिए तैयार करते थे। सैनिक छावनियों में कमल का फूल पहुँचता था। इसका अर्थ होता था कि सैनिकों क्रान्ति के लिए तैयार हो जाओ। अत: सशस्त्र क्रान्ति को जन-आन्दोलन का रूप देने वाले मौलवी अहमद उल्ला शाह ही थे। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के लिए उन्होंने वही कार्य किया जो समरथ गुरु रामदास ने मराठा राष्ट्र के स्वराज्य के लिए किया तथा मेजिनी ने इटली की स्वतन्त्रता के लिए किया।

मौलवी साहब मूल रूप से मद्रास प्रान्त में अर्काट जनपद के निवासी थे। अच्छे समृद्धिशाली परिवार से थे एवं उच्च कोटि के विद्वान् थे। भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी का भी उनको अच्छा ज्ञान था। युवावस्था में ही फकीरी व वैराग्य की भावना से प्रभावित होकर वे अर्काट नगर छोड़कर 10-15 साथियों के साथ उत्तर की ओर चल पड़े। इनके साथ में एक पताका व नक्कारा होता था। जहाँ भी जाते थे उनका भारी स्वागत होता था। ऐसा कहा जाता है कि किसी अज्ञात वीर ने उन्हें विदेशी शासन के चंगुल से देश को छुड़ाने के लिए प्रेरित किया था। उन्हें इसी शर्त पर अपना शिष्य बनाया था कि वे अपना जीवन अंग्रेजों को भारत से निकालने के लिए उत्सर्ग कर दें। इसके लिए पीर ने कुछ शस्त्र भी उन्हें दिए थे, जिनका उपयोग उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में किया था।

मौलवी साहब जहाँ भी जाते थे अपने ओजस्वी भाषण से लोगों में स्वतन्त्रता की भावना भरते थे। इतिहासकार मैलसन ने अपनी पुस्तक 'दि इण्डियन म्यूटिनी आव 1857' पृ. 18 पर लिखा है कि 'दिल्ली, मेरठ, पटना, कलकत्ता तथा अन्य अनेक स्थानों पर जाकर स्वतन्त्रता के इस दीवाने ने लोगों में स्वतन्त्रता के बीज बोये।' लगभग 1854 ई. में घूमते-घूमते ये लखनऊ पहुँचे और वहाँ पर घसियारी मण्डी में अपने डेरे डाले। उस समय उनकी आयु 38 वर्ष की थी। उनके आकर्षक व्यक्तित्व एवं विद्वता से प्रभावित होकर घसियारी मण्डी में लोगों के आने का ताँता लगा रहता था। वे डंके की चोट कहते थे— "अंग्रेजी राज्य का खात्मा करने आया हूँ।" उस समय अवध पर अंग्रेजों का अधिकार हो चुका था। लॉर्ड डलहौजी ने नवाब वाजिदअली शाह पर कुशासन का आरोप लगाकर

उन्हें शासनाच्युत करके कलकत्ता भेज दिया था। इस काण्ड की मौलवी साहब ने खुले शब्दों में निन्दा की। अन्त में अंग्रेजी शासन ने उनको लखनऊ से निकाल दिया। लखनऊ से वे फैजाबाद पहुँचे।

फैजाबाद में वे खुल्लम खुल्ला विरोध करने लगे। अंग्रेज लेखक रॉबिन्सन के अनुसार, "मौलवी ने प्रकट रूप से अंग्रेजों के विरुद्ध जेहाद (धर्म युद्ध) बोल दिया था तथा फैजाबाद में इस आशय के पर्चे बाँटे थे।" हचिन्सन का भी कथन है कि "मौलवी हर स्थान पर जहाँ भी गए, काफिरों (यूरोपियन) के विरुद्ध जेहाद की घोषणा करते थे।" अन्त में मौलवी साहब पर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह व साँठ गाँठ करने के आरोप में मुकदमा चलाया गया तथा कर्नल लेनाक्स ने उन्हें प्राण दण्ड की सजा सुनायी।

जन आक्रोश को ध्यान में रखते हुए मौलवी साहब को तत्काल प्राण दण्ड नहीं दिया गया और उनको फैजाबाद में एक जेल में रख दिया। उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि जो भी उनके सम्पर्क में आता था उनका 'मुरीद' (शिष्य) हुए बिना नहीं रहता था। जेल में सभी उनके सेवा में लगे रहते थे। इसी बीच मेरठ में सैनिक क्रान्ति व दिल्ली विजय के समाचार लखनऊ पहुँचे तो वहाँ 30 मई, 1857 को क्रान्ति हो गई। इसके बाद 8 जून को फैजाबाद के सैनिकों ने भी विद्रोह का झण्डा उठा लिया। क्रान्तिकारी सेना ने सरकारी खजाने पर अधिकार करने के बाद जेल पर आक्रमण किया और अपने प्रिय नेता मौलवी को जेल से मुक्त कराकर उसे अपना नेता बनाया। देखते-देखते ही अंग्रेजी कोठियों पर क्रान्तिकारियों ने अधिकार कर लिया, परन्तु स्त्रियों एवं बच्चों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाई। यहाँ तक कि उनको मृत्युदण्ड की सजा सुनाने वाले कर्नल लेनाक्स के लिए भी सुरक्षित चले जाने के लिए नावों का प्रबन्ध कर मौलवी साहब ने एक उच्च कोटि के भारतीय चरित्र का परिचय दिया। उनका किसी व्यक्ति विशेष से झगड़ा नहीं था। वे तो मातृभूमि को स्वतंत्र देखना चाहते थे। फैजाबाद की स्वतन्त्रता के बाद सैनिकों ने उन्हें वहाँ का नवाब बनाना चाहा, परन्तु उनमें पद लिप्सा लेश मात्र भी नहीं थी। अतः उन्होंने शासक बनने से स्पष्ट मना कर दिया।

मौलवी साहब के नेतृत्व में फैजाबाद से क्रान्तिकारी सेना लखनऊ की ओर चल पड़ी। लखनऊ के अंग्रेज ठिकानों में भय की लहर फैल गई और सबके सब बेलीगारद में एकत्रित हो गए। यह मौलवी साहब की महान् विजय थी। अंग्रेजों को बुरी तरह से पराजित कर उन्हें बेलीगारद में बन्द कर दिया। अब लखनऊ में आजमगढ़ आदि से भी क्रान्तिकारी आने लगे। लखनऊ में अंग्रेज कोठी बेलीगारद को छोड़कर समस्त अवध पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो चुका था। इसका

सारा श्रेय मौलवी साहब को ही था, परन्तु यहाँ भी उन्होंने असीम त्याग का परिचय दिया और ब्रिजिस कादर को अवध का नवाब बना दिया।

लखनऊ की मुक्ति के लिए कैम्पबेल तथा आउट्रम ने बहुत प्रयास किया, परन्तु एक वर्ष के भीषण संघर्ष के बाद भी मौलवी साहब ने लखनऊ की घेराबन्दी जारी रखी और कितने ही स्थानों पर दोनों कुशल सेनानायकों को करारी मात दी, परन्तु भारी अंग्रेजी कुमुक आ जाने तथा नेपाल के राणा जंगबहादुर की सहायता से अंग्रेज लखनऊ पुनः लेने में सफल हो गए। विवश होकर मौलवी साहब को लखनऊ छोड़ना पड़ा, परन्तु उन्होंने बड़ी तथा सआदतगंज के युद्ध में अंग्रेजों को करारी मात दी। इसके बाद मौलवी शाहजहाँपुर आ गए, परन्तु शाहजहाँपुर पर अंग्रेजी आक्रमण के कारण मौलवी साहब पोबायां के राजा के पास चले गए, परन्तु दु:ख के साथ लिखना पड़ा है कि उसने विश्वासघात किया और मौलवी साहब को 5 जून, 1858 ई. को मरवा डाला। पोबायां का राजा जगन्नाथ सिंह ने मौलवी का सिर काट कर शाहजहाँपुर के मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया। मजिस्ट्रेट ने इस देशद्रोही राजा को 50 हजार रुपये दिए। मौलवी साहब की दुखद मृत्यु से क्रान्तिकारियों की ऐसी भारी क्षति हुई जिसकी पूर्ति सर्वथा असंभव थी। रुहेलखण्ड के तत्कालीन कमिश्नर ने लिखा है कि "मौलवी की मृत्यु एक बहुत बड़ी क्रान्तिकारी सेना की मृत्यु के समान थी।"

मौलवी अहमद उल्ला शाह ने समस्त अवध व रुहेलखण्ड में अद्भुत शौर्य व पराक्रम का जो परिचय दिया वह भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। दृढ़ प्रतिज्ञ मौलवी एक अच्छे सैनिक, वक्ता, नेता, लेखक, उत्तम परामर्शदाता एवं उच्च कोटि के संगठन कर्त्ता थे। जो भी उनके सम्पर्क में आया उनके सौम्य, साहस, शौर्य एवं अद्वितीय कार्यक्षमता की प्रशंसा किए बिना न रहा। मैलसन का कथन है कि "सन् 1857 ई. की क्रान्ति में मौलवी का प्रमुख स्थान था। अवध क्रान्ति के वे प्रमुख सूत्रधार थे।" थामल साटन ने मौलवी के गुणों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "वे अद्वितीय योग्यता, साहस एवं दृढ़ संकल्प वाले थे तथा विद्रोहियों में सर्वोत्तम सैनिक थे।" फिशर ने मौलवी को "क्रान्ति के तीन प्रमुख व्यूह कुशल व्यक्तियों में से एक बताया है। उनके अनुसार अन्य दो- ताँत्या टोपे तथा कुँवरसिंह थे।" संक्षेप में नाना साहब, अजीमुल्ला खाँ की भाँति ही मौलवी क्रान्ति के प्रमुख सूत्रधार थे तथा अंग्रेज साम्राज्य के कट्टर विरोधी थे।

(2) स्वतन्त्रता संग्राम के प्रमुख सूत्रधार पेशवा नाना साहब :

नाना साहब पेशवा का मूल नाम धुँधूपन्त था। इनका जन्म 1824 ई. में कोंकण ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम माधोनारायण राव तथा माता का नाम गंगाबाई था। माधोनारायण राव पेशवा बाजीराव द्वितीय के गोती भाई थे।

जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बाजीराव को पूना से निष्कासित कर बिठुर भेज दिया तो माधोनारायण राव भी उनके साथ चले गए। पेशवा बाजीराव द्वितीय नि:संतान थे। अत: 1827 ई. में माधोनारायण राव के तीन वर्षीय पुत्र को गोद ले लिया। इस तरह से नाना धुँधूपन्त बाजीराव द्वितीय के बाद उनकी संपत्ति के नियमानुसार उत्तराधिकारी हो गए थे।

28 जनवरी, 1851 ई. को पेशवा बाजीराव की मृत्यु हो गई। नाना धुँधूपन्त ने पेशवा की उपाधि धारण कर ली, परन्तु कम्पनी शासन ने पेशवा उपाधि को मान्यता नहीं दी। इतना ही नहीं उनको दी जाने वाली 8 लाख रुपये की पेंशन भी बन्द कर दी। इस सम्बन्ध में गवर्नर डलहौजी से पत्र व्यवहार किया गया, परन्तु उसने पेंशन के लिए स्पष्ट मना कर दिया। अन्त में अजीमुल्ला खाँ को वकील बनाकर इंग्लैण्ड भेजा गया ताकि उनकी न्यायोचित माँग महारानी विक्टोरिया के सामने रखी जा सके। खूब प्रयत्न करने पर भी अजीमुल्ला खाँ को निराश हो भारत लौटना पड़ा। भारत लौटने पर अजीमुल्ला खाँ ने नाना साहब को अपनी विफलता, अंग्रेजों की वास्तविक स्थिति तथा विदेशों में स्वतन्त्रता आन्दोलन की पूरी जानकारी दी। इसके साथ ही यह भी सुझाव दिया कि लातों के खाने वाले बातों से नहीं मानेंगे। अत: हमें अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र क्रान्ति की तैयारी करनी चाहिए।

क्रान्ति को व्यापक व सैनिक छावनियों से सम्पर्क बनाने के लिए नाना साहब ने अजीमुल्ला खाँ के साथ तीर्थ यात्रा की योजना बनाई। इस तीर्थ यात्रा का उद्देश्य धार्मिक न होकर राजनैतिक था। इस तीर्थयात्रा के माध्यम से अम्बाला तथा मेरठ जैसी सैनिक छावनियों से सम्पर्क साधा गया। इतना ही नहीं कालपी में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी बाबू कुँवरसिंह से उनकी भेंट हुई। अप्रेल, 1857 ई. तक नाना साहब, कुँवरसिंह, अवध के निर्वासित नवाब वाजिद अली शाह, उनके वकील अली नकी खाँ झाँसी की रानी, मुगल सम्राट बहादुरशाह आदि ने आपस में विचार विमर्श करके 31 मई, 1857 ई. को अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई। इस योजना के अनुसार मेरठ से ही क्रान्ति का श्रीगणेश होना था, क्योंकि मेरठ उत्तर भारत में अंग्रेजों की मुख्य सैनिक छावनी थी, परन्तु क्रान्ति 31 मई के स्थान पर 10 मई, 1857 ई. को भड़क उठी। फिर क्या था? चारों ओर क्रान्ति की अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई। इसका सारा श्रेय हमारे चरित्र नायक नाना साहब पेशवा को है।

नाना साहब का क्रान्ति में सक्रिय योगदान : उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 1857 की सशस्त्र क्रान्ति नाना साहब तथा उनके सलाहकार अजीमुल्ला खाँ के मस्तिष्क की ही उपज है। आगे चलकर नाना साहब ने क्रान्ति में सक्रिय रूप से भाग लिया। पूरे $2\frac{1}{2}$ वर्ष तक वे अंग्रेजी साम्राज्य से सशस्त्र संघर्ष करते रहे।

मजे की बात तो यह है कि लाख प्रयत्न करने पर भी ब्रिटिश सरकार नाना साहब को न पकड़ सकी।



नाना साहब

मेरठ क्रान्ति व दिल्ली विजय के बाद 6 जून को कानपुर में भी सैनिकों ने क्रान्ति कर दी और कल्याणपुर में क्रान्तिकारी सैनिक 'दिल्ली चलो' के नारे लगाने लगे। उस समय नाना साहब भी कल्याणपुर में आ गए। उन्होंने दिल्ली जाने के स्थान पर कानपुर पर आक्रमण करने का सुझाव दिया। अत: 6 जून, 1857 ई. को कानपुर बैरकों में स्थित अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर नाना साहब ने अंग्रेजों से विधिवत युद्ध की घोषणा कर दी। उनका लक्ष्य कानपुर ही नहीं था। कानपुर के दक्षिण में ताँत्या टोपे व राव साहब ने बुन्देलखण्ड तथा ग्वालियर तक क्रान्ति का बीड़ा उठाया। बाँदा में भी नवाब अली कुली खाँ ने क्रान्तिकारी शासन स्थापित कर लिया। नाना साहब पेशवा घोषित किए गए। कानपुर में फंसे अंग्रेज सैनिक हथियार डालने को तैयार हो गए और नाना साहब से प्रार्थना की गई कि उनको सुरक्षित रूप से इलाहाबाद जाने दिया जाए। नाना साहब ने अंग्रेज सैनिकों को सतीचौरा घाट तक पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया, परन्तु इनमें से अनेक क्रान्तिकारियों के द्वारा मार डाले गए। इसमें नाना साहब का कोई हाथ नहीं था। नाना साहब को जब सतीचौरा घाट पर अंग्रेज सैनिकों की बलि के समाचार मिले तो उन्हें अंग्रेज स्त्रियों व बच्चों को सुरक्षित स्थान कानपुर पहुँचाकर अपनी उदारता का परिचय दिया।

कानपुर के बाद फतेहपुर में भी नाना साहब की सहायता से स्वतंत्र शासन की स्थापना हुई। नाना साहब की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने तथा कानपुर के बीबीघर में बन्दी अंग्रेज सैनिकों की मुक्ति के लिए इलाहाबाद से हेवलाक को भेजा। नाना साहब ने हेवलाक का डटकर मुकाबला किया, परन्तु भारी अंग्रेज कुमुक आ जाने के कारण उन्हें कानपुर छोड़ना पड़ा और बिठुर चले गए। वहाँ भी हेवलाक ने उनका पीछा किया। नाना साहब ने बिठुर भी छोड़ दिया और वे अवध की ओर चल पड़े और गंगा पार फतेहपुर चौरासी में आपने डेरे डाले। वहाँ से वे कानपुर तथा बिठुर पर पुन: आक्रमण कर सकते थे। हुआ भी ऐसा ही कि 18 अगस्त, 1857 ई. को बिठुर पर अधिकार कर ताँत्या टोपे ने कानपुर पर धावा बोल दिया। अब अंग्रेज कानपुर में बन्दी हो गए। अंग्रेजो सेना के प्रमुख सेनापति

कैम्पबेल भी अंग्रेज बन्दियों को न छुड़ा सके। उसे भी ताँत्या टोपे की सेना ने पराजित किया, परन्तु बाद में इलाहाबाद से भारी सैनिक सहायता आ जाने के कारण कैम्पबेल ने क्रान्तिकारियों को कानपुर से हटा दिया।

कानपुर से नाना साहब रुहेलखण्ड की ओर चल पड़े। बरेली में अपना शिविर डाला। रुहेलखण्ड के नवाब खान बहादुर खाँ ने उनका भव्य स्वागत किया। अब क्रान्तिकारी बरेली जमा होने लगे। नाना साहब अप्रेल 1858 ई. तक बरेली रहे। इस बीच अंग्रेजों ने यह अच्छी तरह अनुभव कर लिया कि जब तक नाना साहब को बन्दी नहीं बना लिया जाएगा तब तक क्रान्ति की आग शान्त नहीं हो सकती। अत: कमिश्नर आउट्रम ने 28 फवरी, 1858 ई. को यह घोषणा की कि "जो व्यक्ति अपने प्रयत्न से नाना साहब को गिरफ्तार करावेगा एक लाख रुपये का इनाम पायेगा।" परन्तु इनाम की धनराशि अंग्रेजी खजाने में रह गई और वे कभी पकड़े न जा सके। अन्त में रुहेलखण्ड से आप नेपाल की तराई की ओर चल पड़े। उधर भी लॉर्ड क्लाइव ने उनका पीछा किया, परन्तु वे पकड़ में न आये। अवध की बेगम हजरत महल तथा बेतवा के प्रसिद्ध राणा बेणी माधव सिंह भी नाना साहब के नेतृत्व में नेपाल की तराई के जंगलों में से अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करते रहे और बुटबाल पर 18 मार्च, 1859 ई. को क्रान्तिकारी सेना ने अधिकार कर लिया, परन्तु मेजर रिचर्डसन के नेतृत्व में भारी अंग्रेजी सेना के आ जाने के कारण नाना साहब को बुटबाल छोड़कर पुन: नेपाल के जंगलों में शरण लेनी पड़ी। कहा जाता है कि मेजर रिचर्डसन ने अप्रेल, 1859 ई. के एक पत्र द्वारा नाना साहब को आत्मसमर्पण करने की सलाह दी, परन्तु नाना साहब ने उत्तर में लिखा कि "वे मृत्युपर्यन्त अंग्रेजों से युद्ध करते रहेंगे। भविष्य में ऐसी बात कभी न लिखें।"

स्वतन्त्रता का यह महान् पुजारी बाल बच्चों के संरक्षण का भार नेपाल के राणा जंगबहादुर को सौंप कर अपने सलाहकार अजीमुल्ला खाँ के साथ तराई के जंगलों में कहीं चला गया जिसका आज तक पता नहीं चल सका। उनकी जीवन लीला किस प्रकार समाप्त हुई, इसकी किसी को कोई जानकारी नहीं है, परन्तु भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में वे सदा स्मरणीय रहेंगे। जीवन भर स्वतन्त्रता की अलख जगाकर अंग्रेजी साम्राज्य को जिस प्रकार उन्होंने क्षत-विक्षत किया, वह किसी से छिपा नहीं है। स्वतन्त्रता संग्राम को एक व्यापक राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने में वे सदैव अग्रणी रहे। हिन्दू पेशवाई को मुगल बादशाहत के अधीन कर उन्होंने अद्‌भुत राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया। वास्तव में वे प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के जनक एवं प्रेरणा के प्रमुख स्रोत थे। वीर सावरकर ने अपनी 'भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम' नामक पुस्तक में नाना साहब को 1857 की क्रान्ति का

मस्तिष्क बताया है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए उनके अमूल्य योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

(3) क्रान्ति के वयोवृद्ध नेता बाबू कुँवरसिंह :



कुंवर सिंह

1857 ई. की क्रान्ति की एक बड़ी विशेषता यह रही है कि इसका नेतृत्व भारतवर्ष के नर, नारी, युवक एवं वृद्ध सभी ने किया। जगदीशपुर के राजपूत जागीरदार 80 वर्षीय बाबू कुँवरसिंह ने इस क्रान्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। जार्ज ट्रिबिलियन नामक इतिहासकार तो लिखते हैं कि यदि कुँवरसिंह की अवस्था 40 वर्ष और कम होती अर्थात् वे 80 वर्ष के स्थान पर 40 वर्ष के होते, तो आरा की रक्षा में हमें इससे कहीं अधिक कठिनाई होती। हमें अपने आपको बड़ा सौभाग्यशाली समझना चाहिए कि वृद्धावस्था ने उनकी सैनिक शक्तियों तथा साधनों की दृढ़ता को बहुत कम कर दिया था।

बाबू कुँवरसिंह शाहबाद जिले में जगदीशपुर की बहुत बड़ी रियासत के मालिक थे, परन्तु ब्रिटिश राज्यकाल के मालगुजारी के नियमों ने उनकी जागीर पर भी हाथ साफ किया था। इससे उनकी आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो गई और लक्ष्मी ने उनसे आँखें फेर ली, परन्तु बाबू कुँवरसिंह चरित्र के धनी थे। इसी कारण समस्त शाहबाद ज़िले की जनता उनके प्रति अपूर्व श्रद्धा रखती थी। अपनी जान पर खेलने वाले समस्त राजपूत उनके साथ थे। जब कुँवरसिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध के लिए संगठन किया तो वे सभी सहर्ष उनके साथ हो गए।

दिल्ली पर क्रान्तिकारियों का शासन स्थापित होने के बाद देश के अन्य भागों में भी क्रान्ति की चिनगारियाँ प्रज्वलित होने लगी। 3 जुलाई को पटना में क्रान्ति का विस्फोट हुआ। अंग्रेज इस क्रान्ति का दमन भी न कर पाये थे कि 25 जुलाई, 1857 ई. को दानापुर में 7वीं, 8वीं तथा 40वीं भारतीय पैदल सेना क्रान्ति के लिए उठ खड़ी हुई। बड़ी कठिनाई से अंग्रेज जनरल लायड ने इन विद्रोहियों को युद्ध में परास्त कर नगर में शांति कायम की। इसके बाद भारतीय सैनिक सोन नदी को पार कर आरा की ओर चले गए। इन क्रान्तिकारियों ने सोमवार 27 जुलाई, 1857 ई. को प्रातःकाल 8 बजे आरा में प्रवेश किया और बन्दीगृह के द्वार तोड़ कर 400 बन्दियों को मुक्त करा लिया। जब वयोवृद्ध स्वतन्त्रता सेनानी बाबू कुँवरसिंह को इस बात का पता लगा तो वे 30 जुलाई को आरा पहुँच गए तथा क्रान्ति का नेतृत्व संभाल लिया। फिर क्या था ? क्रान्तिकारियों में अद्भुत उत्साह

का संचार हो गया। कुँवरसिंह के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने बोयल के बंगले को घेर लिया। गंगा नदी के तट पर कैप्टेन दुन्वर तथा कुँवरसिंह की सेनाओं में युद्ध हुआ और कुँवरसिंह की सेना ने पीछे से आक्रमण करके उसे बुरी तरह पराजित किया। कैप्टेन दुन्वर भी इस युद्ध में काम आया।

कैप्टेन दुन्वर की मृत्यु तथा पराजय के हाल ज्ञात होते ही मेजर इन्सेन्ट इर सेना सहित 2 अगस्त को आरा के निकटवर्ती बीबीगंज नामक गाँव में आ धमका। 3 अगस्त को कुँवरसिंह की सेना से युद्ध हुआ। अन्त में मेजर इन्सेन्ट इर ने एल. इस्ट्रेन्ज की सहायता से विजय प्राप्त की। कुँवरसिंह आरा से अपनी जन्म भूमि जगदीशपुर को चले गए, परन्तु मेजर इर भी पीछा करते-करते जगदीशपुर पहुँच गया। जगदीशपुर के निकट दिलावर नामक गाँव में मेजर इर तथा कुँवर सिंह के बीच घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में अंग्रेजों की विजय और कुँवरसिंह को जगदीशपुर छोड़ना पड़ा और 40वीं पैदल सेना के साथ सासाराम की ओर बढ़ चले। वहाँ पर पठानों में क्रान्ति की भावना भरके बाबू कुँवरसिंह रीवाँ चले गए। यहाँ पर रामगढ़ तथा दानापुर के क्रान्तिकारी भी आप से आ मिले। धैर्य तथा साहस के प्रतीक कुँवरसिंह पहले से भी उत्साह से क्रान्ति का संचालन करने लगे। आपने रीवाँ के जमींदारों को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काया और हशमत अली तथा इरचन्द राज की सहायता से रीवाँ में क्रान्ति की अग्नि प्रज्ज्वलित कर, कुँवरसिंह उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों की ओर अग्रसर हुए।

उत्तर प्रदेश में बाँदा पहुँचने पर आपका बाँदा के नवाब तथा जनता ने भारी स्वागत किया। अवध से भी अनेक सैनिक बाँदा पहुँचकर बाबू कुँवरसिंह के नेतृत्व में क्रान्ति की तैयारी करने लगे। ग्वालियर के क्रान्तिकारियों से भी आपका निरन्तर सम्पर्क बना रहा। कालपी पहुँच कर आपने ग्वालियर से आगे क्रान्तिकारियों के साथ कानपुर पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। इसी बीच आजमगढ़ में अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति हो गई। आजमगढ़ में क्रान्ति की खबर मिलते ही कुँवरसिंह भी वहाँ पहुँच गए। राजपूतों तथा पठानों को संगठित कर एक सफल सेनापति की भाँति मैलसन को आजमगढ़ के निकट उतरोलिया के जंगलों में बुरी तरह पराजित किया। होम्स की पराजय से वायसराय लॉर्ड केनिंग बहुत ही चिन्तित हुए और उन्होंने क्रीमिया युद्ध के विजेता लॉर्ड मार्क को 13वीं पैदल सेना के साथ आजमगढ़ भेजा। इस समय बाबू कुँवरसिंह आजमगढ़ में थे और अंग्रेजी सेना आजमगढ़ के किले में से गोले बरसा रही थी, परन्तु धीर वीर कुँवरसिंह अंग्रेजों की गोलाबारी से तनिक भी विचलित नहीं हुए और बहुत निपुणता से सैन्य संचालन करते रहे। उन्होंने अंग्रेजी सेना के पृष्ठ भाग पर आक्रमण कर उसे पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया, परन्तु इसी बीच लॉर्ड

मार्क लागडेन तथा बेनविल की संयुक्त सेना ने एक साथ कुँवरसिंह पर धावा बोल दिया। अतः उन्हें पीछे हटना पड़ा। इसके बाद कुँवरसिंह गाजीपुर के जंगलों में अंग्रेजी सेना से छापामार युद्ध करते रहे। टोंस नदी के पास अंग्रेजी सेना से उनकी झड़प हुई। इस युद्ध में जनरल बेलबिन तथा हैमिल्टन मारे गए। आगे चलकर वे जनरल डगलस को पराजित कर गाजीपुर होते हुए जगदीशपुर की ओर चल पड़े। गंगा तट के निकट उन्हें गुप्तचरों से सूचना मिली कि जनरल डगलस तथा जनरल बैली उनका पीछा करते हुए गंगा के निकट आ गए हैं। बाबू कुँवरसिंह ने उस समय बहुत ही कूटनीति से काम लिया। उन्होंने यह अफवाह फैला दी कि गंगा के घाट पर पानी कम होने से कुँवरसिंह व उनकी सेना नाव से गंगा पार नहीं करेंगे। वरन् हाथी से पार करेंगे। कुछ साथियों को हाथियों के साथ पश्चिम दिशा की ओर भेज दिया। फिर क्या था ? अंग्रेज सैनिक कुँवरसिंह को हाथी पर सवार समझकर उसका पीछा करने लगे। इधर कुँवरसिंह रात्रि को नाव पर बैठ कर गंगा पार करने लगे। जब डगलस को यह सूचना मिली तो वह तुरन्त शिवपुर घाट पर पहुँचा और गोली चलानी प्रारम्भ कर दी। अब तक कुँवरसिंह की समस्त सेना गंगा पार कर चुकी थी। कुँवरसिंह स्वयं अंतिम नाव में बैठ कर नदी के बीचों बीच पहुँचे ही थे कि उनकी नाव पर गोलियों की बौछार होने लगी, परन्तु वे कुशलता से अपनी ढाल से अपना बचाव करते रहे, परन्तु एक गोली उनकी कलाई पर लग ही गई। उस धीर पुरुष ने अंग्रेजों की गोली से अपवित्र हुई कलाई को अपनी ही पैनी तलवार से काट कर पुण्य सलिला भागीरथी की पावन धारा में प्रवाहित कर दी। इस तरह से अंग्रेजों को हाथ मलते छोड़ बाबू कुँवरसिंह 23 अप्रेल, 1858 ई. को जगदीशपुर पहुँचने में सफल हो गए। अंग्रेजों ने भी उनका पीछा किया। 23 अप्रेल, 1858 को जनरल ली. ग्राण्ड ने सेना सहित आरा से जगदीशपुर आकर नगर को चारों ओर से घेर लिया। इस घेरे में अंग्रेज व सिक्ख सैनिक अधिक थे। बाबू कुँवरसिंह ने इस समय बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। भारी अंग्रेजी सेना को देखकर अपनी सेना सहित घने जंगल में चले गए। ली. ग्रान्ड कुँवरसिंह को नगर में न पाकर जंगल की ओर बढ़े। जंगल में आते ही बाबू कुँवरसिंह ने अंग्रेजी सेना को चारों ओर से घेर लिया। अंग्रेज सैनिक भूख प्यास से व्याकुल तथा रसद की कमी से भारतीय सेना से पराजित हो गए। ली. ग्रान्ड स्वयं इस युद्ध में काम आये। इस तरह से अंग्रेजी सेना को बुरी तरह से पराजित कर कुँवरसिंह की विजयी सेना ने जगदीशपुर में प्रवेश किया। नगर निवासियों ने बड़ी धूमधाम से अपने प्रिय नेता का राज्याभिषेक किया, परन्तु स्वतन्त्रता के इस मधुर पल को वे अधिक दिन तक नहीं चख सके। निरन्तर युद्धों से वे काफी थक चुके थे। युद्धों में लगे घाव विषाक्त हो चले थे। वृद्धावस्था के कारण उनकी बीमारी दिन पर दिन चिन्ताजनक होने लगी। 26 अप्रेल, 1858 ई. को भारतीय स्वतन्त्रता

संग्राम के इस महान् वीर शिरोमणी सैनिक बाबू कुँवरसिंह अपनी मातृभूमि को फिरंगियों की दासता के बन्धन से मुक्त कराकर स्वर्ग सिधार गए। शौर्य जगत तथा स्वातंत्र्य भावना के जगत में वे सदा स्मरणीय रहेंगे। पंडित गोपाललाल चतुर्वेदी ने अपने कवित्त में उनकी वीरता का सुन्दर वर्णन इस प्रकार किया है—

"जोर से जमा जंग, गाढ़े रंग अंग ढंग,
काढ़े है कृपाण खींच मारते कड़ाक दे।
मुगदर और परत पुंज मुसुण्ड केते,
वीर लिये तोड़ते तड़ाक किला साहसी तड़ाक दे।
कहत गोपाल लाल गोरा गर्द माही मिले,
पावते न पार वीर धावते धड़ाक दे।
क्षत्रिण में क्षत्रपति नामी कुँवरसिंह डंका दे,
विजय को हाल आवते भड़ाक दे।"

(4) नवाब खान बहादुर खाँ :

रुहेलों के वयोवृद्ध नेता नवाब खान बहादुर खाँ 1857 ई. की क्रान्ति के कर्णधार ही नहीं वरन् रुहेलखण्ड में क्रान्तिकारी शासन के संस्थापक थे। आप बरेली के निवासी थे। आपका व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था। सन् 1857 ई. के पूर्व आप अंग्रेजी शासन के अधीन बरेली में सदरे आला के पद पर कार्य कर रहे थे। इन्हें डिप्टी के नाम से पुकारा जाता था। चार्ल्स बाल ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन म्युटिनी' प्रथम भाग पृ. 175 पर लिखा है कि "खान बहादुर खाँ, रुहेल नेता हाफिज रहमतखाँ के पौत्र थे तथा कम्पनी के अधीन बरेली में नेटिव जज के पद पर नियुक्त थे।" यद्यपि आपका जीवन आराम से व्यतीत हो रहा था, परन्तु अंग्रेजों के क्रूरता एवं अन्यायपूर्ण शासन के कारण उन्हें क्रान्ति में भाग लेना पड़ा।

मेरठ में सैनिक क्रान्ति के बाद बरेली में भी रविवार 31 मई, 1857 ई. को भारतीय रेजीमेन्टों ने छावनी में क्रान्ति कर दी। प्रातःकाल लगभग 11 बजे तोप चलने के साथ ही जनरल बख्तखाँ के नेतृत्व में अंग्रेजी ठिकानों पर धावा बोल दिया गया। कोतवाली पर कब्जा करके खान बहादुर खाँ ने बरेली में स्वतंत्र क्रान्तिकारी शासन की स्थापना कर दी। अंग्रेजी शासन को समाप्त करने के साथ हो मुगल सम्राट बहादुरशाह को भारत का सम्राट मानने की भी घोषणा की गई। बरेली स्थित सभी कार्यालयों ने खान बहादुर खाँ का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

एक जून, 1857 ई. को प्रातःकाल बरेली जेल पर क्रान्तिकारियों द्वारा धावा बोला गया। सभी कैदी छोड़ दिए गए और जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट हैन्सबरी पकड़ा

गया और मार डाला गया। बरेली शहर में खाने पीने की चीजों की व्यवस्था कर कोतवाली में सभी सरकारी कर्मचारियों की बैठक बुलाई गई और उन्हें अपने ही पदों पर बने रहकर कर्त्तव्यों का भली-भाँति निर्वाह करने का आदेश दिया गया। नगर तथा जिलों में शांति स्थापित करने के लिए एक समिति की नियुक्ति की गई। सरदार अली खाँ, मुबारकशाह खाँ तथा करामात खाँ इसके सदस्य थे। बरेली नगर में शांति तथा व्यवस्था के लिए शोभाराम को दीवान तथा मूलचन्द को नायब दीवान नियुक्त किया। शोभाराम के पुत्र को बख्शी बनाया गया। नवाब अवध के प्रसिद्ध गायक रजाउद्दौला उस समय बरेली में उपस्थित थे, उन्हें निजी सलाहकार (ए.डी.सी.) बनाया गया। इस तरह से पूर्ण रूप से शासन व्यवस्था करके खान बहादुर खाँ का ध्यान दिल्ली की सहायता के लिए गया। रजाउद्दौला के परामर्श से 2 जून, 1857 ई. को एक प्रार्थना पत्र मुगल सम्राट बहादुरशाह की सेवा में भेजा गया जिसमें उनसे प्रार्थना की गई कि मुगल सम्राट की ओर से खान बहादुर खाँ को कटिहार का नाजिम (प्रबन्धक) नियुक्त करने का आदेश प्रदान करने का कष्ट करें। फलस्वरूप दिल्ली से नियुक्ति का आदेश मिल गया।

दिल्ली की सहायता : खान बहादुर खाँ ने न केवल बरेली में ही अंग्रेजी शासन का अन्त किया, वरन् उसे जड़मूल से उखाड़ने का भी पूरा प्रयास किया। 11 जून, 1857 ई. को 16000 सैनिकों को बख्त खाँ के नेतृत्व में दिल्ली भेजा। जो 20 जून को दिल्ली पहुँच गया। मुगल सम्राट बहादुरशाह बख्त खाँ की उपस्थिति से बहुत प्रसन्न हुआ और उसे दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना का मुख्य सेनापति नियुक्त किया। बरेली से आई विशाल क्रान्तिकारी सेना को तुर्कमान गेट के बाहर ठहराया गया। बादशाह को बख्त खाँ से बड़ी आशाएँ थीं। वास्तव में वे बड़े ही वीर सैनिक तथा प्रबन्धक थे।

हिन्दू-मुस्लिम एकता : खान बहादुर खाँ ने अनुभव किया कि स्वतन्त्रता संग्राम के सफल संचालन के लिए हिन्दू मुस्लिम एकता अत्यन्त आवश्यक है। इधर अंग्रेज रुहेलखण्ड के ठाकुरों को खान बहादुर खाँ के विरुद्ध बहकाने के लिए पूरा प्रयत्न कर रहे थे। अवध के चीफ कमिश्नर ने कैप्टिन गोबान को यह आदेश दिया कि वह बरेली में हिन्दू जनता को मुसलमान क्रान्तिकारियों के विरुद्ध भड़काए। इस कार्य के लिए उसे 50 हजार रुपये खर्च करने का भी अधिकार दिया गया, परन्तु अंग्रेजों का यह प्रयत्न सफल न हो सका। खेड़ा के ठाकुर जयमलसिंह तथा सुरनामसिंह खान बहादुर के मुख्य सहायक थे। दीवान शोभाराम नवाब के बहुत ही विश्वसनीय व्यक्ति थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता को चिरस्थायी बनाने के लिए नवाब ने गोवध निषेध आज्ञा भी प्रसारित की। इसके बाद हिन्दू व मुसलमानों ने मिलकर युद्ध करने का दृढ़ निश्चय किया। धर्म की विजय नामक

प्रपत्र छपवाकर समस्त रुहेलखण्ड में बाँटे गए जिसमें हिन्दू व मुसलमानों को एक साथ स्वतन्त्रता में भाग लेने का आह्वान किया गया था।

पूरे रुहेलखण्ड में हिन्दू व मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ रहे थे, परन्तु देहली में क्रान्ति के पतन की सूचना से रुहेलखण्ड के क्रान्तिकारी निराश होने लगे, परन्तु खान बहादुर खाँ ने बहुत ही हिम्मत तथा बुद्धिमानी से क्रान्ति की भावना को यथावत बनाए रखा। देहली से आए क्रान्तिकारियों का नवाब ने उचित सत्कार किया और क्रान्ति को जारी रखने के लिए आर्थिक सहायता दी।

नैनीताल पर आक्रमण : खान बहादुर खाँ ने अनुभव किया कि जब तक नैनीताल में अंग्रेज बने रहेंगे तब तक रुहेलखण्ड में ये कुछ न कुछ गड़बड़ कराते ही रहेंगे। अत: उन्होंने तीन बार नैनीताल पर आक्रमण किया, परन्तु अंग्रेजों की सुदृढ़ स्थिति के कारण क्रान्तिकारियों को विशेष सफलता नहीं मिली।

बरेली की सुरक्षा का प्रयत्न : अंग्रेजों ने भी अच्छी तरह से देख लिया था जब तक रुहेलखण्ड में नवाब खान बहादुर खाँ का स्वतंत्र शासन रहेगा, तब तक उत्तरी भारत में क्रान्ति का दमन नहीं हो सकता है। अत: वायसराय लॉर्ड केनिंग ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण करने के लिए लॉर्ड कॉलिन को आदेश दिया। उसने वालपाल पैनी तथा जोन्स के नेतृत्व में अंग्रेजों की तीन टुकड़ियों को दक्षिण-पूर्ण, दक्षिण-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व से आक्रमण कर क्रान्तिकारियों को सम्पूर्ण रुहेलखण्ड से बरेली तक खदेड़ दें और बाद में बरेली में उनको पूरी तरह से परास्त कर दिया जाए। इसमें सीटम के नेतृत्व में रखी सुरक्षित अंग्रेजी सेना सहायता करेगी। क्रान्तिकारियों ने भी पहले तो अंग्रेज आक्रमण को रोकने के लिए शाहजहाँपुर, मुरादाबाद तथा बदायूँ की ओर सेना भेजी, परन्तु बाद में यह निश्चय हुआ कि सम्पूर्ण शक्ति से बरेली में ही अंग्रेजों का सामना किया जाए।

बरेली का युद्ध : 4 मई, 1858 ई. को क्रान्तिकारी सेना नरकटिया नदी को पार करके एक स्थान पर अंग्रेजों से मुकाबला करने के लिए डट गयी। 5 जून तक कॉलिन के नेतृत्व में अंग्रेज सैनिक भी नदी के पुल के निकट आकर डट गए। उसी दिन खान बहादुर खाँ की सेना ने अंग्रेजों पर तोपों से आक्रमण किया। युद्ध चलता रहा। अंग्रेजी सेना आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

इसी बीच बहुत अधिक संख्या में क्रान्तिकारी सैनिक सिरों पर हरे साफे बाँधे 'दीन-दीन' के नारे लगाते हुए अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े और अंग्रेजी सेना को

बुरी तरह से पराजित किया। वालपोल तथा केमरन भी इस युद्ध में घायल हो गए, परन्तु इसी दिन अंग्रेजों की एक सैनिक टुकड़ी मुरादाबाद से बरेली आ पहुँची। क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों से डटकर मुकाबला किया। अन्त में क्रान्तिकारी तोपों की मार से धैर्य खो बैठे। इनके नेता बरेली छोड़कर अन्यत्र चले गए। 7 मई, 1858 ई. को बरेली पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

खान बहादुर खाँ अवध पहुँचे। फिर वे अवध की बेगम हजरत महल के साथ नेपाल की तराई में पहुँच गए। वहाँ भी नाना साहब पेशवा के साथ मिलकर अंग्रेजी ठिकानों पर आक्रमण किए। अन्त में नेपाल के राणा जंगबहादुर के सैनिकों द्वारा पकड़ लिए गए और उन्हें अंग्रेजों को सौंप दिया गया। पहले इनको लखनऊ बन्दी बनाकर रखा गया, परन्तु जनवरी, 1860 ई. को इन्हें बरेली ले जाया गया। अन्त में 24 मार्च, 1860 ई. को स्वतन्त्रता के इस महान् पुजारी को बरेली में कोतवाली के द्वार पर फाँसी दे दी गई। सारा बरेली नगर शोक सागर में डूब गया। यहाँ तक की अंग्रेज कमिश्नर की आँखों से भी आँसू टपक पड़े।

खान बहादुर खाँ का इतिहास में स्थान : खान बहादुर की गणना सन् 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम में मुख्य क्रान्तिकारियों में की जाती है। सम्पूर्ण रुहेलखण्ड में उन्होंने स्वतंत्र क्रान्तिकारी शासन की स्थापना करके उसे एक वर्ष तक बहुत ही कुशलता से चलाया। हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। दिल्ली में क्रान्ति की सहायता के लिए उन्होंने बहुत कुछ किया। अन्तिम क्षण तक छापामार युद्ध प्रणाली से वे आक्रमण करते रहे। अन्त में देश की आजादी के लिए शहीद हो गए। उनका बलिदान युग-युग तक स्वातंत्र्य पथ को आलोकित करता रहेगा।

(5) क्रान्ति के संवैधानिक अध्यक्ष बहादुरशाह जफर :

पिछले पृष्ठों में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में अपना सर्वस्व अर्पण कर देने वाले रणबांकुरों की जीवन लीला हमने पढ़ी है, परन्तु इन सभी वीरों ने अपने निजी स्वार्थ पूर्ति के लिए कुछ नहीं किया। जो कुछ भी किया भारत राष्ट्र की स्वाधीनता या आजादी के लिए किया, जिसके संवैधानिक अध्यक्ष थे मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर।

दिल्ली सदियों से भारतीय राजनीति का प्राण रहा है। फिर प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से वह अलग कैसे रह सकता था। सच पूछा जाए तो 1857 ई. की सैनिक क्रान्ति को राष्ट्रीय स्वरूप दिल्ली ने ही प्रदान किया। 10 मई 1857 ई. को मेरठ में सैनिक क्रान्ति के बाद देश के कोने-कोने से दिल्ली चलो का नारा बुलन्द हो गया था। बहादुरशाह जफर भारत राष्ट्र के प्रतीक के रूप में स्वाधीनता संग्राम के केन्द्र बिन्दु बन गए।



बहादुरशाह ज़फ़र

बहादुरशाह जफर भारत में मुगल राजवंश के सत्रहवें व अंतिम मुगल सम्राट थे। उनका जन्म 24 अक्टूबर मंगलवार 1775 ई. में हुआ था और 62 वर्ष की अवस्था में 1837 ई. में दिल्ली के सिंहासन पर बैठे थे। बहादुरशाह फारसी भाषा के विद्वान एवं उर्दू के अच्छे कवि थे और 'जफर' नाम से कविताएँ लिखते थे।

पानीपत के तीसरे युद्ध के बाद हमारे देश का केन्द्रीय शासन बहुत कमजोर हो गया था। इसका पूरा लाभ ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उठाया। धीरे-धीरे अपनी चालाकी से 1857 ई. तक सम्पूर्ण भारत पर अपना अधिकार जमा लिया। दिल्ली का सम्राट केवल नाम मात्र का था। समस्त अधिकार कम्पनी सरकार के हाथ में थे। मुगल सम्राट बहादुरशाह को केवल एक लाख रुपया मासिक मिलता था जिससे दिल्ली के लाल किले में एशो आराम का जीवन व्यतीत करते थे, परन्तु अंग्रेजी अत्याचारों के प्रति उनके मन में दिन प्रतिदिन घृणा उत्पन्न होती जा रही थी। कम्पनी सरकार मुगल सम्राट को कुछ न कुछ बहाना बनाकर अपमानित करती रहती थी। निस्सहाय मुगल सम्राट कर भी क्या सकते थे ? परन्तु मेरठ क्रान्ति के बाद जब क्रान्तिकारी सेना दिल्ली पहुँची तो सम्राट खुशी से फूले न समाये और अंग्रेजी शासन को समाप्त करने का स्वप्न देखने लगे।

11 मई, 1857 ई. को प्रात: 7 बजे स्वतन्त्रता सेनानी लाल किले में आ पहुँचे। उन दिनों किले के अन्दर अंग्रेज कप्तान डगलस लाहौरी दरवाजे के ऊपर वाले मकान में रहता था। उसकी कमान के नीचे कम्पनी सेना की एक टुकड़ी थी। हो हल्ला सुनकर रोब दिखाता हुआ डगलस क्रान्तिकारियों की ओर बढ़ा। उसकी सहायता के लिए मेजर भी आ धमका। क्रान्तिकारियों ने क्षण भर में ही दोनों अंग्रेज अफसरों को मौत के घाट उतार दिया। क्रान्तिकारियों ने दीवाने आम में अपने डेरे डाल दिए। कुछ समय विश्राम करने के बाद लाल किले तथा दिल्ली से अंग्रेजों का सफाया कर दिया गया। बचे खुचे अंग्रेज रिज पहाड़ी की ओर से भाग निकले और कश्मीरी गेट के बाहर मोर्चा जमाने लगे। दिल्ली पर हमारा अधिकार हो गया।

12 मई, 1857 ई. को दीवाने खास में स्वतन्त्रता समारोह मनाया गया। बहादुरशाह जफर को भारत का सम्राट और स्वतन्त्रता संग्राम का नेता घोषित

किया गया। स्वतन्त्रता संग्राम को जोर शोर से चलाने की घोषणा की गई। कुछ दिनों में बरेली से जनरल बख्त खाँ के नेतृत्व में एक विशाल क्रान्तिकारी सेना दिल्ली पहुँची। बख्त खाँ को दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना की कमान थमा दी गई। पेशवा नाना साहब ने बहादुरशाह को भारत का सम्राट मानते हुए अपनी भेंट भेजी।

सम्राट ने भी भारतीय नरेशों से अंग्रेजों का साथ छोड़ कर भारत की स्वतन्त्रता में योगदान करने के लिए पत्र लिखे। सम्राट बहादुरशाह भारत को स्वतंत्र कराने के लिए इतने अभिभूत हो गए थे कि वे समस्त अधिकार राजपूत नरेशों की सभा को सौंपने के लिए तैयार हो गए। जयपुर, जोधपुर, ग्वालियर, इन्दौर, अलवर आदि के राजाओं को सम्राट ने संदेश भेजा— मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि जिस प्रकार भी संभव हो, फिरंगियों को भारत से बाहर निकला दिया जाए। अंग्रेजों से भारत को मुक्त कराने के बाद मैं स्वयं शासन करने के लिए कभी लालायित नहीं हूँ। यदि आप सभी देशी नरेश शत्रु को देश से बाहर निकालने के लिए संघर्ष के लिए तैयार हों तो मैं इस बात के लिए सहर्ष तैयार हूँ कि सभी शासकीय अधिकार आप द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि को सौंप दूँ।

परन्तु देशी नरेशों ने सम्राट की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता व चेतना पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। सम्राट में उत्कट देश प्रेम होने पर भी उसमें देश को स्वतंत्र कराने की आवश्यक शक्ति व क्षमता नहीं थी। वृद्धावस्था के कारण उसमें कूटनीति व सोचने की शक्ति का भी अभाव था। वह सभी पर भरोसा कर लेता था। उसे व्यक्ति की पहचान नहीं थी। मिर्जा इलाही बख्स जो सदा सम्राट के साथ रहता था, उसका सम्बंधी था, गुप्त रूप से अंग्रेजों से मिला हुआ था। सम्राट उसकी राय पर चलता था।

14 सितम्बर, 1857 ई. में अंग्रेजों ने कैप्टिन हडसन के नेतृत्व में दिल्ली नगर पर धावा बोल दिया। 6 दिन तक रात दिन क्रान्तिकारियों ने गली-गली में अंग्रेजों से मोर्चा लिया, परन्तु मिर्जा इलाही बख्स के विश्वासघात के कारण हम सबल होते हुए भी निर्बलों से हार गए। वास्तव में अंग्रेजों ने भारत को बल से नहीं छल से जीता था। अंग्रेजी सेना लाल किले में प्रवेश करने ही वाली थी कि सम्राट के स्वामीभक्त सेनापति बख्त खाँ ने सम्राट को सुरक्षित दिल्ली से बाहर निकालने की योजना बना ली थी। यह निश्चय हुआ कि बहादुरशाह बख्त खाँ के साथ हुमायूँ के मकबरे पर मिलेंगे और वहाँ से दिल्ली से बाहर जाकर स्वतन्त्रता संग्राम को जारी रखेंगे और अंग्रेजों से टक्कर लेंगे, परन्तु विश्वासघाती इलाही बख्स ने बख्त खाँ की सलाह न मानकर अंग्रेजों से बातचीत करने के लिए सम्राट को तैयार कर लिया। हडसन हुमायूँ के मकबरे पर इलाही बख्स की सूचना पर

पहुँचा और सम्राट को धोखे से पकड़ कर लाल किला ले आया। सम्राट को इलाही बख्स के विश्वासघात पर बहुत ही दु:ख हुआ, परन्तु वह कर भी क्या सकता था। इलाही बख्स की सूचना पर ही सम्राट के पुत्र मिर्जा मुगल, मिर्जा अख्तर तथा पोता अबुलकर हडसन के हाथों गिरफ्तार हो गए। हडसन ने इन स्वतन्त्रता सेनानियों को मौत के घाट उतार दिया। उनके सिर काट कर जनता को आतंकित करने के लिए बाजार में टंगवाकर हडसन ने अंग्रेजी सेना की पाशविकता का खुला परिचय दिया। सम्राट पर लाल किले में मुकदमा चलाया गया। अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र में भाग लेने का उन पर आरोप लगाया गया। जन आक्रोश को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश सरकार ने उनको मृत्यु दण्ड की सजा नहीं दी, परन्तु उन्हें भारत से बहुत दूर ब्रह्मा की राजधानी रंगून भेज दिया गया। वहाँ आजन्म अपनी बेगम जिन्नत महल के साथ नजरबन्दी के रूप में निर्वासित का जीवन बिताते रहे। रंगून में ही इस महान् देशभक्त ने 1862 ई. में अपना शरीर छोड़ दिया। रंगून में ही उन्हें दफना दिया गया। इस बात का उन्हें रंज ही रहा कि उन्हें भारत भूमि पर दफन के लिए जमीन नहीं मिली। दु:खी होकर के उन्होंने कहा :

''कितना है बदनसीब 'जफर' दफन के लिये।
दो गज जमीं भी न मिल कुए यार में।''

यद्यपि भारत माता के सच्चे सपूत बहादुरशाह को अपने जीवन काल में स्थायी रूप से भारत की आजादी देखने को नहीं मिली, परन्तु उनका विश्वास था कि आजादी की यह लड़ाई आगे भी जारी रहेगी और देश आजाद होगा।

''हिन्दियों में बू रहेगी
तब तलक ईमान की।
तख्त लन्दन तक चलेगी
तलवार हिन्दुस्तान की।''

बहादुरशाह के देश प्रेम तथा उनके लड़कों की शहादत से स्वतन्त्रता सेनानी हमेशा प्रेरणा लेते रहेंगे। स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानी सुभाषचन्द्र बोस ने ब्रह्मा पर अधिकार कर रंगून में बहादुरशाह की मजार से प्रेरणा लेकर दिल्ली चलो का नारा बुलन्द किया था। अन्त में 15 अगस्त, 1947 ई. को वह शुभ दिन आ ही गया जब लाल किले पर तिरंगा झण्डा लहराया गया। इस शुभ घड़ी के पीछे 1857 ई. से लेकर 1947 ई. तक का एक लम्बा एवं स्फूर्ति दायक इतिहास है, जिसका विस्तृत विवरण हम अगले पृष्ठों में पढ़ेंगे।

(6) प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के जनक अजीमुल्ला खाँ :

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के सूत्रधारों में पेशवा नाना साहब के वकील अजीमुल्ला खाँ का विशेष स्थान है। वीर सावरकर के अनुसार अजीमुल्ला खाँ पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति की रूपरेखा तैयार की।

अजीमुल्ला खाँ एक गरीब परिवार से थे, परन्तु वे बहुत ही मेधावी थे। प्रारम्भ में ही अपने जीवन निर्वाह के लिए एक अंग्रेज अधिकारी के यहाँ खानसामा (रोटी बनाने वाले) का काम किया करते थे। बाबर्ची खाने में काम करते हुए भी आप में किसी प्रकार की हीन भावना नहीं थी। अपनी महत्त्वाकाँक्षा के कारण ही उन्होंने कुछ दिनों में ही अंग्रेजी व फ्रेंच भाषा सीख ली। इतना ही नहीं आप इन भाषाओं में धारा प्रवाह बोलने भी लगे थे।

अंग्रेजी व फ्रेंच भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के बाद आप कानपुर के एक स्कूल में अध्यापक बन गए। पेशवा नाना साहब उन दिनों ब्रिटिश सरकार के पेन्शनर के रूप में कानपुर के निकट बिठुर में निवास कर रहे थे। अजीमुल्ला खाँ की विद्वता उनके कानों तक पहुँची। अतः वे प्रायः उन्हें अपने यहाँ परामर्श व बातचीत के लिए बुलाने लगे। नाना साहब अजीमुल्ला खाँ की विद्वता व नेक सलाह देने की क्षमता से बहुत प्रभावित हुए।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार की यह नीति थी कि देशी रियासतों के शासकों को धीरे-धीरे कमजोर कर उनको उखाड़ फेंकना था। इस नीति के अनुरूप उन्होंने पेशवा नाना साहब को मिलने वाली 8 लाख रुपये की पेंशन बन्द कर दी। अजीमुल्ला खाँ की सलाह से पेशवा नाना साहब ने ब्रिटिश सरकार के सामने कम्पनी सरकार के इस अनीति पूर्ण कार्य को रखने का निश्चय किया। इसके लिए नाना साहब ने खाँ साहब को अपना प्रतिनिधि बना कर लन्दन भेजा। उन्होंने वहाँ कम्पनी के निर्देशक मण्डल व ब्रिटिश सरकार के सामने यह मामला रखा कि पेशवा नाना साहब को बाजीराव की मिलने वाली पूरी पेंशन 8 लाख रुपये वार्षिक मिलनी चाहिये। खाँ साहब ने अपना दावा पेश करने में अद्भुत योग्यता का परिचय दिया, परन्तु कम्पनी के निदेशक मण्डल ने इस न्यायोचित माँग को स्वीकार नहीं किया। इस सम्बन्ध में खाँ साहब महारानी विक्टोरिया से भी मिले, परन्तु निराशा ही हाथ लगी। इंग्लैण्ड प्रवास के समय आपने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि 'लातों' के खाने वाले बातों से नहीं मानेंगे।

उन्हीं दिनों लॉर्ड डलहौजी की हड़प नीति के अन्तर्गत सतारा रियासत को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया था। अतः महाराजा के वकील रंगोजी बापू भी सतारा का पक्ष प्रस्तुत करने लंदन आए हुए थे, परन्तु उन्हें भी अपने कार्य में सफलता

नहीं मिली। अतः दोनों लंदन की होटलों में भारत से अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए गंभीरता से विचार करने लगे। यह निश्चय हुआ कि रंगोजी बापू भारत जाकर देशी रियासतों के राजाओं से क्रान्ति के लिए सहायता जुटाने का प्रयास करें और खाँ साहब इटली, फ्रांस तथा रूस की यात्रा कर विदेशी सहायता जुटाने का प्रयास करेंगे। इटली के स्वातंत्र्य वीर गेरीबाल्डी से अजीमुल्ला की भेंट हुई। वहाँ पर फ्रांस व इंग्लैण्ड की संयुक्त सेना को पराजित करने वाले रूसी रुस्तमों से भी उनकी भेंट हुई। फलस्वरूप रूसी सरकार से क्रान्ति के लिए सहानुभूति प्राप्त की।

भारत लौटकर अजीमुल्ला खाँ ने नाना साहब को इटली जर्मनी के एकीकरण एवं राष्ट्रीय एकता की जानकारी दी। अतः भारत की स्वतन्त्रता के लिए भी हमें प्रयास करना चाहिए। नाना साहब को सशस्त्र क्रान्ति के लिए तैयार करने में खाँ साहब का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उनकी सलाह से नाना साहब उत्तरी भारत की तीर्थ यात्रा करने चल पड़े। खाँ साहब भी उनके साथ थे। वास्तव में इस तीर्थ यात्रा का उद्देश्य धार्मिक न होकर राजनीतिक था। लॉर्ड रसेल ने 'माई डायरी इन इण्डिया' भाग एक पृ. 170 पर लिखा है कि "अजीमुल्ला खाँ व नाना साहब की संयुक्त तीर्थ यात्रा बड़ी अनोखी थी। तीर्थ स्थानों के बहाने वे उत्तरी भारत की प्रमुख सैनिक छावनियों जैसे— मेरठ, अम्बाला तथा लखनऊ का दौरा कर आये।" कालपी में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से, लखनऊ में वाजिद अलीशाह से व उनके वकील अली कुली खाँ, बिहार के बाबू कुँवरसिंह, दिल्ली में मुगल सम्राट बहादुरशाह से सम्पर्क कर क्रान्ति की रूपरेखा तैयार करने में खाँ साहब का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।



अजीमुल्ला खाँ

मेरठ छावनी स्थित बाबा ओघड़नाथ (शिव) के मन्दिर में क्रान्तिकारी नेता आपस में मिलने लगे। दिल्ली के लाल किले में रात-रात भर बैठकें कर क्रान्ति की योजना बनने लगी। बहादुरशाह की बेगम जिन्नत महल व लखनऊ की बेगम हजरत महल ने इन बैठकों में विशेष भूमिका निभायी। इन्हीं के प्रयत्न से मुगल सम्राट बहादुरशाह क्रान्ति का नेतृत्व करने के लिए तैयार हुए।

इधर अजीमुल्ला खाँ के प्रयत्न से ही पेशवा नाना साहब अपना समर्थन मुगल सम्राट बहादुरशाह को देने के लिए सहर्ष तैयार हो गए। संक्षेप में खाँ साहब हिन्दू पेशवाई व मुगल बादशाहत के बीच एक दृढ़ सेतु सिद्ध हुए। यह निश्चय किया गया कि 31 मई, सन् 1857 ई. को मुगल सम्राट बहादुरशाह के नेतृत्व में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र क्रान्ति की जाए। समस्त उत्तरी भारत में क्रान्ति की पूरी योजना बना ली गई। साधू व फकीर गाँव गाँव घूमकर क्रान्ति की अलख जगाने लगे।

इस तरह से क्रान्ति के लिए उचित धरातल तैयार कर लिया गया। लोगों में बड़ा उत्साह था। 31 मई, 1857 ई. को चारों ओर से कम्पनी सरकार पर आक्रमण की योजना पूरी तरह से बना ली गई थी। योजनाएँ इतनी गुप्त रखी गयीं कि कम्पनी शासन को इसकी भनक तक न पड़ी। इसी बीच 10 मई, 1857 ई. को चर्बी लगे कारतूसों को लेकर मेरठ छावनी में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह भड़क उठा। फिर क्या था 31 मई के स्थान पर 10 मई को ही स्वतन्त्रता संग्राम प्रारम्भ हो गया। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अजीमुल्ला खाँ क्रान्ति के प्रमुख सूत्रधार बने रहे। प्रारम्भ में क्रान्तिकारियों को आशातीत सफलता मिली। दिल्ली, मेरठ, लखनऊ, आगरा, अवध पर क्रान्तिकारियों ने अधिकार कर लिया, परन्तु सिक्ख, गोरखे व बड़ी-बड़ी रियासतों के राजपूत राजाओं का सहयोग न मिलने के कारण क्रान्तिकारियों को अन्त में पराजित होना पड़ा। इतना सब कुछ होने पर भी नाना साहब व अजीमुल्ला खाँ ने हिम्मत नहीं हारी और स्थान-स्थान पर छापामार युद्ध प्रणाली से कम्पनी सरकार को नाकों चने चबाते रहे। वे नेपाल की तराई तक पहुँच गए और वहाँ बुटवाल पर अधिकार कर लिया, परन्तु भारी अंग्रेजी कुमुक आ जाने पर उनको वहाँ से हटना पड़ा। अन्त में विजय की आशा न देखकर खाँ साहब अपने स्वामी पेशवा नाना साहब के साथ अज्ञात स्थान पर चले गए। अंग्रेजी सरकार के लाख प्रयत्न करने पर भी वे पकड़ में न आये। कहीं न कहीं उनकी स्वाभाविक मृत्यु हुई होगी। इतिहास में इसका कुछ भी उल्लेख नहीं है।

इतिहासकारों का यह कर्त्तव्य है कि वे राष्ट्रीय एकता के प्रतीक अजीमुल्ला खाँ जैसे महान् क्रान्तिकारी नेता के जीवन एवं कार्यों पर शोध कर उनका प्रेरणास्पद जीवन लोगों के सामने रखें।

(7) वीरवर ताँत्या टोपे :

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के सेनापतियों में ताँत्या टोपे का अपना विशेष स्थान है। पेशवा नाना साहब को स्वतन्त्रता संग्राम के लिए तैयार करने में ताँत्या टोपे का महत्त्वपूर्ण हाथ था। मेरठ क्रान्ति के बाद समस्त उत्तरी भारत में क्रान्ति का मूल्याँकन करने व शत्रु सेना को छकाने में वे बेजोड़ थे। अनेक स्थानों पर इस

अद्भुत सेनानी ने रॉबर्ट्स, मिसेल, शावर्स, होप, हेवलाक, ग्रान्ट आदि चोटी के अंग्रेज सेनापतियों को बुरी तरह हराया।

इस महान् वीर सेनानी का जन्म सन् 1814 में हुआ था। इनका पूरा नाम रघुनाथ राय पाण्डुरंग यवलेकर था। जैसी कि महाराष्ट्र में प्रथा है कि अपने नाम के बाद पिता का नाम लगाया जाता है। अत: इनके पिता का नाम पाण्डुरंग था। ये मराठा देशस्थ ब्राह्मण थे। यवलेकर इनका सरनाम था क्योंकि इनके पूर्वज नासिक जिले के 'यवले' ग्राम के निवासी थे।


ताँत्या टोपे

उत्तरी भारत में जिस प्रकार अपनी सन्तानों को लॉडले के नाम से पुकारा जाता है, यथा लल्लन, बच्चन, लल्ला आदि। उसी प्रकार दक्षिण में भी ताँत्या, बप्पा, बाबा आदि लाड़ले नामों से अपनी संतानों को पुकारने की प्रथा है। अत: इन्हें भी रघुनाथ ताँत्या के नाम से पुकारा जाने लगा। इनके किसी पूर्वज को त्र्यम्बक जी डेंगले के प्रस्ताव पर पेशवा सरकार से एक रत्न जड़ित टोपी इनाम में मिली थी, उसी समय से इनका वंश टोपे के नाम से पुकारा जाने लगा।

1818 ई. में पेशवाई सूर्य अस्त हो चुका था। पेशवा बाजीराव को 8 लाख रुपये की पेंशन देकर कानपुर के निकट बिठुर भेज दिया गया था। ताँत्या टोपे के पिता पाण्डुरंग भट्ट भी पेशवा के साथ आ गए थे। उस समय बालक रघुनाथ (ताँत्या टोपे) की आयु केवल चार वर्ष की थी। पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ ही इनका पालन-पोषण हुआ। नाना साहब के बाल साथी होने के कारण दोनों में अटूट प्रेम था। यही कारण था कि क्रान्ति के समय भी ताँत्या टोपे पेशवा के दाहिने हाथ रहे।

मेरठ क्रान्ति के बाद कानपुर से अंग्रेजों को खदेड़ने का साहसिक कार्य ताँत्या टोपे का ही था। कैम्पबेल, हेवलाक के नेतृत्व में भारी फिरंगी सेना आ जाने से कानपुर छोड़ना पड़ा था, परन्तु वहाँ से हटकर ताँत्या टोपे ने ग्वालियर पर अधिकार किया। कालपी के युद्ध में अपनी वीरता प्रदर्शित की। इसके बाद तो छापामार युद्ध प्रणाली के माध्यम से समस्त उत्तरी भारत को आपने रौंद डाला और अंग्रेजों के नाक में दम कर दिया। यदि उत्तरी भारत के देशी राजा ताँत्या टोपे का साथ देते तो आज क्रान्ति का इतिहास कुछ दूसरा ही होता।

जून, 1858 ई. से लेकर अप्रेल, 1859 तक ताँत्या टोपे अंग्रेजों की प्रबल शक्ति से लोहा लेते रहे। कभी उनके पास तोपें होती, तो कभी एक बन्दूक भी नहीं होती और सेना के नाम पर कुछ मुट्ठी भर साथी उनके साथ रह जाते। लन्दन टाइम्स के युद्ध संवाददाता विलियम रसेल ने 'माई डायरी इन इण्डिया'' में लिखा है कि ''ताँत्या टोपे इतना परेशान करने वाला तथा चालाक है कि उसकी प्रशंसा करना शब्दों के बूते से बाहर है। गए जून महिने से उसने सारे मध्य भारत को सिर पर उठा रखा है। उसने छावनियों पर हमले किए, खजाने लूटे और कई शस्त्रागारों को खाली करा लिया। हर स्थल पर वह सेना एकत्र कर लेता है। उसकी गति बिजली की सी है। हफ्तों तक वह 40 मील प्रतिदिन चल सकता है। वह हमारी सेना के ठीक बीच से निकल जाता है। उसे पकड़ पाना असंभव है। वास्तव में उसे तब तक कोई न देख सका जब तक मानसिंह ने धोखा देकर उसे हमें नहीं सौंप दिया।''

ग्वालियर पराजय के बाद वीरवर ताँत्या टोपे उबड़-खाबड़ भू-भागों में अंग्रेजी साम्राज्य की सम्पूर्ण शक्ति का सामना करते रहे। बिना युद्ध सामग्री के, बिना किसी प्रकार के विश्राम के, अपनी सेना सहित एक स्थान से दूसरे स्थान पर अंग्रेजी सेना को छकाते हुए ताँत्या टोपे घूमते रहे। उस समय प्रकाशित 'फ्रेड आव इण्डिया' के पत्रकार ने लिखा है— ''ताँत्या ने मराठों की राष्ट्रीय युद्ध विधि छापामार प्रणाली से बड़े-बड़े अंग्रेज सेनापतियों को छका दिया। यदि 1857 की क्रान्ति को आधे दर्जन ताँत्या टोपे मिल जाते तो उक्त क्रान्ति का इतिहास ही बदल जाता। उनमें एक महान् सैनिक प्रतिभा थी। सेना के संचालन में वे अद्वितीय थे।''

वीर सावरकर ने अपनी पुस्तक 'भारत में स्वतन्त्रता संग्राम' में लिखा है— ''अंग्रेजों से कम शक्तिशाली शत्रु से इनका मुकाबला होता तो वे बड़े राज्य की नींव लगाते और मराठा शक्ति का पुनर्निर्माण करते। प्रारम्भ में उन्होंने अंग्रेजों को करारी मात दी। स्थान-स्थान पर उनके छक्के छुड़ा दिए। अंग्रेजी सेना के फन्दे से बच निकलने के लिए स्थान-स्थान पर जिस चतुराई के प्रमाण दिये, वे सैनिक इतिहास की अद्‌भुत घटनाएँ थीं।''

पूरे दो वर्ष तक अपना बचाव करके अंग्रेजी सेना को छकाते रहे, परन्तु सीकर के युद्ध के बाद ताँत्या का भाग्य सूर्य अस्त हो गया। राव साहब और फिरोजशाह उनका साथ छोड़ गए। निरूपाय हो तीन चार साथियों के साथ उन्होंने नरवर राज्य में पारोण के जंगलों में अपने मित्र मानसिंह के पास शरण ली।

7 अप्रेल, 1850 को ताँत्या टोपे नरवर के राजा मानसिंह के विश्वासघात के कारण मेजर मींड द्वारा गिरफ्तार कर लिए गए। उस समय उनके पास एक घोड़ा, एक तलवार, एक खुखरी और सम्पत्ति के नाम पर 118 मुहरें थीं। मानसिंह की मेहमानबाजी में ताँत्या सौ गए। नींद आते ही उन्हें चारपाई से बाँध दिया गया।

स्वयं उनके परम विश्वासपात्र मित्र मानसिंह ने अंग्रेजों के प्रलोभन में आकर उन्हें पकड़वाने का यह महान् पाप किया था। वैसे ताँत्या टोपे को पकड़ने के संकल्प में अंग्रेज बारबार मुँह की खा चुके थे।

बन्दी बनाकर ताँत्या टोपे को सिप्री लाया गया। वहाँ पर एक सैनिक न्यायालय में उन पर नाम मात्र का मुकदमा चलाया गया और उन्हें प्राण दण्ड दिया गया। 18 अप्रेल की शाम को 7 बजे ताँत्या टोपे को फाँसी के मैदान में लाया गया। वे स्वत: ही फाँसी के तख्ते पर चढ़ गए और अपने ही हाथों फाँसी का फंदा गले में डाल लिया। अंग्रेज सेनापति, जो वहाँ उपस्थित थे, इस वीरात्मा की इस अचल बुद्धि से हतप्रभ रह गए। अंग्रेज महिलाओं ने ताँत्या टोपे के बालों को पवित्र स्मृति के रूप में अपने पास रखा।

इस प्रकार इस अनन्य वीर का भी वही अन्त हुआ जो कि विदेशी शासन से अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने वाले वीरों का होता आया है। यह ठीक है कि गैरी बाल्डी के समान अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने में वे अथक् प्रयास के बाद भी सफल न हुए, परन्तु फिर भी जब तक भारत में स्वतन्त्रता की भावना बलवती रहेगी और 1857 की क्रान्ति स्मरण रहेगी, इस देश के निवासी उस महान् क्रान्तिकारी, स्वतन्त्रता के अनन्य पुजारी वीरवर ताँत्या टोपे का नाम श्रद्धा एवं आदरपूर्वक लेते रहेंगे। उनका बलिदान युग-युग तक स्वातंत्र्य पथ को आलोकित करता रहेगा।

(8) प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई :

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में महारानी लक्ष्मीबाई का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। इस युद्ध में भारत की स्त्री रत्न लक्ष्मीबाई ने अपनी अलौकिक प्रतिभा व तेज से समस्त वीर जगत को आश्चर्य चकित कर दिया। जाने हुए इतिहास के पृष्ठों में हमें एक भी महिला के शौर्य व पराक्रम का ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, जिसने इस वीरांगना की भाँति प्रबल शत्रु से दृढ़ता के साथ सामना किया हो। इसी विलक्षण बुद्धि व अद्‌भुत वीरत्व के बारे में अंग्रेजों ने जो कुछ लिखा उससे प्रत्येक देशभक्त का मस्तक ऊँचा होता रहेगा।



Maharani Laxmibai of Jhansi has become a heroic tradition of Indian womanhood.

सर एडविन आर्नोल्ड ने बड़े ही आश्चर्य व आनन्द के साथ महारानी की वीरता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "वह इंग्लैण्ड की बौदिशिया नामक रानी से किसी तरह कम नहीं थी।" बौदिशिया प्राचीन काल में अपनी स्वतन्त्रता के लिए रोमन लोगों से लड़ी थी। 'इंग्लैण्ड की संसद के सभासद डब्ल्यू. सी. टोरस ने लक्ष्मीबाई की तुलना फ्रांस की वीरांगना 'जॉन ऑफ आर्क' से की। मार्टिन नामक इतिहासकार के अनुसार— "तुमुल और भयंकर युद्ध में कई घंटों तक घनघोर युद्ध करने के बाद भी महारानी परिश्रम से घबराकर पीछे नहीं हटती थी। उसने ह्यूरोज जैसे कुशल सेनानायक के कितनी ही बार छक्के छुड़ा दिए थे।" स्वयं-ह्यूरोज महारानी के बारे में लिखते हैं—

"शत्रुदल की ओर का सबसे उत्तम मनुष्य कोई है तो वह है झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई।"

इस वीरांगना का जन्म 19 नवम्बर, 1835 ई. में बलवन्त राय की धर्म पत्नी भागीरथी बाई की कोख से हुआ था। बचपन का नाम मनुबाई था। यह 'मैना छबीली' के नाम से पुकारी जाती थी। 14 वर्ष की आयु में ही लक्ष्मीबाई का विवाह झाँसी के राजा गंगाधर राव से कर दिया गया था, परन्तु चार वर्ष बाद ही इनके पति का स्वर्गवास हो गया। अतः शासन का सारा भार महारानी पर आ पड़ा। मृत्यु के पहले ही गंगाधर राव ने अपने निकटस्थ सम्बंधी "दामोदर राव" को गोद ले लिया था। उस समय लार्ड डलहौजी की हड़प नीति के अन्तर्गत देशी रियासतें अंग्रेजी राज्य में मिलाई जा रही थी। अतः झाँसी को भी अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया, परन्तु लक्ष्मीबाई ने स्पष्ट शब्दों में ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार को ललकार दिया था कि "मैं जीते जी झाँसी नहीं दूँगी।"

बढ़ते-बढ़ते बात बढ़ गई। अनुभवी सेनानायकों के नेतृत्व में एक विशाल सेना झाँसी के लिए भेज दी गई। इधर महारानी भी युद्ध के लिए तैयार थी। उसने अतुल पराक्रमी सेना का डटकर सामना किया। रानी के वीरत्व को देखकर सेनापति भी दाँतों तले अँगुली दबा गए, परन्तु अंग्रेजों की विशाल सेना, उनके जन संहारक आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से झाँसी को बचाया नहीं जा सका, परन्तु स्वतन्त्रता की इस देवी ने हिम्मत न हारी।

अद्भुत शौर्य : झाँसी के पतन के बाद लक्ष्मीबाई पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा, परन्तु इस वीरांगना ने भावी युद्ध के लिए अपने चार वर्षीय दत्तक पुत्र को पीठ पर बाँध कर कालपी की ओर कूच किया, परन्तु रास्ते में ही लैफ्टिनेंट बोकर की सेना ने उसे घेर लिया। उस समय महारानी के पास न तो सेना थी और न अपनी रक्षा की तलवार के सिवाय कोई अन्य साधन था। अतः तुरन्त बालक को अपनी पीठ पर बाँध, हाथ में तलवार से घोड़े पर सवार हो, शत्रु से जूझ पड़ी।

अंग्रेजी सेना ने चारों ओर से धावा बोल दिया। वास्तव में यही समय महारानी के रणकौशल के परीक्षण का था। यद्यपि ऐसे कठिन समय में जब लाभ की आशा करना एक कठिन प्रयास था, तथापि उसने अपने अलौकिक साहस, दृढ़ निश्चय, अद्भुत शूरता व अद्वितीय रण कौशल से एक रणशूर अंग्रेज योद्धा के दाँत खट्टे कर दिए। ज्योंही बोकर साहब अपने घोड़े को दौड़ाते हुये, लक्ष्मीबाई को पकड़ने आगे बढ़े, त्योंही लक्ष्मीबाई ने कुछ दूर हटकर पहले उनके वेग को रोका और फिर अपनी तलवार का एक हाथ ऐसी फुर्ती से चलाया कि बोकर साहब घायल होकर छटपटाते नीचे गिर पड़े। फिर क्या था, रानी वायु गति से कालपी पहुँची। बोकर साहब हताश हो झाँसी लौट गए। महारानी घोड़ा दौड़ाती हुयी अपने पुत्र को पीठ पर बाँधे 24 घंटे में 102 मील की दुर्गम यात्रा कर रात को बारह बजे कालपी पहुँची। अंग्रेज इतिहासकारों की दृष्टि में महारानी का यह कार्य उसके साहस व मनोनिग्रह का अद्भुत परिचय था।

कालपी यमुना के पश्चिमी किनारे पर एक मजबूत किला था। उस समय पेशवा अपनी सेना सहित कालपी में विश्राम कर रहे थे। अत: उन्होंने लक्ष्मीबाई के साहस व वीरत्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की और किले की रक्षा का भार ताँत्या टोपे व लक्ष्मीबाई को सौंप दिया। इन दोनों के कुशल नेतृत्व में स्वतन्त्रता संग्राम की तैयारी होने लगी।

उधर ब्रिगेडियर स्टुअर्ट और लैफ्टीनेन्ट रॉबर्टसन के नेतृत्व में एक विशाल सेना झाँसी से कालपी की ओर चल पड़ी। स्वतन्त्रता सेनानियों ने भी कालपी दुर्ग में अच्छी तरह मोर्चा जमा लिया था, परन्तु स्वतन्त्रता सैनिक अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए इतने उतावले हो गए कि वे मोर्चा बन्दी का स्थान छोड़ कर आगे बढ़ गए। यह क्रान्तिकारी सेनापतियों की भारी भूल थी। इससे अंग्रेजी तोपों की मार सीधी पड़ने लगी। अत: तोपों की मार से सेना की अग्रिम पंक्ति धराशायी होने लगी। पेशवा व बाँदा के नवाब घबरा गए और रणक्षेत्र से भागने की योजना बनाने लगे। इस समय लक्ष्मीबाई ने इनको धैर्य बँधाया और कहा कि अब मेरा कौशल देखिये। इतना कहते ही उसने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया और अंग्रेजों की दाहिनी रक्षा पंक्ति पर धावा बोल दिया। इस आकस्मिक प्रचण्ड आक्रमण से अंग्रेजी सेना एकदम पीछे हट गयी। महारानी की मार से अंग्रेज तोपची भी भाग खड़े हुए। उस समय जो घनघोर युद्ध हुआ वह महारानी के शौर्य का अनुपम उदाहरण था। लक्ष्मीबाई दाँतों से घोड़े की लगाम पकड़, दोनों हाथों से सड़ा-सड़ तलवार चला रही थी। उनका ओज व शौर्य मानो इस समय फूट निकला था। वह साक्षात् रणचंडी बन गई थी।

जब ह्यूरोज ने अंग्रेजी पराजय के समाचार सुने तो वह झाँसी से एक विशाल सेना के साथ स्टुअर्ट की सहायता के लिए दौड़ पड़ा। खुद सेनानायक बनकर ऊँट सवारी से गोले बरसाना प्रारम्भ कर दिए। महारानो की सेना फिर भी हिम्मत रखकर डटी रही, परन्तु पेशवा की सेना हताश होकर अपना स्थान छोड़ने लगी। अतः विवश हो लक्ष्मीबाई को भी पीछे हटना पड़ा। महारानी, पेशवा, ताँत्या टोपे, बाँदा के नवाब अंग्रेजी सेना के चुंगल से निकल कर गोपालपुर पहुँचने में सफल हो गए। कालपी पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

गोपालपुर पहुँचने -पर पेशवा, बाँदा के नवाब, ताँत्या टोपे उदास हो अपनी परायज से दुःखी हो रहे थे। इतने में लक्ष्मीबाई ने इन लोगों के डेरे पर आकर कहा कि "हमें चुपचाप नहीं बैठना है वरन् किसी सुदृढ़ किले पर अधिकार कर अंग्रेजों से पुनः लोहा लेना है। कालपी व झाँसी पर पुनः अधिकार का प्रयास करना जान बूझकर शत्रुओं के मुख में पड़ना है। अतः ग्वालियर पर अधिकार का प्रयास करना चाहिये।" महारानी की इस सूझ-बूझ की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। मैलसन लिखते हैं— "इसमें संदेह नहीं था कि यदि महारानी ग्वालियर विजय की योजना न बनाती तो अन्य क्रान्तिकारी नेता इस बारे में सोच भी नहीं सकते थे। अतः ग्वालियर पर अधिकार के विचार से क्रान्ति में नवजीवन का संचार हुआ। इसका सारा श्रेय लक्ष्मीबाई को है।" ग्वालियर पर उस समय जियाजीराव सिंधिया शासन कर रहे थे, परन्तु वे अंग्रेजों की कठपुतली मात्र थे। इतना ही नहीं वे क्रान्ति विरोधी भी थे। अतः उन्होंने क्रान्तिकारी सेना से लड़ने का निश्चय किया। यदि इस समय सिंधिया क्रान्ति में शामिल हो जाते तो भारत का इतिहास कुछ और ही होता। तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड केनिंग ने स्थिति की गंभीरता को देखते हुए इंग्लैण्ड की सरकार को तार द्वारा सूचित कर दिया था कि "यदि सिंधिया सरकार विद्रोह में शामिल होती है तो कल ही मुझे भारत से डेरा-डंडा उठाना होगा।"

गोपालपुर से क्रान्तिकारी सेना ने ग्वालियर की ओर कूच किया। सिंधिया व अंग्रेजों की सेना पराजित हुई। सिंधिया व अंग्रेज रेजीडेन्ट ने भागकर आगरा में शरण ली। क्रान्तिकारी सेना ने विजयोल्लास के साथ नगर में प्रवेश किया। पेशवा ठाट बाट से सिंधिया के राजमहलों में रहने लगे। लक्ष्मीबाई लश्कर के पास नवलखा बाग में रहने लगी। पेशवा महलों में नित नये उत्सव मनाने लगे। ब्रह्मभोजों का ताँता लग गया। पेशवा चाहते तो ग्वालियर विजय का लाभ उठाकर भावी युद्ध की तैयारी करते, परन्तु इसके विपरीत वे राग रंग में मस्त हो गए। लक्ष्मीबाई को यह देखकर बहुत दुःख हुआ और पेशवा को लिख भेजा— "आप

विजय के आनन्द में मस्त हैं। यह बात ठीक नहीं है। अंग्रेज बहुत ही चालाक व उद्यमी हैं। वे कभी भी हम पर आक्रमण कर सकते हैं। अत: हमें राग-रंग छोड़ कर युद्धाभ्यास करना चाहिए।"

महारानी की सलाह का विजयोन्मादी पेशवा पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। इधर सर ह्यूरोज व ब्रिगेडियर जनरल नेपियर ग्वालियर पर आक्रमण की तैयारी करने लगे। 6 जून 1857 को ह्यूरोज कालपी से ग्वालियर की ओर बढ़े। 10 जून को इन्दौर से स्टुअर्ट की सेना भी उनसे जाकर मिल गई। इन दोनों की संयुक्त सेना ने मुरार की छावनी पर अधिकार कर लिया।

ग्वालियर युद्ध व महारानी का अनुपम शौर्य : मुरार की छावनी पर अंग्रेजों के अधिकार ने क्रान्तिकारियों की आँख खोल दी। पेशवा व ताँत्या टोपे ने अपने मोर्चे जमाने शुरू कर दिए। लक्ष्मीबाई भी फौजी पोशाक में सज-धज कर तैयार हो गई और अपनी लाल वर्दी के सैनिकों को प्रशिक्षण देने लगी। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस युद्ध में महारानी ने जिस अलौकिक पराक्रम का प्रदर्शन किया वह वीरत्व के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। कई बड़े-बड़े युद्धों में विजय पाने वाले अंग्रेज सेनापति भी महारानी के तेज को देखकर आश्चर्य में डूब गए, परन्तु अकेली वह कर भी क्या सकती थी। कर्नल



झाँसी के संग्राम में अंग्रेजी सेना का मुकाबला करती हुई रानी लक्ष्मीबाई

रेन्स व कर्नल पेली की सेना आ जाने से शत्रु दल की शक्ति बढ़ गई। ह्यूरोज के प्रथम आक्रमण से पेशवा की सेना के पाँव उखड़ने लगे। फिर भी लक्ष्मीबाई अपने दल के साथ अंग्रेजों से डटकर लोहा लेती रही।

महारानी का अन्तिम युद्ध : लक्ष्मीबाई की सेना भी तितर-बितर हो गई थी। उनके पास कुछ विश्वास पात्र नौकर व नौकरानियाँ रह गई थीं। महारानी रणचण्डी की भाँति शत्रु दल पर टूट पड़ीं। अदम्य साहस से शत्रु दल को चीरती हुई थोड़े से अनुचरों के साथ शत्रु दल के घेरे से बाहर निकल ही गई, परन्तु ब्रिगेडियर स्मिथ ने कुछ चुने हुए सवारों को रानी के पीछे दौड़ा दिया। महारानी के पीछे से गोली लगी, परन्तु उसने हिम्मत न छोड़ी और भूखी सिंहनी की तरह शत्रु दल पर टूट पड़ी।

लक्ष्मीबाई ने अटल धैर्य व अपूर्व वीरत्व के साथ उन सवारों के साथ युद्ध किया, परन्तु अन्त में गोलियों व तलवारों के घावों से जर्जरित हो वे नीचे गिर पड़ीं। उनके विश्वसनीय अनुचर उन्हें उठाकर पास की कुटिया में ले गए। वहीं पर 17 जून 1858 ई. को रणचंडी ने अपने नश्वर शरीर को त्याग कर अमरत्व प्राप्त किया। उनके साथियों ने उसी रात रानी के शरीर को अग्नि को समर्पित कर दिया, जिससे अंग्रेज इस बात का घमण्ड न करें कि उन्होंने लक्ष्मीबाई के मृत शरीर को भी छू लिया है।

इस तरह से स्वतन्त्रता की इस अनन्य पुजारिन महारानी लक्ष्मीबाई ने देश की स्वतन्त्रता के लिए जो अनवरत युद्ध किया उससे वह भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की मुख्य आत्मा के रूप में सदा याद की जाती रहेंगी। युगों-युगों तक महारानी का बलिदान हमें देश की स्वतन्त्रता व अखण्डता की रक्षा के लिए प्रेरित करता रहेगा।

(9) स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानी–राणा बेनी माधोसिंह :

अवध के स्वतन्त्रता संग्राम में राणा बेनी माधोसिंह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपके प्रारम्भिक जीवन के बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। वे शंकरपुर, भीरवा, जगतपुरा तथा पुकूबयां के तालुकदार थे। क्रान्ति के समय आप काफी वृद्ध थे। फिर भी अपने छोटे भाई गजराजसिंह के साथ क्रान्ति में कूद पड़े और लखनऊ के बेलीगारद युद्ध में दोनों भाइयों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। वे ग्राण्ड ट्रंक रोड पर अंग्रेजी सेना पर छापा मारा करते थे।

लखनऊ के पतन के बाद राणा बेनी माधोसिंह ने शंकरपुर में ही अपनी सेना एकत्रित कर ली और यहीं छापामार युद्ध का संचालन करने लगे। कम्पनी के क्रूर शासन के अन्त के बाद महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा से क्रान्तिकारियों

के साहस को समाप्त करना चाहा, परन्तु अवध की बेगम हजरत महल के साथ आपने भी विक्टोरिया की घोषणा के धोखे में न आने की सलाह दी। इसी का परिणाम था कि सम्पूर्ण बसेवरा क्षेत्र स्वतन्त्रता संग्राम के लिए पुनः जाग उठा।

अंग्रेजी शासन राणा के कार्यों से बेहद परेशान हो गयी। अतः अंग्रेज सेनापति कैम्पबेल ने शंकरपुर के निकट श्योपुर में अपना मोर्चा जमाया। मेजर केरो ने हथियार डाल देने के लिए राणा बेनी माधोसिंह को पत्र लिखा। राणा इस पत्र से तनिक भी विचलित नहीं हुए और पत्र का उत्तर लिख भेजा— "मैं किसी प्रकार से शस्त्र डालने वाला नहीं हूँ। मैंने अवध के नवाब ब्रिजिस कादर की अधीनता स्वीकार कर ली है। मैं जीते जी तो विश्वासघात नहीं कर सकता। कैम्पबेल ने दूसरे ही दिन शंकरपुर को घेर लिया, परन्तु बेनी माधोसिंह तो रात्रि को ही किला छोड़ चुके थे। टाइम्स के संवाददाता रसेल ने इसका आँखों देखा वर्णन लिखा है—"नवम्बर 16-फिर भी ये लोग हमसे अधिक चतुर है। रात्रि के 2 बजे चन्द्रमा अस्त हो गया तब अंधेरे में राणा बेनी माधोसिंह अपनी समस्त सेना, कोष, तोपों व स्त्रियों को सकुशल निकाल कर ले गया। वे लोग पश्चिम की ओर 'सर होप ग्राण्ट' की दाहिनी चौकी के बीच में होकर चक्कर काटते हुए 'पूरवा नामक स्थान की ओर बढ़े। ताज्जुब तो यह है कि इस समस्त अभियान की हमको भनक तक न पड़ी।"

शंकरपुर से राणा डोडिया खेड़ा पहुँचे। कैम्पबेल भी पीछा करता हुआ वहाँ पहुँचा। वहाँ पर राणा की सेना से ब्रिटिश सेना की जोरदार झड़प हुई। फिर भी राणा अंग्रेजों की पकड़ में न आये। इस तरह से राणा बेनी माधोसिंह आजीवन स्वतन्त्रता के लिए लड़ते रहे। बाद में वे बेगम हजरत महल के साथ नेपाल की तराई प्रदेश में चले गए।

(10) क्रान्तिकारी सेठ रामजीदास गुड़वाला :

सेठ रामजीदास गुड़वाला दिल्ली के अरबपति सेठ व साहूकार थे तथा अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर के गहरे दोस्त थे। उस समय मुगल दरबार की आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय थी। खजाना खाली था। अधिकांश दरबारी बादशाह को नीचा दिखाने वाले थे। इतना ही नहीं अनेक मुगल सरदार गुप्त रूप से अंग्रेजों से मिले हुए थे। चारों तरफ ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कुचक्र चल रहा था। सम्राट बड़े परेशान थे। एक दिन वे अपनी खास बैठक में कम्पनी सरकार के कारनामे से बेचैन हो उदास होकर इधर उधर घूम रहे थे। इसी बीच सेठ रामजीदास गुड़वाला बैठक में पहुँच गए और हर प्रकार से अपने मित्र बादशाह को सांत्वना दी। सेठ साहब स्वयं कम्पनी सरकार के काले कारनामों से परेशान थे। उन्होंने बादशाह को कायरता छोड़ कर सन्नद्ध हो क्रान्ति के लिए तैयार किया,


सेठ रामजीदास गुड़वाला

परन्तु बहादुरशाह जफर ने आर्थिक संकट के कारण कुछ कर सकने में अपनी असमर्थता प्रकट की। सेठ गुड़वाले ने तत्काल तीन करोड़ रुपये बादशाह को देने का प्रस्ताव रखा। इस धन से क्रान्तिकारी सेना खड़ी की गई।

सेठ रामजीदास ने जिसने अभी तक साहूकारी व व्यापार ही किया था, सेना तथा खुफिया विभाग के संगठन का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। उनकी संगठन शक्ति को देखकर अंग्रेज सेनापति भी दंग रह गए, परन्तु दुःख है कि बादशाह के अधिकांश दरबारी दगाबाज निकले जो अंग्रेजों को सारा भेद बता देते थे। फिर भी वे निराश नहीं हुए और सारे उत्तरी भारत में उन्होंने जासूसों का जाल बिछा दिया और अनेक सैनिक छावनियों से गुप्त सम्पर्क किया। उन्होंने भीतर ही भीतर एक शक्तिशाली सेना व गुप्तचर विभाग का संगठन किया। देश के कोने-कोने में गुप्तचर भेजे गए और छोटे से छोटे राजा तथा मनसबदार से हार्दिक प्रार्थना की गई कि इस संकट काल में मुगल सम्राट की मदद कर देश को स्वतंत्र करावें।

गुड़वाले ने अंग्रेजों की सेना में भी भारतीय सिपाहियों को आजादी का संदेश भेजा और सैनिकों ने भी निश्चित समय पर उनकी सहायता देने का वचन दिया। यह भी कहा जाता है कि क्रान्तिकारियों द्वारा मेरठ व दिल्ली में क्रान्ति का झण्डा खड़ा करने में गुड़वाला का प्रमुख हाथ था।

गुड़वाला के इस प्रकार की क्रान्तिकारी गतिविधियों से अंग्रेज अधिकारी बहुत अधिक चिन्तित होने लगे। सर जॉन लारेन्स आदि सेनापतियों ने गुड़वाला को अपनी ओर मिलाने का पूरा प्रयास किया, परन्तु वे किसी भी कीमत पर अंग्रेजों से बात तक करने को तैयार नहीं थे। इस पर उच्च अंग्रेज अधिकारियों ने दिल्ली में एक बैठक बुलाई, जिसमें सभी अंग्रेज अधिकारियों ने एक स्वर में कहा कि यदि गुड़वाले की तैयारियाँ इसी तरह से चलती रहीं तो क्रान्ति के शोले इस कदर भड़केंगे कि उन्हें शांत करना कठिन हो जाएगा और अंग्रेजों का भारत में शासन करने का अरमान चूर-चूर हो जाएगा। अतः इसे पकड़कर इसकी जीवन लीला को समाप्त करना बहुत ही आवश्यक है।

सेठ रामजीदास गुड़वाला को धोखे से पकड़ा गया और उसे जिस तरह से मारा गया, वह दुनियाँ के इतिहास में क्रूरता की एक मिशाल है। पहले उन पर शिकारी कुत्ते छुड़वाये, जब वे इस पर भी नहीं मरे तो उन्हें अधमरी हालत में चाँदनी चौक कोतवाली के सामने फाँसी पर लटका दिया गया।

इस तरह से अरबपति सेठ रामजीदास ने देश की आजादी के लिए अपनी सम्पत्ति व मूल्यवान जीवन को हँसते-हँसते निछावर कर दिया। सुप्रसिद्ध इतिहासकार ताराचन्द ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट' में लिखा है— "सेठ रामजीदास गुड़वाला उत्तरी भारत का सबसे धनी सेठ था। अंग्रेजों के विचार से उसके पास असंख्य हीरे मोती, जवाहरात व अतुल धन सम्पत्ति थी। मुगल बादशाह से भी वह अधिक धनी था। यूरोप के बाजारों में भी उसकी साहूकारी का डंका बजता था।"

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि 1857 से पहले सेठ रामजीदास व उसके पूर्वजों के मुगल सम्राट से बहुत अच्छे सम्बन्ध थे। मुगल सम्राट की ओर से उसे राजा जैसे अधिकार प्राप्त थे। उन्हें जगत सेठ व अन्य उपाधियों से विभूषित किया गया था। कहा जाता है कि दिल्ली में जिस हवेली या कोठी में वे रहते थे, वह एक स्वतंत्र राज्य के समान था।

यह भी सर्व विदित है कि दरबारे आम में एक छोटा-सा सिंहासन बना हुआ था, जिस पर सेठ रामजीदास बैठते थे, शेष दरबारी खड़े रहते थे। वे बादशाह को झुककर सलाम नहीं करते थे। उन्हें छः घोड़ों की बग्गी व हाथी पर सवार होने का अधिकार था। मुगल दरबार में उनका कितना प्रभाव था, इसका इस बात से आसानी से पता चलता है कि बादशाह के सिक्के की दूसरी तरफ जगत सेठ रामजीदास की तस्वीर बनी होती थी।

परन्तु भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में जो उनका स्थान है, वह उनकी अतुल सम्पत्ति के कारण नहीं वरन् देश की आजादी के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने से है। मंगल पांडे से भी पहले वे देश की आजादी के लिए शहीद हुए थे। इस तरह से सेठ रामजीदास का जीवन भारतीय स्वातंत्र्य इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है।

(11) झज्जर के नवाब अब्दुर्रहमान खाँ :

किसी समय दिल्ली से 30 मील पश्चिम में झज्जर की एक छोटी-सी रियासत थी। 1845 ई. तक यहाँ नवाब फेज अली शासन करते थे। उनकी मृत्यु के बाद अब्दुर्रहमान खाँ झज्जर के नवाब बने। सत्ता संभालते ही उन्होंने सारा ध्यान शासन को सुव्यवस्थित करने में लगा दिया। नागरिकों से सुमधुर सम्बन्ध कायम किए। इसी बीच मेरठ में 1857 की क्रान्ति का शंखनाद हो चुका था।

मेरठ विजय के बाद क्रान्तिकारी सेना दिल्ली की ओर प्रयाण करने लगी। इस शुभ समाचार से नवाब अब्दुर्रहमान खाँ का हृदय प्रफुल्लित हो उठा और स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान की तैयारी करने लगे।

झज्जर के बाहर एक सैनिक छावनी कायम की गई। सैनिकों की भर्ती होने लगी। नगर के बाहर छुछकबास के जंगलों में सैनिकों को प्रशिक्षण दिया जाने लगा। इधर दिल्ली की अंग्रेजी सरकार क्रान्तिकारी सेना को दिल्ली के निकट आते देख घबराने लगी। अंग्रेजी सरकार ने झज्जर के नवाब से 600 सिपाही व तोपों की माँग की, परन्तु नवाब ने इसे अस्वीकार कर दिया। इसी बीच रोहतक की जनता ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। झज्जर के नवाब वहाँ पहुँचे और विद्रोह का नेतृत्व किया। हल्की लड़ाई से ही उन्होंने अंग्रेज अधिकारियों को रोहतक से खदेड़ दिया और 24 मई, 1857 को रोहतक में विजय का झण्डा लहरा दिया गया। क्रान्तिकारी सेना जब दिल्ली पहुँची तो उनकी सहायता के लिए नवाब ने अपने ससुर अब्दुल समद के नेतृत्व में 300 सैनिक एवं तोपें भेजी।

दीवानों का विश्वासघात : झज्जर के नवाब अब्दुर्रहमान ने रिवाड़ी के राव तुलाराम के सहयोग से क्रान्ति को तेज करने के लिए एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें नवाब झज्जर, नवाब फरुखनगर, नवाब फिरोजपुर, नवाब झिरका, नवाब बहादुरगढ़ शामिल हुए। ब्रिटिश सरकार क्रान्तिकारियों की एकता व शक्ति को देख घबरा उठी और हरियाणा में क्रान्ति के दमन के लिए मिस्टर फोर्ड को एक विशाल सेना के साथ भेजा। राव तुलाराम ने अंग्रेजी सेना को आते देखा तो उन्होंने रिवाड़ी के स्थान पर कानोड़ (महेन्द्रगढ़) में शत्रु से मोर्चा लेना उचित समझा। महेन्द्रगढ़ झज्जर के अधीन सुदृढ़ किला था। जब रात को तुलाराम महेन्द्रगढ़ पहुँचे तो उससे पहले ही मि. फोर्ड ने लालच देकर झज्जर के दीवान ठाकुर ख्यालसिंह को अपनी ओर मिला लिया और अंग्रेजों के इशारे पर उस देशद्राही ने राव साहब के लिए किले के दरवाजे खोलने से मना कर दिया। अन्त में राव साहब को नारनोल के निकट नसीरपुर के खुले मैदान में अंग्रेजों से संघर्ष करना पड़ा। तीन दिन तक घमासान युद्ध हुआ। भारतीयों को पराजय का मुँह देखना पड़ा। राव तुलाराम हरियाणा छोड़ कर ग्वालियर की महारानी लक्ष्मीबाई के पास पहुँच गए।

अंग्रेजों ने छल-कपट से क्रान्तिकारियों में फूट डालने का काम तेज कर दिया, क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि भारत को बल से नहीं छल से जीता जा सकता है। हमारे ही लोगों के विश्वासघात का परिणाम यह निकला कि क्रान्ति का पासा पलटने लगा। 14 सितम्बर को दिल्ली का पतन हो गया। हमारे सम्राट बहादुरशाह कैद कर लिए गए, परन्तु दिल्ली के आस-पास झज्जर के नवाब



क्रान्ति की मशाल अभी थामे हुए थे। अत: वायसराय लॉर्ड केनिंग ने 4 अक्टूबर सन् 1857 को ब्रिगेडियर शॉबर्स को एक विशाल सेना के साथ हरियाणा में क्रान्ति के दमन के लिए भेजा। उधर दादरी से लारेन्स भी झज्जर की ओर बढ़ा। क्रान्तिकारी सेना हर तरह से अंग्रेजी सेना का मुकाबला करने के लिए तैयार थी। इसी बीच झज्जर के दूसरे दीवान रामरिछपालसिंह को भी अंग्रेजों ने एक जागीर देने का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया। अत: उसने छुछकवास में क्रान्तिकारियों की सारी गतिविधियों से लारेन्स को अवगत करा दिया। इतना ही नहीं धोखे से नवाब को लारेन्स के हाथों गिरफ्तार भी करवा दिया। फिर भी क्रान्तिकारी सेना ने अंग्रेजी सेना से मुकाबला किया, परन्तु योग्य नेतृत्व के अभाव में उसे सफलता नहीं मिली। वहाँ से हट कर स्थान-स्थान पर अंग्रेजी सैनिक टुकड़ियों से मुठभेड़ करती झज्जर की सेना जोधपुर पहुँच गई और वहाँ ताँत्या टोपे की क्रान्तिकारी सेना से मिल गई।

नवाब की शहादत : झज्जर विजय के बाद अंग्रेजी शासन ने अपनी क्रूरता का नग्न परिचय दिया। झज्जर को बुरी तरह लूटा गया। पुरुषों, स्त्रियों व मासूम बच्चों को नंगा कर कोड़ों से पीटा गया। झज्जर की लाल डिग्गी में हजारों को फाँसी पर चढ़ा कर उनकी लाशों को वृक्षों पर टाँक दिया। नवाब फरुखनगर, नवाब बहादुरगढ़, नवाब बल्लभगढ़ जैसे क्रान्तिकारी वीरों को गोली मार दी गई। नवाब अब्दुर्रहमान को कड़े पहरे में दिल्ली ले जाया गया। वहाँ पर जनरल चेम्बर के नेतृत्व में उन पर मुकदमा चलाने के लिए मिलिटरी कमीशन कायम किया गया। बड़े नाटकीय ढंग से केवल तीन दिन में ही देशद्रोही दीवान ख्यालसिंह व रामरिछपालसिंह के झूँठे बयानों पर विश्वास कर कमीशन ने नवाब को फाँसी की

सजा सुना दी। न्याय के इतिहास में अंग्रेजी शासन का यह क्रूर निर्णय काला कारनामा ही कहलायेगा।

21 दिसम्बर, 1857 ई. को लाल किले के सामने चाँदनी चौक के खुले मैदान में नवाब को फाँसी दे दी गई। आज उसी स्थान पर बना पानी का फव्वारा नवाब के अमर बलिदान व अंग्रेजों के काले कारनामों की याद ताजा कर रहा है। नवाब का नश्वर शरीर आज नहीं है, परन्तु देश की आजादी के लिए उनकी शहादत युगों-युगों तक हमारे लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य करती रहेगी।

(12) रेवाड़ी के राव तुलाराम :

झज्जर के नवाब अब्दुर्रहमान के अनन्य साथी आज़ादी के मसीहा राव तुलाराम भी भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। रेवाड़ी के राजपरिवार में 1825 ई. में जन्मे राव तुलाराम का सारा जीवन अंग्रेजों से संघर्ष करने में ही बीता। उनकी देशभक्ति व वीरता की भावना का कार्य उनकी माताश्री ने किया। उनके उस्ताद गुलाम जिलाना ने राव साहब के हृदय में बचपन से ही विदेशी शासन के प्रति नफरत की भावना पैदा कर दी।

राव तुलाराम के भाई कृष्णाराव ने मेरठ क्रान्ति में बड़े उत्साह से भाग लिया और दिल्ली में बहादुरशाह को सम्राट घोषित् करने में उनकी प्रमुख भूमिका रही। राव तुलाराम ने दिल्ली में बहादुरशाह के शासन को स्थायी एवं मजबूत बनाने के लिए आर्थिक साधन जुटाये। रिवाड़ी में दरबार लगाकर अनाज से भरी गाड़ियाँ सैनिकों के लिए भेजी। दिल्ली के चूड़ीवाले मोहल्ले में बारूद का कारखाना तथा छुछकवास में सैनिकों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना में राव साहब का अद्‌भुत योगदान रहा।

गुड़गाँव जिले को विदेशी शासन से मुक्त कराने का श्रेय भी राव साहब को ही है। रिवाड़ी के निकट नसीबपुर में जनरल शॉबर्स की सेना के कमाण्डर रिचर्ड को बुरी तरह से पराजित किया। 16 नवम्बर, 1857 ई. को इस प्रलयंकारी युद्ध में रिचर्ड को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। कई इतिहासकारों का तो कहना है कि इस युद्ध में एक भी अंग्रेज सैनिक जीवित नहीं बचा।

वायसराय लॉर्ड कैनिंग ने तुलाराम को पकड़वाने के लिए उनके सिर पर इनाम घोषित किया। जब इस पर भी तुलाराम पकड़ में न आए तो छल कपट से काम लेने का गंदा तरीका विदेशी शासन ने अपनाया। अलवर, नाभा तथा जिन्द के राजाओं को तुलाराम के पास भेजा। इन्होंने मित्र बनकर तुलाराम के सैनिक व्यूह का सारा भेद अंग्रेजों को बता दिया। फिर क्या था ? अंग्रेजी सेना ने पुनः राव साहब पर धावा बोल दिया। भीषण युद्ध हुआ। राजा नाहरसिंह, झज्जर के नवाब

के ससुर समद खाँ, मुंशी निजामुद्दीन, कप्तान फतह खाँ, पंडित हरदेव नाना, नूरबख्श सिंह लड़ते-लड़ते वीर गति को प्राप्त हुए। अंग्रेजों ने सारी अहीर जाति को ही बागी घोषित कर दिया, परन्तु राव साहब पकड़ में न आए और महारानी लक्ष्मीबाई के विशेष दूत बनकर ईरान पहुँचे। वहाँ रूस के राजदूत से उनकी भेंट हुई, परन्तु रानी लक्ष्मीबाई के देहान्त की सूचना से उन्हें गहरा धक्का लगा और बीमार पड़ गए। वहीं 23 सितम्बर 1863 को उनके प्राण पखेरु उड़ गए। काबुल में ही उनका राजकीय सम्मान के साथ दाह संस्कार किया गया।

(13) अज्ञात क्रान्तिकारी :

पिछले पृष्ठों में हमने प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के वीर सेनानियों का परिचय प्राप्त किया, परन्तु हमारा स्वतन्त्रता संग्राम एक व्यापक जन-विद्रोह था। इसमें राजा से लेकर रंक ने अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार सहयोग प्रदान किया था। ऐसे स्वतन्त्रता प्रेमियों में मंगल पाण्डे का नाम सर्वप्रथम आता है। वे ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अंग्रेजों के सैनिक अनुशासन को तोड़कर चर्बी लगे कारतूसों का प्रयोग करने से मना किया और अपने सामने खड़े अंग्रेज अफसर को गोली से उड़ा दिया। अन्त में पकड़े गए और फाँसी पर लटका दिए गए। इस तरह से मंगल पाण्डे ने अपनी शाहदत से अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एक जन क्रान्ति को जन्म दिया।

(14) खागा के जमींदार दरियावसिंह :

स्वतन्त्रता के महान् यज्ञ में अवध के जमींदारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमें खागा के जमींदार दरियावसिंह की शाहदत विशेष उल्लेखनीय है। जब जनरल रिचर्ड ने फतेहपुर की ओर से खागा पर धावा बोला जो दरियावसिंह ने अपने पुत्र के साथ अंग्रेजी सेना का डट कर मुकाबला किया और जनरल रिचर्ड की सेना को पीछे धकेल दिया, परन्तु कुछ समय बाद दरियावसिंह के आदमियों को अंग्रेजों ने अपनी ओर मिला लिया और धोखे से खागा पर आक्रमण किया। दरियावसिंह युद्ध करते हुए पकड़े गए और उन्हें जेल में डाल दिया गया। एक ब्रिगेडियर करथ्यु ने उनको कहा— 'दरियाव यदि तुम अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर लो तो तुम्हें जीवन दान दिया जा सकता है। इस पर स्वतन्त्रता के अनन्य पुजारी दरियावसिंह ने कहा—"मैं मरते दम तक अंग्रेजों की गुलामी स्वीकार नहीं करूँगा।"

इसके बाद तो जेल में उनको भीषण यातनाएँ दी गई। उनके पुत्र सुजानसिंह को उनकी आँखों के सामने फाँसी पर लटकाया गया। अन्त में 6 मार्च 1858 ई. को आततायी ब्रिटिश शासन ने उन्हें भी फाँसी दे दी। इस तरह खागा जमींदार ने अपनी तथा अपने परिजनों की शहादत से स्वातंत्र्य समर में अपना नाम अमर कर लिया।

(15) बहुआ के मेहतर की बहादुरी :

बहुआ का यह बलिदानी मेहतर अंग्रेजी रिसाले में सफाई का काम करता था। वहीं पर उसने सैनिक बैण्ड की तरह की धुन बजाना सिख लिया था। जब अवध में क्रान्ति का जोर बढ़ा तो वह खागा के जमींदार दरियावसिंह के खेमे में आ गया। जब खागा को अंग्रेजी सेना ने घेर लिया तो उसने एक ऐसी धुन बजाई कि अंग्रेजी सेना तितर-बितर हो गई और दरियावसिंह अपनी सेना सहित अंग्रेजी घेरे से निकल सकने में सफल हो गए, परन्तु बहुआ का मेहतर पकड़ा गया। पूछताछ में उसने बताया कि जब वह अंग्रेजी रिसाले में था तब ही उसने सैनिक विसर्जन की धुन सीख ली थी। अन्त में उसे फाँसी दी गई। इस तरह से बहुआ के मेहतर ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राण दे दिए।

(16) देशभक्त खलासी :

ब्रिटिश सैनिक कैम्पों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने के लिए अनेक भारतीय मजदूर रखने पड़ते थे, परन्तु फुर्सत के समय सैनिक अधिकारी उनसे अन्य काम भी ले लिया करते थे। जब अंग्रेजी फौज अवध के मोर्चे पर गई तो इन मजदूरों से तंबू लगाने के साथ-साथ बन्दूक की टोपियों में बारूद भरने का काम भी लिया जाने लगा, परन्तु उनका हृदय देश प्रेम से शून्य नहीं था। जब देश की आजादी के लिए लोग हँसते-हँसते अपने प्राणों की बलि चढ़ा रहे थे तो वे आजादी के रास्ते के रोडे कैसे बन सकते थे। अत: उन्होंने बन्दूक की टोपियों में बारूद के स्थान पर शीशा तथा पत्थर का चूरा भरना शुरू कर दिया।

लखनऊ मोर्चे पर जब अंग्रेज गए तो उन्होंने देखा कि बन्दूकें काम नहीं कर रहीं हैं। पता लगाने पर विदित हुआ कि उनमें बारूद के स्थान पर शीशे का चूरा भरा हुआ है। तुरन्त ही खलासी पकड़े गए। पूछताछ करने पर वे सकपकाये नहीं और न ही अपने किए पर दु:ख प्रकट किया। बहुत ही निर्भीकता से उन्होंने इस बात को मंजूर किया कि हमने ही बारूद के स्थान पर शीशे का चूरा भरा है। अन्त में उन्हें फाँसी दे दी गई। इस तरह से मजदूरों ने भी देश के लिए बलिदान देने में कमी नहीं रखीं।

(17) वारिस अली व पीर अली की शहादत :

बिहार में तिरहुत के पुलिस जमादार वारिस अली ने अपने देश प्रेम का पूरा परिचय दिया। सरकारी नौकरी में होते हुए भी वे क्रान्तिकारियों की पूरी मदद करते थे। एक बार इनके पास पटना के क्रान्तिकारी अली करीम का पत्र मिला। इस पत्र के आधार पर ही कर्नल मेरोज टेलर ने वारिस अली को जेल में डाल दिया और राजद्रोह के अपराध में फाँसी पर लटका दिया। इस तरह से वारिस

अली पटना जेल में देश के लिए शहीद हो गए। अंग्रेजों ने क्रान्तिकारी अली करीम को पकड़ने का भी खूब प्रयास किया, परन्तु वे कभी हाथ में नहीं आये।

इसी तरह पीर अली भी अंग्रेजी सैनिक टुकड़ियों पर हमला करने के कारण पकड़े गए। पीर अली मूल रूप से लखनऊ के रहने वाले थे, परन्तु 1857 ई. की क्रान्ति के पूर्व ही पटना में पुस्तक विक्रेता का काम करने लगे थे। आपकी दूकान में क्रान्तिकारी साहित्य भरा रहता था।

जब पटना के कमिश्नर टेलर तथा दानापुर के कमाण्डर मेजर जनरल लायड ने पटना निवासियों पर अनेक अत्याचार करना शुरू किया तो पीर अली से देखा नहीं गया और उन्होंने 200 क्रान्तिकारी एकत्रित कर लायड की सैनिक टुकड़ी पर धावा बोल दिया और लायड को अपनी गोली का निशाना बना लिया। इसके बाद रेट्रे बड़ी सैनिक टुकड़ी लेकर पीर अली को पकड़ने चल पड़े। शस्त्रों की कमी के कारण क्रान्तिकारी अधिक देर तक मोर्चा न ले सके। पीर अली पकड़े गए और उन्हें फाँसी दे दी गई।

(18) नरपतसिंह की बहादुरी :

लखनऊ क्रान्तिकारियों के हाथ से निकल जाने के बाद भी अवध के अनेक जमींदारों ने हथियार नहीं डाले। अवध गजेटियर में उल्लेख है कि 'रुइयागढ़ी' (हरदोई जिला) के जमींदार नरपतसिंह ने जगह-जगह पर ब्रिटिश सेना से लोहा लिया। अंग्रेज कमाण्डर वालपोल लखनऊ रेजीडेन्सी से फौज लेकर जब बरेली की ओर बढ़ा तो रुइयागढ़ी के नरपतसिंह ने रास्ते में उससे मोर्चा लिया और चार सैनिक अधिकारी एवं 102 गोरे सैनिकों का काम तमाम कर दिया। इसके बाद वालपोल ने रुइयागढ़ी पर धावा बोला, परन्तु नरपत सिंह व उसके क्रान्तिकारी सैनिकों ने पास के वृक्षों में छिप कर वालपोल की सेना पर जो आक्रमण किया उससे उसे छठी का दूध याद आ गया, फलतः वालपोल को पीछे हटना पड़ा। इसके बाद नरपतसिंह अपने साथियों सहित रुइयागढ़ी से निकलने में सफल हो गए और नाना साहब के पास नेपाल की तराई की ओर चले गए। उनके अज्ञातवास के बारे में इतिहास मौन है, परन्तु उनके शौर्य की अमर गाथा आज भी अवध गजेटियर में अमर है।

(19) बलिदानों की होड़ :

अंग्रेज सेनापति जी.बी. मैलसन ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन म्युटिनी' के दूसरे भाग पृष्ठ 470 पर क्रान्ति में आम जनता के बलिदान के संस्मरण लिखे हैं। उनमें से एक दो यहाँ दिए जाते हैं। जब इटावा पर पुनः अधिकार करने के लिए ब्रिटिश फौज वहाँ पहुँची तो शहर के अधिकांश लोग

शहर खाली कर चुके थे, परन्तु एक घर में देशी बन्दूकों को लिए कुछ लोग जमे रहे। अंग्रेजों के पास बढ़िया रायफलें व तोपखाना था, लेकिन इन देशभक्तों ने बिना अंग्रेजों की ताकत का ख्याल किए तीन घंटे तक लोहा लिया। उन्हें आत्म समर्पण के लिए ललकारा गया, परन्तु वे तनिक भी विचलित न हुए। अन्त में अंग्रेजी फौज ने उस मकान को बारूदी सुरंग से उड़ा दिया। मकान में स्थित सभी रणबांकुरे वहीं शहीद हो गए।

ब्रिटिश सेना के फील्ड मार्शल रॉबर्ट्स ने अपनी पुस्तक 'फोर्टी वन इयर्स इन इण्डिया' में पृ. 65 पर लिखा है कि "एक मकान में जब जबरन घुसे तो क्या देखते हैं कि एक माँ गोली से घायल अपने एक लड़के के दवा लगा रही थी। उसका एक भतीजा शहीद अवस्था में पास ही पड़ा था। इन संस्मरणों से स्पष्ट विदित होता है कि आजादी की वेदी पर बलिदान होने की कितनी होड़ लगी हुई थी।" इसी तरह अंग्रेज सेनापति डफ ने अपनी संस्मरणात्मक पुस्तक "ओल्ड मैमोरीज" के पृ. 29 व 30 पर लिखा है—"कानपुर से लखनऊ तक जितने भी गाँव पड़े अंग्रेजी सेना उनमें आग लगाती हुई आगे बढ़ती जा रही थी। इसी बीच एक गाँव में से एक बैरागी साधू लाठी लेकर मेरे पर झपटा और कहा कि हम भी मारेगा सुअर और हम से जूझ पड़ा और गाँव में आग न लगाने दी।" क्या ही अनुपम साहस का उदाहरण है कि बैरागी की लाठी ने अंग्रेजों की पाशविकता का सीधा मुकाबला किया।

(20) आंध्र का शहीद बालक :

दक्षिण भारत में उत्तर भारत जैसी संगठित क्रान्ति नहीं हुई, परन्तु देशभक्ति व अंग्रेजों से घृणा का रंग वहाँ भी चढ़ा हुआ था। ऐसी ही एक घटना का पता मेरोज टेलर की पुस्तक 'स्टोरी ऑफ माइ लाइफ' से लगता है। उनके अनुसार आंध्र में एक छोटी सी रियासत थी जंगपुर, वहाँ का राजा निरा बालक था। आयु होगी करीब 10 वर्ष। कर्नल टेलर उनको अंग्रेजी पढ़ा दिया करते थे। प्रेम से वह टेलर को अप्पा कहा करता था, परन्तु अंग्रेजी शासन की बुरी पद्धति से उसे घृणा थी। 1857 की क्रान्ति की आग अभी शांत नहीं हुई थी। 1858 का वर्ष शुरू हुआ ही था कि उसने अपने राज्य में क्रान्तिकारी सेना का संगठन कर लिया और अंग्रेजी ठिकानों पर छापा मारने लगा। अंग्रेज अधिकारी उससे बहुत चिढ़ गए। दुर्भाग्यवश बालक एक दिन निजाम तथा उसके मंत्री सालारजंग के जाल में फंस गया। दोनों अंग्रेजों से मिले हुए थे। अतः अंग्रेजों को खुश करने के लिए सालार जंग ने उसे अंग्रेजों को सौंप दिया।

जैसा कि होना था, वह देशभक्त, अंग्रेजों के दमन का शिकार बना। उसे अपने साथियों का नाम बताने के लिए बुरी तरह से सताया गया, परन्तु धन्य है,

वह वीर बालक जिसने अपने जीवन की कीमत पर भी किसी प्रकार का भेद नहीं दिया। अंग्रेजों ने उसे काले पानी की सजा दी, परन्तु अण्डमान निकोबार जाने के पहले ही उसने अपनी पिस्तोल से ही अपने आपको शहीद कर देशभक्तों की शृंखला में अपना नाम जुड़ा लिया।

(20) वीरांगना अजीजन :

यों तो हमारा स्वतन्त्रता संग्राम वीरांगनाओं के बलिदान से भरा पड़ा है, परन्तु इनमें कानपुर की तवायफ (रण्डी) अजीजन का शौर्य व बलिदान भी कम महत्त्व नहीं रखता है। इस वीरांगना ने मर्दाना वेश धारण कर स्वतन्त्रता संग्राम में अंग्रेजों से खुलकर लोहा लिया। वाटसन तथा हैरी जैसे अंग्रेज सेनापतियों के दाँत उसी ने खट्टे किए। पंडित सुन्दरलाल ने अपनी पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज्य' में अजीजन की शौर्य गाथा का सुन्दर वर्णन किया है। कानपुर में महिला फौज का संगठन कर इसने अंग्रेजों से छापामार युद्ध किया था।



कानपुर पर अंग्रेजों का अधिकार होने के बाद भी क्रान्तिकारी आस-पास के जंगलों में छिप गए और मौका पाकर आए दिन अंग्रेजी सेना पर टूट पड़ते थे। अंग्रेजों ने इन छापामार क्रान्तिकारियों का सफाया करने के लिए अपनी सैनिक टुकड़ियाँ भेजी। एक टुकड़ी की जिसमें वाटसन व हेरी थे, जंगल में अजीजन से मुठभेड़ हो गई। बड़ी कठिनाई से वह पकड़ में आई और अंग्रेज सेनापति हेवलाक के सामने पेश की गई। हेवलाक अजीजन के रूप पर मुग्ध हो गया और कहा कि यदि तुम हमसे माफी माँग लो और अपने किए पर दु:ख प्रकट कर दो, तो हम तुमको जीवनदान दे सकते हैं। बस इतना सुनना था कि अजीजन गरज कर बोली ''मैंने कोई गलत काम नहीं किया। अपने देश की आजादी के लिए लड़ना और लुटेरों को देश से बाहर निकालने का प्रयास करना, कोई अपराध नहीं है। अपराध तो आप लोगों का है कि आपने हमारी भोली-भाली जनता का शोषण किया है।

देश की अस्मत व स्वाधीनता पर डाका डालना क्या कम अपराध है ? मेरे खुद के माता-पिता व भाई जीवित अग्नि में भेंट चढ़ा दिए गए हैं। गाँव के गाँव जला दिए गए। ऐसे राक्षसों से युद्ध करना भारत के हर इंसान का फर्ज है।''

अजीजन की बात सुनकर जनरल हेवलाक आपे से बाहर हो गया और पास में खड़े कमाण्डर को अजीजन के गोली मारने का आदेश दे दिया। ''हिन्दुस्तान जिन्दाबाद, नाना साहब की जय कहते हुए उस देशभक्त वीरांगना ने हमेशा के लिए अपनी आँख बन्द कर ली।'' परन्तु जोर जुल्म से भिड़ने की नई शक्ति देश को दे गई। आज भी उसकी शौर्य गाथा कानों में गूँजती है।

''चपला-सी करती चकाचौंध, कटि में बाँध कटार रही,
जो लोग भागने लगते थे, रण्डी उनको ललकार रही।
सन् सत्तावन की आँधी में, तूफान उड़ाया रण्डी ने।
बुजदिल डरपोक जवानों को बलवान बनाया रण्डी ने।
यह कानपुर का था कमाल, नाना का ऊँचा नाम जहाँ।
क्या कम नहीं इस तिरस्कृत नारी का इस मुक्ति युद्ध में काम यहाँ।
जल रही आग जल रहे पथिक, पूरी आहूति पगदंडी की।
हर मंजिल के हर पत्थर पर, जय लिखी अजीजन रण्डी की।

इन घटनाओं से स्पष्ट है कि प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में महिलाओं की कुरबानी किसी कदर कम नहीं थी। अनेक साधारण महिलाएँ मातृभूमि की बलिवेदी पर चढ़ गईं। अकेले मुजफ्फरनगर के आस-पास के गाँवों की 255 नारियों को अंग्रेजों ने गोली से उड़ा दिया। इन वीरांगनाओं के बलिदानों की इतनी लम्बी शृंखला है कि इन पर एक स्वतंत्र पुस्तक भी कम रहेगी। महारानी लक्ष्मीबाई की भाँति ही, केली जाति की वीरांगना झल्लारी ने 1857 की क्रांति में अपनी अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन किया और अंतिम दम तक वह अंग्रेज सैनिकों से लोहा लेती रही।

□□

इकाई 3

जन आन्दोलन की शृंखला

कम्पनी शासन ने प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम तथा उसके बाद जो नृशंस अत्याचार किए उससे भारत के लोगों में अंग्रेजी शासन के प्रति गहरी घृणा फैल गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का बदनाम शासन समाप्त हुआ, उसके स्थान पर भारत में ब्रिटिश ताज के अधीन नयी शासन व्यवस्था का सूत्रपात हुआ। महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र के द्वारा अनेक रियायतों तथा सुविधाओं की घोषणा की गई, परन्तु विक्टोरिया घोषणा का लाभ केवल सामंतों, बड़े जमींदारों को ही हुआ। आम मजदूर तथा किसान की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। बल्कि वह पहले से अधिक शोषण का शिकार बना। भारत में नया ब्रिटिश शासन शोषक वर्गों का हिमायती ही बना रहा।

अब सामंतों, साहूकारों तथा सूदखोरों ने किसान तथा मजदूर की कमाई पर हाथ साफ करना शुरू कर दिया। शासन ने इस प्रकार की नीति का श्रीगणेश किया जिसका उद्देश्य सामन्त, राजा महाराजा तथा बड़े जमींदारों के साथ अपने गठजोड़ को मजबूत करना था। इस गठजोड़ से भारत में राष्ट्रीय हितों को बड़ी क्षति पहुँची। अब भारत में स्पष्ट रूप से दो वर्ग हो गए थे— एक वर्ग सामंतों, जमींदारों तथा पूँजीपतियों का था, जो अंग्रेजी शासन का पोषक था। दूसरा वर्ग पद दलित किसान तथा शोषित मजदूर का था। इस तरह से नये अंग्रेजी शासन ने भी भारत में फूट डालो और राज करो की नीति का ही अनुसरण किया।

नयी कृषि नीति तथा भूमि सुधार कानून जमींदार तथा सामन्तों के हितों की रक्षा करने के लिए ही बनाए गए। किसान को यह अधिकार दिया गया कि वह अपनी भूमि ऋण लेने के लिए रहन रख सकता है। इसका परिणाम यह निकला कि साहूकारों ने किसानों की भूमि हथियाना शुरू कर दिया। अनेक प्रान्तों में 40 से 45 प्रतिशत तक की कृषि भूमि महाजन सूदखोर साहूकारों के हाथ में चली गई। किसान ऋण भार से बुरी तरह दबने लगा। वह अब भूमि का स्वामी न रहकर मजदूर मात्र रह गया। जमींदार उससे मनमाना लगान वसूल करता था तथा

उससे बेगार (बिना मजदूरी दिए काम लेना) लेने लगा। इन सभी बातों के कारण किसानों में गहरा असन्तोष फैलने लगा।

भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के पीछे मूल उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना था। भारत का समस्त कच्चा माल इंग्लैण्ड ले ज़ाया जाता था तथा वहाँ से लंकाशायर तथा मैनचेस्टर का तैयार माल भारत में बेचा जाने लगा। इसके लिए सरकार ने आयात माल पर शुल्क बहुत कम कर दिया जिससे इंग्लैण्ड में बना माल भारत में बने माल से सस्ता बिक सके। इस तरह से भारत का आर्थिक शोषण पहले से अधिक तेज हो गया। अंग्रेजी शासन की सहायता से भारत में नये पूँजीपति वर्ग का जन्म हुआ जो गरीब किसान तथा मजदूरों का शोषण करने लगा। कार्ल मार्क्स ने 1881 के पत्र में लिखा है कि "प्रतिवर्ष 6 करोड़ भारतीयों की कुल आय से भी अधिक धन इंग्लैण्ड पहुँचता था। यह तो खून निचोड़ने वाली बात है जो बहुत ही हृदय विदारक है। दुर्भिक्ष पीड़ित जनता से भी धन बटोरने में जमींदार तथा ब्रिटिश शासन अनेक प्रकार के अत्याचार करता था। ऐसी स्थिति में जन आक्रोश भड़कना स्वाभाविक था। इस सम्बन्ध में बड़ा विस्फोट बंगाल का नील विद्रोह था जिसने अंग्रेजी शासन की नींव ही हिला दी थी।"

बंगाल का नील विद्रोह (1859-62 ई.) :

नील का उत्पादन करने वाले लघु उद्यमों के ब्रिटिश मालिक जमींदारों से अनेक वर्षों की अवधि के लिए रैयतों (किसानों) से लगान वसूल करने का अधिकार खरीद लेते थे और फिर किसानों को नील की खेती करने के लिए विवश करते थे। किसानों को अपनी सारी फसल इन बागान मालिकों को ऊपर से जबरदस्ती थोपी हुई कीमतों पर बेचनी पड़ती थी। इस तरह से ब्रिटिश-बागान मालिकों ने गाँवों में नादिरशाही चला रखी थी। किसान बागान मालिकों के इतने ऋण ग्रस्त हो गए थे कि उनके पास पेट भरने के लिए भी कुछ नहीं बचता था।

बागान मालिकों की नादिरशाही के विरुद्ध बंगाल के अनेक गाँवों में विद्रोह भड़क उठा। जबरी ठेका प्रणाली के विरोध में किसानों ने नील की खेती करना ही बन्द कर दिया और बागान मालिकों को पुराने कर्जों को चुकाने से साफ मना कर दिया। सरकारी सहायता से बागान मालिकों ने किसानों को दबाने के लिए भारी बल प्रयोग किया, परन्तु इस दमन चक्र से आन्दोलन और अधिक तेज हो गया। बागान मालिकों की कोठियों पर हमले होने लगे।

आन्दोलन की व्यापकता तथा भीषणता से औपनिवेशिक शासन काँपने लगा। कलकत्ता रिव्यू नामक तत्कालीन पत्र में इस आन्दोलन का सजीव वर्णन मिलता है— "वह रैयत, जिन्हें हम रूसी दासों की तरह समझते रहे हैं और जिनके लिए हम यह मानते रहे हैं कि जमींदारों के औजार हैं, वे आज आखिर में

विद्रोह कर बैठे हैं। आज सारे निम्नस्थ बंगाल में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो रही है।" सरकार ने विद्रोह के महत्त्व को समझ कर एक जाँच समिति की स्थापना की जिसकी सिफारिश पर जबरदस्ती ठेका प्रणाली को बन्द कर दिया गया। वास्तव में यह पेशेवर किसानों की भारी विजय थी। अनेक बागान-मालिकों को आन्दोलन ग्रस्त क्षेत्रों में अपना काम धन्धा बंद करना पड़ा। किसानों को शोषण से मुक्ति मिली।

इस किसान आन्दोलन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि किसानों के हितों की रक्षा के लिए रैयत सभा नामक संस्था का निर्माण हुआ। इस सभा के नेतृत्व में ही 1872-73 ई. में बंगाल के पबना तथा बोगड़ा जिलों में राजस्व कर वृद्धि के कारण जमींदारों के विरोध में भीषण किसान आन्दोलन चल पड़ा। किसानों ने सामंतों द्वारा बढ़ाये गए करों को देना बन्द कर दिया। सामन्तों की कोठियों को लूटा गया। सरकार ने विद्रोही संघों द्वारा संचालित पबना तथा बोगड़ा किसान आन्दोलन को बहुत ही निर्ममतापूर्वक कुचल तो दिया, परन्तु किसानों की स्थिति को सुधारने के लिए सरकार को एक कमीशन बिठाना पड़ा। इस कमीशन के सुझाव के अनुसार किसानों को राहत देने के लिए 1879 ई. में एक कानून बनाया गया, जिसके अनुसार भूमिकर हटाया गया और किसानों के लिए ऋण तथा कर न देने पर दी जाने वाली दीवानी कैद उठा दी गई। भविष्य में भी किसान अपने हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन का सहारा लेने लगे और बंगाल के समान ही दक्षिण भारत में किसानों ने अपने हितों की रक्षा के लिए बल प्रयोग का सहारा लिया।

दक्षिण भारत में जन आन्दोलन

महाराष्ट्र एक ऐसा प्रदेश था, जहाँ किसानों को अपनी जमीनों से बेदखल (वंचित) किया जा रहा था और ये जमीनें तेजी से महाजनों के कब्जे में जा रही थीं, क्योंकि कृषि जन्य वस्तुओं में उद्योग तथा व्यापार से अधिक लाभ नजर आ रहा था। अत: किसानों की जमीन महाजन हड़पने लगे। किसान साहूकारों के ऋणभार से दबे जा रहे थे। इस प्रकार महाराष्ट्र में किसान आन्दोलन मुख्य रूप से सूदखोर महाजनों के खिलाफ था।

किसान महाजनों की बहियों को छीन कर नष्ट कर देते थे तथा उनको अपने गाँवों से खदेड़ देते थे। 1873 से 1875 ई. में महाराष्ट्र के सभी जिलों में सशस्त्र किसान दल सक्रिय हो गए। इनमें सबसे बड़ा दल किसान नेता कंगलिया का था। किसान इसे 'कर्जदारों का मित्र' कहते थे। इसी तरह से रामेशी जाति के किसानों ने भी जमींदार तथा महाजनों के शोषण के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह खड़ा कर दिया। इसका नेतृत्व करने वाले वासुदेव बलवन्त फड़के थे जिन्होंने न केवल

किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया वरन् ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह का संचालन किया। 1857 ई. की सशस्त्र क्रान्ति के बाद वे पहले क्रान्तिकारी थे जिन्होंने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध बन्दूक उठाई थी। उनका हृदय देश प्रेम से परिपूर्ण था। इस वीरात्मा का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

क्रान्तिकारी वासुदेव बलवन्त फड़के



जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि 1857 की क्रान्ति के बाद वे पहले क्रान्तिकारी थे जिन्होंने भारत से अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र विद्रोह का नेतृत्व किया था।

इस महान् क्रान्तिकारी देशभक्त का जन्म 4 नवम्बर, 1845 ई. को शिरढोणा गाँव में बलवन्त राव के घर हुआ था। इनकी माता का नाम सरस्वती बाई था। वासुदेव के पितामह अनन्तराव कर्नाला के किलेदार थे। 1818 ई. में अंग्रेजों ने इस पर अधिकार करना चाहा, परन्तु अनन्तराव ने इसका डटकर विरोध किया और तीन दिन तक अंग्रेजों से लोहा लेते रहे। अन्त में अंग्रेजों ने किला जबरदस्ती छीन लिया। 1857 ई. की क्रान्ति में वासुदेव के पिता बलवन्त राव ने अंग्रेजों का विरोध किया था। उस समय हमारे चरित्र नायक वासुदेव की आयु केवल 12 वर्ष की थी जो मराठी पढ़ रहा था, क्योंकि अंग्रेजों से घृणा के कारण उनके पिता उन्हें अंग्रेजी नहीं पढ़ने देते थे। निरन्तर संघर्ष से परिवार की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल थी। अत: इनके पिता को गाँव छोड़कर बम्बई आना पड़ा। पहले कल्याण में तथा बाद में बम्बई तथा पूना की स्कूल में वासुदेव ने दो वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। अब वे 15 वर्ष के हो चले थे। इसी वर्ष इनका विवाह मूलताई नामक कन्या से हो गया।

जीवन यात्रा : प्रारम्भ में वासुदेव ने बम्बई की जी.आई. रेलवे दफ्तर में नौकरी की। कुछ समय बाद पूना के फायनेन्स कमसरियर आफिस में काम किया। तेरह साल बाद जब वासुदेव 28 वर्ष के थे उनकी पत्नी मूलताई का देहान्त हो गया। अगले ही वर्ष उनका विवाह बाई साहब फड़के से हो गया। इसी बीच इनकी माता अपने गाँव शिरढोणा में बीमार पड़ी। वासुदेव को माँ की सेवा सुश्रुषा

के लिए छुट्टी नहीं मिली अतः वे बिना छुट्टी के ही घर चल पड़े। वहाँ पहुँचने पर उनकी माता जीवित न मिली। फिर क्या था ? वासुदेव के मन में गुलामी के अभिशाप की अनुभूति हुई और उन्होंने नौकरी छोड़ दी और रचनात्मक कार्य में लग गए।

उन दिनों महाराष्ट्र में महादेव गोविन्द रानाडे ने सार्वजनिक सभा के माध्यम से पूना में राजनीतिक जागरण का वातावरण तैयार कर दिया। वासुदेव भी इस सार्वजनिक सभा में भाग लेने लगे। वहाँ पर उन्होंने स्वदेशी वस्तु तथा राष्ट्रीय व्यापार पर रानाडे के दो भाषण सुने। वासुदेव पर इन भाषणों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वे स्वेदशी वस्तुओं के प्रचार में लग गए।

अंग्रेजी शासन से घृणा : उस समय भारत में ब्रिटिश-शासन का दमनचक्र चरम सीमा पर था। लॉर्ड लिटन भारतीयों पर अनेक प्रकार का प्रतिबन्ध लगा रहा था। उसी ने आर्म्स एक्ट पास कराया जिसके अनुसार कोई भी भारतीय बिना लाइसेन्स के शस्त्र नहीं रख सकता था। इसी के समय में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट के माध्यम से भारतीयों की वाणी तथा लेखन पर प्रतिबन्ध लग गया।

1876-78 में बम्बई प्रान्त में भयंकर अकाल पड़ा। लगभग 50 लाख आदमी भूख से तड़प-तड़प कर मर गए। इस पर भी वायसराय लॉर्ड लिटन जमींदारों, ताल्लुकेदारों तथा राजाओं को उपाधियाँ बाँट रहे थे। यही नहीं भारतीयों के दुःखी दिलों पर नमक छिड़कने के लिए लिटन ने 1877 ई. में दिल्ली में एक शानदार दरबार लगाया जिसमें महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया गया। इस दरबार में भारी मात्रा में धन खर्च किया गया।

देशभक्त वासुदेव से यह सब नहीं देखा गया तथा किसान मजदूरों पर हो रहे अत्याचारों को उसने अपनी आँखों से देखा था। अतः उन्होंने दुःखी होकर अपनी डायरी में लिखा— "भारत में क्या हिन्दू, क्या मुसलमान दोनों ही भूखे मरते जा रहे हैं। कंगाल होकर भीख माँगने को विवश हो रहे हैं। इस हालत में जीने से मर जाना अच्छा है। गोरों की गुलामी का जीवन सबसे बदतर है। यदि 25 बहादुर लोग भी घर छोड़ कर देश के लिए आगे खड़े हों तो इन अंग्रेजों का नाश किया जा सकता है।"

स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष : अंग्रेजी शासन के दमनचक्र को देखकर वासुदेव ने प्रतिज्ञा की कि "जब तक देश स्वतंत्र नहीं होता, माथे पर चन्दन नहीं लगाऊँगा। सिर तथा दाढ़ी के बाल भी नहीं बनवाऊँगा।"

अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए उसने पूरे महाराष्ट्र का दौरा किया। जगह-जगह उसने युवकों के लिए अखाड़े खोले। स्वयं भी पूना में अखाड़ा चलाने

लगे। इसमें पट्टेबाजी तथा शस्त्र विद्या सिखाई जाती थी। स्वयं बाल गंगाधर तिलक भी फड़के के अखाड़े में जाते थे।

वासुदेव फड़के गृहस्थी छोड़कर देश की आजादी के लिए युवकों की एक फौज एकत्रित करने में रात दिन जुट गए। वे कहा करते थे कि "मेरे पास सिर्फ दो सौ बहादुर युवक और पाँच हजार रुपये हों तो सारे देश में क्रान्ति का शंख फूँक दूँगा।" उसने अपनी डायरी में लिखा— "आओ, हे तरुण-वीर। देश का दारुण दुःख दूर करो।"

वासुदेव के आह्वान पर एक खासी फौज तो तैयार हो गई, परन्तु उसके लिए शस्त्र तथा धन की आवश्यकता पड़ी। पहले तो उसने देश के समृद्ध लोगों से कहा— "आप देश की आजादी की लड़ाई में यथाशक्ति आर्थिक सहायता दें। ऐसे भी तो आप अंग्रेजी सरकार को कर देते हैं। हमें जो आप पैसा देंगे उसे हम स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही चुका देंगे।" परन्तु उस समय अमीर लोगों में राजनीतिक चेतना कहाँ थी ? ब्रिटिश शासन के भय से देशभक्त की आवाज पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया।

विवश होकर वासुदेव को धन प्राप्ति के लिए दूसरे साधन ढूँढ़ने पड़े। इसके लिए वह रामोशी आदिवासी कबीलों के पास गया और उनसे देश के लिए कुछ करने के लिए कहा। रामोशी कबीले शुरू से स्वतन्त्रता प्रिय रहे हैं और वे अंग्रेजी सरकार से चिढ़े हुए थे। पूना जिले में इनकी संख्या काफी थी। किसी समय ये मराठा सेना के वीर रणबांकुरे थे। युद्ध में पीठ दिखाना तो वे जानते ही नहीं थे। अतः यह वीर जाति तन मन धन से फड़के के साथ हो गयी।

सहयाद्रि की पहाड़ियों से लेकर पश्चिमी घाट तक उसके दल के लोगों की धाक जम गई। वासुदेव ने पूना जिले में 45 गाँवों का दौरा किया और उन्होंने पीड़ित किसानों को मुक्ति का रास्ता बताया। उसके निर्देश से साहूकारों से बहियाँ छीन ली गई और उन्हें नष्ट कर दिया गया। अंग्रेजों को लगान न देने के निर्देश दिए गए। फलस्वरूप इस जिले के 67 गाँव बागी हो गए। वासुदेव फड़के के इस शोषण मुक्ति संघर्ष में रामोशी आदिवासियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी सहायता से धनी सेठों के यहाँ अनेक स्थानों पर डाके डाले गए। इस प्रकार एकत्रित धन से शस्त्र खरीदे गए। कोंकण से एक लाख रुपये डाका डाल कर प्राप्त किए गए। ब्रिटिश सरकार फड़के के इस स्वतन्त्रता अभियान से भयभीत हो गई और सरकार को विवश होकर दक्षिण किसान राहत अधिनियम (दक्कन एग्रीकल्चरिस्ट रिलीफ एक्ट) पास करना पड़ा। इसके अनुसार साहूकार मनमाने ढंग से किसान की जमीन नहीं हड़प सकते थे।

आजादी की लड़ाई : देशभक्त वासुदेव का अन्तिम उद्देश्य तो अंग्रेजों को भारत से खदेड़ना था। अत: 1879 ई. की शिवरात्रि के पर्व के दिन फरवरी माह में उसकी सेना ने धामरी गाँव पर धावा बोल दिया और उस पर अधिकार कर लिया। सरकार स्वतन्त्रता के इस अभियान से भयभीत हो गई और बम्बई क्षेत्र के गाँवों में रह रहे सभी अंग्रेजों को पूना में एकत्रित कर लिया। इस पर फड़के ने प्रतिज्ञा की कि "पूना में एकत्रित किए गए गोरों को चैन से नहीं रहने दूँगा।" अत: उसने पेशवा के महलों में लगने वाली सरकारी कचहरियों पर धावा बोल दिया। कचहरी में आग लगा दी गई। सारा सरकारी रेकार्ड राख बन गया। अंग्रेज अब वासुदेव फड़के के नाम से काँपने लगे। लन्दन तक वासुदेव के नाम की धाक जम गई। लंदन टाइम्स में इस पर संपादकीय लिखे गए और ब्रिटिश संसद में भी पूना काण्ड की गूँज हुई।

वासुदेव ने अपना स्वतन्त्रता अभियान और भी अधिक तेज कर दिया। रुहेल तथा पठान सैनिक भर्ती किए गए। उसका उद्देश्य समस्त भारत में इसी तरह का युद्ध छेड़ना था, परन्तु इसी बीच उसके दो महान् साथी विश्वासराव डावरे और दौलतराय आजादी की लड़ाई में शहीद हो गए। डावरे को तो अंग्रेजों ने पकड़ कर पूना में जिन्दा जला दिया। वास्तव में आजादी के दीवाने इसी तरह अपने प्राणों की बलि देते हैं। वासुदेव को पकड़ने के लिए भी अथक् प्रयास किए गए। वे अपने दल सहित सहयाद्रि के पहाड़ों में रहते थे और छापामार युद्ध प्रणाली से अंग्रेजों को नाकों चने चबा रहे थे। अनेक अंग्रेज अफसर उन्हें पकड़ने के लिए गए, परन्तु उनमें से शायद ही कोई जिन्दा लौटा हो।

अब ब्रिटिश सरकार ने फड़के तथा उसके दल को नष्ट करने के लिए अथक् प्रयास किया। मेजर डेनियल डेढ़ हजार गोरे व हिन्दुस्तानी फौज लेकर 20 जुलाई को देवर गाँव पहुँचा। वहाँ पर फड़के रुग्णावस्था में शांति से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे, परन्तु फड़के आसानी से अंग्रेजों के चंगुल में फँसने वाले नहीं थे। अत: वे भी देवर गाँव से चल पड़े। उस समय वे ज्वर से पीड़ित थे। विश्राम के लिए कुछ रुके ही थे और गहरी नींद में सोये हुए थे। डेनियल ने सोते सिंह को बेड़ियों में जकड़ दिया और उसे पूना भेज दिया गया। वहाँ पर उन पर नाम मात्र का मुकदमा लगाकर न्यायाधीश ने 7 नवम्बर, 1879 ई. को उन्हें काले पानी की आजन्म कारावास की सजा सुनाई।

महाप्रयाण : अंग्रेज वासुदेव बलवन्त फड़के से इतने भयभीत थे कि उसको भारतीय जेल अण्डमान टापू में रखना उचित नहीं समझा गया। अत: बम्बई के गवर्नर सर रिचर्ड टेम्पल ने भारत माँ के इस सच्चे सपूत को भारत से बहुत दूर

अदन के किले में भेज दिया। वहीं पर 1883 ई. की 17 फरवरी को संध्या को 4 बजकर 20 मिनट पर स्वतन्त्रता के इस महान् पुजारी ने इस जगत से केवल 38 वर्ष की अवस्था में ही महाप्रयाण कर लिया। वहीं पर उन्हें दफना दिया गया, क्योंकि अदन में शवदाह निषेध था। मरने के बाद भी ब्रिटिश शासन उस नर शार्दुल से इतना भयभीत था कि पूरे एक माह तक उसकी मृत्यु को दबाये रखा गया ताकि कहीं पुन: विद्रोह न फैल जाए।

वासुदेव बलवन्त फड़के मर कर भी अमर हो गए। भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में उनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। 1857 ई. की क्रान्ति के बाद वह पहला देशभक्त था जिसने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति का बीड़ा उठाया। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शोषण के विरुद्ध व्यापक किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया। एक तरह से वे राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के जन्मदाता थे। उनका बलिदान आगे चल कर देश की आजादी के लिए एक प्रेरणा स्रोत बन गया। राष्ट्र उनकी सेवाओं को कभी नहीं भूल सकता। वास्तव में वे महान् देशभक्त थे।

रम्पा में विद्रोह :

महाराष्ट्र में भड़के आन्दोलन के समान ही मद्रास प्रान्त में गोदावरी नदी के किनारे रम्पा क्षेत्र में भी एक बड़ा किसान विद्रोह भड़क उठा था।

विद्रोह का मुख्य कारण ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा करों में वृद्धि था। इसका प्रभाव रम्पा में बसे पर्वतीय आदिवासियों पर अधिक पड़ा। अत: ग्राम मुखियों के नेतृत्व में कर वृद्धि के विरोध में आन्दोलन भड़क उठा। मार्च व जुलाई, 1879 ई. के बीच सशस्त्र किसानों के जत्थों के छुटपुट धावे छापामार युद्ध में परिणित हो गए, जिससे 1880 ई. के मध्य तक अनेक सफलताओं के साथ आन्दोलन चलता रहा।

विद्रोह गोदावरी और बिजगापट्टम जिलों के विस्तृत क्षेत्र में फैल गया, जिसकी आबादी 20 लाख से अधिक थी। विद्रोह को स्थानीय किसानों का पूरा समर्थन प्राप्त था। आन्दोलन इतना सशक्त था कि इसको दबाने के लिए भेजी गई श्रेष्ठ सैनिक टुकड़ियाँ भी इसे आसानी से न दबा सकीं। विद्रोही पुलिस चौकियों से लूटे हुए हथियारों से अपने आपको लैस कर लेते थे। कुछ ही दिनों में विद्रोह इतना व्यापक हो गया था कि 1879 के मध्य तक सम्पूर्ण रम्पा क्षेत्र तथा इसके निकट के क्षेत्र इसकी चपेट में आ गए। सम्पूर्ण क्षेत्र पर विद्रोहियों का अधिकार हो गया। विद्रोह को दबाने के लिए गोदावरी नदी से फौजों को लेकर भेजे गए दो जहाजों पर कब्जा करने तथा एक जहाज को जलाने में भी क्रान्तिकारियों ने सफलता प्राप्त कर ली।

अंग्रेजों ने जब देख लिया कि केवल शस्त्र बल से ही विद्रोह को नहीं दबाया जा सकता। अत: शासन ने विद्रोह के विभिन्न नेताओं में आपस में फूट डालना शुरू कर दिया। इसके फलस्वरूप 1879 की शरद ऋतु में विद्रोह का उत्कृष्ट नेता अम्मल रेड्डी के साथ गद्दारी करके उसके साथियों ने उसे अंग्रेजों के हाथ सौंप दिया। इसके बाद 1880 ई. में आन्दोलन के असाधारण नेता धारा कोंड चन्द्रैया की अंग्रेजों से पैसा ले कर उसके नौकर ने हत्या कर दी।

चन्द्रैया की मृत्यु के बाद विद्रोह का ज्वार धीरे-धीरे उतरने लगा। फिर भी छुटपुट रूप में छापामार युद्ध प्रणाली से संघर्ष चलता रहा। यद्यपि चन्द्रैया के बाद उसके साथी सम्मनदौरा की मृत्यु के बाद जुलाई, 1880 में इस विद्रोह का अन्त हो गया, तथापि आम जनता का यह सशक्त आन्दोलन स्वतन्त्रता के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

असम आन्दोलन :

महाराष्ट्र के किसान आन्दोलन तथा रम्पा के विद्रोह के अलावा उत्तर पूर्वी भारत में आदिवासी भीलों, संथालों, गोंडों लुशाइयों, कूकाओं, नागाओं आदि ने भी भीषण विद्रोह किए। इनका आन्दोलन यों तो सूदखोर महाजन तथा जमींदारों के शोषण के विरुद्ध था, परन्तु आन्दोलन का अंतिम उद्देश्य भारत से ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन को समाप्त करना था अत: जबरदस्त सशस्त्र विद्रोह किया जिसे दबाने में अंग्रेजों को पूरे दो साल लगे।

ब्रिटिश भारत के अतिरिक्त देशी रियासतों में भी ब्रिटिश विरोधी भावना घर करने लगी। 1874 ई. में बड़ौदा के राजा को सत्ताच्युत करने के विरोध में व्यापक ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन भड़क उठा। कोल्हापुर में भी 1880 में वहाँ के राजा व उसके ब्रिटिश संरक्षकों के विरुद्ध आन्दोलन भड़क उठा।

यद्यपि ये सभी आन्दोलन सुनियोजित नहीं थे। वे स्थानीय समस्याओं को लेकर स्वत: स्पूर्त थे। विभिन्न आन्दोलन में पारस्परिक समन्वय भी नहीं था। इसी कारण ये आन्दोलन व्यापक स्वतन्त्रता संग्राम का रूप नहीं ले सके, परन्तु इन विद्रोहों में निहित देश प्रेम व उपनिवेशवाद विरोधी भावनाओं को आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन के ये अविभाज्य अंग अवश्य रहेंगे।

मजदूर आन्दोलन :

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के साथ भारत में भी सूती मिलों की स्थापना हो चुकी थी। अत: सूती मिलों के मजदूरों ने अपने हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन शुरू कर दिया। पहली मजदूर हड़ताल सन् 1877 ई. में नागपुर की

एक सूती मिल में हुई। 1882 से 1890 के बीच बम्बई व मद्रास में 25 हड़तालें हुईं। औद्योगिक एवं रेलवे मजदूरों के अतिरिक्त हम्मालों, जनोपयोगी सेवाओं के मजदूरों ने भी हड़ताल आन्दोलन में भाग लेना शुरू कर दिया।

सूती कपड़ा उद्योग का बम्बई प्रमुख केन्द्र था। अतः यहाँ पर मजदूरों का संगठन काफी सक्रिय हो गया। 1884 ई. में एन.एम. लोखण्डे ने मिल मजदूरों का एक संगठन बनाया, जिसका नाम मिल मजदूर समिति रखा गया। यही आगे चलकर मजदूर संघ में परिणित हो गई। मजदूर संघ ने 'दीनबन्धु' नामक मराठी में पत्र भी निकालना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे मद्रास, कलकत्ता, अहमदाबाद में भी मजदूर संघर्ष बढ़ गया। आगे चलकर मजदूर आन्दोलन ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति के विरोध का मुख्य अंग बन गया।

देशी रियासतों में जन-आन्दोलन :

ब्रिटिश भारत की भाँति ही देशी रियासतों में जनता ने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना शुरू कर दिया। खंभात नामक छोटी-सी रियासत में किसानों ने कर वृद्धि के विरोध में इतना जबरदस्त आन्दोलन किया कि नवाब को रियासत छोड़कर भागना पड़ा। इसी तरह का एक बड़ा जन-आन्दोलन मणिपुर रियासत में हुआ। पूर्वी भारत की इस रियासत में सामंतों के एक गुट ने मणिपुर के राजा के भाई टिकेन्द्रजीतसिंह ने ब्रिटिश संरक्षित राजा को सत्ता से हटा दिया और मणिपुर पर अधिकार कर लिया। टिकेन्द्रजीतसिंह ब्रिटिश-विरोधी भावना रखता था। अतः एक सैनिक टुकड़ी रियासत की राजधानी इम्फाल भेज दी गई, परन्तु ब्रिटिश सैनिक टुकड़ी को वहाँ से निराशा ही हाथ लगी। महल पर अधिकार करना तो दूर रहा, सैनिक टुकड़ी ब्रिटिश रेजीडेन्सी में ही कैद हो गई। अनेक सैनिकों के हताहत होने के बाद अंग्रेजों को पीछे हटना पड़ा।

अंग्रेजों की इस पराजय से कलकत्ता के ब्रिटिश अधिकारी भयभीत हो गए। अब कलकत्ता से आधुनिक शस्त्रों से सुसज्जित एक बड़ी फौज इम्फाल पहुँची। स्थानीय जनता ने अनेक अंग्रेजी ठिकाने तथा संचार के साधन पहले ही नष्ट कर दिए थे, परन्तु शक्तिशाली सेना की सहायता से अंग्रेजों ने इम्फाल पर अधिकार कर लिया। विद्रोही नेता टिकेन्द्रजीतसिंह कैद कर लिया गया। उन्हें तथा उनके साथियों को फाँसी दे दी गई। इसी तरह से पूर्वी भारत में केओझर रियासत में भी एक सामंत विरोधी आन्दोलन भड़क उठा। इस तरह से प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के बाद भी अंग्रेजों व उनके द्वारा संरक्षित जमींदारों की शोषण नीति के विरुद्ध समय-समय पर अनेक विद्रोह हुए। यद्यपि एकता पारस्परिक सहयोग व समन्वय के अभाव में ये आन्दोलन व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप नहीं ले सके, तथापि ब्रिटिश शासन की आँखें इन विद्रोहों से खुल गयीं और वह इन हिंसक उग्र

आन्दोलन को वैध शान्तिपूर्ण आन्दोलन में परिणित करने पर विचार करने लगी, जिसका विस्तृत वर्णन हम अगली इकाई में करेंगे।

धर्म प्रेरित आन्दोलन :

हमारे प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य धर्म की रक्षा करना था। यद्यपि 1857 की क्रान्ति के बाद ब्रिटिश शासन ने ऐसे अनेक आश्वासन दिए थे कि अंग्रेजी शासन भारतीयों के धर्म में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी, तथापि वे आश्वासन भारतीयों के गले नहीं उतर सके। उनको बराबर भय बना रहा कि ब्रिटिश शासन में भारतीय धर्म व जीवन पद्धति खतरे से खाली नहीं है। इसी उद्देश्य से धर्म व अपने विश्वासों की रक्षा के लिए पुनः भारतीयों ने तलवार उठाई। इस प्रकार के धर्म रक्षार्थ जन आन्दोलन में बिहार प्रान्त का वहाबी आन्दोलन तथा पंजाब का कूका विद्रोह बहुत प्रसिद्ध हैं।

वहाबी आन्दोलन :

1857 की क्रान्ति को कुचलने के बाद सौ अंग्रेज वहाबी आन्दोलन को पूरी तरह से नहीं दबा पाये थे। अतः 1870 ई. तक पटना में वहाबियों ने अपना गुप्त संगठन कायम कर लिया। इस तरह से उन्होंने उपनिवेशवाद के विरुद्ध नयी सशस्त्र क्रान्ति शुरू कर दी। इस संगठन में किसान व दस्तकार ही शामिल नहीं थे, वरन् इसके नेताओं में छोटे अफसर, व्यापारी, बुद्धिजीवी वर्ग के सदस्य भी थे।

पठान कबायली क्षेत्र में स्थित सितना में एक विशाल फौजी शिविर वहाबियों ने पहले ही स्थापित कर रखा था, जहाँ स्वयंसेवकों ने एकत्रित होकर गुप्त बैठकें करना शुरू कर दिया था। रसद व शस्त्र भी एकत्रित होने लगे थे। इस तरह सितना को वहाबियों ने काफिरों अर्थात् अंग्रेजों के विरुद्ध जिहाद का एक मजबूत सैनिक गढ़ बना लिया था।

1863 ई. में सितना में विद्रोहियों को दबाने के लिए पूरी एक फौजी कोर भेजी गई। पहले वहाबी आन्दोलन को कवायली पठानों का पूरा समर्थन प्राप्त था। अतः अंग्रेजों के अनेक सैनिक लड़ाई में मारे गए। कबायली पठानों का समर्थन कम होने के बाद तथा अनेक सैनिकों की जान गँवाने के बाद ही अंग्रेज विद्रोह के इस केन्द्र को नष्ट कर पाये। 1864 ई. में दिल्ली तथा पटना के वहाबी गढ़ों को भी नष्ट कर दिया गया। इसके बाद धीरे-धीरे स्वतन्त्रता का यह संघर्ष उतार पर आने लगा, लेकिन एक बार तो मुट्ठी भर स्वतन्त्रता सेनानियों ने ब्रिटिश राज को झकझोर कर रख दिया।

इस तरह एक आन्दोलन पंजाब में नामधारी सिक्खों द्वारा संचालित किया गया जो इतिहास में कूका विद्रोह के नाम से विख्यात है।

कूका विद्रोह :

कूका विद्रोह के जन्मदाता गुरु रामसिंह थे। गुरु रामसिंह का जन्म 1815 ई. को बसंत पंचमी के दिन माता सदाकौर की कोख से हुआ था। पिता का नाम बाबा जस्मासिंह तरखान था। जन्म स्थान राइयाँ था, परन्तु बाद में माता-पिता मैणी में बस गए। अतः रामसिंह का बचपन मैणी में ही बीता।



कूका सम्प्रदाय के संस्थापक गुरु रामसिंह चीनी घोड़ी पर सवार

युवक होने पर रामसिंह महाराजा रणजीतसिंह की सेना में भर्ती हो गए, परन्तु कुछ माह बाद ही नौकरी छोड़कर सत्संग में लग गए। उन्हीं दिनों उनकी भेंट रामदास नामक एक संन्यासी से हुई। रामदास ने रामसिंह की विचारधारा को राष्ट्र हित की ओर मोड़ा और देशभक्ति की प्रेरणा देते हुए कहा— "राष्ट्र के हित के बिना सामाजिक उत्थान नहीं हो सकता और समाजिक उत्थान के बिना धर्म की भावना लोगों में नहीं पनप सकती।" फिर क्या था रामसिंह अपनें धार्मिक प्रवचनों में अपने भक्तों को राष्ट्र कल्याण के मार्ग के ज्ञान देने के साथ साथ राष्ट्र के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्यों का ज्ञान देने लगे।

समय बीतने के बाद रामसिंह ने गुरु पद प्राप्त किया। गुरु रामसिंह की वाणी में इतनी अधिक शक्ति थी कि जो भी उनकी वाणी सुनता, उनका अनुयायी हुए बिना नहीं रहता। पंजाब ही नहीं देश के अन्य कोनों से भी लोग उनके सत्संग में आने लगे। अब उन्होंने नामधारी सम्प्रदाय की स्थापना की। ये नामधारी सिक्ख बहुत ही ऊँचे स्वर में हरि का नाम उच्चारते थे। इस सम्बन्ध में कहा भी गया है —

"सही नामधारी अहि तिनको उदासी,
कूक मारने तैयों कूके जगत बखाने हैं।"

गुरु रामसिंह ने यह अच्छी तरह अनुभव कर लिया था कि "व्यक्तिगत आनन्द लाभ का यह समय नहीं है। बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता के धार्मिक स्वतन्त्रता कितने दिन टिकेगी। देश पराधीन है। लोगों में कर्मण्यता एवं कर्त्तव्य

निष्ठा जगा कर देश को स्वतंत्र बनाना चाहिये।" इस आन्तरिक अनुभूति को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने कूका युवकों का एक बड़ा विशाल संगठन खड़ा कर लिया। सारे पंजाब को 22 जिलों में बाँटा गया और उनके 22 अध्यक्ष नियुक्त किए गए। इसके अतिरिक्त एक गुप्तचर संगठन भी तैयार किया गया जो अंग्रेजों की सारी सूचनाएँ कूका संगठन को देता था।

असहयोग आन्दोलन : अब गुरु के आदेश से नामधारी सिक्खों ने एक व्यापक असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया। इस समय नामधारी सिक्खों की संख्या तीन लाख थी। सभा ने यह प्रण कर लिया कि वे सरकारी नौकरी नहीं करेंगे, अदालतों का बहिष्कार करेंगे। सरकारी स्कूल तथा कॉलेजों का बहिष्कार करेंगे। जो सरकारी कानून अनुचित होगा उसको कभी नहीं मानेंगे। रेल, तार तथा डाक व्यवस्था तक का बहिष्कार किया गया। यह एक तरह से विदेशी शासन के विरुद्ध पहला असहयोग आन्दोलन था। इसे देखकर ब्रिटिश शासन के होश उड़ गए। वह गुरु रामसिंह के पीछे पड़ गए और उन पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए। इस कठिन परिस्थिति में गुरुजी ने बहुत ही धैर्य से काम लिया। अब उन्होंने गुप्त रूप से अपना काम करना शुरू कर दिया। गौ रक्षा कार्यक्रम को उन्होंने प्रधानता देना शुरू कर दिया। इसी बीच अंग्रेजी सरकार ने स्वत: गुरु रामसिंह पर लगे प्रतिबन्ध को हटा लिया। अब उनके नामधारी भक्त कूका लोगों ने अपने स्वतन्त्रता आन्दोलन को तेज कर दिया, परन्तु गुरु चाहते थे कि संगठन को बहुत अधिक शक्तिशाली बना कर ही स्वतन्त्रता संग्राम का श्रीगणेश करना चाहिए, परन्तु उनके शिष्य आजादी के दीवानों का धैर्य का बाँध टूटता जा रहा था। वे आजादी के जंग के लिए उतावले हो उठे।

सन् 1871 ई. में कुछ कूके वीर अमृतसर की ओर जा रहे थे, तब रास्ते में कुछ कसाइयों से उनकी मुठभेड़ हो गयी जो अपने साथ गायें ले जा रहे थे। कूका वीरों ने सभी कसाइयों को मौत के घाट उतार दिया और गायों को छुड़ाकर वे मैणी की ओर चल दिए। इधर अमृतसर में इस घटना को लेकर सरकार ने अनेक लोगों को पकड़ना शुरू कर दिया। गुरुजी को यह अच्छा नहीं लगा कि "करे कोई और भरे कोई। अत: उन्होंने कसाइयों का वध करने वाले कूका शिष्यों को निर्देश दिया कि स्वयं सरकार को जाकर कहें कि अपराध हमने किया है ताकि निर्दोष लोग बच सकें। गुरु की आज्ञा से कूका युवकों ने ऐसा ही किया।

इस घटना के एक साल बाद ही 1872 ई. में एक ऐसी घटना घटी जो स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में रक्त रंजित पृष्ठों में अंकित है। 13 फरवरी, 1872 को मैणी में मैणी मेला बड़ी धूमधाम से भरा करता था। इस मेले में

हजारों कूकों का एक दल जा रहा था। जब मालेर-कोटला की मुस्लिम रियासत से यह दल गुजर रहा था तो दल के एक सदस्य का झगड़ा एक मुस्लिम युवक से हो गया। इस पर अन्य कूका लोग गुरुजी के पास पहुँचे और निवेदन किया कि हमें अब मालेर-कोटला पर हमला कर विद्रोह करने की स्वीकृति प्रदान करने की कृपा करें।

वैसे गुरुजी भी अन्दर ही अन्दर अंग्रेजों से लोहा लेने की पूरी तैयारी कर रहे थे, परन्तु उनका विश्वास था कि पूरी तैयारी के बिना विद्रोह करना उचित नहीं है। अत: उन्होंने अपने अनुयायियों को कहा कि अभी विद्रोह का उचित समय नहीं है, परन्तु कूका वीरों का हृदय विद्रोह के लिए हिलोरे ले रहा है। अत: 154 कूके वीरों ने मलोध नामक किले पर धावा बोल दिया। गुरु रामसिंह जी ने इस समय भी चतुराई व कूटनीति से काम लिया। उन्होंने पुलिस को सूचना भेज दी कि इस विद्रोह का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका उद्देश्य यही था कि ब्रिटिश सरकार उन पर संदेह न करे और वे अन्दर ही अन्दर आजादी की लड़ाई की पूरी तैयारी करते रहें, क्योंकि वे जानते थे कि समय पूर्व क्रान्ति भड़क उठने से ही हमारा प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम असफल हुआ था।

लेकिन नवयुवक कूके अब अधिक इंतजार करने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने मलोध दुर्ग पर धावा बोल ही दिया। किले के शस्त्र लेकर वे खजाने की ओर बढ़े। पहरेदारों से जमकर लड़ाई हुई। इधर अंग्रेजी सेना को इस आक्रमण की सूचना मिली तो वह दुर्ग रक्षा के लिए दौड़ पड़ी। पटियाला की सीमा पर स्थित गढ़ नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना की आजादी के कूका वीरों की सेना से भिड़न्त हो गयी। भारी अंग्रेजी सेना के सामने मुट्ठी भर कूका वीर कब तक टिक सकते थे। कुछ कूके वीर मारे गए और 68 कूका वीरों को कैद कर लिया गया।

अगले दिन लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर कॉवन ने इनमें से 50 कूकों को एक-एक करके तोप से उड़ाने का आदेश दे दिया। 49 वीर अपने गुरु तथा भारत माता की जय बोलते हुए एक-एक करके तोप के सामने बड़े हर्ष के साथ आ खड़े होते और मातृभूमि के लिए शहीद हो जाते।

वीर बालक का बलिदान : 49 कूकों को आततायी शासन ने तोप से उड़ा दिया। इनके बाद एक 13 वर्षीय बालक को तोप के सामने लाया गया। उस बालक को देख कर कॉवन की पत्नी को दया आ गई। उसने अपने पति को इस बालक को छोड़ देने के लिए कहा। इस पर कॉवन ने गुरु रामसिंह को गाली देते हुए कहा कि "यदि तुम कह दो कि तुम गुरु रामसिंह के चेले नहीं हो तो तुम्हें छोड़ा जा सकता है।" इतना सुनना था कि बालक तड़फ कर उछला और

पहरेदारों की पकड़ से सहसा छूट कर, झपटकर उसने कॉवन की दाढ़ी पकड़ी और जोरों से खींचने लगा। कॉवन दर्द से तिलमिला उठा। बालक ने तब तक कॉवन की दाढ़ी को नहीं छोड़ा, जब तक उसके हाथ तलवार से नहीं काट दिए गए। बाद में निर्ममता से उसकी बोटी बोटी काट दी गई।

शेष 18 कूकों को दूसरे दिन लुधियाना जेल में फाँसी पर लटका दिया गया। गुरु रामसिंह भी गिरफ्तार कर लिए गए और भारत से निर्वासित कर बर्मा भेज दिए गए, वहीं पर 1885 ई. में 61 वर्ष की अवस्था में उन्होंने शरीर छोड़ दिया।

इस तरह से कूके वीर हँसते-हँसते देश की स्वतन्त्रता के लिए न्यौछावर होकर शहीदों की शृंखला में जुड़ गए। उर्दू के प्रसिद्ध शायर मिजाज के कथन को कूके वीरों ने कार्य रूप में परिणित करके अपना नाम अमर कर लिया—

"तू इंकलाब की आमद का इंतजार न देख
हो सके तो अभी से इंकलाब पैदा कर।"

राष्ट्रीयता की प्रथम किरण :

पिछली इकाइयों में हमने देखा कि समय-समय पर भारत से अंग्रेजी राज्य को उखाड़ने के लिए अनेक सशस्त्र क्रातियाँ हुईं, परन्तु ये विद्रोह पूरी शक्ति व मन से करने पर भी राष्ट्रीय व अखिल भारतीय स्वरूप के अभाव में सफल न हो सके। उन दिनों यूरोप आदि देशों में राष्ट्रीयता का प्रसार हो चुका था। इसका प्रभाव पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीयों पर भी पड़े बिना न रहा। उनके मन में भी भारत में एकता व राष्ट्रीयता की भावना जगाकर अपनी उचित माँगों को वैध तरीके से ब्रिटिश सरकार के सामने रखने के लिए जिज्ञासा उत्पन्न हुई।

इसके लिए सर्व प्रथम प्रयास महाराष्ट्र व बंगाल में हुए। महाराष्ट्र में सार्वजनिक सभा का निर्माण सर्व प्रथम 2 अप्रेल, 1870 ई. में सतारा में हुआ। फिर इसका कार्यालय पूना लाया गया। यहाँ पर सार्वजनिक सभा के माध्यम से महादेव गोविन्द रानाडे तथा बाद में बाल गंगाधर तिलक ने लोगों में देश प्रेम जगाने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। महादेव गोविन्द रानाडे ने मराठा साम्राज्य का उत्थान नामक पुस्तक लिखी। उससे नवयुवकों के मन में यह भावना जोर पकड़ने लगी कि अंग्रेजी राज्य से तो शिवाजी महाराज का राज्य कहीं अच्छा था। उस राज्य में लोग सुखी थे।

चापेपकर बंधुओं की निबन्ध माला का भी राष्ट्रीय जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इसका विस्तृत विवरण तो हम अगली इकाई में करेंगे, परन्तु उनकी भाषण माला की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है—

"हाय दासता में रहकर तुम्हें लज्जा नहा आती। इससे अच्छा तो यह है तुम मर जाओ। उफ दुष्ट हत्यारे कसाइयों की तरह गोवध करते हैं। मर जाओ परन्तु पहले अंग्रेजों को मारो तो सही। चुप मत बैठे रहो, बेकार धरती पर बोझा मत बढ़ाओ, हमारे देश का नाम तो हिन्दुस्तान है। फिर यहाँ अंग्रेज राज क्यों करते हैं?"

मराठा व केसरी पत्रों द्वारा भी राष्ट्रीय गौरव का बखान किया जाने लगा। 1880 ई. में न्यू इंगलिश स्कूल में राष्ट्रीयता की शिक्षा दी जाने लगी। दादा भाई नौरोजी व महादेव गोविन्द रानाडे ने भारतीय राजनीति व अर्थनीति की आधार-शिला रखी।

महाराष्ट्र की भाँति ही बंगाल में भी राष्ट्रीय चेतना जाग्रत होने लगी। बंगाल में घोष बन्धु, हरिश्चन्द्र मुकर्जी तथा प्रमुख साहित्यकार बंकिमचन्द्र चटर्जी ने लोगों में एकता व देश प्रेम पैदा करने में महती भूमिका अदा की। बंकिम बाबू द्वारा लिखित 'वन्दे मातरम्' गीत राष्ट्रीय जागरण का मूल मंत्र बन गया।

नाटक साहित्य के द्वारा भी बंगाल में शोषण के विरुद्ध भावना जगाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। दीनबन्धु द्वारा लिखित 'नील दर्पण' तथा मीर मुशर्रफ हुसैन द्वारा लिखित 'जमींदारी दर्पण' नाटक इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'प्रताप चरित्र' एवं 'शिवाजी' नामक नाटक भी रंगमंच पर खेले गए, जिनसे लोगों में स्वतन्त्रता की भावना जोर पकड़ने लगी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भी नवयुवकों में अद्भुत देशभक्ति जाग्रत करने का पूरा प्रयास किया।

अंग्रेजों की आँखें खुली :

एक ओर तो भारत के रणबाँकुरे सशस्त्र विद्रोह द्वारा अंग्रेजी राज्य को समाप्त करने के लिए तुले हुए थे, तो दूसरी ओर भारतीय मनीषी देश में एकता स्थापित कर राष्ट्रीय जागृति की तैयारी कर रहे थे। अंग्रेजों को भय पैदा हो गया कि कहीं सशस्त्र क्रान्ति का नेतृत्व बुद्धि-जीवी राष्ट्रवादियों के हाथों में न चला जाए। अत: वायसराय मि. ह्यूम जैसे सहृदय व लोकप्रिय अधिकारी को बीच में डालकर स्थानीय नेताओं द्वारा ऐसे राजनीतिक संगठन का निर्माण किया जाए जो अंग्रेजी शासन के प्रति फैली घृणा की हिंसक सशस्त्र क्रान्ति को रोके। ए.ओ. ह्यूम को ऐसा निर्देश दिया गया कि ऐसे उपाय तत्काल किए जाएँ, जिनसे लोगों का क्षोभ हिंसक न रह कर वैध राजनीतिक आन्दोलन में बदल जाए। इस कार्य की पूर्ति के लिए ए.ओ. ह्यूम के प्रयास से अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

□□

इकाई 4

कांग्रेस की स्थापना तथा उसके कर्णधार

भारत में राष्ट्रीय भावना को जन्म देने का श्रेय कांग्रेस को है। वास्तव में इस महान् संस्था ने ही आगे चलकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध सशक्त जन आन्दोलन का नेतृत्व किया। उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक भारतीय जन शक्ति को राष्ट्रीय एकता के धागे में पिरोने का काम इसी संस्था ने किया। अन्त में भारत को स्वाधीन कराने का श्रेय कांग्रेस को ही है।

यद्यपि कांग्रेस के पहले भी कुछ ऐसे संगठनों का जन्म अवश्य हुआ था जिनका उद्देश्य भारत में राजनीतिक एवं सामाजिक क्रान्ति को जन्म देना था। इन संगठनों का उद्देश्य भारत में लोक सत्तात्मक राजनीति की आधारशिला रखना था। 1852 ई. में दादा भाई नौरोजी ने बम्बई में बोम्बे एसोसियेशन की स्थापना की, उधर बंगाल में 1851 ई. में प्रसन्नकुमार टैगोर, डॉ. राजेन्द्रलाल मित्र आदि ब्रिटिश एसोसियेशन नामक राजनीतिक संस्था स्थापित करने में लगे थे। इसी प्रकार की एक संस्था 'मद्रास नेटिव एसोसियेशन' का जन्म मद्रास में हुआ। पूना में भी दक्कन एसोसियेशन की स्थापना हो चुकी थी। इस तरह से 1851-52 में भारत के तीन बड़े प्रदेशों की राजधानियों में लोक सत्तात्मक राजनीति का उदय हुआ। इन संस्थाओं की मुख्य माँगें थीं—भारतीय उद्योगों के प्रति संरक्षणवादी नीति लागू करें, करों को घटायें और औपनिवेशक खिराज कम करें। वायसराय तथा गवर्नरों के नेतृत्व में परामर्शदायी निकायों में भारतीयों को भी उचित प्रतिनिधित्व दिया जाए। काले गोरे का नस्ली भेद-भाव न रखा जाए। सिविल सर्विस में बैठने के अधिकार की आयु को बढ़ाया जाए तथा परीक्षा ब्रिटेन के साथ-साथ भारत में भी हो।

परन्तु इन संस्थाओं का न तो राष्ट्रीय स्वरूप था और न ही स्वराज्य प्राप्ति के लिए जन-आन्दोलन को संगठित करना था। आगे चल कर कांग्रेस को ही भारत की राजनीतिक संस्था होने का गौरव प्राप्त हुआ।

कांग्रेस की उत्पत्ति :

जैसा कि हम पूर्व इकाई में पढ़ चुके हैं कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण के विरुद्ध एक व्यापक जन असंतोष भड़क रहा था। यद्यपि ये जन आन्दोलन स्थानीय थे, तथापि ब्रिटिश शासन के मन में यह भय घर करता जा रहा था कि कहीं जन आक्रोश बुद्धिजीवी राष्ट्रवादियों के हाथों में जाकर राष्ट्रीय क्रान्ति का रूप धारण न कर ले। अतः भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड डफरिन ने इस संभावित खतरे का अनुभव किया और मि. ह्यूम नामक अत्यन्त उदार एवं सहृदय अंग्रेज सज्जन से कहा कि "भारत में एक ऐसी संस्था की आवश्यकता है जिससे भारत सरकार भारत की असली राय को जान सके और भारत में मण्डराते हुए अशांति के बादलों को मिटा सके।" वास्तव में इस प्रकार की संस्था के निर्माण के पीछे दूरदर्शिता पूर्ण कूटनीति छिपी हुई थी। अंग्रेजों के विरुद्ध फैली हुई जनता की विद्रोही भावना के प्रवाह को वैध आन्दोलन में बदलकर ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को मजबूत करना ही वायसराय साहब का एक मात्र उद्देश्य था।

मि. ह्यूम को भी भारतीय वातावरण में विद्रोह की चिनगारियाँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। उनके द्वारा तैयार किए गए स्मरण पत्र में भारत की विस्फोटक स्थिति का विशद वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है—

"मुझे सात बड़ी-बड़ी जिल्दें दिखाई गई जिनमें बहुत-सी सामग्री एकत्रित की गई थी। जिलेवार, तहसीलवार, शहरवार यहाँ तक कि गाँववार अनेक संवादों व रिपोर्टों का संग्रह इन जिल्दों में किया गया था। लगभग 30 हजार सूचनाएँ थीं। अनेक रिपोर्टें तो सबसे नीचे के आदमियों से बातचीत करके लिखी गई थीं। इनसे मालूम होता है कि ये गरीब आदमी अपनी वर्तमान हालत से निराश हो चुके हैं। उन्हें विश्वास हो गया कि वे भूखों मर जाएँगे। इसीलिए वे कुछ कर डालना चाहते थे। वे सब एक दूसरे का साथ देकर कुछ कर डालने पर तुले हुए थे और इस कुछ का मतलब था— हिंसा। बहुत-सी रिपोर्टों में पुरानी बन्दूकें, तलवारें तथा भाले जमा करने का उल्लेख है। इसके पीछे भावना थी बगावत करने की, अराजकता फैला कर लूट मार करने की। छोटे-छोटे गुट मिलकर बड़े गुट बना लेंगे और चारों तरफ मार काट मचा देंगे और हम देखते ही रह जाएँगे। सबसे बड़ा डर तो यह है कि कहीं पढ़े लिखे लोग इन विद्रोही तत्त्वों को एकता के सूत्र में बाँधकर राष्ट्रीय विद्रोह के रूप में इसका संचालन न कर डालें।"

मि. एन्ड्रूज और मुकर्जी ने "हिन्दुस्तान में कांग्रेस का जन्म और बढ़ती" में लिखा है— "1857 के बाद इतना खतरनाक वक्त पहले कभी नहीं आया था, जितना कि कांग्रेस के जन्म लेने के पहले आया। अंग्रेज हाकिमों में ह्यूम ने भावी संकट को सबसे पहले देखा और उसे रोकने का प्रयास किया। शिमला जाकर

उसने वायसराय को स्थिति की गंभीरता से अवगत कराया। वायसराय डफरिन भी जल्दी ही स्थिति की गंभीरता को भाँप गए और मि. ह्यूम को एक ऐसी अखिल भारतीय संस्था के निर्माण का भार सौंपा जिसके माध्यम से उदीयमान वर्गों को अपनी बात कहने के लिए एक मंच मिल जाए। इस तरह से हिंसक क्रान्तिकारी भावनाओं को वैध आन्दोलन का रूप देने के लिए नव निर्माण संस्था एक उचित माध्यम सिद्ध हो सकेगी।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मार्च सन् 1883 ई. में मि. ह्यूम ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक गश्ती पत्र जारी कर यह अपील की कि वे एक ऐसे राजनीतिक संगठन बनाने में सहयोग दें जिसके द्वारा भारतवासियों की मानसिक, भौतिक, सामाजिक और राजनैतिक उन्नति हो सके। केवल 50 स्नातक मिल कर यह कार्य शुरू कर दें, जिससे आगे इसकी प्रगति सरल हो जाए। इसी सन्दर्भ में मि. ह्यूम ने देश के प्रबुद्ध नागरिकों के नाम जोरदार शब्दों में एक अपील जारी की जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं—

''आप इस भूमि के जी़वन भूत (नमक) हो। अगर आपमें से 50 ऐसे युवक मिल जाएँ जिनमें स्वार्थ त्याग की भावना हो, वास्तविक निःस्वार्थ एवं हार्दिक देशभक्ति हो, जो अपने जीवन की शेष आयु को अपने देश की पवित्र सेवा में व्यतीत कर सकें, तो देश के लिए एक महान् भविष्य की आशा की जा सकती है। अगर ऐसा नहीं होता तो इस राष्ट्र के पुत्रों को विदेशी शासकों की अधीनता में निस्सहायों की भाँति पड़ा रहना पड़ेगा।

अगर देश के विचारक नेता इतने दीन हीन होंगे, इतने स्वार्थी और आप मतलबी होंगे कि ऐसे समय में भी वे जाग्रत न होंगे और अपने देश के लिए कुछ न कर सकेंगे तो कहना होगा कि वे हमेशा कुचले जाने के योग्य ही अपने को साबित करेंगे। प्रत्येक राष्ट्र अपनी योग्यता के अनुसार ही अच्छा शासन पाता है।''

मि. ह्यूम के प्रभावशाली शब्दों ने अपना काम कर दिखाया और 'इण्डियन नेशनल यूनियन' नामक एक राजनीतिक संस्था का सन् 1885 में जन्म हुआ। इसका पहला अधिवेशन पूना में होने वाला था, परन्तु वहाँ हैजे का प्रकोप होने के कारण कांग्रेस का पहला अधिवेशन 28 दिसम्बर, 1885 में बम्बई नगर के गोकुलदास तेजपाल हाई स्कूल में हुआ। प्रारम्भ में ये थोड़े से लोगों की सभा थी। सभापति थे— मि. उमेशचन्द्र बनर्जी। इस प्रथम अधिवेशन में भाग लेने वालों में बम्बई से दादा भाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग, झबेरीलाल याज्ञिक, दीनशा ईदल जी वाछा, रहीमत उल्ला सेनानी, गोपाल गणेश आगरकर और नारायण गोरा चंदावरकर, मद्रास से सर. एस. सुब्रह्मण्यम् ऐयर, दीवान बहादुर रघुनाथ राव, पी.आनन्द चार्ल्स, जी. सुब्रह्मण्यम्, ऐयर, रंगैया नायडू

और वीर राघवाचार्य, कलकत्ता से बाबू नरेन्द्रनाथ सेन, यू.पी. से बाबू गंगाप्रसाद वर्मा, आंध्र से मि. नरसिंह लू नायडू, बिलारी के राव बहादुर मुदलयार, गूटी के दीवान बहादुर केशव पिल्लई और मछलीपट्टम के राव साहब सिंराज वेंकट सुब्बा रायडू के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।



बम्बई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का पहला अधिवेशन, 1885

एलन ओक्टोवियन ह्यूम 6 वर्ष के लिए कांग्रेस के महासचिव बनाए गए। वास्तव में मि. ह्यूम कांग्रेस की आत्मा थे। उन्होंने कांग्रेस को लोकप्रिय बनाने के लिए सारे देश का भ्रमण किया और इसके लिए अपनी जेब से रुपये खर्च किए। मि. ह्यूम ने इस नव गठित राजनीतिक मंच का नाम 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' रखा जो भविष्य में तिलक तथा गाँधी के नेतृत्व में स्वराज्य के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए प्रमुख संस्था बन गई। एक अन्य अंग्रेज सज्जन बेडरबर्न को कांग्रेस का प्रथम अध्यक्ष बनाया गया। इस तरह से कांग्रेस के निर्माण में दो ईसाई सज्जन ए.ओ.ह्यूम एवं बेडरबर्न का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। लोकमान्य तिलक ने भी इन दोनों के कार्यों की प्रशंसा की है।

परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि इन दोनों ईसाई सज्जनों का उद्देश्य यह कभी नहीं रहा कि भारत को स्वराज्य मिले। ये तो भारत में सुराज्य स्थापित करना चाहते थे। दूसरे शब्दों मे, ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने के पक्ष में थे। इनका मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश शासन व भारतीयों में सद्भावना पैदा कर, हिंसक राष्ट्रीय विद्रोह को रोक कर, अप्रत्यक्ष रूप

से भारत में अंग्रेजी राज्य को सुदृढ़ करना था। जैसा कि कांग्रेस के प्रारम्भिक प्रस्तावों तथा कार्यों से स्पष्ट विदित होता है।

कांग्रेस के प्रारम्भिक उद्देश्य :

(1) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश हित के लिए लगन से काम करने वालों की आपस में घनिष्ठता व मित्रता बढ़ाना।

(2) समस्त देशवासियों में प्रत्यक्ष मैत्री व्यवहार से वंश, धर्म और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना जिसका श्रीगणेश लॉर्ड रिपन के शासन काल में हो गया था।

(3) महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में चर्चा करना और निष्कर्षों का संग्रह करना।

(4) उन तारीखों व दिशाओं का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देश हित में कार्य करें।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्ष बेडरबर्न की अध्यक्षता में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किए गए—

(1) शासन व्यवस्था की जाँच के लिए एक रॉयल कमीशन नियुक्त किया जाए।

(2) धारा सभाओं में जन प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाई जाए।

(3) बजट धारा सभाओं में रखा जाए।

(4) इण्डिया कौंसिल को रद्द करें।

इन प्रस्तावों का मुख्य उद्देश्य जनता को शासन में अधिक से अधिक भागीदार बनाना था।

कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन ऋषि कल्प दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में कलकत्ता में हुआ और तीसरा अधिवेशन मद्रास में बदरुद्दीन तैय्यबजी की अध्यक्षता में हुआ। इस तरह से कांग्रेस के हिन्दू, ईसाई, पारसी तथा मुसलमान अध्यक्ष रहे। कांग्रेस के इस सर्वव्यापी राष्ट्रीय रूप को देख कर ब्रिटिश राज की नौकरशाही के मन में कांग्रेस के प्रति संदेह एवं वैमनस्य पैदा होने लगा।



बदरुद्दीन तैयबजी

1886 ई. में कांग्रेस के दूसरे कलकत्ता अधिवेशन के बाद स्वयं वायसराय लॉर्ड डफरिन ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों को एक वन भोज दिया था। इसी प्रकार कांग्रेस के तीसरे मद्रास अधिवेशन में वहाँ के गवर्नर तथा बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी भी थे, परन्तु कांग्रेस के चौथे इलाहाबाद अधिवेशन तक तो सरकार का रुख बिल्कुल बदल गया था। सरकारी अधिकारियों ने मण्डल के लिए भूमि देने में भी कठिनाइयाँ पैदा कीं। अधिवेशन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों को परेशान करके उनकी जमानतें ली जाने लगीं। पंजाब में 5-6 हजार लोगों से जमानती मुचलके माँगे गए। फिर भी 1248 प्रतिनिधियों ने इस अधिवेशन में भाग लिया। सरकारी विरोध के कारण कांग्रेस की लोकप्रियता अधिक बढ़ने लगी। इस चौथे अधिवेशन के सभापति ने अपने भाषण में प्रतिनिधि राज पद्धति का समर्थन किया।

चौथे अधिवेशन के कार्य-कलापों से ब्रिटिश राज के अधिकारियों की आँखें खुलने लगीं। जहाँ उन्होंने कांग्रेस को अपनी रक्षा की ढाल बनाना चाहा था, वहाँ वह उल्टी विरोधी संस्था बनने लगी। इससे सरकारी अधिकारियों ने असहयोग की नीति अपनाना शुरू कर दिया। यह आदेश प्रसारित किया गया कि सरकारी अधिकारी कांग्रेस के अधिवेशन में दर्शक के रूप में भी न जाएँ। प्रारम्भ में कांग्रेस का नेतृत्व नरम दल के नेताओं के हाथों में रहा। नरम दल के नेताओं का उद्देश्य आन्दोलनकारी नहीं था, वरन् प्रस्तावों के माध्यम से शासन सुधारों के लिए सरकार से माँग करना था, लेकिन आगे चलकर कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य के लिए आन्दोलन करने वाली प्रमुख संस्था बन गई। कांग्रेस में कैसे-कैसे परिवर्तन हुए और वह किस प्रकार उग्र-संस्था बन गई इसका विस्तृत वर्णन हम अगले पृष्ठों में पढ़ेंगे।

यद्यपि क़ांग्रेस के प्रारम्भिक प्रमुख सूत्रधार नेताओं का मंतव्य पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना नहीं था, परन्तु देश में राजनैतिक चेतना व राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में उनके योगदान को आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपनी निःस्वार्थ सेवा से, जो देशभक्ति की भावना पैदा की, वही आगे चलकर हमें स्वतंत्र कराने में सहायक सिद्ध हुई। अतः इन महान् तपस्वी नेताओं की जानकारी हमारे लिए परम आवश्यक हैं।

इस सम्बन्ध में सबसे पहले उन महान् सहृदय अंग्रेज सज्जनों का उल्लेख करेंगे जिन्होंने भारत में राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में अपनी सेवाएँ दीं। इनमें एलन ओक्टोवियन ह्यूम, रस विलियम बेडरबर्न, सर हेनरी कॉटन और मि. डिम्बी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मि. ह्यूम :

जैसा कि हम पूर्व पृष्ठों में पढ़ चुके हैं कि राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म देने का श्रेय मि. ह्यूम को ही है। आपने ही भारत की दयनीय एवं विस्फोटक स्थिति

की तस्वीर वायसराय लॉर्ड डफरिन के सामने रखी। भारत के शिक्षित लोगों में देश के लिए संगठित होकर कुछ करने की भावना आपने ही भरी। आप 6 वर्ष तक कांग्रेस के महामंत्री पद को सुशोभित करते रहे। कांग्रेस को देश व्यापी रूप प्रदान करने के लिए आपने सारे भारत में अपने खर्चे से दौरा किया और कांग्रेस की निःस्वार्थ भाव से सेवा करते रहे।

विलियम बेडरबर्न :

बेडरबर्न एक महान् शुभ चिंतक थे। ये बम्बई प्रान्त में एक सिविलियन अधिकारी थे। अवकाश प्राप्ति के बाद भी आप 29 वर्ष तक जीवित रहे और सारा समय आपने भारत की सेवा में बिताया। अपनी पेंशन के एक हजार पौण्ड में से अधिकांश राशि वे भारत के लिए खर्च करते थे। भारतवासियों ने भी इस उपकार का बदला उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष चुनकर चुकाया। रानाडे महोदय ने गोखले को कहा था कि "जितने अंग्रेजों से मेरी भेंट हुई, उनमें कोई ऐसा नहीं था जिसकी तुलना बेडरबर्न से की जा सके।" सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा कि "वे अंग्रेज अधिकारी के वेश में सचमुच एक भारतीय देशभक्त हैं।" गोखले तो बेडरबर्न को अपने पिता की तरह मानते थे। बेडरबर्न को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए गोखले ने कहा था—"आधुनिक युग के इस महान् और आदरणीय ऋषि का चित्र इतना पवित्र, इतना सुन्दर और उत्साहप्रद है कि उनका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। यह एक ऐसा चित्र है जिस पर प्रेम तथा श्रद्धापूर्वक विचार किया जाए और मौन-पूर्वक मनन किया जाए।" वास्तव में हमारा देश उनके उपकार को कभी नहीं भूल सकता।

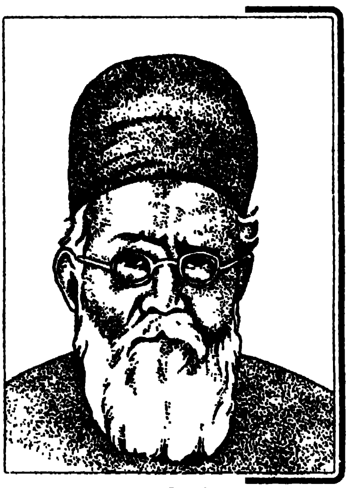
ऋषि कल्प दादा भाई नौरोजी :

कांग्रेस के प्रथम बीस वर्ष वाले काल के प्रमुख राजनीतिक नेताओं में दादा भाई नौरोजी का सर्वोच्च स्थान है। इन्हें भारतीय स्वराज्य का पितामह कहा जाता है। कांग्रेस की स्थापना के पहले भी 40 वर्ष तक वे भारत में सुसंगठित सार्वजनिक जीवन के निर्माण में लगे रहे। कांग्रेस की स्थापना के बाद पूरे 21 वर्ष तक वे इस महान् संस्था की सेवा करते रहे।

दादाभाई नौरोजी का जन्म बम्बई में 4 सितम्बर सन् 1825 ई. में एक प्रतिष्ठित पारसी कुल में हुआ। जब वे 4 वर्ष के थे तब ही उनके पिताश्री यह संसार छोड़ चुके थे। अतः उनकी शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध उनकी माता ने किया। अपनी प्रखर प्रतिभा के कारण शिक्षा समाप्त कर वे बम्बई में ही प्रोफेसर के रूप में काम करने लगे। अध्यापन कार्य के साथ ही वे समाज सेवा के कार्यों में पूरी रुचि लेने लगे। समाज में नैतिक सदाचार की स्थापना हो और जागृति आये, इस उद्देश्य से उन्होंने कितनी ही संस्थाओं की स्थापना की। एक

गुजराती साप्ताहिक पत्र का संपादन कर आपने निःस्वार्थ देश सेवा की भावना लोगों में भरी।

1855 ई. में आप अध्यापन कार्य छोड़कर व्यापारिक उद्देश्यों के लिए इंग्लैण्ड गए। वहाँ स्वतंत्र देश में पहुँचते ही अपने देश की गरीबी और पराधीनता का उन्हें अनुभव हुआ। तभी से वे स्वदेश की गरीबी दूर करने के लिए स्वराज्य को आवश्यक मानने लग गए। लंदन में भारतीय पक्ष को उजागर करने के लिए 'लंदन इण्डियन सोसाइटी' और 'ईस्ट इण्डिया एसोसियेशन' नामक दो संस्थाएँ आपने स्थापित कीं। लन्दन में ही अध्ययनरत भारतीय युवक उमेशचन्द्र बनर्जी, मनमोहन घोष, फिरोजशाह मेहता आदि दादा भाई के नेतृत्व में भारतीय हितों का प्रचार करने लगे।



दादाभाई नौरोजी

दादा भाई नौरोजी ने इंग्लैण्ड के अनेक स्थानों का भ्रमण किया और भारतीय पक्ष को रखने के लिए अनेक सभाओं में भाषण दिए। अनेक पत्र पत्रिकाओं में इस सम्बन्ध में लेख लिखे। इन सभी का उद्देश्य था कि भारत की गरीबी व ब्रिटिश नौकरशाही के अत्याचारों की जानकारी स्वाधीन चेता इंग्लैण्ड के लोगों को हो जाए।

समय-समय पर उनको भारत भी आना पड़ता था। कांग्रेस की स्थापना होने पर वे सहर्ष इसमें शामिल हो गए। सन् 1886 ई. में कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गए। आप भारतीय राजनीति में इतने लोकप्रिय हो गए थे कि 1893 ई. तथा 1906 ई. के कांग्रेस अधिवेशनों में भी आप सभापति के पद पर आसीन हुए।

भारत में ही नहीं इंग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन में दादा भाई का पूरा सम्मान था। वे 1892 ई. में इंग्लैण्ड की संसद के सदस्य भी चुने गए। इसका उद्देश्य भी यही था कि इंग्लैण्ड की संसद में भारत में अंग्रेजी राज्य के काले कारनामों का पर्दाफाश किया जाए।

संक्षेप में दादा भाई का पूरा जीवन अपने देश की उन्नति में लगा रहा। कांग्रेस के तो वे 'वृद्ध पितामह' कहे जाते हैं। उन्होंने ही सबसे पहले देशवासियों

को स्वराज्य का महत्त्व समझाया। ब्रिटिश राज की आर्थिक लूट से होने वाली भारत की दरिद्रता को सबसे पहले उन्होंने ही दुनियाँ के सामने रखा।

30 जून, 1917 ई. को 92 वर्ष की अवस्था में बम्बई के निकट अपने निवास स्थान पर उन्होंने देह त्याग दी, परन्तु वे भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में हमेशा के लिए अमर हो गए। उनकी त्यागमय देश सेवा से ओत-प्रोत जीवन युगों-युगों तक राष्ट्र को दिव्य प्रेरणा देता रहेगा। उनकी सेवाओं से राष्ट्र कभी उऋण नहीं हो सकता।

महादेव गोविन्द रानाडे :

महादेव गोविन्द रानाडे एक महान् समाज सुधारक तथा उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने महाराष्ट्र में एक नवीन चेतना फैलाई और वैध राजनीतिक आन्दोलन को जन्म दिया। लोकमान्य तिलक ने उनके विषय में कहा था— "उस समय पूना की शिथिलता दूर करने में उनके द्वारा स्थापित सार्वजनिक सभा ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके कारण ही "पूना बम्बई प्रान्त की बौद्धिक व राजनीतिक राजधानी बन गया।"


महादेव गोविन्द रानाडे

रानाडे अत्यन्त मेधावी, वीर, परिश्रमी और बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे गंभीर विचारक तथा उत्साही देशभक्त थे। बम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के कारण आप नियमानुसार कांग्रेस के सदस्य तो नहीं बने, परन्तु कांग्रेस के प्रमुख सूत्रधारों में आपकी गिनती की जाती है। इस संस्था के नीति निर्धारण में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

जस्टिस रानाडे रचनात्मक कार्यों में अत्यधिक रुचि रखते थे। प्लेग महामारी के समय आपने देशवासियों की हर प्रकार से सेवा की। 15 वर्ष तक आप समाज सुधार तथा कांग्रेस को मजबूत बनाने में लगे रहे। 1901 ई. में उनके परलोकवास से सरकारी तथा कांग्रेसी क्षेत्रों में गहरा शोक छा गया।

रानाडे बहुत ही विशाल हृदय के उच्च कोटि के मानव थे। क्षमा वीरस्य भूषणम् के अनुसार वे कभी भी उत्तेजित नहीं हुए। वे महान् शिक्षाविद् थे। अनेक

नवयुवक उनके चरणों में बैठकर उनके जीवन से शिक्षा प्राप्त करते थे। उनकी मान्यता थी कि समाज सुधार कांग्रेस का मुख्य कार्य होना चाहिए। 1895 ई. के पूना अधिवेशन में आपने इस तथ्य को बल प्रदान किया। समाज सुधारक देशभक्त के साथ वे गंभीर अर्थशास्त्री तथा इतिहासविद् थे। उनके ग्रंथ 'महाराष्ट्र सत्ता का उत्थान' स्वतन्त्रता की भावना उभारने में महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। भारतीय अर्थशास्त्र के तो वे अधिकृत ज्ञाता थे।

रानाडे के जीवन का राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि पूज्य बापू ने भी कांग्रेस के कार्यक्रमों में समाज सुधार को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। गोपालकृष्ण गोखले तो आपके प्रिय शिष्यों में से थे। आगे चलकर गोखले के जीवन से बापू ने बहुत अधिक प्रेरणा ली। इस तरह यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि रानाडे गाँधीजी के नैनिक गुरु थे। उनके त्यागमय जीवन को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

गोपाल गणेश आगरकर :

महाराष्ट्र में जिन महापुरुषों ने राजनीतिक व सामाजिक अभ्युदय में सबसे अधिक प्रमुखता से भाग लिया, उनमें गोपाल गणेश आगरकर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रारम्भ में आप लोकमान्य तिलक के सहयोगी थे। स्वराज्य प्राप्ति के विषय में दोनों के एक से विचार थे। दोनों को विदेशी सत्ता से होने वाले राष्ट्रीय पतन से बड़ा दुःख था, परन्तु कुछ विषयों में दोनों में मतभेद था। लोकमान्य तिलक विशुद्ध भारतीय संस्कृति के पक्ष में थे और वे उसी के आधार पर स्वराज्य का भवन खड़ा करना चाहते थे। आगरकर भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक होते हुए भी पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क से भारतीयों को अछूता न रखे जाने में थे। उनका विचार था कि अन्धानुकरण न करके हर विषय पर तर्क बुद्धि से विचार किया जाए।

आगरकर उच्चकोटि के समाज सुधारक थे। 1888 ई. के पहले वे 'केसरी' पत्र के संपादक थे। उस समय उन्होंने प्रगतिशील राष्ट्रीयता और समाज सुधार के लिए जोरदार आवाज उठाई थी। 1880 ई. में उन्होंने 'सुधारक' नामक अपना पत्र निकाला। उसमें समाज सुधार पर गंभीर एवं जोरदार लेख प्रकाशित होते थे। स्त्री पुरुषों की समानता, स्त्रियों की उच्च शिक्षा, प्रेम विवाह, विधवा विवाह, अछूतोद्धार आदि विषयों पर आपने जोरदार लेखनी चलाई। आगरकर की प्रबल इच्छा थी कि हमारा राष्ट्र एक महान् राष्ट्र हो और अन्य देश उसे आदर के साथ देखें।

संक्षेप में आगरकर देश के उन महान् सपूतों में से एक थे जिन्होंने देश को आगे बढ़ाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया। आर.जी. प्रधान ने अपनी पुस्तक

'स्वराज्य के लिए संघर्ष' में लिखा है कि दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा महाराष्ट्र समाज सुधार के क्षेत्र में बहुत आगे था। इसका श्रेय आगरकर के प्रगतिशील लेखों को है। आगरकर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में बुद्धिवादी तथा प्रगतिवादी तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते थे।

सर फिरोजशाह मेहता :

दादा भाई नौरोजी अपने इंग्लैण्ड प्रवास के समय भारतीय गरीबी और अत्याचारों का परिचय इंग्लैण्ड वासियों को दे रहे थे, तब फिरोजशाह इंग्लैण्ड में अध्ययन कर रहे थे। वहीं पर उनका सम्पर्क दादा भाई से हुआ और वहाँ ही उनके कार्यों में वे हाथ बँटाने लगे। देश की कंगाली को दूर करने के लिए स्वराज्य अत्यन्त आवश्यक है की शिक्षा उनको इंग्लैण्ड में दादा भाई नौरोजी से ही मिली थी।

प्रतिभाशाली यह पारसी नवयुवक भारत आते ही देश सेवा के कार्यों में लग गए। सरकार तथा जनता दोनों इनका बड़ा सम्मान करती थी। इनके चरित्र की मुख्य विशेषता यह थी कि उच्चकुल के सम्पन्न व्यक्ति के साथ-साथ वे गंभीर विद्वान् तथा सेवा-भावी थे। कांग्रेस की स्थापना एवं उसकी नीति निर्धारण में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

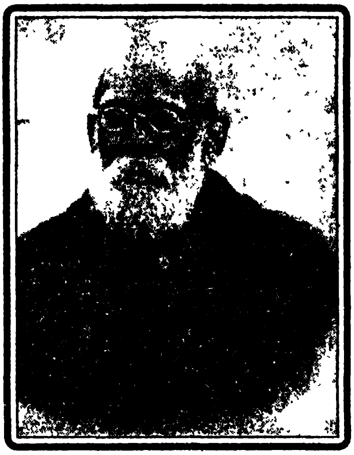
कांग्रेस के छठे कलकत्ता अधिवेशन 1890 ई. में आप कांग्रेस के अध्यक्ष बनाए गए। इस अधिवेशन में कांग्रेस के प्रतिष्ठित सदस्यों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि जन साधारण के कष्टों को भी सरकार के सामने रखा जाना चाहिए। उस समय तक कांग्रेस केवल शिक्षित वर्ग की संस्था ही मानी जाती थी। जन साधारण की सेवा की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए, यह प्रेरणा देने वाले फिरोजशाह मेहता ही थे। संक्षेप में उन्होंने कांग्रेस की नीतियों को व्यापक रूप प्रदान किया।

कई वर्षों तक सर फिरोजशाह मेहता कांग्रेस के प्रमुख कर्णधार बने रहे। अनेक समितियों, शिष्ट मण्डलों तथा प्रतिनिधि मण्डलों का आप नेतृत्व करते रहे। 1907 ई. में सूरत में आपने नरम दल का नेतृत्व किया।

सर फिरोजशाह वैध आन्दोलन में विश्वास करते थे। उनका विश्वास सरकारी अधिकारियों को समझाकर, देश के लिए न्याय व सुविधा प्राप्त करने में था। 1909 ई. में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के लिए आप सभापति चुने गए थे, परन्तु किसी संस्था में नेतृत्व को लेकर परस्पर कटुता हो और इस कारण देश सेवा के कार्य में बाधा पहुँचे, यह उन्हें पसन्द नहीं था। अतः अधिवेशन के 6 दिन पूर्व ही उन्होंने सभापति पद अस्वीकार कर दिया।

परन्तु देश तथा समाज सेवा के कार्य में वे बराबर भाग लेते रहे। कांग्रेस की राजनीति में भाग लेने के स्थान पर उन्होंने समाज सेवा के रचनात्मक कार्य में रुचि लेना अधिक श्रेयस्कर समझा और जीवन भर समाज सेवा में लगे रहे।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी :


सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी कांग्रेस के प्रमुख कर्णधारों में से एक थे। आपका जन्म 1848 ई. में कलकत्ता में हुआ। आपके पिता दुर्गा चरण बनर्जी कलकत्ता के प्रख्यात डॉक्टर थे। आपकी शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध हुआ। बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर सुरेन्द्रनाथ आई.सी.एस. करने इंग्लैण्ड गए। वहाँ से लौटने के बाद वे सिलहट (आसाम) में मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए, परन्तु गोरे अधिकारियों के द्वेष के कारण उन्हें पद छोड़ना पड़ा। बाद में वे प्रोफेसर बन गए।

अध्यापन के साथ-साथ वे अपने विद्यार्थियों में स्वदेश-प्रेम की भावना पैदा करने लगे। अपनी असाधारण प्रतिभा व वक्तृत्व शक्ति के कारण वे शीघ्र ही कलकत्ता के शिक्षित समाज में लोकप्रिय हो गए। कुछ उत्साही जन सेवकों के सहयोग से इण्डियन एसोसियेशन नामक संस्था स्थापित की। इण्डियन नेशनल कान्फ्रेंस के माध्यम से उन्होंने देश के सभी प्रान्तों के प्रतिनिधियों का राजनैतिक सम्मेलन बुलाया। इस तरह से उन्होंने कांग्रेस के पहले दो अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाकर देश को राजनीतिक एकता में बाँधने का पूरा प्रयास किया। उनके देशव्यापी दौरे से जन-साधारण में राजनीतिक चेतना का संचार हुआ।

कांग्रेस की स्थापना के साथ ही सुरेन्द्रनाथ बनर्जी उसे सक्रिय सहयोग देने लगे। बंगाल के वे ही प्रमुख नेता थे। पूना कांग्रेस के 11वें अधिवेशन के सभापति का सम्मान भी उनको मिला। इसके पहले वे 'बंगाली' पत्र के संपादन का भी भार उठा चुके थे। अदालत के अन्याय व दोषपूर्ण काले कानूनों की वे सदा धज्जियाँ उड़ाते थे। इसके कारण उनको दो माह का कारावास भी भोगना पड़ा।

देश में बंग-बंग विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व कर बनर्जी ने देश सेवा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उनके आह्वान पर अनेकों विद्यार्थी इस आन्दोलन में कूद पड़े। उन्होंने सर्वप्रथम स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने तथा विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार का आन्दोलन चलाया जो आगे चलकर भारतीय राजनीति का

महान् शस्त्र सिद्ध हुआ। पुलिस की लाठी तथा संगीनों के सामने 'वन्देमातरम्' की सर्वप्रथम सार्वजनिक घोषणा उन्होंने ही की थी।

बंग-भंग आन्दोलन के समय उनकी सिंह दहाड़ से सारा बंगाल जाग उठा था। वे बंगाल के शेर कहे जाने लगे। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वास्तव में वे बंगाल के हृदय सम्राट थे। सर हैनरी कॉटन ने उनके व्यक्तित्व की रूपरेखा खींचते हुए लिखा है—"मुल्तान से लेकर चटगाँव तक सुरेन्द्रनाथ बनर्जी अपनी वाक्शक्ति से एक विद्रोह खड़ा कर सकते थे तथा उसे दबा सकते थे। दो बार वे कांग्रेस के अध्यक्ष हुए और दोनों बार उन्होंने अपनी स्मरण शक्ति का अद्भुत चमत्कार दिखाया। दोनों बार उनका भाषण काफी लम्बा था। भाषण करते समय उन्होंने उसकी छपी हुई प्रति हाथ में नहीं ली, फिर भी उनके छपे हुए भाषण तथा मौखिक भाषण में एक शब्द का भी अन्तर नहीं था। भारत के कामों से वे चार बार इंग्लैण्ड गए और चारों बार उनके भाषणों की बहुत प्रशंसा हुई।"

विचारों से निर्भीक होते हुए भी वे कांग्रेस के नरम दल के नेता बने रहे। कांग्रेस से पृथक् होकर जब नरम दल के नेताओं ने 1918 ई. में 'लिबरल फेडरेशन' की स्थापना की तो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी अधिवेशन के सभापति बनाए गए।

मॉण्टेग्यु चेम्सफोर्ड सुधार (1919 ई.) को नरम दल के नेताओं ने स्वीकार कर लिया था। उसके अनुसार उन्होंने बंगाल की प्रान्तीय कौंसिल में मंत्री पद स्वीकार कर लिया। सन् 1921 ई. में सरकार ने उनको 'सर' की उपाधि से सुशोभित किया।

6 अगस्त, सन् 1925 ई. को सतत्तर वर्ष की अवस्था में उनका देहावसान हो गया। उनकी प्रतिभा व देशभक्ति सदा स्मरणीय रहेगी।

मदन मोहन मालवीय :

जिन महान् आत्माओं ने अपना सारा जीवन अपने प्रिय देश के लिए समर्पित कर दिया, उनमें महामना पं. मदन मोहन मालवीय का आसन बहुत ऊँचा है। महात्मा गाँधी उन्हें अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और उन्हें अपना बड़ा भाई मानते थे।

मालवीय जी का जीवन त्याग, तपश्चर्या और देश सेवा का एक लम्बा इतिहास है। दया, सौजन्य, कोमल भाव और मधुरता आदि महान् गुण तो उनके जीवन के अंग बन गए थे। गरीब से गरीब आदमी की उन तक पहुँच थी और वे उनकी सेवा के लिए तत्पर रहते थे। वास्तव में वे देश के लिए जिए और देश के लिए मरे।

महान् देशभक्त मालवीय जी का जन्म 25 दिसम्बर, 1861 ई. को तीर्थराज प्रयाग में हुआ था। उनके पिता पं. ब्रजनाथ कथावाचक तथा ईश्वर

भक्त थे। पिता की ईश्वर भक्ति व भारतीय संस्कृति से प्रेम का प्रभाव मालवीय जी पर पड़े बिना नहीं रहा। प्रारम्भ में मालवीय जी को संस्कृत शिक्षा दिलवाई गई। अतः सनातन धर्म व हिन्दू संस्कारों का उनके जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ा। आचार-विचार में संयमी होते हुए भी वे विचारों में बड़े उदार थे। सादा जीवन व उच्च विचार उनके चरित्र की प्रमुख विशेषता थी।



मदन मोहन मालवीय

मालवीय जी बड़े आदर्शवादी तथा अपनी लगन के पक्के थे। बनारस में हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना कर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि सच्ची लगन के सामने कुछ भी असंभव नहीं है।

मालवीय जी ने यह अनुभव किया कि भारतीय सभ्यता व संस्कृति की रक्षा के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता आवश्यक है। अतः वे पूर्ण मनोवेग से स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े। अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा व उच्च चरित्र के कारण राजनीतिक क्षेत्र में भी वे खूब चमके। वर्षों तक वे वायसराय की इम्पीरियल कौंसिल के सदस्य रहे। 1908 ई. में आप लाहौर कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। इसके बाद पुनः 1918 ई. में दिल्ली अधिवेशन के अध्यक्ष बनाए गए। इस अधिवेशन के अध्यक्ष पद से साम्प्रदायिक एकता के लिए मर्मस्पर्शी भाषण दिया, जिसे सुनकर पाण्डाल में उपस्थित लोग द्रवीभूत हो गए और उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली।

जलियाँवाले बाग के हत्याकण्ड का आपने खुलकर विरोध किया और वायसराय की इम्पीरियल कौंसिल में लगातार पाँच घंटे बोलकर ब्रिटिश शासन की खुलकर निन्दा की। महात्मा गाँधी के साथ आप गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने इंग्लैण्ड गए। भारतीय राजनीति में वे ही एक मात्र ऐसे नेता थे जिनका देश के सभी वर्गों पर अमिट प्रभाव था। कांग्रेस के प्रमुख कर्णधार होने के साथ-साथ वे हिन्दू महासभा के संस्थापक भी थे। राजा महाराजा व सम्पन्न लोग उनका गुरु की भाँति आदर करते थे। सरकारी अधिकारी भी उन्हें बहुत ही आदर की दृष्टि से देखते थे। सत्याग्रह आन्दोलन के समय सरकार उनको गिरफ्तार करने से कतराती रहती थी। उनका प्रभाव सर्वव्यापी था।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि "मालवीय जी से मतभेद रखने वाले लोग भी उनके साधु चरित्र के कारण उन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।" महात्मा गाँधी और मालवीय जी में राजनैतिक मतभेद था, परन्तु मालवीय जी की महान् सेवाओं, उनके साधु जीवन तथा उनके अलौकिक त्याग की महात्मा जी बड़ी प्रशंसा किया करते थे और उन्हें अपना बड़ा भाई मानते थे।

मालवीय जी हिन्दी के प्रमुख समर्थक थे। वे दो बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बने। उनका स्पष्ट मत था कि हिन्दी ही देश की राष्ट्र भाषा होने के योग्य है।

मालवीय जी ने आजीवन भारत की स्वतन्त्रता व भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए भागीरथ प्रयत्न किए। उन्होंने अनेक संस्थाओं का निर्माण किया। इतना ही नहीं वे स्वयं एक चलती फिरती संस्था थे।

अत्यधिक परिश्रम व निरन्तर अध्यवसाय से मालवीय जी का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगा। अन्त में 12 नवम्बर 1946 ई. को भारतवासियों को बिलखते छोड़ कर स्वर्ग सिधार गए। इस कर्मयोगी की सेवा से राष्ट्र कभी उऋण नहीं हो सकता।

गोपालकृष्ण गोखले :

कांग्रेस के नरम दल के नेताओं में गोपालकृष्ण गोखले का नाम सर्वोपरि है। महात्मा गाँधी माननीय गोपालकृष्ण गोखले को अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में गोखले जी की महान् देश सेवाओं की बहुत प्रशंसा की है।

गोखले जी का जन्म 9 मई, 1866 ई. को महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले के चिलूण तालुके के काटलुक गाँव में हुआ। जब वे तेरह वर्ष के थे, उनके पिता कृष्णराव का देहान्त हो गया। घर का सारा भार उनके बड़े भाई पर था। घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय थी। रोशनी के लिए भी पैसे नहीं थे। उनको सड़क पर लगी बतियों के नीचे बैठकर पढ़ना पड़ा। अपनी प्रखर बुद्धि के कारण 18 वर्ष की आयु में ही बी.ए. पास करके अध्यापक हो गए। यद्यपि उनकी छात्रावस्था निर्धनता में बीती, परन्तु अलौकिक प्रतिभा ने शीघ्र ही अपना प्रकाश फैलाना शुरू कर दिया। निरन्तर अध्ययन से उन्होंने कानून की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। आप चाहते तो अपनी योग्यता के आधार पर ऊँचे पद पर आसीन होकर सुखी जीवन व्यतीत कर सकते थे, परन्तु आपने सादा जीवन और उच्च विचार के सिद्धान्त को अपनाया और आजीवन त्याग व तपस्या से देश सेवा में लगे रहे।

जीवन के प्रारम्भिक 20 वर्ष आपने पूना के फर्ग्यूशन कॉलेज की सेवा में लगा दिए। इस महान् सेवा के लिए केवल नाम मात्र के लिए 75 रुपये

मासिक लेते थे। गोखले महाराज के कारण इस कॉलेज की बहुत ख्याति फैली। आपने इस कॉलेज के लिए बड़ी लगन व परिश्रम से चन्दा एकत्रित किया। यहीं पर बाल गंगाधर तिलक महोदय से आपका परिचय हुआ और साथ-साथ काम भी किया, परन्तु आप प्रकृति से बहुत विनम्र और शांत स्वभाव के थे। अत: इनको अपनी प्रकृति के अनुकूल महादेव गोविन्द रानाडे जैसे शांत स्वभाव वाले महान् गुरु मिल गए। श्रीनिवास शास्त्री ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'गोपालकृष्ण गोखले का जीवन' में लिखा है कि "चौदह वर्ष तक गोखले को रानाडे के पैरों में बैठकर संसार की महान् वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करने का और उनके अनुभव, ज्ञान और उद्योग के उदाहरण से लाभान्वित होने का असाधारण अवसर प्राप्त हुआ।"



गोपाल कृष्ण गोखले

रानाडे की प्रेरणा से गोखले ने पूना की सार्वजनिक सभा का मंत्रित्व स्वीकार किया और वे इस सभा से निकलने वाले त्रैमासिक पत्र का संपादन करने लगे। इसके साथ ही आप आगरकर के 'सुधारक' पत्र में भी समाज सेवा पर लेख लिखने लगे। इसके दो साल बाद ही गोखले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के महासचिव बन गए। दिन प्रतिदिन गोखले जी की प्रतिभा चमकने लगी। उन्हीं दिनों इंग्लैण्ड में लॉर्ड वेल्बी की अध्यक्षता में भारत की आर्थिक स्थिति की जाँच करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति हुई। इस आयोग के सामने गवाही देने के लिए बंगाल से मि. सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बम्बई से मि. वाछा और मद्रास से मि. सुब्रह्मण्यम् अय्यर थे। रानाडे और जोशी ने पूना की ओर से नवयुवक गोखले को गवाही देने के लिए लन्दन भेजा। उन्होंने भारत के आर्थिक हित को ध्यान में रखते हुए जिस अपूर्व योग्यता से गवाही दी, इसका लंदन के राजनीतिक क्षेत्र में बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। सर विलियम वेडरबर्न महोदय ने स्वयं गोखले के निवास स्थान पर आकर बहुत धन्यवाद दिया और कहा कि "आपने उत्तम ढंग से भारतीय हितों की रक्षा की। आपने अपने देश की जो महान् सेवा की है, उसके लिए मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ। हमारी अल्पमत की रिपोर्ट आपकी गवाही पर ही जीवित रहेगी।"

कमीशन के अध्यक्ष लॉर्ड वेल्बी और वयोवृद्ध दादा भाई नौरोजी भी गोखले की असाधारण बुद्धिमत्तापूर्ण गवाही से अत्यन्त प्रसन्न हुए। मि. कैन नामक एक अंग्रेज सज्जन ने भी आयोग के सामने भारत के हित को बहुत कुशलता से रखने के लिए पत्र लिखकर धन्यवाद दिया। गोखले ने भारत की आर्थिक दुर्दशा के लिए इंग्लैण्ड के शासन को उत्तरदायी ठहराया और यह भी कहा कि होम चार्जेज आदि के नाम पर करोड़ों रुपये प्रतिवर्ष इंग्लैण्ड आ रहा है।

कांग्रेस में आप सबसे पहले 1889 ई. में शामिल हुए थे। इसके बाद तो कांग्रेस में उनका प्रभाव बढ़ता ही गया। प्रारम्भ में उन पर लोकमान्य तिलक के व्यक्तित्व का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। वे मराठा में लेख लिखने लगे और तिलक व आगरकर की प्रेरणा से वकालत का मोह छोड़कर 'दक्कन एज्युकेशन सोसाइटी' में अध्यापन का कार्य करने लगे। तिलक व आगरकर के साथ वे कई वर्षों तक इस संस्था की सेवा करते रहे। बाद में रानाडे महोदय के प्रभाव के कारण कांग्रेस में नरमदल की नीति का अनुसरण करने लगे। 1905 ई. में काशी के इक्कीसवें अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गए। इससे पहले वे 1899 ई. में बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य चुन लिए गए थे। सर फिरोजशाह मेहता के रिक्त स्थान पर आप वायसराय की 'लेजिस्लेटिव कौंसिल' के सदस्य चुने गए और आजीवन उसके सदस्य रहे।

वायसराय की कौंसिल में अत्याचारी कानून व भारी करों का उन्होंने प्रभावपूर्ण ढंग से विरोध किया। कौंसिल में अपनी सदस्यता के प्रारम्भिक चार वर्षों तक वे भारतीय हितों के लिए प्रायः अकेले ही युद्ध करते रहे। स्वभावतः एक हठी साम्राज्यवादी तथा निर्भीक देशभक्त के पारस्परिक सम्बन्ध सदा स्नेहपूर्ण रहना संभव नहीं था, परन्तु लॉर्ड कर्जन के हृदय में उनके प्रति अत्यधिक सम्मान था। एक बार उन्होंने मि. गोखले को पत्र में लिखा—''परमात्मा ने आपको असाधारण योग्यता प्रदान की है और आपने उसे समग्र रूप से देश की सेवा में अर्पित कर दिया।''

वास्तव में माननीय गोखले एक आदर्श देशभक्त थे। देश के कार्य से उन्हें कितनी ही बार इंग्लैण्ड जाना पड़ा। वहाँ के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं पर उनके विचारों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। 'नेशन' पत्र के संपादक सिंघम ने कहा था कि ''गोखले की बराबरी का बुद्धिमान राजनीतिज्ञ कोई नहीं है। वास्तव में वे मि. एस्किन से भी महान् थे।''

देश सेवा के अनेक कार्यों के अतिरिक्त गोखले जी ने प्रयाग में 'भारत सेवक समाज' की स्थापना की जिसमें माननीय श्रीनिवास शास्त्री तथा पं. हृदयनाथ कुंजरू जैसे महान् देश-भक्त शामिल हुए।

इस समिति के उद्घाटन के अवसर पर गोखले महोदय ने जो कुछ कहा था वह उनकी देश-प्रेम की भावना का उत्कृष्ट उदाहरण है—"अब समय आ गया है कि हमारे देशवासी यथेष्ठ संख्या में देश के कार्य में उसी भावना से लग जाएँ जिस भावना से धर्म का कार्य किया जाता है। देश प्रेम से हमारा हृदय इस प्रकार भर जाना चाहिए कि उसकी तुलना में और कुछ भी वस्तु तुच्छ लगने लगे। हमें उस आनन्द की खोज करनी चाहिए जो मातृभूमि की सेवा में अपने आपको खपा देने से प्राप्त होता है।"

महात्मा गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिए जो महान् आन्दोलन चलाया था उसमें गोखले जी ने हार्दिक सहयोग दिया था था। महात्मा गाँधी के जीवन व कार्यों पर गोखले जी का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वे गोखले जी को अपना राजनैतिक गुरु मानते थे। उनकी सत्यनिष्ठा, सादगी और लोकोपकार की भावना को महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में उतारा।

19 फरवरी, 1915 ई. को केवल 49 वर्ष की अवस्था में गोखले जी परलोकवासी हुए। श्मशान भूमि में लोकमान्य तिलक ने उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था— "सचमुच में वे भारत के हीरे, महाराष्ट्र के रत्न और देशभक्तों के शिरोमणि थे। हमें उनकी देशभक्ति का अनुसरण करना है।"

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक :



बाल गंगाधर तिलक

महात्मा गाँधी के पहले राष्ट्र जीवन में तिलक का स्थान सर्वोच्च था। वे राष्ट्र के हृदय सम्राट थे। उनका सारा जीवन अपने प्रिय राष्ट्र को स्वतंत्र कराने में व्यतीत हुआ। महामना मालवीय जी ने 'तिलक दर्शन' नामक ग्रंथ की भूमिका में लोकमान्य तिलक का परिचय देते हुए लिखा है कि "भारत की सर्व साधारण जनता में जो मान और महत्त्व बाल गंगाधर तिलक को प्राप्त हुआ वह किसी दूसरे नेता को प्राप्त नहीं हुआ। इस मान सम्मान का मुख्य आधार उनकी गंभीर स्वार्थ रहित, भय रहित, धैर्य और उत्साहयुक्त अविचल देशभक्ति थी।"

इस महान् देशभक्त व स्वतन्त्रता के अनन्य पुजारी का जन्म महाराष्ट्र के कोंकण प्रदेश में रत्नागिरि नामक स्थान पर 23 जुलाई, सन् 1856 ई. को हुआ।

इनके पिता गंगाधर राव स्थानीय पाठशाला में अध्यापक थे। तिलक बचपन से ही तर्कशील एवं प्रचण्ड मनोवृत्ति के थे। बी.ए. एल-एल.बी. परीक्षा उत्तीर्ण कर वकालत करने के अधिकारी होने पर भी वे देश सेवा के लिए त्याग व तपस्या का जीवन अपनाने के लिए अग्रसर हुए।

देश की पराधीनता लोकमान्य जी को सदा व्याकुल करती रहती थी। अत: "स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" नारा देकर उन्होंने नवयुवकों में अद्भुत जोश का संचार किया। इसके लिए उन्होंने 1891 ई. में 'मराठा' व 'केसरी' नामक पत्रों का संपादन शुरू किया। 'मराठा' और 'केसरी' के लेख बड़े, प्रौढ़ व निडर होते थे। ब्रिटिश शासन के शोषण व अत्याचारों के विरुद्ध इन पत्रों में आग उगली जाती थी। नरम दल के कांग्रेसी नेताओं के विचार उनको पसन्द नहीं थे। वे प्रार्थना व गिड़गिड़ा कर अधिकार लेने में विश्वास नहीं रखते थे। वे कहते थे कि जो वस्तु हमारी है, उसे दूसरों से माँगने में क्या तुक हैं? वे कहा करते थे कि अपने ही घर का प्रबन्ध करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। कोई दूसरा अधिकारी तब तक नहीं हो सकता जब तक हम नाबालिक या पागल न हों। स्वराज्य के लिए प्रयत्न करना ईश्वर के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना है। स्वराज्य प्राप्त करने की हमारी इच्छा को कोई रोक नहीं सकता।"

बाल गंगाधर तिलक के निर्भीक व क्रान्तिकारी विचारों से नौकरशाही घबराने लगी और उनकी स्वतन्त्रता की भावना उनकी आँखों में खटकने लगी। ब्रिटिश शासक तिलक महाराज को पकड़ने के लिए आतुर हो उठा। 27 जून, 1897 ई. में प्लेग के कुप्रबन्ध के कारण प्लेग कमेटी का अध्यक्ष 'रैण्ड' की हत्या चापेपकर नामक एक महाराष्ट्रीयन युवक ने कर दी। इस पर तिलक महाराज पर नवयुवकों को भड़काने का आरोप लगा कर 27 जुलाई, 1897 ई. को उनको गिरफ्तार कर लिया और राजद्रोह के अपराध में उन्हें 18 माह की सजा दी गई।

भारत के राजनीतिक इतिहास में यह घटना बड़ी महत्त्वपूर्ण समझी जाने लगी। नवयुवकों के तो तिलक मानों हृदय सम्राट हो गए। निर्दोष होते हुए भी जिस अविचल धैर्य और शांति के साथ तिलक ने इस विपत्ति का सामना किया, उससे उनका प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया।

जेल से छूटते ही लोकमान्य तिलक पुन: नवयुवकों को संगठित करने में लग गए। महाराष्ट्र में 'गणेश उत्सव' और 'शिवाजी जन्मोत्सव' बनाने की परिपाटी चला कर उन्होंने नवयुवकों में नव-उत्साह का संचार किया। कांग्रेस प्रार्थना करने व ब्रिटिश शासन के सामने गिड़गिड़ाने की नीति छोड़ दे, इसके लिए उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया। अन्त में वे कांग्रेस में गरम दल के सर्वमान्य नेता बन गए।

तिलक के प्रभाव एवं लोकप्रियता को देख कर ब्रिटिश शासन उनको अनेक झूँठे आरोपों में फँसाने का कुचक्र चलाने लगा। 'ताई' महाराज की हत्या के आरोप में उन पर

मुकदमा चलाया गया, परन्तु अदालत ने उन्हें निर्दोष घोषित कर दिया। तीसरी बार 1908 ई. में उन पर समाचार अधिनियम (अपराध भड़काना) के अन्तर्गत राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और उन्हें 6 वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। तिलक की गिरफ्तारी के विरोध में 13 से 28 जुलाई तक सम्पूर्ण बम्बई प्रान्त में जन प्रदर्शन व विद्रोह का ताँता लग गया। जन विरोध को देखकर 6 वर्ष के कठोर कारावास को साधारण कारावास में बदलकर उन्हें देश से निष्कासित कर, माण्डले (ब्रह्मा) जेल भेज दिया, परन्तु धीर वीर तिलक इस सजा से विचलित नहीं हुए। तिलक की गिरफ्तारी और उसके बाद जन आक्रोश का मूल्याँकन करते हुए लेनिन ने अपने 'एशिया का जागरण' नामक लेख संग्रह में पृष्ठ नौ पर लिखा है— ''ब्रिटिश गीदड़ों द्वारा भारतीय जनवादी तिलक को सुनाई गई कुख्यात सजा के विरोध में बम्बई में जबरदस्त विरोध हुआ। ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स में पूछे गए सवाल से पता चला कि निर्णय के समय भारतीय जूरियों एवं न्यायाधीश ने तिलक को निर्दोष समझकर उन्हें बरी कर देने की राय दी थी, परन्तु सजा अंग्रेज जूरियों के वोट पर दी गई। पूँजी के गुलामों के इस निर्णय के विरोध में बम्बई की सड़कों पर जुलूस निकले और हड़ताल हो गई।''

माण्डले जेल में ही आपने 'भगवद् गीता रहस्य' नामक ग्रन्थ लिख कर अपने असामान्य पांडित्य का परिचय दिया। इससे स्वतन्त्रता सेनानियों में नवजीवन का संचार हुआ।

जेल से छूटते ही आप पुन: देश की आजादी के कार्य में लग गए। उनकी मान्यता थी कि हमें अंग्रेजों के झूँठे आश्वासनों में आकर आन्दोलन की गति धीमी नहीं करनी चाहिए। जब कांग्रेस के नरम पंथियों ने गाँधीजी के प्रभाव में आकर प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों की सहायता करने का प्रस्ताव कांग्रेस में पास करवा लिया तो तिलक महाराज ने इसका घोर विरोध किया। बाद में देशवासियों ने देखा कि तिलक जी का चिन्तन कितना सही था?

कांग्रेस की नरम नीतियों से तंग आकर लोकमान्य तिलक ने 'होम रूल लीग' की स्थापना की और होम रूल आन्दोलन में श्रीमती एनीबेसेन्ट के साथ सक्रिय हो गए। अनेक नवयुवक तिलक के अनुयायी हो गए। सारे देश का भ्रमण कर उन्होंने युवकों में देशभक्ति का अद्‌भुत संचार किया। उन्होंने कहा—''राष्ट्र के प्रति अपना कर्त्तव्य जो इस समय हमारे सामने है, इतना महान्, इतना जरूरी है कि मेरी अपेक्षा कहीं अधिक उत्साह और साहस से भारत माता के सब पुत्रों को एक होकर उसका पालन करना चाहिए। यह एक ऐसा कार्य है जिसे हम आगे के लिए नहीं टाल सकते। भारत माता हम में से प्रत्येक को पुकार-पुकार कर कह रही है— ''उठो, कमर कसो और काम में लग जाओ।''

''मेरा कर्त्तव्य है कि मैं आपसे प्रार्थना करूँ कि माता की इस पुकार पर आपस का समस्त मतभेद भुला कर राष्ट्रीय आदर्शों की प्रत्यक्ष मूर्ति बन जाओ।

माता के इस कार्य में न स्पर्धा है, न द्वेष है और न भय है। ईश्वर हमें हमारे उद्योगों का फल प्रदान करेगा। यदि इस सफलता को हम न भी प्राप्त कर सके तो यह निश्चय है कि भारत की भावी संतानें उसे अवश्य प्राप्त करेंगी।"

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि लोकमान्य तिलक में स्वराज्य प्राप्ति की कितनी तीव्र इच्छा थी। अपनी अलौकिक प्रतिभा व अपूर्व त्याग भावना से आपने भारत में स्वराज्य की भावनाओं का जोरदार प्रवाह बहा दिया था। लोकमान्य के कट्टर विरोधी सर हेवलेन टाइनचिरोल ने अपनी 'भारतीय अशांति' नामक पुस्तक में उनके बारे में लिखा है—"यदि भारतीय अशांति का कोई वास्तविक जनक होने का दावा कर सकता है तो वह बाल गंगाधर तिलक है।"

महात्मा गाँधी ने तिलक की प्रशंसा करते हुए लिखा था— "भारत का प्रेम लोकमान्य तिलक का श्वासोच्छ्वास था। उनका धैर्य कभी कम न हुआ और निराशा उनको छू तक नहीं गई। उनके अलौकिक गुणों को धारण करना ही उनका स्मारक है।"

श्री अरविन्द घोष ने तिलक जी को श्रद्धांजलि देते हुए कहा था—"उन्होंने बिन्दु का सिन्धु बनाया और टूटी-फूटी अपूर्ण सामग्री से स्वराज्य का एक विशाल भवन तैयार किया।"

सुप्रसिद्ध पत्रकार सर.सी.वाई. चिन्तामणी ने अपने 'भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष' नामक ग्रंथ में लिखा है—"हर हालत में वे भारत की स्वतन्त्रता के झण्डे को निर्भीकता से ऊँचा उठाए रहे। जिस ध्येय को उन्होंने अपना जीवन अर्पित कर दिया था उसी की पूर्ति में उन्होंने अपना जीवन पूरी तरह खपा दिया। इतिहासकारों को यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि वे उन मनुष्यों में से एक थे जिन्होंने अपने अदम्य साहस तथा आजीवन सेवा कार्य से भावी भारत की नींव रखी। किसी का उनसे कितना ही मतभेद क्यों न हो, कोई भी जो भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर विचार करेगा, बाल गंगाधर तिलक को अवश्य स्मरण करेगा और उन्हें नवीन भारत के राष्ट्र निर्माताओं में निःसन्देह बहुत ऊँचा स्थान देगा।"

इस महान् देशभक्त का 31 जुलाई, 1920 ई. को देहावसान हो गया। सारे भारत में शोक छा गया। सैकड़ों नगरों में हड़तालें व शोक प्रदर्शन हुए। एक अगस्त को इनकी शवयात्रा में 5 लाख व्यक्ति थे। अर्थी के साथ जो जुलूस था, वह कई मील लम्बा था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने इसमें प्रमुखता से भाग लिया था।

वास्तव में लोकमान्य तिलक जैसे अलौकिक महापुरुष सदियों में कहीं एकाध बार ही जन्म लेते हैं। भारत राष्ट्र उनकी सेवाओं से कभी उऋण नहीं हो सकता।

□□

इकाई 5

स्वतन्त्रता के लिए साँस्कृतिक जागरण

आपसी भेदभाव, अंधविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियों के रहते कोई भी राष्ट्र स्वतंत्र तथा सबल नहीं रह सकता। हमारी परतंत्रता का मुख्य कारण भी ये ही तत्त्व रहे हैं। अत: साँस्कृतिक जागरण व समाज सुधार के बिना स्वाधीनता के लिए उचित वातावरण बन ही नहीं सकता। स्वाधीनता के लिए लोगों में आत्मविश्वास तथा उत्साह का संचार आवश्यक है।

हिन्दुओं में साँस्कृतिक जागरण :

सदियों की पराधीनता से लोगों में हीनता की भावना घर कर गई थी। हीन भावना के कारण ही हम हमारे गौरवमय प्राचीन साँस्कृतिक धरातल को खो बैठे थे। अत: स्वतन्त्रता आन्दोलन को जानदार बनाने के लिए साँस्कृतिक पुनर्जागरण अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए तो तिलक महाराज ने स्वराज्य आन्दोलन को हमारे साँस्कृतिक पर्वों से जोड़ा था।

शिवाजी महाराज के स्वराज्य स्थापना के पहले समर्थ गुरु रामदास तथा संत तुकाराम ने महाराष्ट्र में अद्भुत उत्साह का संचार किया था। यही कारण था कि महाराष्ट्र के लोग अपने स्वराज्य के लिए मर मिटने को हरदम तैयार रहे। अत: आधुनिक युग में भी हमारे देवतुल्य ऋषि, महर्षि तथा समाज सुधारकों ने स्वतन्त्रता संग्राम के लिए उचित वातावरण बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इस सम्बन्ध में राजा राममोहन राय का उल्लेख सर्वप्रथम आता है। इनके बाद तो महर्षि दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, बंकिमचन्द्र चटर्जी, अरविन्द घोष, सुब्रह्मण्यम् भारती, स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरुषों ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को सशक्त बनाने में अपनी लेखनी तथा विचारों से महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इनके योगदान के उल्लेख बिना हमारे स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास अधूरा ही रहेगा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती :



दयानन्द सरस्वती

स्वामीजी का जन्म काठियावाड़ में मौरवी राज्य के टंकारा नामक छोटे से ग्राम में 1824 ई. में हुआ। आपका बचपन का नाम मूलशंकर था। पिता अंबाशंकर सनातनी ब्राह्मण थे। बालक मूलशंकर प्रारम्भ से ही प्रतिभावान तथा सजग बुद्धि के थे। शिवरात्रि के पर्व पर एक चूहे द्वारा शिवजी की मूर्ति पर चढ़ जाने की घटना ने उनके जीवन को ही बदल दिया और उनका विश्वास मूर्तिपूजा व रूढ़ियों वाले धर्म से उठ गया और वे सच्चे वैदिक धर्म की खोज में निकल पड़े। सच्चे गुरु की तलाश में उन्होंने हजारों मील की पैदल यात्रा की। अन्त में 36 वर्ष की आयु में उन्हें मथुरा में 80 वर्षीय गुरु विरजानन्द जी मिल गए। विरजानन्द जी ने वेदों की शिक्षा दी। गुरु दक्षिणा के रूप में गुरुजी ने यही कहा कि "तुम मेरी दी गई विद्या का प्रसार करो और अध:पतन की ओर जा रहे भारतीय समाज को अनेक बुराइयों से मुक्त कर सुन्दर व स्वस्थ बनाओ।"

स्वामीजी ने गुरु की आज्ञा का अक्षरश: पालन किया और वैदिक सभ्यता व संस्कृति का धुआँधार प्रचार करने लगे। मूर्ति पूजा तथा अनेक अंध-विश्वासों की उन्होंने खुलकर निन्दा की। एक ही ईश्वर निरंजन निराकार की उपासना का संदेश जन-जन तक पहुँचाया। भारत में फैले हुए असंख्य जाति भेदों के खिलाफ उन्होंने युद्ध घोषणा की। विधवा विवाह के पक्ष में जोरदार आवाज उठाकर उन्होंने एक महान् सुधार की नींव रखी। स्त्री शिक्षा को समाज व राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक बताया।

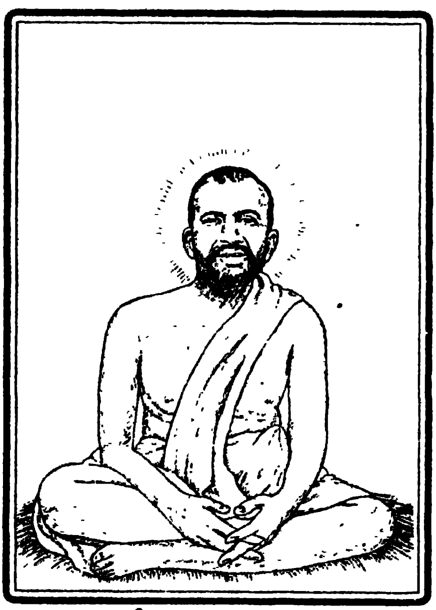
इन सभी समाज सुधारों का मूल उद्देश्य भारत में राष्ट्रीयता की आधारशिला रखकर, उस पर स्वराज्य का महल खड़ा करना था। उन्होंने स्पष्ट किया कि भारतवासी केवल सुराज्य ही नहीं चाहते, वरन् स्वराज्य चाहते हैं। स्वराज्य प्राप्त करना वैदिक संस्कृति का मूल उद्देश्य है। प्रत्येक देश के निवासियों का यह मूलभूत अधिकार है कि वे अपने देश का शासन स्वयं संचालित करें। इस तरह से स्वामीजी ने देश को सर्वप्रथम स्वराज्य का मूल मंत्र दिया। इसके अतिरिक्त अछूतोद्धार तथा पुरुष एवं स्त्रियों के समान अधिकार को राष्ट्रोन्नति के लिए आवश्यक बताया।

उपर्युक्त आदर्शों को मूर्त रूप देने के लिए स्वामीजी ने 1875 ई. में बम्बई में आर्य समाज नामक संस्था की स्थापना की, जिसके उद्देश्य वैदिक संस्कृति का

प्रचार, जाति भेदों का नाश कर कर्मानुसार वर्णाश्रम पद्धति की स्थापना, अछूतोद्धार तथा राष्ट्र में स्वराज्य की स्थापना करना आदि थे।

जिन सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों के कारण भारतवर्ष का पतन हुआ, उनको समूल नष्ट करने में स्वामीजी ने अपना पूरा जीवन अर्पित कर दिया। भारत में सामाजिक व धार्मिक क्रान्ति का शंखनाद कर एक ऐसा आधार तैयार किया जिस पर आज स्वराज्य की इमारत शान से खड़ी है। भारतवर्ष के राष्ट्र-निर्माताओं में स्वामीजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

16 अक्टूबर, 1886 ई. को स्वामीजी इस संसार से कूच कर गए, परन्तु समाज सुधार तथा राष्ट्रोत्थान के लिए जो उन्होंने महान् कार्य किए, उसे इतिहास गौरवशाली शब्दों में स्मरण करेगा। आगे चलकर आर्य समाज ने लाला लाजपतराय जैसे अनेक देशभक्त प्रदान किए, जिन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया।



स्वामी रामकृष्ण परमहंस

स्वामी रामकृष्ण परमहंस :

अंग्रेजी शासन ने देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता का तो अपहरण किया ही था, परन्तु हमारी सभ्यता व संस्कृति को नष्ट करने के प्रयासों में भी ब्रिटिश शासन पीछे नहीं रहा। लॉर्ड मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए यहाँ तक कह दिया था कि "हम ऐसे भारतीय नागरिक का निर्माण करना चाहते हैं जो शरीर से तो भारतीय रहे, परन्तु मन से वह पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति में रंग जाए।" अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से नवयुवक भारतीय संस्कृति को प्राय: भूलने लगे। ऐसी भयावह स्थिति से उबारने के लिए हमारे देश में ऐसी महान् आत्माओं का उदय हुआ जिन्होंने हमारी सभ्यता व संस्कृति को नष्ट होने से बचाया। इन्हीं महान् आत्माओं में स्वामी रामकृष्ण परमहंस का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

स्वामीजी का जन्म बंगाल के हुगली जिले में कामारपुर नामक स्थान पर 17 फरवरी, 1836 ई. को हुआ। इनका घर का नाम गदाधर चट्टोपाध्याय था। चार

वर्ष की अवस्था में ही आप ध्यानस्थ होने लगे। स्कूल की शिक्षा में रुचि न होने के कारण प्राथमिक शाला से पढ़ाई बंद हो गयी, परन्तु अपने शील स्वभाव एवं सेवाभाव के कारण वे सभी के प्रिय बन गए थे।

सन् 1853 ई. में अपने बड़े भाई रामकुमार चटर्जी के साथ आप कलकत्ता आ गए और कलकत्ता के पास दक्षिणेश्वर मंदिर में पुजारी का काम करने लगे वहीं पर स्वामी तोतापुरी जी से आपने संन्यास लिया और उनका नाम रामकृष्ण परमहंस हो गया।

बचपन में ही उनका विवाह शारदा देवी से हो गया था, परन्तु संन्यास लेने के बाद रामकृष्ण उन्हें जगदम्बा के रूप में देखते थे। वास्तव में वे सभी नारियों में भगवती महाकाली का दर्शन करते थे। वे साम्प्रदायिकता से बहुत ऊपर उठे हुए थे। उनके मिशन का मुख्य उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार द्वारा आध्यात्म शक्ति का विकास कर मानवीय एकता को मजबूत करना था। सभी धर्मों का वे आदर करते थे। फलस्वरूप सभी धर्मावलम्बी भी उनके प्रति अपार श्रद्धा रखते थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में पृ. 280 पर स्वामीजी के बारे में लिखा है कि "स्वामीजी की मुख्य विशेषता यह थी कि पाश्चात्य ज्ञान से शिक्षित लोग भी आपसे बहुत प्रभावित थे।"

उन दिनों पाश्चात्य सभ्यता व अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के कारण नवयुवकों में हिन्दू धर्म के प्रति आस्था घटती जा रही थी। स्वामीजी ने अपने शुद्ध सरल प्रवचनों से भारतीय सभ्यता व संस्कृति के प्रति पुनः लगाव पैदा किया। स्वामीजी के प्रभाव से अनेक अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग भारतीय संस्कृति व एकता के लिए सन्नद्ध हो भारत माँ का गौरव बढ़ाने में लग गए। भारत के ऐसे महान् सपूतों में स्वामी विवेकानन्द का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने न केवल भारत में वरन् विदेशों में भी भारत का नाम बढ़ाया।

स्वामी विवेकानन्द :

विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 ई. को हुआ था। उनके घर का नाम नरेन्द्रदत्त था। उनके पिता विश्वनाथ दत्त की मृत्यु के बाद घर का सारा भार उन पर आ पड़ा था। अत्यधिक निर्धनता में जीवन व्यतीत करने पर भी आप अतिथि सेवा तथा परोपकार में बराबर लगे रहे। बचपन से बड़ी तीव्र बुद्धि थी। परमात्मा को पाने की उनकी प्रबल आकाँक्षा थी। पहले वे ब्रह्म समाज में शामिल हुए, परन्तु वहाँ उनके चित्त को संतोष नहीं हुआ।

रामकृष्ण परमहंस की प्रशंसा सुनकर युवक नरेन्द्र उनके पास पहुँचे। परमहंस की कृपा से इनको आत्म-साक्षात्कार हुआ। वे स्वामीजी के शिष्यों में प्रमुख हो गए।



स्वामी विवेकानन्द

विवाह तो उन्होंने किया ही नहीं था। पच्चीस वर्ष की अवस्था में नरेन्द्र दत्त संन्यासी बन गए और विवेकानन्द कहलाने लगे। संन्यासी वेश में ही उन्होंने सारे देश की पैदल यात्रा की। स्थान-स्थान पर उन्होंने लोगों में निर्भीकता, आत्म-विश्वास तथा नव-जीवन का संचार किया। वे बंगाली तथा अंग्रेजी भाषा के प्रभावशाली वक्ता थे। पं. नेहरू के शब्दों में विवेकानन्द जी में वैद्युतिक और प्रज्वलित शक्ति भरी हुई थी। भारतवर्ष को आगे बढ़ाने की उनकी बड़ी लालसा थी। उन्होंने जर्जरित हिन्दू समाज को नवजीवन का संदेश दिया उसे अपने पैरों पर खड़ा होने का आदेश दिया।"

सन् 1893 ई. में शिकागो नगर में सर्व धर्म सम्मेलन (पार्लियामेन्ट ऑफ रिलिजन) में भाग लेने अमेरिका गए। पहले तो धर्म सम्मेलन के सभापति ने स्वामीजी को प्रवेश नहीं दिया, परन्तु एक अमेरिकन प्रोफेसर की सहायता से उन्हें सम्मेलन में भाग लेने की स्वीकृति मिल गई। स्वामीजी के व्याख्यान का श्रोताओं पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ा और अनेक अमेरिकन स्वामीजी के शिष्य बन गए। अमेरिका के समाचार पत्रों में स्वामीजी की प्रशंसा होने लगी। बोस्टन नगर के 'इवनिंग न्यूज' के 5 अप्रेल, 1894 ई. के अंक में लिखा था "स्वामी विवेकानन्द वास्तव में एक महान् विद्वान् हैं। धर्म सम्मेलन में जितने व्याख्याता आए थे, उनमें उनकी टक्कर का कोई नहीं था।" न्यूयार्क हेराल्ड ने लिखा था-"स्वामी विवेकानन्द वास्तव में एक महान् पुरुष हैं। उनके व्याख्यान सुनने के बाद हमारी यह धारणा हो गई है कि भारत जैसे शिक्षित देश में पादरियों को भेजना कितनी नादानी का काम है।" लंदन के प्रिंसेज हाल में स्वामीजी का आत्मज्ञान पर इतना सुन्दर व्याख्यान हुआ कि हजारों श्रोतागण मंत्र मुग्ध रह गए। दूसरे दिन लंदन के पत्रों में स्वामीजी के बारे में लिखा गया कि— "लंदन में अनेक जातियों व व्यवसाय के लोग मिलते हैं, परन्तु इस समय इंग्लैण्ड में इस तत्ववेत्ता से बढ़कर

कोई मनुष्य नहीं है जो हाल ही में शिकागो के धर्म सम्मेलन में हिन्दू धर्म की ओर से प्रतिनिधि थे।"

स्वामीजी ने सबसे बड़ा मंत्र भारतीय युवकों को दिया— "निर्भय बनो, बलवान बनो।" इतना ही नहीं वे निर्बलता को मृत्यु समझते थे। वे कहा करते थे कि "यदि हमारे देश को किसी बात की जरूरत है तो लोहे के रगों की और फौलादी नाड़ियों की और ऐसी प्रबल इच्छा शक्ति की जिसका कोई मुकाबला न कर सके और जो विश्व के रहस्यों में प्रवेश कर अपने उद्देश्यों की सिद्धि कर सके।"

विवेकानन्द जी ने मिथ्या अंध-विश्वासों से दूर रहकर उपनिषदों के प्रकाश युक्त ज्ञान की ओर जाने की प्रेरणा दी। उन्होंने देश में घूम-घूम कर दिव्य ज्योति, दिव्य दर्शन और राष्ट्र की आत्मा को विकसित करने वाले तत्वों की जानकारी दी।

स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों में स्वामीजी के मूल मंत्र निर्भय व बलवान बनो का अद्भुत संचार हुआ जिसके कारण वे निर्भयता से स्वतन्त्रता समर में कूद पड़े। इस महान् आत्मा का केवल 31 वर्ष की अवस्था में ही 1902 ई. में स्वर्गवास हो गया। राष्ट्र तथा विश्व कल्याण के प्रति उनके अद्भुत विचार सदा अनुकरणीय हैं। जब तक सृष्टि में आत्म तत्व मौजूद रहेगा, उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर :

कलकत्ता में 'जेड़ासाकू' के विशाल भवन में 7 मई, 1861 ई. को रवीन्द्रनाथ का जन्म हुआ। कविवर ऐसे बनर्जी कुल के थे, परन्तु समाज में माननीय होने के कारण उनका कुल ठाकुर कहलाया। वे महर्षि देवेन्द्र ठाकुर के सबसे छोटे पुत्र थे। ठाकुर परिवार पर लक्ष्मी व सरस्वती दोनों की कृपा थी। ब्रह्म समाज की विचारधारा का तो यह परिवार केन्द्र ही था। एक ओर राजा नवाबों की शान शौकत और दूसरी ओर दर्शन, साहित्य, कला राष्ट्रोद्धार, समाज सेवा आदि की प्रबल भावना इस परिवार की मुख्य विशेषता थी। गुरुदेव इसी वातावरण में पले। गुरुदेव प्रारम्भ से ही चिन्तनशील तथा प्रकृति प्रेमी थे। अद्भुत कल्पनाएँ बचपन में ही करने लगे। ग्यारह वर्ष की आयु में ही कविता करने लगे। सोलह वर्ष के होते होते तो वे गीत, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना आदि सभी कुछ लिखने लगे।

भारतीय संस्कृति व मानवीय आदर्शों की रक्षा के लिए गुरुदेव अपनी पत्नी मृणालिनी देवी के साथ अपने पूर्वजों की साधना भूमि शान्ति निकेतन आ गए। 1901 ई. में वहाँ बोलपुर ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की। यही आश्रम आगे चलकर



रवीन्द्रनाथ ठाकुर

विश्व भारती नामक संस्था बनी। गुरुदेव ने विश्व भारती के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया।

साहित्य साधना के क्षेत्र में तो वे बेजोड़ थे। खेमा, प्रायश्चित, गीतांजलि उच्च आदर्शमय कविता संग्रह पर तो उन्हें विश्व कवि की उपाधि मिली व नोबेल पुरस्कार से सम्मानित हुए। इस तरह से पराधीनता के युग में भी भारत का नाम विश्व रंगमंच पर चमका दिया। संक्षेप में गुरुदेव ने अपनी वाणी के स्वरों से निराश व विक्षुब्ध जनता में नवजीवन का संचार किया। साम्प्रदायिकता के स्थान पर राष्ट्रीयता को प्रतिष्ठित किया। उन्हीं के प्रयत्नों से नवजाग्रत बंगाली मानव स्वाधीनता के स्वप्न से व्याकुल व चंचल हो उठा। सोनार बंगला देश की रचना से देशवासियों में मातृभूमि के लिए अद्‌भुत प्रेम उंड़ेल दिया।

गुरुदेव का हृदय देश प्रेम से परिपूर्ण था। वे विदेशी शासन व उसके अत्याचारों के विरोधी थे। बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन का उन्होंने खुलकर समर्थन किया और राष्ट्रीय एकता के लिए आपने इस आन्दोलन के दौरान मुस्लिम भाइयों के राखी बाँधी। इससे भी बढ़कर जलियाँवाले बाग के हत्याकाण्ड से तो वे अंग्रेजी शासन से इतने रुष्ट हो गए कि उन्होंने अपनी 'सर' की उपाधि का भी परित्याग कर दिया। मानव समानता के प्रतिपादक होने के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद के वे कट्टर विरोधी थे। उनकी मान्यता थी कि इस विदेशी शासन के कारण ही करोड़ों भारतीयों को दरिद्रता व दीनता का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। मातृभूमि के प्रति आपके हृदय में उत्कृष्ट प्रेम था। आपने अपने उपन्यास में एक नायक से कहलाया है— "मेरी भगवती वहाँ निवास करती है, जहाँ गरीब, दरिद्र, दुःखी व अपमानित जन रहते हैं- फिर भी मैं जब उसका ध्यान करता हूँ मन

हर्ष से आप्लावित हो जाता है। रक्ताकाश में मुझे अपने देश के जगमगाते स्वाधीन भविष्य के दर्शन होते हैं।''

एक अन्य स्थान पर नवयुवकों को सम्बोधित करते हुए एक नायक से कहलवाया है— ''हमें अपनी राह चुननी है। तुम्हारे डेरे में दीप बुझ गया है। घटाटोप अंधकार छाया हुआ है। तूफान ने अन्दर घुसकर अपनी प्रचण्डता से सब कुछ झकझोर डाला है। तुम्हें क्या राह भूली अपनी मातृभूमि की तीव्र पुकार नहीं सुनाई देती स्वतन्त्रता!''

गुरुदेव भारत की स्वतन्त्रता के माध्यम से विश्व कल्याण देखने थे। उनके स्वराज्य की कल्पना उच्च आदर्श व मानवीय गुणों को लिए हुई थी। गीताजंलि की एक कविता में भारत की स्वतन्त्रता की कल्पना इस प्रकार की गई है—

''मन निर्भय हो जहाँ,
और स्वाभिमान से मस्तक ऊँचा हो।
ज्ञानार्जन की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।
दुनियाँ जहाँ की संकुचित
स्वार्थी हितों के कारण
विघटित न हो।
श्रम जहाँ आदर्श की
आधार शिला हो।
विवेक की निर्मल धारा,
जहाँ जड़ता के रेगिस्तान,
में सूखी न हो।
और जहाँ नैसर्गिक शक्ति द्वारा ही,
मन चिन्तन व कर्म की दिशा मिली हो।
हे ईश्वर !
स्वतन्त्रता के ऐसे परिवेश में,
मेरा देश जाग्रत हो।''

मानव स्वतन्त्रता के सजग प्रहरी विश्व कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर 81 वर्ष की अवस्था में समस्त विश्व को बिलखता छोड़कर 7 अगस्त, 1941 को स्वर्ग सिधार गए, परन्तु उनकी अमर वाणी युग-युग तक मानव समाज का कल्याण करती रहेगी। राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी ने उनको श्रद्धांजलि देते हुए कहा था- ''गुरुदेव हिन्दुस्तान की सेवा की मार्फत सारे विश्व की सेवा करना चाहते थे और सेवा करते-करते.ही चले गए, परन्तु उनकी आत्मा व वाणी अमर है। उनकी प्रवृत्तियाँ व्यापक थीं। प्राय: सभी इतनी परमार्थी थीं कि उनकी मार्फत वे सदा अमर रहेंगे।

श्री निकेतन, शांति निकेतन, विश्व भारती ये सब एक ही कृति के नाम हैं। ये सब गुरुदेव का प्राण थीं। उन्हीं के लिए दीनबन्धु बाद में बन गए गुरुदेव।"

संक्षेप में गुरुदेव की निष्काम देश सेवा को कभी भुलाया नहीं जा सकता। काका कालेलकर साहब ने इस प्रसंग में ठीक ही लिखा है। "देश भक्ति गुरुदेव का व्यसन नहीं वरन् स्वभाव था।"

बंकिमचन्द्र चटर्जी :



बंकिमचन्द्र चटर्जी

आप उच्च कोटि के साहित्यकार थे। आपने अधिकतर उपन्यास लिखे। आपके उपन्यास देश प्रेम की भावना से ओत-प्रोत थे। मातृभूमि के प्रति सम्मान तथा राष्ट्रीय एकता का प्रसार आपके साहित्य की मुख्य विशेषता थी। आप द्वारा रचित 'आनन्द मठ' उपन्यास बंगाल में बहुत ही अधिक लोकप्रिय हो गया। इसका अंग्रेजी, हिन्दी व अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हुआ। स्वाधीनता प्रेमी इसे बहुत ही उत्साह से पढ़ते थे।

1875 ई. में आपने 40 पंक्तियों वाला 'वन्देमातरम्' लिखा। 1882.ई. में आपने प्रसिद्ध उपन्यास आनन्द मठ में इस गीत का समावेश किया। वन्देमातरम् गीत हमारे स्वाधीनता संग्राम का प्रमुख नारा बन गया। कितने ही वीर वन्देमातरम् का उच्चारण कर हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ गए। एक सोलह वर्षीय वीर बालक खुदीराम बोस 1906 ई. में वन्देमातरम् गाते-गाते फाँसी के तख्ते पर चढ़े थे। चन्द्रशेखर आजाद आदि सभी क्रान्तिकारियों ने इसे राष्ट्र गान के रूप में स्वीकार किया। दक्षिण भारत में वन्देमातरम् गीत को लोक प्रिय बनाने वाले प्रख्यात तमिल कवि सुब्रह्मण्यम् भारती थे।

इस तरह से बंकिमचन्द्र चटर्जी ने अपनी लेखनी द्वारा देशभक्तों में नवजीवन का संचार किया। हजारों क्रान्तिकारी वन्देमातरम् गाते-गाते शहीद हो गए। रवीन्द्रनाथ के शब्दों में "बंकिम बाबू का गीत राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम का नारा बन गया और स्वदेशी आत्मा का प्रभावशाली प्रतीक बन गया।" अरविन्द घोष तथा विपिनचन्द्र पाल ने तो अपने पत्र का नाम ही वन्देमातरम् रखा। बंकिम बाबू का व्यक्तित्व व साहित्य साधना स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का अभिन्न अंग बने रहेंगे।

योगीराज अरविन्द घोष :



योगीराज अरविन्द घोष

15 अगस्त, 1872 ई. में कलकत्ता में आपका जन्म हुआ। 7 वर्ष की आयु में ही आप अपने भाइयों के साथ शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैण्ड चले गए। वहाँ एक अंग्रेज परिवार में आपका पालन-पोषण हुआ। इंग्लैण्ड में अंग्रेजी, लेटिन, ग्रीक, फ्रेंच, जर्मन और इटालियन भाषाओं का अध्ययन किया। शिक्षा पूरी करके आप 1893 ई. में भारत लौटे और 13 वर्ष तक बड़ौदा राज्य के विभिन्न पदों पर कार्य करते रहे। यहीं पर आपने संस्कृत भाषा सीखी व अनेक ग्रंथ लिखे।

1906 ई. में बड़ौदा छोड़कर आप कलकत्ता में बंगाल नेशनल कॉलेज के प्रिंसिपल बन गए। देश में उस समय बंग-भंग के विरोध में राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था। अतः नौकरशाही छोड़कर स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े। आप पर लोकमान्य तिलक का अधिक प्रभाव था। शीघ्र ही आप गरम दल के युवा नेताओं में गिने जाने लगे और सूरत कांग्रेस के समय गरम दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सभापति बन गए।

आप क्रान्तिकारी दलों को भी पूरा समर्थन देते रहते थे। इसी कारण सरकार ने इन्हें गिरफ्तार कर लिया, परन्तु कोई प्रमाण न मिलने के कारण 1909 ई. में छोड़ दिए गए। देशबंधु चितरंजनदास ने आपके मुकदमे की पैरवी की थी।

स्वतन्त्रता आन्दोलन को गतिशील बनाने के लिए आपने अंग्रेजी में 'वन्दे मातरम्' नामक पत्र निकाला। आपके लेखों में लोकमत को उत्तेजित करने की अद्‌भुत शक्ति होती थी। थोड़े ही दिनों में आपका प्रभाव बहुत बढ़ा और जनता के आप हृदय सम्राट बन गए।

कुछ दिनों बाद अरविन्द घोष ने राजनीति से संन्यास ले लिया। उनका हृदय आत्म चिंतन, योगाभ्यास की ओर पूरी तरह अग्रसर हो गया। आत्मज्ञान तथा आध्यात्मिक चिन्तन के लिए 1910 ई. में ब्रिटिश भारत को छोड़कर चन्द्रनगर चले गए और वहीं से समुद्र के रास्ते से पाण्डिचेरी पहुँच गए। पाण्डिचेरी में आपने योगाभ्यास तथा आध्यात्मिक चिन्तन के लिए अरविन्द आश्रम की स्थापना की। कुछ दिनों में अरविन्द आश्रम साधकों का पवित्र तीर्थ स्थल बन गया। 15 दिसम्बर, 1950 ई. को इसी आश्रम में आपने निर्वाण प्राप्त किया।

भारतीय संस्कृति को उजागर करने तथा स्वतन्त्रता संग्राम को गतिशील बनाने में आपके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

स्वामी श्रद्धानन्द :

समाज सुधार तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में स्वामी श्रद्धानंद का कार्य बहुत ही उल्लेखनीय रहा। आपकी मान्यता थी कि धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के बिना स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं है। भारतीय शिक्षा एवं ज्ञान के विस्तार के लिए गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना करने वाले आप ही थे।

श्रद्धानन्द का पहले का नाम मुंशीराम था। इनका जन्म जालंधर जिले के तलवन गाँव में फाल्गुन कृष्णा 13 संवत 1813 में हुआ। इनके पिता लाला नानकचन्द यू.पी. में पुलिस कर्मचारी थे। मुंशीराम की प्रारम्भिक शिक्षा काशी में हुई। बचपन में ये बुरी संगति में पड़ गए, परन्तु बरेली में स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रवचन का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। अब वे आर्य समाज की शिक्षाओं का प्रचार करने लगे।

श्रद्धानंद जी प्रारम्भ से बड़े स्वाभिमानी थे। अतः वे नायब तहसीलदार का पद छोड़कर समाज सेवा में लग गए। नौकरी छोड़ने के बाद आपने जालंधर में वकालत शुरू की। उनकी वकालत खूब चली, परन्तु बाद में आर्य प्रतिनिधि सभा के मुख्य संचालक हो गए।

सन् 1917 ई. में संन्यास लेकर समाज सेवा में जुट गए और मुंशीराम के स्थान पर स्वामी श्रद्धानन्द कहलाने लगे। आपने अपना सारा जीवन राष्ट्रीय एकता तथा संस्कृति की उन्नति में लगा दिया। स्त्री शिक्षा के आप प्रबल समर्थक थे। जालंधर में कन्या-महाविद्यालय की स्थापना में आपका विशेष हाथ था। आप विदेशी फैशन व शिक्षा के कट्टर विरोधी थे।

पंजाब में मार्शल ला से पीड़ित जनता की सेवा में रात दिन लगे रहे। उनकी मान्यता थी कि बलपूर्वक तथा अनिच्छा से धर्म परिवर्तन करने वालों को पुनः अपने धर्म में आने की सुविधा होनी चाहिए। इसके लिए आपने 'शुद्धि आन्दोलन' चलाया। आप मुसलमानों से कभी द्वेष नहीं करते थे और न कभी उनको बलपूर्वक हिन्दू बनाने के पक्ष में थे, परन्तु उनके शुद्धि आन्दोलन को गलत समझकर एक धर्मान्ध मुसलमान ने उन्हें गोली मार दी। इस तरह से स्वामी श्रद्धानन्द ने वृद्धावस्था में रुग्ण होने पर भी समाज तथा देश सेवा के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी।

राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में स्वदेशी, शिक्षा, अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। महात्मा गाँधी ने उनकी समाज सेवा की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्यम् भारती :


सी.सुब्रह्मण्यम् भारती

सुब्रह्मण्यम् भारतो तमिल भाषा के आधुनिक युग की महान् विभूति थे। राष्ट्रीय एकता व देश प्रेम को जाग्रत करने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारती जी का जन्म 11 दिसम्बर, 1882 ई. को तमिलनाडू के तिरुनेवल्ली जिले के एटापुरम् में हुआ। आपके पिता चिन्ना स्वामी अय्यर एक विद्वान् तथा उद्योगशील ब्राह्मण थे। सुब्रह्मण्यम् प्रारम्भ से ही अच्छी कविता लिखने लग गए थे। अत: एटापुरम् के राजा ने आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर आपको 'भारती' की उपाधि प्रदान की। 1898 ई. में पिताश्री के देहान्त हो जाने से आप अपने चाचा के पास बनारस चले गए। वहीं आपने एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। वहाँ से एटापुरम् आ गए, परन्तु वहाँ राजसी ठाट बाट का दरबारी जीवन आपको बिल्कुल पसन्द न आया। अत: मदुरई में तमिल भाषा के शिक्षक बन गए। इसके बाद तमिल के दैनिक पत्र "स्वदेश मित्रन" में काम करने आप मद्रास आ गए। वहाँ आपको दैनिक अंग्रेजी पत्रों की मुख्य मुख्य खबरों का तमिल में अनुवाद करने का काम सौंपा गया। इस प्रसंग में आप देश की राजनीतिक घटनाओं से परिचित होने लगे।

कुछ समय बाद सिस्टर निवेदिता के सम्पर्क में आए और देशभक्ति पूर्ण कविताओं तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में गहरी रुचि लेने लगे। इसके बाद तो आप राष्ट्रीयता के तूफान में महाशक्ति रूप में उभर कर सामने आए। केवल 39 वर्ष की अवस्था में ही इस महाकवि ने तमिल भाषा, साहित्य व भाव धारा की काया पलट कर दी। संकीर्णता की दीवारों से ऊपर उठकर अखण्ड भारत व स्वतंत्र भारत के गीत गाये। आपकी राष्ट्रीय गीत माला की कविताएँ देशभक्ति से परिपूर्ण हैं। सन् 1908 तथा 1909 ई. में लिखी गई 'स्वदेशी गीत गजल' व 'जन्म भूमि' नामक रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हुईं। दोनों पुस्तकें उन्होंने निवेदिता जी को भेंट की। 'सुब्बू का गाँधी कथै' नामक पुस्तक में गाँधीजी के जीवन पर भावपूर्ण कविताएँ लिखीं।

आपकी कविता में मानव स्वतन्त्रता व देश प्रेम को विशेष स्थान प्राप्त है। आपकी सभी कविताएँ तमिल में हैं तथा गेय रूप में गायी जाने वाली हैं।

स्वतन्त्रता आन्दोलन को गति देने के लिए जो काव्य आपने लिखा वह महत्त्वपूर्ण है। भारत की अखण्डता तथा अनेकता में एकता के भावों को आपने खूब उभारा। एक कविता का भाव है—

"माता के तीस करोड़ मुँह, परन्तु हृदय एक है।
अभिव्यक्ति की अठारह भाषा, परन्तु मस्तिष्क एक है।"

ऐसे महान् देशभक्त एवं कवि का 1921 ई. में केवल 39 वर्ष की अल्पायु में ही देहान्त हो गया, परन्तु उनका साहित्य अमर है और युग-युग तक हमें देश प्रेम व राष्ट्रीय एकता के लिए प्रेरित करता रहेगा।

मुसलमानों में साँस्कृतिक जागरण : सबसे पहले कलकत्ता में 1863 ई. में लिटरेरी सोसाइटी की स्थापना से मुसलमानों में जागृति आने लगी। इस सोसाइटी ने मध्यवर्गीय मुसलमानों को पाश्चात्य शिक्षा को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया।

सर सैयद अहमद खाँ :

मुसलमानों में सुधार लाने वाले पहले व्यक्ति सर सैयद अहमद खाँ (1817-1898 ई.) थे। आप उच्च विचारों के व्यक्ति थे। आपने हमेशा वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं तर्कपूर्ण चिन्तन पर जोर दिया। आप ही के कर कमलों से 1878 ई. में अलीगढ़ में विज्ञान तथा पाश्चात्य ज्ञान के प्रसार के लिए 'मुहम्मडन ओरियन्टल कॉलेज' की स्थापना हुई। बाद में यही कॉलेज अलीगढ़ मुस्लिम विद्यालय के रूप में विकसित हुआ।

सर सैयद अहमद खाँ धार्मिक सहिष्णुता तथा राष्ट्रीय एकता में बड़ा विश्वास रखते थे। उन्होंने कठमुल्लापन, संकीर्णता और अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई तथा उदारमना एवं सहिष्णु बनने की राय दी। उनकी मान्यता थी कि "जब तक चिन्तन की स्वतन्त्रता विकसित नहीं होती, तब तक सभ्य जीवन विकसित नहीं हो सकता।" उनका कहना था कि दिमाग की खिड़कियों और दरवाजों को बन्द रखना सामाजिक तथा बौद्धिक पिछड़ेपन की निशानी है। दुनियाँ उसके अपने सम्प्रदाय या वर्ग से बहुत बड़ी है।"

सर सैयद अहमद खाँ का विश्वास था कि सभी धर्मों के अन्दर एकता का भाव छिपा हुआ है जिसे व्यावहारिक नैतिकता कहा जा सकता है। वे साम्प्रदायिक वैमनस्य के कट्टर विरोधी थे। हिन्दू मुसलमानों में एकता की अपील करते हुए उन्होंने 1883 ई. में लिखा— "हम दोनों भारत की हवा पर जिन्दा हैं। हम गंगा और यमुना का पवित्र जल पीते हैं। हम दोनों भारतीय भूमि की पैदावार खाकर जीवित हैं। हम जीवन मरण में एक दूसरे के साथ हैं। भारत में रहते हुए हम दोनों

ने अपना खून परिवर्तित कर लिया। हमारे शरीर का रंग एक जैसा हो गया है। हमारे नाक नक्शे एक समान हो गए हैं, मुसलमानों ने अनगिनत हिन्दू रीतियों को अपना लिया है। हिन्दुओं ने आचार सम्बंधी अनेक मुस्लिम विशेषताओं को अपना लिया है। हम इतने घुलमिल गए हैं कि हमने नयी उर्दू भाषा का विकास किया जो न तो हमारी भाषा है और न हिन्दुओं की। संक्षेप में हम दोनों एक ही देश के हैं। हम एक राष्ट्र हैं और देश की प्रगति तथा भलाई, हमारी एकता, पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम पर निर्भर है, जबकि हमारी पारस्परिक असहमति, जिद तथा विशेष दुर्भावना हमारा विनाश निश्चित रूप से कर देगी।''

अलीगढ़ कॉलेज के लिए हिन्दू पारसी तथा इसाइयों ने भी मुक्त हाथ से धन दिया, परन्तु आगे चलकर सर सैयद अहमद ब्रिटिश कूटनीति के शिकार हो गए और उदीयमान राष्ट्रवादी आन्दोलन में मुसलमानों को शामिल होने से रोकने लगे' इसके पीछे उनका उद्देश्य मुसलमानों को सबसे पहले शिक्षित बनाने का भी हो सकता है।

इतना सब कुछ होने पर भी सर सैयद अहमद के नये विचारों का भारतीय जन जागरण में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। उनके प्रारम्भिक विचारों से प्रभावित हो अनेक मुसलमान भाई हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में बराबर भाग लेते रहे।

मुहम्मद इकबाल :

आपकी गिनती आधुनिक भारत के महान् कवियों में की जाती है। आपकी रचनाओं का हिन्दू तथा मुस्लिम युवा पीढ़ी के लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। स्वामी विवेकानन्द की भाँति आपने भी अथक् परिश्रम व अनवरत कर्म करते रहने की बात कही। विरक्त भाव, अन्धविश्वास तथा धार्मिक ढकोसलों की आपने तीव्र निन्दा की।

अपने प्रारम्भिक काव्यों में देशभक्ति के गीत भी आपने खूब लिखे, परन्तु आप अपने जीवन के अंतिम दिनों में ब्रिटिश कूटनीति के शिकार हो गए और पृथक्कतावाद का राग अलापने लगे। जैसे माता कैकयी कभी राम को वनवास नहीं देना चाहती थी। परन्तु वह मंथरा की कुचाल व षड्यंत्र की शिकार हो ही गई, इसी तरह न चाहते हुए भी अनेक प्रबुद्ध मुसलमान भी ब्रिटिश कूटनीति के कुचक्र में फँस गए।

पारसी व सिक्खों में साँस्कृतिक जागरण : सामाजिक एवं साँस्कृतिक पुनर्जागरण में पारसी तथा सिक्ख समाज भी पीछे नहीं रहा। दादा भाई नौरोजी के प्रयासों से पारसी समाज में नये विचारों का संचार हुआ। दादाभाई नौरोजी व फिरोजशाह मेहता तो हमारे राष्ट्रीय जीवन के मुख्य स्तम्भ रहे हैं। इन महानुभावों का विस्तृत विवरण हम गत इकाइयों में प्राप्त कर चुके हैं।

खालसा कॉलेज की स्थापना से सिक्ख समाज में नयी शिक्षा व नये विचारों का समावेश हुआ। गुरुद्वारों के रूढीवादी महन्तों का विरोध करने के लिए अकाली दल का जन्म हुआ। रूढ़िवादी धर्म व विदेशी शासन का अन्त करने में बब्बर खालसा दल का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

साहित्य का योगदान :

इसमें कोई संदेह नहीं कि साँस्कृतिक एवं साहित्यिक जागरण ने स्वतन्त्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बंकिम बाबू के राष्ट्र गीत 'वन्देमातरम्' ने कमाल ही कर दिखाया। ब्रिटिश शासन के भारी आतंक के बाद भी यह गीत देशभक्तों के हृदय में समा गया। इसके साथ ही अन्य बंगला कवि हेमचन्द्र वंद्योपाध्याय (1830-1903 ई.) के गीतों ने भी देश प्रेम जाग्रत करने में बहुत बड़ा काम किया। उनके गीतों में आग भरी हुई थी। एक गीत इस प्रकार है—

"बजी रण भेरी जगा बेटों को,
मातृभूति हित संग्राम छिड़ा,
सब हैं स्वतंत्र आज नव सूर्य उगा
जग गये सभी गर्व से भाल, उतंग उठा।
भारतवर्ष अब फुफकार-उठेगा,
क्रोधानल में सबं होगा-स्वाहा।"

द्विजेन्द्रलाल के नाटकों ने भी देश प्रेम को जगाने में अद्भुत कार्य किया। इन नाटकों ने इतनी उत्तेजना तथा जागृति फैलाई कि सरकार ने इन पर प्रतिबन्ध लगाने का विचार तक कर लिया। श्रीमती सरला चौधरानी, मि एफ सेन और रजनीकांत सेन आदि की रचनाओं ने देश प्रेम जगाने में सराहनीय कार्य किया।

हिन्दू व मुसलमानों के वीरत्व को प्रकाशित करने वाली अनेक रचनाएँ बंगला व हिन्दी में लिखी गई। इन रचनाओं ने भारतीय गौरव व मान मर्यादा को जगाने में जादू का सा काम किया। सारा बंगाल मानों राष्ट्रीय भावना व देशभक्ति के सरोवर में निमग्न हो गया। इस कार्य में बंगला साहित्य परिषद तथा राय बहादुर दिनेशचन्द्र सेन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

बंगला साहित्य की भाँति ही मराठी, तेलगू तथा हिन्दी साहित्य भी देशभक्ति को बढ़ावा देने में पीछे नहीं रहा। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के नाटक व कविताएँ तथा तेलगू कवि सुब्रह्मण्यम् भारती की कविताएँ इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय हैं। द्विवेदी युग में तो देशभक्ति पूर्ण कविताओं की सर्जना इतनी हुई कि महावीरप्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी तथा मैथिलीशरण गुप्त का काव्य विशेष उल्लेखनीय रहा है। गुप्त जी की भारत भारती पुस्तक तो देश प्रेम की जीती जागती मिशाल बन गई।

इन साहित्यकारों द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान पर तो एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी जा सकती। अनेक कठिनाइयाँ तथा यातनाएँ उठाकर भी इन साहित्यकारों ने स्वतन्त्रता की मशाल को जलाये रखा, कभी बुझने नहीं दिया। उर्दू के कवि तथा शायर भी देश प्रेम जगाने में पीछे नहीं रहे। इकबाल साहब के गीत "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा" तो देश प्रेम का एक उच्च आलेख है।

साहित्यकारों के अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने भी अपनी प्रतिभा तथा कार्यों से देश के गौरव को बढ़ाया। रवीन्द्रनाथ टैगोर, उनके भाई गजेन्द्रनाथ टैगोर, नन्दलाल बोस आदि ने अपनी उत्कृष्ट चित्रकला से संसार को दिखा दिया कि भारतीय किसी से पीछे नहीं हैं। विज्ञान के क्षेत्र में सर जगदीशचन्द्र बसु, सी.वी. रमन ने संसार को आश्चर्य चकित कर दिया। इन सभी के कार्यों से देशभक्तों में नवजीवन का संचार हुआ और देश की स्वतन्त्रता के लिए अधिक उत्साह से कदम उठने लगे।

❑❑

इकाई 6

राष्ट्र प्रेम की प्रबल धारा व बंग-भंग आन्दोलन

पिछली इकाइयों में हमने भारत में उदय होने वाली राष्ट्रीय भावनाओं तथा उनके प्रमुख नेताओं के बारे में विस्तार से पढ़ा है। अब हम यह देखेंगे कि आगे चलकर यह राष्ट्रीय भावना किस प्रकार एक ऐसी प्रबल राष्ट्रीय ज्योति व राष्ट्रीय शक्ति को जन्म देती है, जिसका विकसित रूप राष्ट्र की स्वतन्त्रता में परिणित होता है।

कांग्रेस की प्रारम्भिक नीति केवल प्रार्थना तथा प्रस्तावों द्वारा कुछ सुधारों की माँग करना ही था। इस विचारधारा के लोग नरम दल वाले कहलाये। दूसरी तरफ ऐसी विचारधारा के लोग थे जो न्यायोचित अधिकारों के लिए संघर्ष करना पसन्द करते थे। वे स्वराज्य को भारतवासियों का जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे। उसे प्राप्त करने के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहते थे। इस प्रकार की विचारधारा को जन्म देने वाले बाल गंगाधर तिलक थे। तिलक के अनुयायी 'गरम दल' के लोग कहलाये। गरम दल के प्रमुख नेता 'लाल-बाल-पाल' कहलाते थे। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय तथा विपिनचन्द्र पाल आदि गरम दल के नेताओं को यह बिल्कुल पसन्द नहीं था कि अधिकारों के लिए ब्रिटिश-शासन से भीख माँगी जाए। वे ब्रिटिश शासन की योजना के अनुसार कांग्रेस को केवल तीन 'प'—प्रार्थना, प्रतिवाद तथा प्रस्ताव— तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे। वरन् कांग्रेस को शुद्ध राष्ट्रीय पार्टी के रूप में देखना चाहते थे। गरम दल वालों की मान्यता थी कि हमारी गरीबी, अशक्तता तथा बीमारी के लिए विदेशी शासन ही उत्तरदायी है। अतः विदेशी-शासन का अन्त करके ही सुखी भारत का निर्माण कर सकते हैं।

इस प्रकार की राष्ट्रीय चेतना के प्रमुख सूत्रधार बाल गंगाधर तिलक थे, जिनका विस्तृत विवरण हम गत इकाई में पढ़ चुके हैं। वास्तव में तिलक महाराज भारतीय राष्ट्रीय शक्ति के जन्मदाता थे। आपने अपने समय में स्वतन्त्रता संग्राम में सबसे अधिक प्रमुखता से भाग लिया। आपके पत्र 'मराठा' व 'केसरी' ब्रिटिश शासन के विरोध में आग उगलते थे।

संक्षेप में बाल गंगाधर तिलक ने ही राष्ट्रीय आंदोलन को आगे बढ़ाया और थोड़े ही समय में लोगों में स्वदेश भक्ति, राष्ट्रीय सम्मान, राष्ट्रीय एकता, आत्म-त्याग व अन्याय के विरुद्ध लड़ने की भावना लोगों में भर दी। वे तरुण राष्ट्र के अग्रगागी नेता समझे जाने लगे।

तिलक के अन्य साथी चिपलूनणकर थे। चिपलूणकर एक प्रभावशाली लेखक थे। उन्होंने अपनी लेख माला द्वारा देश को राष्ट्रीयता का संदेश दिया और उसे अपने प्राचीन गौरव का भान करवाया, परन्तु बहुत ही दु:ख के साथ लिखना पड़ता है कि वे केवल 32 वर्ष की आयु में ही सन् 1882 में स्वर्गवासी हो गए। आपकी ग्रंथ-माला आज भी मराठी साहित्य की अनमोल निधि है।

विगत इकाई में हमने यह भी देखा कि साहित्यिक जागरण ने नवयुवकों में राष्ट्रीय चेतना भरने में अद्‌भुत कार्य किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'घर और बाहर' नामक उपन्यास ने राष्ट्रीय भावना को उभारने में बहुत मदद की। वन्देमातरम् ने नवयुवकों को देश के लिए बलिदान होने के लिए प्रेरित किया। देश तथा संस्कृति की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले वीरों के चरित्र को उपन्यास तथा नाटकों में विशेष स्थान देने से नवयुवकों में चेतना का संचार होने लगा। आधुनिक ओड़िया साहित्य के जन्मदाता फकीर मोहन सेनापति (1847-1948) ने अपने उपन्यास "छ: बीघा आठ लट्ठा जमीन" (1920 ई.) में ग्रामीण जीवन की सामाजिक समस्याओं को खूब उभारा। इस प्रकार जमींदारों तथा विदेशी शासन के शोषण का विरोध करने की क्षमता पैदा करना उस समय के साहित्य की प्रमुख विशेषता थी।

एक ओर तो नवयुवक राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत थे तो दूसरी ओर ब्रिटिश शासन ने ऐसे दमनात्मक कठोर कदम उठाए जिनके कारण नवयुवकों में आक्रोश की भावना हिलोरें लेने लगी। भारतवर्ष में उस समय दो महान् विपत्तियाँ पड़ीं— एक अकाल तथा दूसरी प्लेग। 1896 ई. में अकाल के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति बहुत ही बिगड़ गई। कुछ पैदा न होने पर भी उनसे राजस्व कर सख्ती से वसूल किया जाने लगा। नमक कर को तो पहले से भी अधिक बढ़ा दिया गया। किसानों की दयनीय दशा बाल गंगाधर तिलक से न देखी गई। उन्होंने सार्वजनिक सभा के माध्यम से सरकार पर लगान माफ करने अथवा स्थगित करने के लिए दबाव डालने का बीड़ा उठाया। अपने पत्र 'केसरी' में भी इसी प्रकार के लेख छापे जाने लगे कि यदि पैदावार नहीं हुई तो लगान भी मत जमा कराओ। तिलक तथा उनके सहयोगी गाँव-गाँव जाकर सभाएँ करने लगे तथा किसानों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उठ खड़े होने की शिक्षा देने लगे। तिलक के प्रयास से किसानों में आत्म-विश्वास का संचार हुआ और वे अधिकाधिक संख्या में तिलक महाराज की सभा में आने लगे। सरकार तिलक के प्रभाव से बेहद दु:खी हो गई।

1897 ई. में पूना में भयंकर रूप से प्लेग की बीमारी फैली। जैसा कि हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि अकाल से लोग पहले ही बहुत परेशान थे और अब प्लेग की भयंकर बला के कारण लोगों के कष्ट बहुत अधिक बढ़ गए। इस पर भी सरकारी अत्याचार बढ़ता ही गया। माननीय गोखले जैसे शांति प्रिय नेता भी ब्रिटिश शासन के अत्याचारों से उद्वेलित हो उठे और उन्होंने इंग्लैण्ड की जन सभाओं तथा अखबारों में इन अत्याचारों का जोरदार ढंग से विरोध किया। संक्षेप में लोगों में त्राहि-त्राहि मच गई। युवकों में विशेष उत्तेजना फैली। केसरी पत्र ने आततायी ब्रिटिश शासन को भारतीय जनता के इन कष्टों के लिए उत्तरदायी ठहराया। युवकों के मन में यह बात घर कर गई कि प्लेग कमेटी के अध्यक्ष मि. रैण्ड की लापरवाही के कारण लोगों को कष्ट उठाना पड़ रहा है। चापेपकर बन्धुओं से नहीं देखा गया। अन्त में दामोदर चापेपकर तथा उनके साथियों ने 'रैण्ड' को उसके किए की सजा देने का निश्चय कर ही लिया।

22 जून, 1897 की रात थी। पूना में विक्टोरिया के 60वें राज्याभिषेक के उपलक्ष में सरकार की ओर से उत्सव समारोह आयोजित किया गया था। यह कैसी विडम्बना थी कि एक ओर तो लोग बीमारी तथा भूख से तड़फ रहे थे और दूसरी ओर अंग्रेज अधिकारी मौज मस्ती से आतिशबाजियाँ तथा पटाखे छुड़वा रहे थे। सारा शहर रोशनी से जगमगा रहा था। इसी बीच दो अंग्रेज अफसर मि. रैण्ड तथा एमहर्स्ट शराब के नशे में चूर हो उत्सव में भाग लेने के बाद गणेश कुण्ड की ओर जा रहे थे। मौका देख कर चापेपकर बन्धुओं में से दामोदर चापेपकर ने रैण्ड को अपनी गोली का निशाना बना लिया। दोनों अंग्रेज अधिकारी एक चीख के साथ धरती पर गिर पड़े और अपना दम तोड़ दिया। पूना में चारों ओर हलचल मच गई। सरकार ने रैण्ड को गोली का निशाना बनाने वालों को पकड़ने के लिए जाल बिछा दिया। एक द्राविड़ गणेशशंकर ने 20 हजार रुपये लेकर देशद्रोह करके दामोदर चापेपकर को पकड़वा दिया। बाद में दामोदर, वासुदेव तथा बाल कृष्ण तीनों चापेपकर बन्धुओं को आततायी ब्रिटिश शासन ने फाँसी दे दी। चापेपकर बन्धुओं की शहादत स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं। चापेपकर बन्धुओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

चापेपकर बन्धुओं का बलिदान :

चापेपकर बन्धु तीन भाई थे— दामोदर, बालकृष्ण और वासुदेव। तीनों भाई आजादी के मतवाले थे। देश की स्वतन्त्रता के लिए वे आजीवन संघर्षरत रहे। अन्त में तीनों भाई भारत माता के कर्मठ पुत्र की भाँति शहीद हो गए। उनकी शहादत की कहानियाँ युग युग तक भारतीय नवयुवकों में नव शक्ति का संचार करती रहेगी।

चापेपकर बन्धु



बालकृष्ण (1870-1899 ई.) दामोदर (1873-1899 ई.) वासुदेव (1879-1899 ई.)

दामोदर के पिता हरिपंत चापेपकर एक कथावाचक थे और कीर्तन ही उनकी रोटी रोजी का साधन था। दामोदर जब सयाने हुए तब वे भी अपने पिता के कार्य में सहयोग करने लगे। उनके दोनों छोटे भाई बालकृष्ण व वासुदेव भी कीर्तन में बाजा बजाने का कार्य करते थे।

परन्तु चापेपकर बन्धुओं का मन कीर्तन में नहीं लगता था। वे मल्ल विद्या मुग्दर चलाने, लेजियम चलाने में अधिक रुचि लेते थे। अन्त में उन्होंने अखाड़ा खोला। उसमें तीनों भाइयों के साथ आस-पास के भी कसरत करने आने लगे। इस तरह चापेपकर बन्धुओं ने पूना में साहसी तथा स्फूर्तिवान युवकों का एक शक्तिशाली दल बना लिया। दल के सभी सदस्य देशभक्ति में इतने निमग्न थे कि वे हरदम प्रत्येक प्रकार का बलिदान करने के लिए तत्पर रहते थे।

बड़े होकर दामोदर ने सेना में भर्ती होने का विचार किया। लोकमान्य तिलक व श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भी उनको सेना में प्रवेश दिलाने का पूरा प्रयास किया, परन्तु सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह था कि वे महाराष्ट्रीय चित्तपावन ब्राह्मण थे। महाराष्ट्रीय चित्तपावन ब्राह्मण बड़े उग्र स्वभाव के तथा क्रान्तिकारी विचारों के होते थे। सेना में भरती होकर क्रान्ति का शंख फूँकना उनके लिए बहुत ही साधारण बात थी। अंग्रेज अधिकारी अपनी सेना में पुनः मंगल पाण्डे नहीं देखना चाहते थे।

दामोदर तो ब्रिटिश शासन के सैनिक बनना चाहते थे, परन्तु ईश्वर को तो उनसे बहुत बड़ा काम लेना था। इसीलिए तो उनको अवसर नहीं दिया। दामोदर ने अब निश्चय कर लिया कि अब मातृभूमि की मुक्ति के लिए स्वतन्त्रता संग्राम के अमर सेनानी बनेंगे। आजादी के लिए अंग्रेजी शासन से मोर्चा लेंगे। इस योजना को साकार करने के लिए अपने अखाड़े का विस्तार किया और युवकों को शस्त्र

संचालन की शिक्षा देने लगे। उन्होंने इटली की स्वाधीनता के प्रणेता 'मेजिनी' की भाँति युवकों की 'तरुण-समाज' नामक गुप्त संस्था का गठन किया।

इस गुप्त संगठन का उद्देश्य था—भारत में अंग्रेजी राज्य को समाप्त करने के लिए संघर्ष करना। उन अंग्रेज अधिकारियों तथा भारतीय अधिकारियों को जान से मारना जो देश की आजादी तथा स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों के जीवन से खिलवाड़ कर रहे थे।

दामोदर तथा उनके दोनों भाई इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कर्म क्षेत्र में उतर पड़े। पुलिस के सिपाहियों को पीटना, सरकार के जासूसों को पकड़ कर उनकी खासी मरम्मत करना, गोरे लोगों को पकड़ना तथा उनके अभिमान को चूर करने के लिए उनकी अच्छी पिटाई करना, उनका रोज का काम था।

पूना में वासुदेवराव पटवर्धन तथा कुलकर्णी नामक दो विख्यात जासूस थे, जो स्वतन्त्रता सेनानियों के पीछे पड़े हुए थे। दामोदर तथा उनके साथियों ने इन देशद्रोहियों को अच्छा सबक सिखाया। कई बार उन्हें पकड़कर उनकी अच्छी धुनाई की। अन्त में डर के मारे उन्होंने जासूसी करना ही छोड़ दिया। केवल इतना ही नहीं दामोदर तथा उसके साथियों ने पूना विश्वविद्यालय के पाण्डाल में आग लगा दी। पाण्डाल में उपस्थिति देशद्रोही जी हजूरी लोग हड़बड़ाहट में इधर-उधर भागने लगे। भारत माता का अपमान करने वाले थीसट व विलिंकन नामक दो शरारती अंग्रेजों की भी कसकर पिटाई इसी दल ने की। विक्टोरिया की मूर्ति के मुँह पर कोलतार पोतकर उसे जूतों की माला पहनाने वाले भी दामोदर तथा उसके साथी ही थे।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि प्लेग कमीश्नर रैण्ड की हत्या करने वाले भी दामोदर तथा उनके भाई थे। रैण्ड की हत्या से ब्रिटिश शासन काँपने लगा। चारों तरफ जासूसों का जाल बिछा दिया गया, परन्तु दामोदर को पकड़वाने वाला उनकी संस्था का ही एक आदमी गणेशशंकर द्राविड़ था। उसने चन्द चाँदी के टुकड़ों के कारण विश्वासघात किया। भारत के इतिहास में ऐसे देशद्रोहियों का उल्लेख बहुत ही घृणा से किया जाता रहेगा।

दामोदर बन्दी बना लिए गए, परन्तु बालकृष्ण तथा वासुदेव पुलिस के घेरे से निकलने में सफल हो गए। दामोदर पर मुकदमा चला। उन्हें फाँसी की सजा हुई। 18 अप्रेल, 1899 को उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया। हँसते-हँसते स्थितप्रज्ञ की भाँति वे मातृभूमि की बलिवेदी पर चढ़ गए, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि स्वतन्त्रता का पौधा मातृभूमि की बलिवेदी पर चढ़ने वाले वीरों के रक्त से पनपता है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि बालकृष्ण पुलिस के फन्दे से बच निकले थे। बालकृष्ण भाग कर निजाम हैदराबाद के राज्य के जंगलों में छिप कर

अपना जीवन व्यतीत करने लगे। उनको कितने ही दिनों तक भूखों रहना पड़ा। लोकमान्य तिलक को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने उनकी सहायता के लिए धन भेजा।

परन्तु कब तक वे छिप कर रह सकते थे। अन्त में महाराष्ट्र लौट आये। पूना में प्रवेश करते ही उन्हें पकड़ लिया गया और जेल के सींकचों में बन्द कर दिया गया। उनके भाई वासुदेव पहले ही जेल में पड़े थे। वासुदेव पर यह दबाव डाला जा रहा था कि वे अपने भाई बालकृष्ण के विरुद्ध गवाही दें। अन्त में वे गवाही देने का नाटक रचकर जेल से मुक्त हो गए। जेल से मुक्त होने का एक मात्र उद्देश्य द्राविड़ गणेशशंकर को सबक सिखाना था जिसने उनके भाई दामोदर को गिरफ्तार करवाया था। एक दिन मौका देख कर देशद्रोही गणेशशंकर व उसके भाई को अपनी गोली का निशाना बना कर अपने भाई की मृत्यु का बदला ले ही लिया।

सरकार ने द्राविड़ बन्धुओं की हत्या करने वालों को पकड़ने के लिए अपना जाल बिछा दिया। अन्त में वासुदेव पकड़े गए। थाने में पूछताछ के समय हैड कांस्टेबल रामजी पाण्डे ने देशभक्तों के लिए कुछ अपशब्द कहे। फिर क्या था। वासुदेव आपे से बाहर आ गए और रामजी पाण्डे से रिवाल्वर छीन कर उसी पर गोली चला दी। गोली तो उसे नहीं लगी, परन्तु भय से आतंकित हो रामजी पाण्डे बेहोश होकर गिर पड़ा। वासुदेव थाने में ही पकड़ लिए गए और उन्होंने बहुत ही गर्व के साथ स्वीकार किया कि द्राविड़ बन्धुओं की हत्या उसी ने की। फलस्वरूप बालकृष्ण के साथ उन पर भी मुकदमा चलाया गया। दोनों भाइयों को फाँसी की सजा हुई। दोनों भाई हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गए। दामोदर जी पहले फाँसी पर चढ़ चुके थे।

इस प्रकार तीनों चापेपकर बन्धुओं ने मातृभूमि के चरणों पर अपना बलिदान देकर अपनी जीवन कहानी स्वर्ण अक्षरों में लिख गए। स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में उनके बलिदान सर्वदा याद किए जाते रहेंगे।

सरकारी दमन चक्र :

रैण्ड की हत्या के बाद सरकार ने अपना दमन चक्र शुरू कर दिया। राष्ट्रीय भावना के जनक बाल गंगाधर तिलक पर आरोप लगाये गए कि केसरी तथा मराठा पत्र द्वारा उन्होंने लोगों को भड़का रखा है। अतः उन्हें 27 जुलाई, 1897 ई. को गिरफ्तार कर लिया और उन पर बम्बई हाईकोर्ट में राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। भारतीय ज्यूरी (न्यायाधीश) ने तिलक महाराज को निर्दोष सिद्ध किया। फिर भी अंग्रेज न्यायाधीशों ने जिनका बहुमत था, स्टाची के आदेश से 1 माह की सजा ठोक दी। भारत के राजनैतिक इतिहास में यह घटना बहुत ही

महत्त्वपूर्ण समझी जाने लगी। निर्दोष होने पर भी तिलक महाराज ने जिस अविचल धैर्य और शांति के साथ इस विपत्ति का सामना किया, उससे उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया। नवयुवकों के तो वे मानो हृदय सम्राट बन गए। बंगाल तथा महाराष्ट्र के नवयुवक तिलक महाराज के पद चिन्हों पर चलकर राष्ट्र को स्वतंत्र कराने की नित नई योजनाएँ बनाने लगे। कांग्रेस के नरम दल के नेताओं से नवयुवकों का विश्वास उठने लगा। इसी बीच लॉर्ड कर्जन के वायसराय बनकर आने तथा बंगाल के विभाजन ने राष्ट्रीय जागृति की ज्वाला में घी का काम किया।

बंगाल का विभाजन :

बंगाल तथा महाराष्ट्र के नवयुवकों की राष्ट्रीय भावना से ब्रिटिश शासन पूरी तरह सशंकित हो गया। उनको यह भय सताने लगा कि हिन्दू-युवकों के साथ-साथ मुस्लिम युवक भी अगर भारत राष्ट्र के मुक्ति संग्राम में कूद पड़े तो ब्रिटिश शासन का अन्त सुनिश्चित है।

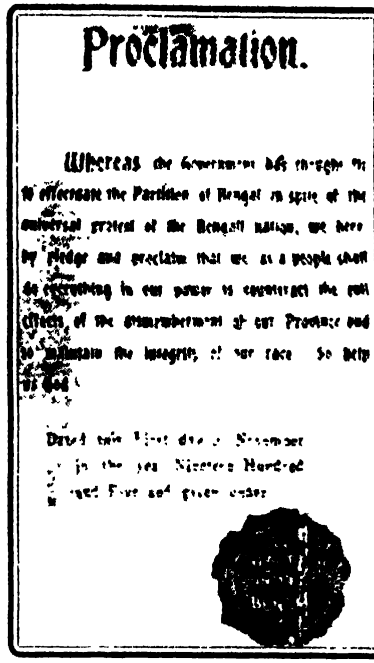
लॉर्ड कर्जन 1899 ई. में भारत के वायसराय बनकर आये। आते ही उन्होंने राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए अनेक कदम उठाये। 1904 ई. में विश्वविद्यालयों के लिए एक कानून बनाकर शिक्षा की बागडोर सरकार के हाथ में दे दी। फूट डालो व राज करो ब्रिटिश नीति की शृंखला में बंगाल के विभाजन को भी जोड़ दिया गया, परन्तु इसके पीछे अन्तर्निहित भावना यह थी कि देश में विशेषकर बंगाल में उठी राष्ट्रीय जागृति को कमजोर करना। जैसा कि भारत सरकार के गृह सचिव रिस्ले के 6 दिसम्बर, 1904 के एक सरकारी नोट से स्पष्ट है—

"संयुक्त बंगाल एक शक्ति है। विभाजित बंगाल में कई भिन्न दिशाओं में खींचातानी की प्रवृत्ति होगी। हमारा एक उद्देश्य यह भी है कि राष्ट्रीय शक्तियों को विभाजित करके अपने शासन के विरोधियों के एक सुदृढ़ समूह को कमजोर करना।"

वायसराय लॉर्ड कर्जन ने फरवरी, 1905 में इसी स्वर में अपना राग अलापते हुए कहा था— "कलकत्ता ही वह केन्द्र है जहाँ से सारे बंगाल और बेशक सम्पूर्ण भारत के कांग्रेस दल को प्रभावित किया जाता है। किसी भी ऐसे कदम का जिसके फलस्वरूप बंगला भाषा भाषी जनता विभाजित हो जायेगी, गतिविधि तथा प्रभाव के स्वतंत्र केन्द्र विकसित होंगे, कलकत्ता सफल षड्यंत्र का केन्द्र नहीं बन पाएगा।"

विभाजन का विरोध तथा बहिष्कार आन्दोलन :

भारी जन विरोध की अनदेखी करके अन्त में लॉर्ड कर्जन ने 20 जुलाई, 1905 को बंगाल को दो भागों में विभाजित करने का आदेश जारी कर ही दिया। लॉर्ड कर्जन के इस कुत्सित कार्य से सारे बंगाल में आग सी लग गई। कांग्रेस के गरम दल तथा नरम दल दोनों ने इसका घोर विरोध किया।


Proclamation.

Whereas the Government has thought fit to effectuate the Partition of Bengal in spite of the universal protest of the Bengali nation, we hereby pledge and proclaim that we as a people shall do everything in our power to counteract the evil effects of the dismemberment of our Province and to maintain the integrity of our race. So help us God.

Dated this first day of September in the year Nineteen Hundred and Five and given under

बंग-भंग के खिलाफ प्रदर्शन

7 अगस्त, 1905 को बंग-भंग के विरोध में कलकत्ता के टाउन हॉल में एक विशाल सभा की गई और कलकत्ता के बाजारों में विरोध स्वरूप प्रदर्शन किए गए। भारत के अन्य प्रान्तों में विभाजन का व्यापक विरोध हुआ। इससे पहले सन् 1905 ई. की ग्यारह मार्च को डॉक्टर रासबिहारी घोष के सभापतित्व में एक विशाल सभा हुई जिसमें हिन्दू व मुसलमान हजारों बंगाली सपूत एकत्रित हुये।

हिन्दू, मुसलमान, स्त्री-पुरुष, बालक, युवा तथा वृद्धों ने भी विभाजन का विरोध करने में सक्रिय रूप से भाग लिया। कलकत्ता में माननीय महाराजा सर मनीन्द्रचन्द्र नंदी के सभापतित्व में कासिम बाजार में एक सभा हुई जिसमें 50 हजार से भी अधिक लोग शामिल हुए, मानो कलकत्ता का जन-समाज उलट गया था। हिन्दू व मुसलमानों ने एक स्वर से बंगाल विभाजन का विरोध किया।

विभाजन 16 अक्टूबर, 1905 को लागू हुआ था। अत: इस दिन को सारे बंगाल में राष्ट्रीय शोक-दिवस घोषित किया गया। उस दिन लोगों ने उपवास रखे। कलकत्ता में हड़ताल रही। लोग नंगे पाँव घूमे और गंगा में स्नान किया। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का इस अवसर पर रचित 'आमार सोनार' बंगला देश गीत को लोगों ने खूब गाया। कलकत्ता शहर वन्देमातरम् गीत से गूँज उठा। राष्ट्रीय एकता के लिए गंगा स्नान से लौटते हुए वे आपस में गले मिले। राष्ट्रीय एकता व देश प्रेम का एक अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया।

विभाजन का विरोध भारतीयों ने ही नहीं वरन् ब्रिटिश समाचार तथा राजनीतिज्ञों ने भी किया। लॉर्ड मेक्डानल्ड ने तो बंगभंग के कार्य की निन्दा करते हुए यहाँ तक कह डाला "प्लासी के युद्ध के बाद बंगभंग ब्रिटिश शासन की दूसरी बड़ी भूल थी।" इंग्लैण्ड की संसद में भारत के भूतपूर्व वायसराय उदारमना लॉर्ड रिपन ने बंग-भंग के विरोध में जोरदार आवाज उठाई। एँग्लो इण्डियन पत्र जो ब्रिटिश शासन के समर्थक समझे जाते थे, उन्होंने लॉर्ड कर्जन के इस कार्य की घोर निन्दा की। टाइम्स ऑफ इण्डिया में लिखा गया कि अच्छा होता अगर लॉर्ड कर्जन दूसरी बार भारत लौट कर न आते, क्योंकि इससे अपनी प्रतिष्ठा धूल में मिलाने वाले कार्य से बच जाते। इसी प्रकार स्टेट्समैन, इंगलिशमैन तथा डेली न्यूज आदि पत्रों ने भी लॉर्ड कर्जन के स्वेच्छाचारी कार्य की घोर निन्दा की।

बहिष्कार आन्दोलन :

बंगाल के नेताओं ने देखा कि केवल सभाएँ तथा प्रदर्शन से ब्रिटिश-शासन पर विशेष प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। अत: अंग्रेजी शासन के विरोध के लिए कुछ अन्य ठोस उपायों का सहारा लेना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सारे बंगाल में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का नारा बुलन्द किया गया। अनेक स्थानों पर विदेशी वस्तुओं को खुले आम जलाया गया। इस स्वदेशी आन्दोलन को व्यापक जन-समर्थन मिला। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के अनुसार, "अपने उत्कर्ष के दिनों स्वदेशीवाद ने हमारे सामाजिक और घरेलू जीवन को बहुत ही प्रभावित किया। शादी के उपहारों में मिली ऐसी विदेशी वस्तुएँ तक वापिस कर दी गईं। अतिथिगण भी उस आनन्दोत्सव में शामिल होने से मना कर जाते थे जिसमें विदेशी नमक व चीनी का प्रयोग होता था।"

स्वदेशी आन्दोलन में प्रमुख भूमिका बंगाल के छात्रों ने निभाई। उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं को अपनाया तथा विदेशी वस्त्रों को बेचने वाली दूकानों के सामने धरना दिया। छात्रों ने विद्यालयों तथा कॉलेजों में विदेशी आन्दोलन की धूम मचा दी। सरकार ने छात्रों को हानि पहुँचाने के लिए अनेक दमनकारी कदम उठाये। उन पर लाठियाँ बरसाईं गईं, परन्तु छात्रों ने अद्भुत साहस का परिचय दिया और घुटने टेकने से मना कर दिया।

महिलाओं ने भी स्वदेशी आन्दोलन में बड़े उत्साह तथा सक्रिय रूप से भाग लिया। घरों से बाहर निकल कर उन्होंने पिकेटिंग, जुलूसों तथा धरनों में बड़े उत्साह से भाग लिया। राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं का यह प्रथम योगदान सदा स्मरणीय रहेगा।

मुसलमान भाइयों ने भी स्वदेशी आन्दोलन में प्रमुखता से भाग लिया। प्रसिद्ध बेरिस्टर अबुल रसूल, लोकप्रिय आन्दोलनकारी लियाकत हुसैन और प्रमुख व्यापारी गजनवी सहित अनेक मुस्लिम बन्धुओं ने इसमें उत्साह से भाग लिया। लॉर्ड कर्जन स्वयं इस हिन्दू मुस्लिम एकता को देखकर दंग रह गए। राष्ट्रीय एकता के इस सुदृढ़ चरित्र को नष्ट करने के लिए लॉर्ड कर्जन स्वयं ने पूर्वी बंगाल का दौरा किया और मुसलमानों को समझाया कि नये सूबे का उद्देश्य मुसलमानों के हितों की रक्षा करना है। कर्जन के इस प्रचार का असर कुछ मुसलमानों पर अवश्य पड़ा, परन्तु कुछ दूरदर्शी तथा सुसंस्कृत मुसलमान अपने सिद्धान्त पर अटल रहे और बंग-भंग का बराबर विरोध करते रहे।

सरकार का दमन चक्र :

स्वदेशी आन्दोलन तथा विदेशी वस्तु बहिष्कार आंदोलन ने अब राष्ट्र व्यापी रूप धारण कर लिया। महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक, पंजाब में लाला लाजपतराय तथा बंगाल में विपिनचन्द्र पाल तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बहिष्कार आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए धुआँधार प्रचार किया। वन्देमातरम् गीत सारे भारतवर्ष में बड़े उत्साह से गाया जाने लगा। यह गीत राष्ट्रीयता के प्रचार का सबल माध्यम बन गया। सरकार की नौकरशाही वन्देमातरम् जय घोष से तिलमिला उठी।

1905 ई. के नवम्बर मास में बंगाल के लैफ्टिनेन्ट गवर्नर फुलर के सेक्रेट्री ने आदेश जारी कर 'वन्देमातरम्' का नारा लगाने पर रोक लगा दी। स्वदेशी व बहिष्कार आन्दोलन को कुचलने के लिए सैनिकों को बुलाकर फौजी शासन की भूमिका तैयार कर ली। प्रेस को नियंत्रित करने के लिए कानून बनाए गए। स्वदेशी आन्दोलनकारियों पर मुकदमे चलाए गए और उन्हें जेल की लम्बी सजाएँ दी गईं। अनेक छात्रों को शारीरिक दण्ड भी दिया गया। 1906 से लेकर 1909 तक बंगाल की अदालतों में 550 राजनीतिक मुकदमे चलाए गए। वन्देमातरम्, केसरी, मराठा व संध्या नामक क्रान्तिकारी पत्रों पर रोक लगा दी गई और उनके संपादकों को गिरफ्तार कर लिया गया।

दमन का सबसे निकृष्ट उदाहरण जब देखने को मिला तब सरकार ने अप्रेल, 1906 में बरिसाल में होने वाले बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन के शांतिप्रिय प्रतिनिधियों पर लाठी प्रहार किया। परिषद के सभापति सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पकड़ लिए गए। अनेक छात्र पुलिस के हमले से घायल हुए, परन्तु वन्देमातरम् जय घोष बराबर गूँजता रहा। दिसबर, 1908 में श्रद्धेय कृष्णकुमार मित्र और अश्विनीकुमार दत्त सहित नौ बंगाली नेताओं को देश से निर्वासित कर दिया गया। इससे पहले पंजाब में लाला लाजपतराय तथा भगतसिंह के चाचा अजीतसिंह को विदेश

निकाला दे दिया गया था। 1908 में लोकमान्य तिलक को 6 वर्ष की सजा देकर माण्डले जेल में भेज दिया गया। मद्रास में चिदम्बरम् पिल्लै और आन्ध्र प्रदेश में हरिस सर्वोत्तम राव तथा अन्य लोगों को जेल में ठूँस दिया गया।

स्वतन्त्रता की प्रबल भावना :

ब्रिटिश शासन की दमनपूर्ण नीति के कारण स्वदेशी व बहिष्कार आन्दोलन का नेतृत्व नरम दल के हाथों से निकल कर गरम दल के हाथों में चला गया। गरम दल के नेताओं ने बहिष्कार आन्दोलन को सविनय अवज्ञा आन्दोलन में बदल कर जनता को सरकार की दमनपूर्ण नीतियों का प्रतिकार करने के लिए पूरी तरह तैयार कर लिया। बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय तथा अरविन्द घोष ने लोगों में क्रान्तिकारी भावना का संचार किया। योगीराज अरविन्द ने तो खुले आम घोषणा की कि "राजनीतिक स्वतन्त्रता राष्ट्र की प्राण वायु है।"

'केसरी' पत्र में तिलक ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि "हमें ब्रिटिश शासन के अन्यायपूर्ण आदेशों का उल्लंघन करना चाहिए। बंगाल के लोगों ने ब्रिटिश शासन की आज्ञाओं का उल्लंघन कर अपनी प्रबल इच्छा शक्ति व त्याग का परिचय दिया है।" कलकत्ता से निकलने वाले दैनिक पत्र वन्देमातरम् ने स्पष्ट रूप से लिखा— "यदि ब्रिटिश शासन लोकमत की उपेक्षा करता है और वह हमारे राष्ट्रीय आत्म-विकास के मार्ग में बाधक बनता है तो हमें ऐसे शासन का बिल्कुल असहयोग करना चाहिए और पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करना चाहिए।"

इस प्रकार भारतीय राजनीति में बंगभंग का प्रश्न गौण तथा भारत की स्वतन्त्रता का प्रश्न मुख्य बन गया। गरम दल के राष्ट्रवादियों ने नवयुवकों को आत्म-बलिदान के लिए प्रेरित किया जिसके बिना कोई भी महान् लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस आह्वान पर युवा वर्ग जोश खरोश के साथ आगे बढ़ा। पं. जवाहरलाल नेहरू ने जो उस समय इंग्लैण्ड में विद्याध्ययन कर रहे थे युवा भारत के जोश का अपने जीवन चरित्र 'मेरी कहानी' नामक ग्रंथ में सुन्दर वर्णन किया है— "1907 से लेकर आगे कई वर्षों तक भारत असंतोष व अशांति से उबलता रहा। 1857 ई. के बाद पहली बार भारत विदेशी शासन के सामने विनीत बनकर घुटने टेकने के स्थान पर लड़ने को तत्पर था। तिलक की गतिविधियाँ तथा सजा के तथा अरविन्द के समाचार और जिस प्रकार बंगाल की जनता स्वदेशी आंदोलन की तथा बहिष्कार आन्दोलन की शपथ ले रही थी, उसकी खबरों ने इंग्लैण्ड स्थित हम सभी भारतीयों को उद्वेलित कर दिया है। बिना किसी अपवाद के हम तिलकवादी या गरमपंथी बन गए थे।"

वास्तव में बंग-भंग आन्दोलन को स्वदेशी तथा बहिष्कार आन्दोलन को सविनय अवज्ञा आन्दोलन के माध्यम से पूर्ण स्वतन्त्रता की आकाँक्षा तक ले जाने वाले गरम दल के प्रमुख नेता चार ही थे। उन्होंने ब्रिटिश दमन नीति के विरोध में लोगों को खड़ा किया, उन्हें स्वतन्त्रता के पथ का राही बना दिया। इन नेताओं में सर्वोच्च स्थान बाल गंगाधर तिलक का था जिन्होंने 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का उद्घोष किया था। वास्तव में वे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सच्चे प्रणेता थे। शुद्ध राष्ट्रवाद एवं देश-भक्ति को जाग्रत करने वाले दूसरे व्यक्ति योगीराज अरविन्द थे। बंग-भंग का सक्रिय रूप से विरोध करने वाले तथा गौरवमय स्वाभिमानी राष्ट्रवाद को जन्म देने वाले दो सज्जन और थे जिनका परिचय प्राप्त किये बिना तो हमारा स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास अधूरा ही रह जाएगा। वे महान् देशभक्त थे—लाला लाजपत राय एवं विपिनचन्द्र पाल।

लाला लाजपतराय :

लाला लाजपतराय अपने समय के महान् नेता थे। पंजाब के सार्वजनिक जीवन पर तो उनका एकाधिकार था। लोग उन्हें पंजाब केसरी के नाम से पुकारते थे। लाला जी का जन्म 28 जनवरी, 1865 ई. को उनके ननिहाल ढोंडा ग्राम में हुआ। उनके पिता लाला राधाकृष्ण राय लुधियाना जिले के जगरावाँ के रहने वाले थे और विद्यालय निरीक्षक के पद पर काम करते थे। इसी कारण लालाजी की शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध हो सका और मुख्तारों की परीक्षा पास करके लाहौर में मुख्तारी (वकालत) करने लगे। वहीं पर उनका परिचय आर्य-समाज के नेता गुरुदत्त से हुआ। उनके प्रभाव से लाला जी पक्के आर्य समाजी हो गए और आर्य समाज के अग्रगण्य नेता बन गए।


पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

23 वर्ष की अवस्था में वे कांग्रेस में शामिल हुए। कांग्रेस मंच से हिन्दी में भाषण करने वाले वे पहले व्यक्ति थे। नरम दल की नीतियों में उनका विश्वास नहीं था। अत: वे लोकमान्य तिलक के गरम दल के प्रमुख नेता बन गए। 1905 ई. में कांग्रेस के शिष्टमण्डल के सदस्य बन कर इंग्लैण्ड गए, परन्तु वहाँ से लौटने के बाद बंग-भंग विरोधी आन्दोलन में पूरी तरह से जुट गए। पंजाब में स्वदेशी बहिष्कार आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन को प्रभावशाली बनाने का उत्तरदायित्व उन्हीं ने संभाला था।

सुप्रसिद्ध पत्रकार सर सी. वाई. चिन्तामणी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष' में लिखा है—"वक्ता के रूप में उनका स्मरण करके मुझे लायड जार्ज का स्मरण हो आता है। जनता में क्रोध की भावना उत्पन्न करने में दोनों की शक्ति एक जैसी थी।" लाजपतराय के उर्दू भाषण जनता में जोश भर देते थे। 1912 ई. की पटना कांग्रेस में एक विषय पर उन्होंने लगातार तीन भाषण दिये, जिनमें प्रत्येक की अपनी विशेषता थी। मि. गोखले उस समय प्रवासी भारतीयों की परिस्थिति का अध्ययन करने दक्षिण अफ्रीका गए हुए थे। उनके समर्थन व सहायता के लिए प्रस्ताव पेश करते हुए लालाजी ने 45 मिनट तक अंग्रेजी में भाषण दिया। भाषण आग बरसाने वाला था। ऐसे उनके प्रत्येक भाषण में बुद्धि-विलास का चमत्कार होता था।

लाला लाजपतराय ने अपनी प्रभावशाली वक्तृत्व शक्ति और अपूर्व स्वार्थ त्याग से भारतीय राष्ट्र के हृदय में अपना विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था। भारतीय स्वतन्त्रता के लिए उनके हृदय में बड़ी आग थी, जो समय-समय पर उनके भाषणों से प्रकट होती थी। 1907 ई. में पंजाब नहर आन्दोलन के सम्बन्ध में ब्रिटिश शासन ने उनको देश निकाला देकर माण्डले की जेल में रक्खा था। इससे समस्त भारत में क्रोधाग्नि फैल गई थी। नरम दल के नेता माननीय गोखले जी के प्रयत्न से लाला जी रिहा कर दिए गए।

1914 ई. में लाला जी कांग्रेसी शिष्टमण्डल के सदस्य के रूप में इंग्लैण्ड गए। वहाँ भी उन्होंने जन सभाओं में बिना किसी डर के ब्रिटिश शासन के काले कारनामों का पर्दाफाश किया। महायुद्ध प्रारम्भ हो चुका था। अतः उन पर भारत आने पर रोक लगा दी गई। लालाजी जापान चले गए, फिर इंग्लैण्ड होते हुए अमेरिका पहुँच गए। अमेरिका में भी समाचार पत्रों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध प्रचार करने लगे। इस सम्बन्ध में आपने वहाँ 'तरुण-भारत' नामक पुस्तक लिखी, उसमें यह सिद्ध किया गया कि "भारतीय जनता अंग्रेजों से तंग आ चुकी है और विदेशी शासन से घृणा करती है।"

उन्हीं दिनों रोलेट एक्ट पास हुआ और उसके कुछ समय बाद जन भावना को कुचलने के लिए पंजाब में सैनिक शासन लागू करके अमृतसर में जलियाँवाला बाग में हजारों निर्दोष लोगों को गोली का निशाना बनाया गया। इन सब घटनाओं से लाला जी बड़े दुःखी हुए और भारत आने के लिए उतावले हो उठे। अन्ततः सरकार ने लालाजी के भारत प्रवेश पर से प्रतिबन्ध हटा लिया और 20 फरवरी, 1920 ई. को लाला जी भारत लौट आये। भारत पहुँचते ही उन्होंने पुनः क्रान्ति का शंख फूंक दिया और घर-घर क्रान्ति का संदेशा पहुँचाने के लिए उर्दू में 'वन्देमातरम्' नामक समाचार का संपादन शुरू कर दिया।

इस पत्र में लालाजी ने लिखा—"सब एक हो जाओ, अपना कर्त्तव्य जानो, धर्म को पहचानो, तुम्हारा सबसे बड़ा धर्म राष्ट्र है। राष्ट्र की मुक्ति के लिए, देश के उत्थान के लिए कमर कस लो, इसी में तुम्हारी भलाई है, इसी से देश व समाज का कल्याण हो सकता है।"

लालाजी की ललकार से ब्रिटिश शासन काँप उठा। उन्हें कैद करके डेढ़ वर्ष के लिए कारावास में डाल दिया गया, परन्तु जेल में अस्वस्थ होने के कारण 16 अगस्त, 1923 ई. को रिहा कर दिए गए, क्योंकि अंग्रेज शासन को डर था कि यदि कारावास में लाला जी को कुछ हो गया तो सारे देश में क्रान्ति भड़क उठेगी।

कुछ दिन स्वास्थ्य लाभ करने के बाद लालाजी पुन: लाहौर में नवयुवकों में स्वतन्त्रता की भावना भरने लगे। इसके लिए उन्होंने लाहौर में 'तिलक राजनीति विद्यालय' की स्थापना की। इस विद्यालय में अनेक नवयुवक भरती होने लगे और देश के लिए मर मिटने की शिक्षा ग्रहण करने लगे। उन्हीं दिनों राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था। ब्रिटिश शासन ने जनता की भावना को शांत करने के लिए कुछ सुधार करने का इरादा व्यक्त किया। ये सुधार किस प्रकार के हों तथा भारतीयों को किस तरह के अधिकार दिए जाएँ। इन सभी बातों का अध्ययन के लिए साइमन कमीशन भारत आया। इस कमीशन में एक भी सदस्य भारतीय नहीं था। अत: कांग्रेस ने इस कमीशन का बहिष्कार करने का निर्णय लिया। बम्बई में कमीशन के विरोध में भारी प्रदर्शन हुए।

30 अक्टूबर, 1928 ई. को कमीशन लाहौर पहुँचने वाला था। लालाजी भला कब चूकने वाले थे। उन्होंने साइमन कमीशन के विरोध की व्यापक योजना बनाई। ज्योंही कमीशन लाहौर स्टेशन पर पहुँचा 'साइमन कमीशन वापस जाओ' के नारों से आकाश गूँज उठा। जिस जुलूस का नेतृत्व लालाजी कर रहे थे उसके जोश का कहना ही क्या? काफी संख्या में लोग जमा थे।

सरकार बर्बरता पर उतर आई और सैनिक अधिकारी साण्डर्स के आदेश से पुलिस जुलूस पर टूट पड़ी। अंधाधुंध लाठी वर्षा हुई। लालाजी को गिराकर निर्ममतापूर्वक उन पर लाठियाँ बरसाईं, परन्तु लालाजी पीछे नहीं हटे। लहुलुहान होने पर भी वे जुलूस को संबोधित करते रहे। उन्होंने कहा कि "मेरे शरीर पर प्रत्येक लाठी ब्रिटिश सरकार के कफन पर कील का काम करेगी।"

लालाजी के घायल होने से नवयुवक विदेशी शासन पर दाँत पीसने लगे। भारत के महान् सपूत शहीदे आजम भगतसिंह ने तो वहीं पर यह प्रतिज्ञा कर ली कि "इस अत्याचार का बदला शैतान के बच्चे साण्डर्स से अवश्य लूँगा।"

इस निर्मम पिटाई के बाद लालाजी अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सके। 17 नवम्बर, 1928 ई. को भारत माता को बिलखती छोड़ कर स्वर्ग सिधार गए। देश की आजादी के लिए जो उन्होंने कुर्बानी दी, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। एक कवि ने महान् देशभक्त लालाजी के बारे में ठीक ही लिखा है—

"अंग्रेजों की लाठी खाकर तू ने दी कुरबानी।
हे भारत माँ के अमर पूत आजादी के सेनानी!
जब तक है, इतिहास देश का तेरा नाम रहेगा।
भारत की धरती पर अंकित तेरा काम रहेगा।"

विपिनचन्द्र पाल :

विपिनचन्द्र पाल गरम दल के तीन प्रमुख नेताओं में से एक थे। आपने स्वदेशी व बहिष्कार आन्दोलन में सक्रिय रूप मे भाग लिया। उस समय देश में नव चेतना और नव जागरण उत्पन्न करने में उनके भाषणों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। विपिन बाबू का कांग्रेस से बहुत पहले से ही सम्बन्ध शुरू हो चुका था, परन्तु बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा के नये सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए विपिन बाबू ने समस्त भारत पर अपनी वक्तृत्व शक्ति का सिक्का जमा दिया। वे आवश्यकता से अधिक उग्रवादी थे। 1906 ई. के कलकत्ता अधिवेशन में विपिन बाबू ने बहिष्कार का जो उग्ररूप रखा, उससे सभी नेता आश्चर्य चकित रह गए।



विपिनचन्द्र पाल

1907 ई. में मद्रास में उन्होंने भड़काने वाला भाषण दिया। इससे नरम दल के कांग्रेसी नेता नाराज होने लगे। वायसराय लॉर्ड मिन्टो के समय भड़काने वाले भाषणों के कारण ही उन्हें देश से बाहर निकाल दिया था। आप कुछ समय लन्दन के इण्डिया हाउस में वीर सावरकर के सहयोगी भी रहे।

वन्देमातरम् पत्र के संपादक अरविन्द घोष के विरुद्ध गवाही देने से मना करने पर आपको 6 माह की सजा मिली, उसे आपने सहर्ष स्वीकार कर लिया। बाद में वे सक्रिय राजनीति से दूर रहने लगे। इतना सब कुछ होने पर भी हमें यह निर्विवाद स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्होंने अपने जोशीले भाषणों तथा 'न्यू

इण्डिया' व 'वन्देमातरम्' पत्रों के माध्यप से नवयुवकों में क्रान्तिकारी विचारों को ठूँस-ठूँस कर भर दिया। स्वतन्त्रता संग्राम में उनके योगदान को "लाल-बाल-पाल" युग के रूप में सदा स्मरण किया जाता रहेगा।



लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और विपिनचन्द्र पाल

स्वदेशी व बहिष्कार आन्दोलन का प्रभाव :

इस आन्दोलन ने भारतीय राजनीति को ही नहीं वरन् उसके आर्थिक व साँस्कृतिक जीवन को आत्म-निर्भर बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। अनेक कपड़ा मिलें, साबुन और दियासिलाई के कारखाने, हस्त करघा केन्द्र, देशी व्यापारिक कम्पनियाँ, राष्ट्रीय बैंक व भारतीय बीमा कम्पनियों की स्थापना हुई। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार आन्दोलन से स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम व लगाव बढ़ा जो आगे चलकर स्वदेश प्रेम में विकसित होता चला गया। इस सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' पत्र में लिखा—"हमारा राष्ट्र एक वृक्ष की तरह है जिसका मूल तना स्वराज्य है और स्वदेशी तथा बहिष्कार उसकी शाखाएँ हैं।"

स्वदेशी भावना के फलस्वरूप राष्ट्रीय शिक्षा का उद्‌भव हुआ। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली को राष्ट्र-विरोधी समझा जाने लगा। स्वदेशी शिक्षा प्रतिष्ठानों की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की गई। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शांति निकेतन की स्थापना करके मार्ग प्रशस्त किया।

लॉर्ड कर्जन के भारतीय विश्वविद्यालय विधेयक तथा राजनीतिक प्रदर्शनों में छात्रों पर प्रतिबन्ध लगा देने के कारण राष्ट्रीय शिक्षा परिषद की स्थापना को बल

मिला। 1906 ई. में बंगाल नेशनल कॉलेज की स्थापना हुई और अरविन्द घोष उसके प्रिंसिपल बने। इससे भी पहले 1898 ई. में डॉन के संपादक सतीशचन्द्र मुखर्जी ने राष्ट्रीय योजना का प्रारूप प्रस्तुत किया जिसके अनुसार पाठ्यक्रम में विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा को उचित स्थान देने पर जोर दिया गया। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य भारतीय वैज्ञानिक, इतिहासकार एवं उद्योगपति पैदा करना था, परन्तु सबसे अधिक बल देशभक्ति की भावना को उभारने पर दिया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के द्वारा ऐसा साँस्कृतिक धरातल तैयार करना था जिस पर स्वतन्त्रता की जड़ें जम सकें, क्षेत्रीय भाषाओं का विकास हो सके। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश में अनेक राष्ट्रीय स्कूल खोले गए।

आत्म-निर्भरता तथा आत्म-शक्ति के विकास में भी इस आन्दोलन से बड़ी सहायता मिली, लेकिन इन सबका उद्देश्य राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। वास्तव में स्वदेशी आन्दोलन ने ही इसे स्वराज्य का रास्ता बताया। इस आन्दोलन ने नवयुवकों को शताब्दियों की निद्रा से जगा दिया। इस आन्दोलन के माध्यम से राजनीति में डरपोकपन समाप्त हुआ और दिलेरी तथा निडरता का विकास हुआ। आन्दोलन से अनेक मूल्यवान सबक भी सीखने को मिले। जैसा कि महात्मा गाँधी ने लिखा है कि—'बंग-भंग' के बाद लोगों ने समझ लिया कि याचिकाओं तथा माँगों के पीछे होना चाहिए, परन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कुछ कमियों के रहते हुए भी वस्तुतः बंग-भंग विरोधी आन्दोलन भारतीय स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रवाद के लिए एक महान् क्रान्तिकारी कदम था।

इसकी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह भी थी कि महिलाओं ने स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेने का पाठ पढ़ लिया। प्रारम्भ में सभी मुस्लिम भाइयों ने बंग-भंग विरोधी आन्दोलन में भाग लेकर अद्भुत राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया। ब्रिटिश शासन तो इस एकता को देखकर काँप उठा। अब उसने यह अच्छी तरह समझ लिया कि मुसलमानों को भारतीय राष्ट्रधारा से अलग किये बिना भारत में अंग्रेजी राज्य नहीं टिक सकता। अतः उन्होंने फूट डालो और राज करो की नीति अपना कर 1906 ई. को मुस्लिम लीग की स्थापना में बहुत बड़ी सहायता की।

भारतीय लोगों की न्यायोचित माँगों को ठुकरा कर, नरम दल को निराश कर दिया तो दूसरी ओर देशभक्त गरम दल के नेताओं पर निर्मम अत्याचार करके नवयुवकों को देश की स्वतन्त्रता के लिए सशस्त्र क्रान्ति हेतु मजबूर कर दिया जिसका विस्तृत वर्णन हम अगली इकाई में पढ़ेंगे।

□□

इकाई 7

क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा जुझारू राष्ट्रवाद

(1905 ई. से 1918 ई. तक)

पिछली इकाई में हमने बंग-भंग के विरोध में स्वदेशी आंदोलन तथा बहिष्कार आंदोलन के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की, परन्तु ब्रिटिश शासन ने जनता की माँगों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, वरन् शान्तिपूर्ण आंदोलन को कुचलने के लिए दमन नीति का आश्रय लिया। इस दमन नीति का ही परिणाम था कि नवयुवकों में यह भावना घर कर गई कि हमें चुपचाप कायर की भाँति अन्याय को सहन नहीं करना चाहिए, वरन् शक्ति से इसका प्रतिकार करना चाहिए। हमें ईंट का जबाव पत्थर से देना चाहिए।

यद्यपि हिंसक क्रांति का रास्ता हमारी संस्कृति व सभ्यता के अनुकूल नहीं है, परन्तु शासन की अन्यायपूर्ण व दमनकारी नीति ने भारतीय युवकों को यह सोचने के लिए मजबूर कर दिया की 'लातों के खाने वाले बातों से नहीं मानेंगे।'

लोक नेताओं का निर्वासन एक आम बात हो गई। 1908 ई. में बंगाल के कई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जिनमें बाबू अश्विनीकुमार दत्त तथा बाबू कृष्णकुमार मिश्र भी थे, निर्वासित कर दिए गए। इसी वर्ष क्रिमिनल ला एमेंडमेंट एक्ट पास हुआ जिसके अनुसार अनेक संस्थाओं को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। महान् राष्ट्रीय नेता नवयुवकों के हृदय सम्राट बाल गंगाधर तिलक को 6 वर्ष का कठोर कारावास देकर माण्डले जेल भेज दिया गया। लाला लाजपतराय को पंजाब से निर्वासित कर दिया गया। अनेक क्रांतिकारी युवक फाँसी पर लटका दिए गए। अनेक को काले पानी की सजा दी गई।

इण्डियन प्रेस एक्ट पास करके अनेक समाचार-पत्रों के सम्पादकों को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें जेल में अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाने लगीं। संध्या, युगान्तर, केसरी व पंजाबी पत्रों के संपादकों पर अनेक अत्याचार हुए।

कांग्रेस संस्था में भी नरम दल के नेताओं का वर्चस्व हो गया। स्वातंत्र्य भावना से ओत-प्रोत गरम दल के नेताओं को अपमानित किया जाने लगा। 1907 ई. के कांग्रेस के सूरत अधिवेशन से यह बात स्पष्ट हो गई कि कांग्रेस

ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध खड़ी होने में सक्षम नहीं है। 1907 ई. से 1916 ई. तक कांग्रेस एक निर्जीव संस्था बनी रही। नवयुवकों को इससे कुछ भी तो आशा नहीं रही।

क्रांतिकारी आतंकवाद का विकास :

कांग्रेस की राजनीतिक संघर्ष की विफलता तथा सरकारी दमन नीति का परिणाम अंततः क्रांतिकारी आतंकवाद के विकास के रूप में हुआ। बंगाल के क्रांतिकारी युवक सरकारी दंभ व दमन के कारण आग बबूला हो उठे। उनमें विदेशी शासन के प्रति घोर घृणा का संचार हुआ। उन्होंने देखा कि शांतिपूर्ण विरोध और राजनीतिक कार्यवाही के सारे रास्ते बंद हो गए। निराश होकर नवयुवकों ने बम का पंथ अपनाया।

नवयुवकों का इस बात में विश्वास नहीं रहा कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन द्वारा अंग्रेजी शासन का अन्त किया जा सकेगा। इसलिए ब्रिटिश शासन का अन्त करने के लिए शक्ति का उपयोग आवश्यक है। इसी प्रकार के विचार 'युगान्तर' पत्र में 22 अप्रेल, 1906 में प्रकाशित हुए—"उपाय तो अपने हाथ में है। उत्पीड़न के इस अभिशाप को रोकने के लिए 30 करोड़ लोगों को अपने 60 करोड़ हाथ खड़े करने होंगे। बल को बल द्वारा रोका जाना चाहिए। लोहे को लोहा ही काटता है।"

प्रारम्भ में आतंकवाद कोई निश्चित राजनीतिक संगठन नहीं था। न कोई व्यापक हिंसक सशस्त्र क्रांति करना ही उसका उद्देश्य था। वे तो आयरिस आतंकवादियों तथा रूसी निहिलिस्टों के तरीकों को अपनाकर ब्रिटिश शासन के अत्याचारी अधिकारियों को उनके काले कारनामों की सजा देना चाहते थे। बदनाम ब्रिटिश अधिकारियों के साथ-साथ ब्रिटिश शासन के उन भारतीय अधिकारियों को भी अच्छा सबक सिखाना चाहते थे, जो देशभक्त नेताओं को विदेशी शासन के इशारे पर यातनाएँ देते रहते थे। क्रांतिकारियों का भेद ब्रिटिश शासन को बताने वाले दगाबाज भारतीयों के भी आतंकवादी घोर शत्रु थे। इन आतंकवादी देशभक्तों का एक मात्र उद्देश्य ब्रिटिश शासन को यह बताना था कि भारतीय युवक चुपचाप अमानुषिक अत्याचार सहन नहीं कर सकता। वे राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने की पूरी क्षमता रखते हैं।

पिछली इकाई में हमने देखा कि आतंकवाद का पहला शिकार बम्बई का प्लेग कमीश्नर रैण्ड हुआ। उसकी चापेपकर बन्धुओं ने हत्या कर दी। लैफ्टिनेन्ट आयरिस्ट भी रैण्ड के साथ होने से मारे गए थे। दामोदर चापेपकर पर मुकदमा चला और उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया। पूना जेल में ही पूना के मुख्य सिपाही को मारने का असफल प्रयास हुआ तथा बाद में सरकारी गवाह बन जाने के कारण

द्राविड़ बन्धुओं का काम तमाम करने वाले भी चापेपकर बन्धु ही थे। प्रारम्भ में आतंकवादी गतिविधि व्यक्तिगत रूप से ही चलती रही, परन्तु आगे चलकर बंगाल व महाराष्ट्र में अनेक क्रांतिकारी गुप्त संगठनों का निर्माण हुआ। इनमें ढाका की अनुशीलन समिति, कलकत्ता का जुगांतर, सावरकर बन्धुओं द्वारा स्थापित 'मित्र मेज़ा' बहुत प्रसिद्ध थी। सावरकर के विदेश चले जाने के बाद उनके बड़े भाई गणेश सावरकर द्वारा स्थापित 'अभिनव भारत समाज' नामक गुप्त संस्था ने भी अनेक क्रांतिकारी कार्य किये। पंजाब, बिहार, मद्रास, मध्य प्रदेश तथा संयुक्त प्रान्त भी क्रांतिकारी संगठनों में पीछे नहीं रहे। इनकी संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करने के पहले हमें गुप्त संगठनों की कार्यविधि का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

ढाका अनुशीलन समिति गुप्त क्रांतिकारी संगठनों में प्रमुख थी। इसकी स्थापना पुलिस कर्मचारी बिहारीदास ने की थी। 1908 ई. में इस संस्था को गैर-कानूनी घोषित करने पर इसका दफ्तर कलकत्ता में खोला गया। यहाँ पर मक्खन सेन के नेतृत्व में इस समिति ने खूब काम किया। अन्य प्रान्तों के क्रांतिकारियों से सम्पर्क करने में इस समिति का महत्त्वपूर्ण हाथ था। नवम्बर, 1908 को ढाका अनुशीलन समिति के कार्यालय की तलाशी लेने से पता चला कि समिति के अंतर्गत कितने ही केन्द्र क्रांतिकारी कार्यों के लिए चलाये गए थे। समिति में कार्य करने वाले सदस्यों को चार प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती थीं—

1. **आदि प्रतिज्ञा**—दल के नेता से कुछ न छिपाऊँगा। उसकी आज्ञा का पालन करूँगा।
2. मैं समिति के आंतरिक कार्यों को पूरी तरह गुप्त रखूँगा, दल का भेद किसी को नहीं दूँगा।
3. प्रथम विशेष प्रतिज्ञा के अनुसार—मैं परिवार के सदस्यों की तनिक भी चिन्ता नहीं करूँगा मैं सारा कार्य दत्तचित्त होकर करूँगा। असफलता से कभी नहीं घबराऊँगा।
4. द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा के अनुसार—सारा जीवन समिति के विकास के लिए लगा दूँगा।

ये सभी प्रतिज्ञाएँ माँ काली के सामने देव-पूजा के बाद ली जाती थी। क्रान्तिकारी संगठन के कार्य दो भागों में विभाजित थे— साधारण कार्य के अंतर्गत दल का संगठन प्रचार व आन्दोलन था। विशेष कार्य के अंतर्गत बम बनाना, पैसा एकत्रित करना तथा सशस्त्र कार्यवाही करना था।

उद्देश्य की पूर्ति के लिए, क्रांतिकारी शक्ति पूजा में विश्वास रखते थे। 1905 ई. में 'भवानी मंदिर' शहर के कोलाहल से दूर किसी एकान्त स्थान में होते थे। क्रांति के पुजारी ब्रह्मचारी व संन्यासी के रूप में शक्ति की आराधना करते थे।

इन विचारों की उत्पत्ति बंकिम बाबू के सप्रसिद्ध उपन्यास आनन्द मठ में हुई थी, जिसकी पृष्ठभूमि में 1778 ई. का संन्यासी विद्रोह था। इसमें सशस्त्र संन्यासियों ने ईस्ट इण्डिया कंपनी के अधिकारियों से खुलकर मुठभेड़ की थी।'

इनका अपना प्रचार साहित्य होता था जिसमें देश के लिए मर मिटने का उद्घोष अंकित रहता था। उनकी एक विज्ञप्ति में कहा गया था— "इस अपवित्र सरकार के अस्तित्व को खतरे में डाल दो। मृत्यु की छाया से अंधकार में छिपे रहो और विदेशी सत्ता पर टूट पड़ो। जेल में मरने वाले भाइयों को याद करो, आँखें खोलो व काम करो।"

"हम तुम सबको राष्ट्र व ईश्वर के नाम पर बुलाते हैं। सभी नवयुवक और वृद्ध, अमीर व गरीब, हिन्दू या मुसलमान आओ, भारत की इस स्वाधीनता की लड़ाई में शामिल हो जाओ। अपना रक्त बहा दो, देखो माता बुला रही है।"

"क्रांतिकारियों के पत्रों पर जो मुहर लगी होती थी। उस पर 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अंकित रहता था जिसका अर्थ है कि 'माँ व राष्ट्र स्वर्ग से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।"

बंगाल में क्रांतिकारियों ने एक तरह से तहलका मचा दिया। जगह-जगह ब्रिटिश अधिकारियों की व देशद्रोही भारतीय अधिकारियों की हत्या की योजना बनने लगी। धनार्जन के लिए अनेक स्थानों पर डाके डाले गए। इन सबका वर्णन यहाँ संभव नहीं है। गुप्त संगठन के सभी कार्य देशभक्तिपूर्ण व साहस से भरे हुए होते थे।

ढाका अनुशीलन समिति ने गुप्त रूप से बम बनाने के सभी साधन जुटा लिए थे। कलकत्ता में मानक तल्ला मुहल्ले में डॉ. कृष्णन् घोष का एक बगीचा था। यह बगीचा उनके छोटे पुत्र बारीन्द घोष ने विप्लवी कार्यों के लिए तरुणों की समिति को सौंप दिया था। इसी बगीचे में एक पक्का मकान था, जिसमें तरुणों को बम बनाने का काम सिखाया जाता था। प्रफुल्ल चाकी ने बंगाल लैफ्टिनेन्ट गवर्नर पर जो बम फेंका था, वह इसी बगीचे का बना हुआ था। इस तरह से यह बगीचा विप्लवी इतिहास के साथ गहराई से जुड़ गया था। मुजफ्फरपुर नगर बम काण्ड के बाद जब इस बगीचे की तलाशी हुई तब पुलिस को नौ रिवाल्वर, कई बम, बम के खोल व डायनामाइट आदि मिले थे।

अनेक क्रांतिकारी इस बम फैक्ट्री से सम्बंधित थे। यहीं पर बारीन्द घोष, उल्ला साकर दत्त, विभूति भूषण सरकार, नलिनीकान्त गुप्त, इन्द्र भूषण राय, विजय कुमार नाग, शचीन्द्रनाथ सेन, शिशिरकुमार घोष, कुंजीलाल साहा, पूर्णचन्द्र सेन, परेशचन्द्र मौलिक, नरेन्द्रनाथ बख्शी और हेमेन्द्रनाथ घोष एक साथ गिरफ्तार किए गए।

कलकत्ता के साथ ही मिदनापुर में भी एक विप्लवी दल कायम किया गया था। इस दल की स्थापना करने वाले अरविन्द घोष थे। स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता ने भी मिदनापुर के क्रांतिकारी दल के विचारों को फैलाने में बहुत सहयोग दिया था। मिदनापुर में ही तरुण समाज के एक छात्र उल्लास कर दत्त ने अपने ही घर में बम बनाना शुरू कर दिया था। मिदनापुर जिले के कंदवई गाँव के निवासी हेमचन्द्रदास कानूनगो ने अपनी सारी जमीन जायदाद बेच दी और उससे जो धन मिला उससे बम बनाने की विद्या सीखने के लिए 1907 ई. में फ्रांस चले गए और वहाँ पेरिस में श्यामजी कृष्ण वर्मा और बैरिस्टर सरदारसिंह राणा का इनको पूरा सहयोग मिला, जिसका विस्तृत वर्णन हम अगली इकाई में पढ़ेंगे।

भारतीय क्रांतिकारियों ने पेरिस में बम बनाने की एक प्रयोगशाला का निर्माण कर लिया। इसमें हेमचन्द्र दास के साथ बम्बई के टी.एम. बापट और हैदराबाद के मिर्जा अब्बास भी काम करने लगे। हेमचन्द्र दास ने पेरिस में यह भी सीख लिया था कि ड्राइ सेल फिट करके रेलगाड़ी को कैसे ध्वस्त किया जा सकता है। पेरिस से लौटकर टी.एम. बापट भी कलकत्ता के 'युगान्तर' दल में काम करने लगे।

बम बनाने की विद्या सीखने के बाद क्रांतिकारियों ने उन अंग्रेज अधिकारियों पर इनके प्रयोग की योजना बनाई जो राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलते तथा राष्ट्रीय नेताओं को कष्ट देते रहते थे। इस प्रकार के दमनकारी प्रशासकों में बंगाल का लैफ्टिनेन्ट गवर्नर फूलर प्रमुख था। फूलर को ही क्रांतिकारी बंग-भंग के लिए उत्तरदायी मानते थे। इस पर प्रफुल्ल चाकी ने बम फेंका था, परन्तु वह बच गया। दूसरे नंबर पर कलकत्ता प्रेसीडेन्सी अदालत का मुख्य न्यायाधीश किंग्स फोर्ड था। क्रांतिकारी देशभक्त इसको 'कसाई काजी' के नाम से पुकारते थे।

किंग्स फोर्ड काफी बदनाम अंग्रेज था। उसने युगान्तर, वन्देमातरम, नव शक्ति और संध्या आदि समाचार पत्रों के प्रति दमनकारी नीति अपनाई थी। उसने 'वन्देमातरम' के संपादक अरविन्द घोष को किसी मुकदमे में फँसाने की बहुत कोशिश की। इस सम्बन्ध में गवाही न देने के कारण विपिनचन्द्र पाल को 6 माह की सूक्ष्म सजा देने वाला किंग्स फोर्ड ही था। संध्या के संपादक ब्रह्म बान्धवों को जेल इसी ने भेजा था। ब्रह्म बान्धव तो जेल में ही चल बसे थे। युगान्तर के संपादक भूपेन्दनाथ को डेढ़ वर्ष का कठोर कारावास देने वाला भी यही कसाई काजी था। किंग्स फोर्ड ने 16 वर्षीय छात्र सुशीलकुमार को पन्द्रह बेतों की सजा दी थी, जिससे उसकी खाल तक उधड़ गई थी। इस तरह से किंग्स फोर्ड राष्ट्रवादियों की आँखों का काँटा बन गया था। अतः क्रांतिकारी दल ने इसका काम तमाम करने का निर्णय कर ही लिया। ब्रिटिश सरकार भी अच्छी तरह जान गई कि कलकत्ता में रहते किंग्स फोर्ड का जीवन सुरक्षित नहीं है। अतः उसका

तबादला बिहार में मुज्जफरपुर कर दिया, परन्तु क्रान्तिकारी उसको छोड़ने वाले नहीं थे। हेमचन्द्र दास तथा सुनिल दत्त ने प्रफुल्ल चाकी व खुदीराम बोस को बमों तथा पिस्तोलों से सुसज्जित कर किंग्स फोर्ड को सबक सिखाने के लिए मुजफ्फरपुर भेजा। दोनों क्रांति वीर मुजफ्फरपुर पहुँचे और वहाँ मेहता वार्ड स्टेट की धर्मशाला में ठहरे। चाकी ने अपना नाम दिनेशचन्द्र राय लिखाया और खुदीराम ने अपना नाम दुर्गादास सेन लिखाया।

सन् 1908 ई. की 30 अप्रेल को अमावस्या की काली रात थी। प्रफुल्ल चाकी व खुदीराम बोस बमों से सुसज्जित हो किंग्स फोर्ड की कोठी के पास जा पहुँचे और वहीं वृक्षों के झुरमुट में छिप गए। दिन को उन्होंने सब तरह घूम-घामकर परिस्थिति का पूरा जायजा ले लिया था। रात के आठ बजे होंगे कि एक बग्घी बंगले से बाहर निकली। चाकी तथा बोस ने सोचा इसी में किंग्स फोर्ड सवार है। अतः बग्घी पर बम फेंका गया। भारी विस्फोट हुआ। बग्घी का अगला भाग चूर-चूर हो गया। क्रांतिकारियों ने समझ लिया कि किंग्स फोर्ड को अपने किये की सजा मिल गई। वे अंधेरे में ही जंगल में भाग खड़े हुए, परन्तु सुबह होते-होते उनको लोगों की गपशप से पता चला कि बम के धमाके से दो महिलाएँ मर गई। क्रांतिकारी युवकों को इस खबर से बेहद दुःख हुआ।

बम काण्ड के बाद मुजफ्फरपुर के आस-पास के क्षेत्र को चारों ओर से घेर लिया गया। खुदीराम पकड़े गए। इनके दूसरे साथी प्रफुल्ल चाकी पुलिस से मुठभेड़ करने के बाद स्वयं को ही गोली मारकर स्वर्ग सिधार गए। खुदीराम को फाँसी दी गई। खुदीराम पहले तरुण शहीद थे, जो 18 वर्ष की आयु में ही राष्ट्र की बलिवेदी पर चढ़ गए। संक्षेप में स्वतन्त्रता संग्राम के इस अभिमन्यु की जीवन झांकी इस प्रकार है—

खुदीराम बोस की शहादत :

देशभक्तों की यह मान्यता रही है कि स्वतन्त्रता का पौधा उसकी बलिवेदी पर चढ़ने वाले वीरों के रक्त से पनपता है। इस बलिदानी भावना के वशीभूत होकर वे हँसते-हँसते अपने प्राणों की आहूति दे देते थे। इन बलिदानी पराक्रमी सूरों में खुदीराम बोस अपना विशेष स्थान रखते हैं।


खुदीराम बोस

हमारे चरित्र नायक का जन्म 3 दिसम्बर, 1889 ई. को मेदिनीपुर जिले के हबीबपुर नामक गाँव में हुआ था। पिता त्रैलोक्यनाथ तहसीलदार

थे। माता लक्ष्मी प्रिया बहुत सरल हृदय की भक्त महिला थी। त्रैलोक्यनाथ के कई संतानें हुईं, परन्तु खुदीराम तथा उनकी बड़ी बहिन अपरूपा देवी ही जीवित बचीं। बोस जब छः वर्ष के थे तब ही उनके माता-पिता स्वर्गवासी हो गए। ये बहिन के घर रहने लगे। बहनोई अमृतलाल ने उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया, परन्तु उनका मन पढ़ने में नहीं लगता था। वे खेलकूद, कुश्ती, अखाड़ेबाजी में अधिक रुचि रखते थे।

बंगाल के विभाजन तथा देशभक्तों पर अमानुषिक अत्याचारों से नवयुवकों का खून खौलने लगा। वे ताकत से अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ने की तैयारी करने लगे। सारे देश में क्रांतिकारी बमों तथा हथियारों से सुसज्जित होने लगे। महाराष्ट्र में नासिक, बम्बई व पूना बम उत्पादन के कारखाने बन गए, परन्तु बंगाल में तो साहसिक कार्यों की बाढ़ सी ही आ गई। बंगाल के कोने-कोने में आतंक छा गया।

हमारे चरित्र नायक खुदीराम की आयु उस समय केवल 16 वर्ष की ही थी। देशभक्ति उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। हेमचन्द्र दास तथा बारीन घोष की प्रेरणा से उनकी देशभक्ति ने बम का पंथ अपना लिया। बम काण्ड के पहले भी वे अनेक देशभक्ति पूर्ण कार्य कर चुके थे। 1906 ई. में मेदिनीपुर में एक सरकारी प्रदर्शनी में जब अंग्रेज अधिकारी यह कहने से नहीं थक रहे थे कि ब्रिटिश शासन में भारत की कितनी उन्नति हुई। उन्हीं क्षणों में प्रदर्शनी प्रांगण में ही खुदीराम बोस देशभक्ति पूर्ण गाने गा रहे थे। वन्देमातरम् का जयघोष कर रहे थे। उपस्थित जन समुदाय को पुकार-पुकार कर कह रहे थे— "अंग्रेजी शासन एक धोखा है। अंग्रेजों ने हमारे 'सोनार बंगला' की क्या दशा कर दी? माँ के दो टुकड़े कर दिए।"

खुदीराम के सिंहनाद को सुनकर ब्रिटिश अधिकारियों के पैरों के नीचे से जमीन खिसकने लगी। पुलिस वाले हड़बड़ा कर इधर-उधर भागने लगे। जनता वन्देमातरम् के नारे लगाती जा रही थी। बड़ी कठिनाई से खुदीराम पकड़े गए, परन्तु सबूत न होने से छोड़ दिए गए।

छूटने पर उनका भारी स्वागत हुआ। महान् क्रांतिकारी अरविन्द घोष खुदीराम से मिलने आए। छाती से लगाकर बोले— 'बहुत कुछ करना है, देश को तैयार करो' बहिष्कार आंदोलन में भी बोस ने उत्साह से भाग लिया। गाँव-गाँव में घूम कर गा-गा कर कहते थे :

'मैंने मोटा कपड़ा दिया उसे सिर पर रखले मेरे भाई।'

एक ओर तो रचनात्मक कार्यों द्वारा बोस बंगाल में नव जागरण ला रहे थे दूसरी ओर वे हथियार चलाना सीखकर देशभक्तों पर अत्याचार करने वालों

अधिकारियों को अच्छा सबक सिखाने की तैयारी कर रहे थे। इसी क्रम में किंग्स फोर्ड पर बम फेंका गया, परन्तु किंग्स फोर्ड की हत्या न होकर दो निर्दोष महिलाएँ मारी गईं। इसका प्रफुल चाकी तथा खुदीराम को बहुत ही दुःख रहा। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि चाकी ने आत्म-समर्पण करने के स्थान पर अपने हाथ से मरना ही ठीक समझा और अपने हाथ से ही गोली खा कर शहीद हो गए।

खुदीराम बोस को पकड़ कर पुलिस के घेरे में मुजफ्फरपुर पुलिस स्टेशन पर लाया गया तो उनके दर्शनों के लिए चारों ओर से भीड़ उमड़ पड़ी। वे पुलिस के घेरे में भी मुस्करा रहे थे। उनके अंग-अंग में देशभक्ति व स्फूर्ति का सागर लहरा रहा था। खुदीराम ने अपना कोई वकील नहीं किया और अदालत में स्वयं स्वीकार किया कि "किंग्स फोर्ड पर बम मैंने फेंका है, मैं उसे मारना चाहता था, परन्तु उन दोनों महिलाओं को नहीं, उनसे हमारी कोई दुश्मनी नहीं थी, वे मर गई इसका मुझे बहुत ही खेद है।"

वकील ने पूछा तुम्हें जरा भी डर नहीं लगता, हमारे चरित्र नायक हँसे और बोले—मैंने गीता पढ़ी है। मैं क्यों डरूँ? फिर क्या था? जो होना था वही हुआ। दो माह तक मुकदमे का नाटक रचकर जज ने पूछा अब तुम्हें कुछ कहना है? खुदीराम ने बड़ी निर्भीकता से उत्तर दिया 'हाँ, अदालत में उपस्थित लोगों को बम बनाने के सम्बन्ध में आवश्यक बातें बतानी हैं।' खुदीराम की इस निडरता से जज महोदय भी आश्चर्य में पड़े बिना नहीं रहे।

अन्त में 11 अगस्त, 1908 ई. के दिन उस परमवीर ने वन्देमारतम् के जयघोष के साथ हँसते-हँसते फाँसी का फन्दा अपने गले में डाल लिया और हमेशा के लिए चिर निद्रा में सो गए।

दाह संस्कार के समय अंतिम दर्शनों के लिए जन-समूह उमड़ पड़ा। उस वीरात्मा की भस्मी लेने के लिए सभी उतावले थे। पुरुषों ने उसकी भस्मी को तिलक के रूप में माथे पर लगाया। युवतियों ने छाती पर मला। माताओं ने उस भस्मी को ताबीज में रखकर अपने बच्चों के गलों में पहनाया। खुदीराम मर कर भी अमर हो गए और देश के स्वातंत्र्य युद्ध को नव-जीवन प्रदान कर गए।

अलिपुर अभियोग (2 मई, 1908 ई.) :

मुजफ्फरपुर बम काण्ड ने कोहराम मचा दिया। बड़ी जोर-शोर से धर पकड़ होने लगी। 2 मई को मानिक टोला बाग की तलाशी हुई। भारी मात्रा में विस्फोटक पदार्थ बरामद किये गए। ब्रिटिश सरकार ने अपना संतुलन खो दिया। अनेक निर्दोष व्यक्तियों को पकड़ा गया। स्वनाम धन्य अरविन्द घोष जैसे महान् और दिव्य पुरुष को भी बम काण्ड में पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया, परन्तु आगे चलकर वे निर्दोष निकले और दोष मुक्त कर दिए गए। चौंतीस क्रांतिकारियों पर अभियोग चला। केवल

पन्द्रह दोषी पाए गए। शेष छोड़ दिए गए। सुप्रसिद्ध शांतिप्रिय गाँधीवादी नेता देशबन्धु चितरंजन दास बैरिस्टर ने अभियुक्तों की ओर से जिस अद्‌भुत योग्यता और निःस्वार्थ भाव से जो पैरवी की, वह बहुत प्रशंसनीय है।

इस अभियोग में नरेन्द्रनाथ गोस्वामी नामक युवक सरकारी गवाह बन गया था। उसको क्रांतिकारी सत्येन्द्रनाथ व कन्हाईलाल दत्त ने अपनी गोली का निशाना बना लिया। दोनों को फाँसी हुई। आगे भी हत्या का दौर जारी रहा। 10 फरवरी को सरकारी वकील मि. आसुतोष विश्वास मार डाले गए। ये नारायण गोस्वामी के मामले में सरकारी वकील थे। कुछ और देशद्रोही भी मौत के घाट उतारे गए। गद्दार देशद्रोहियों का काम तमाम करने में प्रसिद्ध क्रांतिकारी कन्हाईलाल दत्त सबसे आगे थे।

कन्हाईलाल दत्त :

इस महान् क्रांतिकारी का जन्म 1887 ई. को एक संभ्रान्त परिवार में हुआ था, परन्तु उनका जीवन बहुत सरल तथा सादा था। गरीबों की मदद के लिए हरदम तैयार रहते थे। विद्यार्थी अवस्था में ही उनकी रगों में देशभक्ति का सागर उमड़ पड़ा। वे रात दिन क्रांतिकारी साहित्य पढ़ते रहते थे। ग्रेज्युएट होकर भी उन्होंने विदेशी शासन में नौकरी का कभी इरादा नहीं किया। सारा समय वे क्रांतिकारी योजना में लगाते थे। विभिन्न गुप्त क्रांतिकारी संगठनों को एकता के सूत्र में बाँधने का उन्होंने पूरा प्रयास किया। देशद्रोही ब्रिटिश शासन के वफादार तो उनकी आँख के कांटे थे।

उनके क्रांतिकारी जीवन की शुरूआत कलकत्ता से होती है। अपनी तरुणाई में वे बम्बई से कलकत्ता आ गए थे। उस समय कलकत्ता क्रांतिकारियों का प्रमुख अड्डा था। आए दिन वहाँ पुलिस कर्मियों व आततायी अंग्रेज अधिकारियों की हत्या हुआ करती थी। सारा कलकत्ता शहर भय व आतंक में डूबा हुआ था। बड़े-बड़े घरों के पढ़े लिखे नवयुवक देशभक्ति के सरोवर में निमग्न थे। सारा बंगाल उस समय बलिदान व त्याग से परिपूर्ण था।

दत्त महोदय के रगों में देशभक्ति का खून तो पहले से ही बह रहा था। कलकत्ता में उपेन्द्रनाथ तथा बारीन्द्र घोष के नेतृत्व में वे कलकत्ता तथा चन्द्रनगर के क्रांतिकारी संगठनों को सुदृढ़ करने लगे। इसी बीच मुजफ्फरपुर बम काण्ड में अनेक लोग पकड़े गए। हमारे चरित्र नायक भी अलिपुर अभियोग में पकड़े गए। इन पर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध बगावत करने का आरोप लगाया गया, परन्तु क्रांतिकारी मृत्यु के आसन्न भय से कभी विचलित नहीं होते। वे अपनी योजनाएँ बराबर चलाते रहते हैं। कन्हाईलाल दत्त भी जेल में सभाएँ करते, क्रांति की भावी योजना बना कर जेल से बाहर अपने सहयोगियों को भेजते।

जैसा कि हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि नरेन्द्रनाथ गोस्वामी सरकारी गवाह बन गया था। वह क्रांति के अनेक रहस्य सरकार को बताता था, जिससे अनेक देशभक्त क्रांतिकारियों का जीवन खतरे में पड़ सकता था। अतः सत्येन्द्र को नरेन्द्रनाथ की जीवन लीला समाप्त करने का काम सौंपा गया। सत्येन्द्रनाथ ने जेल के अस्पताल में ही उस पर गोली दाग दी, परन्तु निशाना ठीक न बैठा। कन्हाईलाल दत्त यह सब देख रहे थे। अतः सत्येन्द्र के अधूरे काम को उन्होंने पूरा किया और अपने अचूक निशानों से देशद्रोही नरेन्द्र के शरीर को छलनी बना दिया।

सत्येन्द्र व कन्हाईलाल दत्त पकड़े गए। मुकदमा चला। दोनों को फाँसी हुई। 10 नवम्बर, 1908 को दत्त महोदय हाथ में गीता लेकर हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गए। सुप्रसिद्ध ऐंग्लो इण्डियन पत्र 'पायोनियर' ने हुतात्मा (शहीद) दत्त की निर्भीकता पर एक लेख लिखा। इसमें बताया गया कि 'दत्त का शव बहुत ही धूमधाम से अंतिम संस्कार के लिए ले जाया गया। हजारों की संख्या में बंगाली पुरुष व महिलाएँ शव के साथ थीं। उस वीरात्मा की भस्मी को लेने के लिए लोग पागल हो उठे।' दत्त के शव का इतना सम्मान देख कर अन्य शहीद सत्येन्द्र का शव उसके परिवार के सदस्यों को नहीं दिया गया।

1905 से लेकर 1917 तक बंगाल के अनेक क्रांतिकारी देश के लिए शहीद हो गए। उनके शौर्य व साहस से ब्रिटिश शासन काँप उठा। उनको भय होने लगा कि कांग्रेस के नरम पंथी नेता कहीं क्रांतिकारी आन्दोलन के समर्थक न बन जाएँ। अतः नरम दल के कांग्रेसी नेताओं का विश्वास जीतने के लिए सरकार ने 1909 ई. में मिन्टो मार्ले सुधार का नाटक रचा जो स्वतन्त्रता प्रेमियों के लिए ऊँट के मुँह में जीरा सिद्ध हुआ।

इसके अतिरिक्त सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भावना को कमजोर करने के लिए मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देकर फूट डालो व राज करो की नीति अपनाई जिसका वर्णन हम अगली पंक्तियों में करेंगे। यहाँ पर हम बंगल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी क्रांतिकारी कार्यों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

बिहार में क्रांतिकारी योजनाएँ :

बंगाल के विभाजन के साथ बिहार में क्रांतिकारी लहर फैल गई। जैसा कि हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि मुजफ्फरपुर में ही किंग्स फोर्ड को खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने बम से उड़ाने की योजना बनाई थी यद्यपि योजना सफल नहीं हुई, परन्तु बम के धमाकों से सारा बिहार जाग उठा। इसके बाद 'निमेज' में ब्रिटिश भक्त एक संन्यासी के घर डाका डाला गया। इस मामले में दो जैन युवक मोती चन्द्र, माणकचन्द तथा राजस्थान के महान् क्रांतिकारी केसरसिंह बारहठ के छोटे भाई जोरावरसिंह बारहठ का नाम था। दोनों जैन युवक तो पुलिस के हाथ में

आ गए, परन्तु जोरावरसिंह फरार हो गए जो कभी सरकार के हाथ में नहीं आये।

जैन युवक मोतीचन्द तथा माणकचन्द इन्दौर में अर्जुनलाल सेठी के शिष्य थे। अर्जुनलाल इन्दौर में रायबहादुर सेठ कल्याणमल हाई स्कूल के हैडमास्टर थे। अतः इस सम्बन्ध में उनको भी पकड़ा गया। यद्यपि निमेज के हत्याकाण्ड में इनका कोई हाथ नहीं था, फिर भी पाँच वर्ष तक इनको नजरबन्द रखा गया। अन्त में श्रीमती एनीबेसेन्ट के प्रयास से इन्हें छोड़ दिया गया। अर्जुनलाल सेठी की गिनती देश के प्रसिद्ध क्रांतिकारियों में की जाती है, जिसका परिचय हम अगली पंक्तियों में प्राप्त करेंगे।

कुछ समय बाद बिहार के बांकीपुर में शचीन्द्र सान्याल द्वारा बनारस क्रांति दल की एक शाखा खोली गई। इस शाखा के प्रधान संचालक बंकिमचन्द मित्र थे। इस दल ने बिहार के युवकों में क्रांतिकारी भावना का समावेश किया।

भागलपुर में ढाका अनुशीलन समिति के सदस्यों के आने के कारण बिहार में क्रांतिकारी हलचल शुरू हो गई। ढाका अनुशीलन समिति के सक्रिय सदस्य नलिनी बागची ने भागलपुर के जंगलों में नवयुवकों को शस्त्र विद्या का प्रशिक्षण देना शुरू किया। रात-रात भर निशानेबाजी का अभ्यास होता था। बिहार के युवा क्रांतिकारी राम विनोद बाबू ने बागची के शिविर में शस्त्र विद्या प्राप्त की और पक्के क्रांतिकारी बन गए, जिसका विस्तृत विवरण हम अगली इकाई में पढ़ेंगे।

बागची के युद्ध विद्या शिक्षण केन्द्र का जब पुलिस को पता चला तो उसने बागची को तथा उनके साथियों को चारों ओर से घेर लिया। बागची के आठ साथी लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुए। बागची स्वयं घायलावस्था में किसी तरह कलकत्ता पहुँचे। वहाँ पर उनके साथी तारिणी ने उनकी अच्छी सेवा सुश्रुषा की। कुछ ठीक होते ही नलिनी बागची अपने साथ तारिणी को साथ ले क्रांतिकारी कार्य के लिए ढाका पहुँचे। वहाँ वे पकड़ गए। उनका साथी तारिणी वीर गति को प्राप्त हुआ। बागची को घायलावस्था में पकड़कर अस्पताल में रखा गया। सरकार ने उन पर खूब दबाव डाला कि वे क्रांतिकारी दल का कुछ भेद खोलें, परन्तु वे शांत रहे, एक शब्द भी न बोले। अन्त में अधिकारियों को अपने उद्देश्य में विफल कर अस्पताल में ही चिर निद्रा में सो गए।

भागलपुर के निकट ही बालासौर जिले में प्रसिद्ध क्रांतिकारी यतीन्द्रनाथ मुकर्जी की पुलिस से मुठभेड़ हुई थी। यतीन्द्र बाबू एक महान् क्रांतिकारी थे, जिन्होंने न केवल देश में वरन् विदेशों में कार्यरत भारतीय क्रांतिदल के लोगों से सम्पर्क कर देश व्यापी सशस्त्र क्रांति की योजना में सहयोग दिया था, जिसका विस्तृत वर्णन हम अगली इकाई में करेंगे।

युक्त प्रान्त (यू.पी.) :

युक्त प्रान्त उत्तरी भारत का मध्यवर्ती प्रान्त है। यह इतिहास में हमेशा ही परिवर्तन का केन्द्र रहा है। भारतीय सभ्यता व संस्कृति का समन्वित रूप इसी प्रान्त में देखा जा सकता है। 1857 ई. का इतिहास प्रसिद्ध प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम सच पूछा जाए तो इसी प्रान्त द्वारा लड़ा गया। हिन्दू व मुसलमानों ने कंधे से कंधे मिलाकर फिरंगी शासन को समाप्त करने का भरपूर प्रयास किया था, जिसका वर्णन हम पिछली इकाई में पढ़ चुके हैं।

इस प्रान्त में स्वतन्त्रता का बीजारोपण प्रयाग के स्वराज्य पत्र से हुआ। इसका संपादन व संचालन शांतिनारायण के हाथ में था, जिन्हें राजद्रोहात्मक लेख लिखने के कारण जेल में ठूँस दिया गया, परन्तु इस कारण पत्र की प्रगति में कोई बाधा नहीं पड़ी। इनके बाद आठ संपादकों ने इस पत्र के माध्यम से आजादी की अलख जगाई। इसी कारण तीन संपादकों को राजद्रोह के अपराध में जेल की यातनाएँ भोगनी पड़ीं। इसके बाद 'कर्म योगी' पत्र ने देशभक्ति का प्रचार किया। दोनों पत्रों को 1910 ई. में सरकार का कोप भाजन बनना पड़ा। इससे दो वर्ष पूर्व अलीगढ़ में होतीलाल वर्मा को आपत्तिजनक साहित्य रखने के कारण दस वर्ष का देश निकाला दिया गया। इस प्रान्त के क्रांतिकारी इतिहास की सबसे बड़ी घटना बनारस षड्यंत्र केस है।

बनारस में बंगालियों की संख्या अधिक होने के कारण यह स्वाभाविक ही था कि क्रांतिकारी कार्य यहीं से प्रारम्भ होते। 1908 ई. में ही शचीन्द्रनाथ सान्याल ने अनुशीलन समिति नामक एक संस्था खोली, लेकिन जब ढाका अनुशीलन समिति सरकार की कोप भाजन बनी तो इसका नाम बदल कर 'यंग मेन्स एसोसियेशन' रखा गया। गीता व काली पूजा के माध्यम से क्रांति की भावना फैलाई जाती थी। 1914 ई. के प्रारम्भ में रासबिहारी बोस ने इस संस्था का कार्य भार संभाल लिया था। वे उस समय बनारस में ही बंगाली टोला में रहते थे। वहीं वे तथा उनके साथ शचीन्द्र सान्याल बम बनाने में संलग्न रहते थे। एक समय दोनों को बम निरीक्षण के समय चोट भी लगी थी।

यद्यपि रासबिहारी बोस के विरुद्ध गिरफ्तारी वारन्ट था, परन्तु पुलिस बनारस में उनका पता न लगा सकी। बनारस में रासबिहारी ने पंजाब, मध्य भारत व बंगाल में एक साथ देशव्यापी सशस्त्र योजना बनाई थी। इसका विस्तृत विवरण हम अगली इकाई में करेंगे। क्रांति की तारीख भी 21 फरवरी, 1915 निश्चित हो गई थी, परन्तु भेद खुल जाने से क्रांतिकारियों की जबरदस्त धर पकड़ शुरू हो गई। रासबिहारी भूमिगत हो गए, परन्तु अनेक क्रांतिकारी पकड़े गए जिनमें शचीन्द्रनाथ सान्याल भी थे। उन्हें दस वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गई।

इन्हीं दिनों अवध (फैजाबाद) में हवलदार हरनामसिंह की क्रांतिकारियों से सम्बन्ध रखने के कारण गिरफ्तारी हुई। उन्हें भी दस वर्ष की सजा दी गई। अलीगढ़ के हजरत मोहनी ने भी क्रांतिकारी विचारों को फैलाने में पूरी मदद की। वे एक अखबार निकालते थे, जो आग उगलता था।

उक्त महत्त्वपूर्ण घटनाओं के साथ-साथ क्रांतिकारी विज्ञप्तियाँ बाँटने, युगान्तर के पर्चे चिपकाने, नाजायज हथियार रखने के सम्बन्ध में भी उत्तर प्रदेश में गिरफ्तारियाँ हुईं। कुल मिलाकर क्रांतिकारी आतंकवाद के क्षेत्र में इस प्रान्त का यह प्रारंभिक युग ही था। आगे चलकर स्वतन्त्रता संग्राम के क्षेत्र में इस प्रान्त का आशातीत योगदान रहा, जिसका विस्तृत विवरण हम अगली इकाई में करेंगे।

मध्य प्रान्त :

1906 ई. में राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ। इसमें दो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए। एक में बॉयकाट (बहिष्कार) आंदोलन का समर्थन, दूसरे में कांग्रेस ने पहली बार औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की। इससे कुछ सीमा तक क्रांतिकारियों को संतोष होने लगा। अगला अधिवेशन नागपुर में करने का निश्चय किया गया। अत: नागपुर में राजनीतिक सरगर्मियाँ बढ़ने लगीं। तिलक समर्थक समाचार पत्रों का प्रान्त में प्रभाव बढ़ने लगा। इनमें 'हिन्द केसरी' व 'देश सेवक' मुख्य थे।

गरम दल का प्रभाव नागपुर में इतना बढ़ा कि नरम दल के लोगों ने अधिवेशन का स्थान बदलकर नागपुर के स्थान पर सूरत कर दिया, परन्तु नागपुर में और उसके आस-पास के युवकों में जोश बराबर बना रहा। सूरत से लौटते समय अरविन्द घोष ने स्वदेशी आन्दोलन के पक्ष में व्याख्यान दिए। इसके आस-पास ही मुजफ्फरपुर में बम काण्ड हुआ। नागपुर के पत्रों ने इसका समर्थन किया और खुदीराम की प्रशंसा की। इससे अनेक पत्रों के संपादकों को दण्ड दिया गया।

इन्हीं दिनों राजस्थान के क्रान्तिकारी अर्जुनलाल सेठी भी इन्दौर में राय बहादुर सेठ कल्याणमल हाई स्कूल के हैडमास्टर बनकर आए थे। उन्होंने यहाँ के नवयुवकों में क्रांतिकारी भावना भरने में कोई कसर उठाकर नहीं रखी, फलस्वरूप बिना किसी मुकदमे के उन्हें पाँच वर्ष नजरबन्द रखा गया।

बनारस षड्यंत्र केस के नलिनी मोहन मुकर्जी रासबिहारी बोस की इच्छानुसार जबलपुर में सेना को विद्रोह करने के लिए प्रेरित करने आए, परन्तु भेद खुल गया और उन्हें बनारस षड्यंत्र केस में सजा मिली। ढाका अनुशीलन समिति के नलिनी कांत घोष तथा विनायक राव कपिल ने प्रान्त में क्रांति के बीज बोने चाहे, परन्तु उन्हें भी कोई विशेष सफलता नहीं मिली। दोनों पकड़े गए और उन्हें सजा मिली।

महाराष्ट्र :

महाराष्ट्र लोकमान्य तिलक की जन्मभूमि रही है। अत: यहाँ पर क्रांतिकारी आंदोलन कमजोर पड़ना स्वाभाविक था। वास्तव में अंग्रेज अफसरों को शस्त्रों द्वारा सबक सिखाने का काम सबसे पहले यहीं शुरू हुआ। चापेपकर बन्धुओं द्वारा रैण्ड की हत्या का वर्णन हम पहले पढ़ चुके हैं। इस प्रान्त में क्रांतिकारी आतंकवाद को बढ़ावा देने का सबसे बड़ा योगदान वीर सावरकर का रहा है।

महाराष्ट्र के नासिक, बम्बई तथा पूना शहर शीघ्र ही बम उत्पादन के केन्द्र बन गए। इनको शस्त्रादि तथा बम की सामग्री इण्डिया हाउस के माध्यम से विदेशों से मिला करती थी। इसी के परिणामस्वरूप नासिक के जिलाधीश जैक्सन को एक विदाई समारोह में गोली मारी गई, क्योंकि इसी जिला दण्डनायक जैक्सन ने वीर सावरकर के बड़े भाई गणेश विनायक को काले पानी की सजा दी थी।

मध्य भारत में सावरकर बन्धुओं द्वारा संचालित 'तरुण सभा' तथा 'मित्र मेला' संस्थाओं ने भी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह की भावना पैदा करने में बड़ी सहायता की। लंदन में मदनलाल धींगरा ने कर्जन वायली को गोली का निशाना बना कर वीरता के इतिहास में नये वाक्य जोड़ दिए। यह सब वीर सावरकर की प्रेरणा से हुआ।

मद्रास :

मद्रास (तमिलनाडु) प्रान्त के लोगों में क्रांतिकारी भावना का जन्म गरम दल के प्रमुख नेता विपिनचन्द्र पाल के भाषणों से हुआ। 1907 ई. में पाल महोदय ने इस प्रान्त का दौरा किया और 'स्वराज्य, स्वदेशी तथा बायकाट' विषयों पर जोरदार भाषण दिए, परन्तु लालाजी के पंजाब से निर्वासन के दु:खद समाचारों से दक्षिण मद्रास का दौरा स्थगित कर पुन: कलकत्ता लौट गए।

परन्तु पास के क्रांतिकारी विचारों ने मद्रास में क्रांति की चिनगारियाँ बिखेर दीं। वहाँ संघर्षों का ताँता लग गया। क्रांतिकारी विचार वाले पर्चे बाँटे जाने लगे और जोशीले भाषण दिए जाने लगे। इस सम्बन्ध में 'भारत माता संघ' का कार्य उल्लेखनीय है। सुब्रामातिया शिव और चिदम्बरम् पिल्लई पकड़े गए। ये लोग स्पष्ट रूप से स्वतन्त्रता की बात कहते थे। इन लोगों की गिरफ्तारी से तिनेवेल्ली में भयंकर दंगे हुए। सरकारी दफ्तर जला दिए गए। पुलिस ने निषेध आज्ञा भंग करने वालों पर गोली चलाई। क्रांतिकारियों ने इसका बदला अच्छी तरह से लिया और तिनेवेल्ली में गोली चलाने का आदेश देने वाले यहीं के जिला जज आशे को क्रांतिकारी वांची अय्यर ने 17 जून, 1911 ई. को अपनी गोली का निशाना बनाया। इसी वर्ष सम्राट पंचम जार्ज का राज्यारोहण समारोह भी मनाया जा रहा था। अत: आशे की हत्या को इस समारोह के विरोध में भी देखा जा सकता है।

ब्रिटिश शासन के विरोध में मैमनसिंह जिले में सूबेदार राजकुमार की भी हत्या की गई। इस सम्बन्ध में नौ व्यक्ति पकड़े गए जिन्हें कठोर कारावास दिया गया। वांची अय्यर ने स्वयं ने गोली मारकर अपने आपको शहीद कर लिया।

पंजाब :

जैसाकि हम पिछली इकाई में पढ़ चुके हैं कि 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में पंजाब शांत रहा। यदि उस समय पंजाब उठ खड़ा होता तो भारत को नब्बे वर्ष पहले ही स्वतन्त्रता मिल जाती, परन्तु आगे चलकर पंजाब के भाइयों ने अनुभव किया कि विदेशी शासन में सुख चैन से नहीं रह सकते। अत: बारहवें गुरु रामसिंह ने सबसे पहले पंजाब में कूका संगठन का निर्माण कर क्रांतिकारी भावनाओं को जन्म दिया।

1907 ई. से पंजाब में क्रांतिकारी भावना जोर पकडने लगी। प्रारंभ में आर्थिक कठिनाइयों ने लोगों के असंतोष को जन्म दिया। बार-बार के अकाल इस पर भी सरकार द्वारा लगान तथा सिंचाई दरों में वृद्धि से पंजाब का किसान तिलमिला उठा और अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध एक कृपक आंदोलन चल पड़ा। अजीतसिंह, सूफी अंबाप्रसाद तथा लाला लाजपतराय जैसे गरम विचारों के नेताओं ने इस आंदोलन को मंबल प्रदान किया। किसानों के अतिरिक्त लाहौर, अमृतसर, फिरोजपुर, रावलपिंडी, सियालकोट, लायलपुर आदि बड़े-बड़े शहरों में विद्यार्थियों तथा पढ़े लिखे लोगों में देशभक्ति की भावना तेज हो रही थी।

ब्रिटिश सरकार ने इस आतंकमयी वायुमण्डल के जन्मदाता लाजपतराय तथा अजीतसिंह को ठहराया। दोनों गिरफ्तार किए गए और पंजाब से निर्वासित कर माण्डले भेजे गए। इसके विरोध में लाहौर तथा रावलपिण्डी में अंग्रेज अफसरों के विरुद्ध आक्रोश भड़क उठा।

लालाजी तथा अजीतसिंह के निर्वासन के बाद क्रांति की आग कुछ ठण्डी पड़ी. परन्तु उनके छूटते ही पुन: क्रांतिकारी भावनाओं ने जोर पकड़ा। अजीतसिंह, उनके भाई लालचन्द फलक और भाई परमानन्द ने सिक्ख रेजीमेंट को विद्रोह के लिए भड़काना शुरू किया। आगा हैदर व सैयद हैदर रजा भी इन लोगों की सहायता कर रहे थे। इसी बीच रासबिहारी बोस भी अमृतसर पहुँच गए और एक त्रिशद सशस्त्र सैनिक क्रांति की तैयारी होने लगी।

इसके बाद तो लाला हरदयाल ने अमेरिका पहुँचकर गदर पार्टी की स्थापना की। इसके अधिकांश सदस्य पंजाबी ही थे। गदर पार्टी का भारत के क्रांतिकारियों से निकट का सम्बन्ध था। प्रवासी भारतीय क्रांतिकारी तथा स्थानीय क्रांतिकारियों ने देश में एक सशस्त्र क्रांति की योजना बनाई थी। इसमें पंजाब के लोगों का ही महत्त्वपूर्ण हाथ था।

राजस्थान :

महान् क्रांतिकारी रासबिहारी बोस तथा उनके दाहिने हाथ शचीन्द्र सान्याल की प्रेरणा से राजस्थान में क्रांतिकारी कार्यों का बीजारोपण हुआ। राजस्थान ने क्रांतिकारी योजनाओं को चलाने में केसरीसिंह बारहठ, खरवा ठाकुर गोपालसिंह, ब्यावर के सेठ दामोदरदास राठी, जयपुर के अर्जुनलाल सेठी, विजयसिंह पथिक तथा स्वामी कुमारानन्द आदि मुख्य थे।

केसरीसिंह बारहठ को देश प्रेम, स्वामीभक्ति व विद्वता विरासत में मिले थे। वे संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पंडित और वीर रस के उच्च कोटि के कवि थे। वे मराठी, गुजराती, बंगला के ऊँचे दर्जे के विद्वान थे। उनके पिता के जोधपुर महाराजा की सेवा में चले जाने के बाद भी वे उदयपुर के महाराणा फतहसिंह के विश्वास पात्र बने रहे और बाद में वे कोटा महाराज की सेवा में चले गए थे।

उदयपुर तथा कोटा के शासकों ने उन्हें अपने यहाँ बड़ी जागीर दे रखी थी, परन्तु उनका मुख्य ध्येय देश सेवा था और उसको स्वंतत्र कराने में अपना सर्वस्व अर्पण करना था। उनके भाई जोरावरसिंह, पुत्र प्रतापसिंह तथा जामाता ईश्वरदान आसिया, पूरा का पूरा परिवार क्रांतिकारी कार्यों में संलग्न था।



केसरीसिंह बारहठ

केसरीसिंह का बंगाल तथा महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे क्रांतिकारी कार्यों के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ थे। उन्हीं की प्रेरणा से राजस्थान में 'अभिनव भारत' नामक क्रांतिकारी संगठन की शाखा स्थापित हुई। उन्होंने राजपूत नरेशों तथा जागीरदारों को क्रांतिकारी संगठन में लाने के लिए 'वीर भारत सभा' की स्थापना की। आपके प्रयत्न से ही महाराणा फतहसिंह वायसराय लॉर्ड कर्जन द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार में शामिल नहीं हुए। इस तरह से आपने अभिमानी वायसराय लॉर्ड कर्जन के घमण्ड को चूर-चूर कर दिया।

बंगाल के प्रमुख क्रांतिकारी अरविन्द घोष, महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक आदि सभी क्रांतिकारियों से उनका निकट का सम्पर्क था। रासबिहारी बोस तो उनके घनिष्ठ मित्रों में से थे। इन सबके प्रयास से राजस्थान में क्रान्तिकारी भावना फैलने लगी।

केसरीसिंह ने राजस्थान से क्रांतिकारी कार्यों का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए अनेक युवकों को रासबिहारी बोस के प्रमुख सहायक मास्टर अमीरचन्द के पास दिल्ली भेजा। उनके भाई जोरावरसिंह, पुत्र प्रतापसिंह तथा जामाता ईश्वरदान इनमें मुख्य थे।

ब्रिटिश सरकार केसरीसिंह की गतिविधियों को संदेह की दृष्टि से देखती थी। अत: कोई न कोई मामला बनाकर सरकार उन्हें सजा देने पर तुली हुई थी। जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं बिहार में निमेज के महत्त्व की हत्या के सम्बन्ध में अर्जुनलाल सेठी के विद्यालय की इन्दौर में तलाशी हुई थी। उसमें सांकेतिक भाषा में एक पत्र मिला। उसी को आधार मानकर दो वर्ष पुरानी घटना प्यारे राम साधु के रहस्यमय ढंग से लापता हो जाने के मामले को पुन: उठाया गया। केसरीसिंह का इन सब में हाथ मानकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उनकी पारिवारिक जागीर, हवेली जब्त कर ली गई और चल सम्पत्ति को लूट लिया गया।

मि. आर्मस्ट्रांग इन्सपेक्टर जनरल पुलिस इन्दौर की देखरेख में उन पर प्यारे राम साधु की हत्या के आरोप में अभियोग चलाया गया और प्रमाण न मिलने पर भी उन्हें बीस वर्ष का कठोर कारावास दिया गया और उन्हें बिहार में हजारीबाग जेल भिजवा दिया। वहाँ पर जेल अधीक्षक कर्नल मीक व उनकी पत्नी केसरीसिंह के भव्य व्यक्तित्व तथा पाण्डित्य के कारण उनके भक्त व प्रशंसक बन गए। उनकी सिफारिश पर पाँच वर्ष बाद ही उन्हें सजा से मुक्त कर दिया गया। केसरीसिंह जीवन भर देश की आजादी के लिए क्रांतिकारी कार्यों में लगे रहे और अपने पूरे परिवार को ही इस कार्य में समर्पित कर दिया।

वीरवर जोरावरसिंह बारहठ

गोर वर्ण, उभरा हुआ ललाट, दीर्घ नेत्र, तेजस्वी मुख मण्डल पर फैली हुई भव्य दाढ़ी, सब मिला कर उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक था। बारह सितम्बर 1883 ई. को उनके पैतृक गाँव देवपुरा में उनका जन्म हुआ। वे जोधपुर महारानी के कामदार रहे। वहीं प्रसिद्ध क्रांतिकारी भाई बालमुकुन्द के सम्पर्क में आए जो उस समय जोधपुर के राजकुमारों के शिक्षक थे।

जैसा कि हम पूर्व पृष्ठों में पढ़ चुके हैं कि निमेज (आरा) के महन्त की राजनैतिक हत्या में जोरावरसिंह का भी हाथ था, परन्तु वे पकड़ में नहीं आए और आजीवन फरार रहे। इसके बाद दिल्ली में वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंकने में आप शामिल थे, परन्तु वे सरकार की पकड़ में नहीं आए और आजीवन भूमिगत रहे। अमरदास बैरागी के रूप में इधर-उधर जंगलों में भटकते रहे, परन्तु कभी विचलित नहीं हुए, फरारी अवस्था में ही 17 अक्टूबर, 1939 ई. को ही आप चिर निद्रा में सो गए। देश के लिए उनका त्याग सर्वदा स्मरणीय रहेगा।

वीरवर कुँवर प्रतापसिंह :

आप महान् क्रांतिकारी केसरीसिंह के पुत्र थे। आपका जन्म उदयपुर में 24 मई, 1893 ई. में हुआ। सयाने होते ही अपने चाचा जोरावरसिंह के साथ दिल्ली में मास्टर अमीरचन्द के क्रांतिकारी दल में कार्य करने के लिए चले गए। वहीं पर

मास्टर अमीरचन्द ने उनका परिचय प्रमुख क्रांतिकारी रासबिहारी बोस से करवाया। रासबिहारी युवक प्रताप के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्हें राजस्थान की सैनिक छावनियों के सैनिकों को क्रांति के लिए तैयार करने का काम सौंपा। उस समय कुँवर प्रतापसिंह की आयु केवल बीस वर्ष ही थी। इतनी कम आयु में चोटी के क्रांतिकारियों का विश्वास पात्र बन जाना उनके चरित्र की मुख्य विशेषता है।

ऐसी भी मान्यता है कि कुँवर प्रतापसिंह दिल्ली में अपने चाचा जोरावरसिंह के साथ वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंकने में शामिल थे। जोरावरसिंह तो पकड़े नहीं गए, यद्यपि प्रतापसिंह दिल्ली षड्यंत्र केस के अन्तर्गत पकड़े गए तथापि कोई प्रमाण न होने के कारण छोड़ दिए। रासबिहारी दिल्ली बम काण्ड के बाद भूमिगत हो गए थे और उन्हें पकड़ने के लिए सरकार ने ऐड़ी से चोटी तक का जोर लगा दिया, परन्तु कुछ भी सफलता नहीं मिली।

कुँवर प्रतापसिंह राजस्थान में क्रांतिकारी भावना फैलाते रहे। इसी बीच जोधपुर राज्य में आशानाड़ा स्टेशन पर वे गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें बनारस षड्यंत्र के मामले में पाँच वर्ष का कठोर कारावास देकर बरेली केन्द्रीय जेल भेज दिया गया।


प्रतापसिंह बारहठ

उधर रासबिहारी बोस को पकड़ने के लिए सरकार बड़ी आतुर थी। सरकार की मान्यता थी कि कुँवर प्रतापसिंह बोस के अत्यधिक विश्वास पात्र थे। अत: उनको बोस के बारे में अवश्य जानकारी होगी। इसी उद्देश्य से भारत सरकार के गुप्तचर विभाग के निदेशक चार्ल्स क्लीव लैण्ड बरेली पहुँचे और प्रतापसिंह से बोस के बारे में पूछताछ करने लगे। इस हेतु उन्हें अनेक यातनाएँ दी गईं और अनेक प्रलोभन दिए गए, परन्तु प्रताप टस से मस नहीं हुए। उनकी कोमल भावनाएँ उभारने के लिए कहा कि 'तुम्हारे बिना तुम्हारी माता रो रही है'' इस पर प्रताप ने उत्तर दिया ''मेरी माता रोती है, तो रोने दो, उसे हँसाने के लिए मैं हजारों माताओं को रुलाना नहीं चाहता। यदि मैं अपने साथी क्रांतिकारियों की माताओं को रुलाने का कारण बना तो वह मेरी मृत्यु होगी और मेरी माँ के लिए घोर कलंक होगा।'' प्रताप के इस उत्तर को सुनकर क्लीव लैण्ड ने कहा— ''मैंने आज तक प्रतापसिंह जैसा विलक्षण बुद्धि का धीर वीर नहीं देखा। हमने उसे सताने में कोई कसर उठाकर नहीं रखी, परन्तु वे अपनी बात पर अटल रहे, हम सब हार गए, वही विजयी रहा।''

बरेली जेल में ही अमानुषिक यातनाओं के कारण वीर प्रताप ने 7 मई, 1918 ई. को महा प्रयाण किया। धन्य हो वीर! तुम जैसे वीर पुत्रों के आत्म बलिदान से भारत माता स्वतंत्र हुई। राष्ट्र तुम्हारे बलिदान का सर्वदा कृतज्ञ रहेगा।

अर्जुनलाल सेठी :

अर्जुनलाल सेठी राजस्थान के प्रमुख क्रांतिकारी थे। सेठी का जन्म 1880 ई. में जयपुर के एक सम्पन्न जैन परिवार में हुआ था। बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पहले उनका सम्पर्क रासबिहारी बोस व अरविन्द घोष आदि क्रांतिकारी नेताओं से हो गया था। बाल गंगाधर तिलक को वे अपना राजनैतिक गुरु मानते थे और उन्होंने उनके निर्देशन में देश में आजादी की अलख जगाने का काम शुरू कर दिया था।


अर्जुनलाल सेठी

बी.ए. करने के बाद सेठी मथुरा व सहारनपुर की शिक्षण संस्थाओं में शिक्षक बने, परन्तु उनका मन वहाँ नहीं लगा और जयपुर आकर स्वयं ने ही 1907 ई. में वर्धमान विद्यालय की स्थापना की जिसके कितने ही छात्रों ने स्वाधीनता संग्राम की बलिवेदी पर हँसते-हँसते अपने प्राणों की बलि दे दी।

अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत, अरबी, हिन्दी, पाली आदि भाषाओं के वे अच्छे जानकार थे। उनकी विद्वता की खबर चारों तरफ फैल गई थी। देश के कोने-कोने से छात्र उनके विद्यालय में पढ़ने आते थे। इस विद्यालय में राष्ट्र भक्ति की शिक्षा की प्रधानता थी। शोलापुर के माणक चन्द व मोतीचन्द, बंगाल के विष्णुदत्त उनके शिष्य बने। राजस्थान के प्रसिद्ध विप्लवी नेता ठाकुर केसरीसिंह तथा उनके परिवार से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे। हार्डिंग्ज पर बम फेंकने की योजना में भाग लेने वाले जोरावरसिंह और नीमेज हत्याकांड की सजा में फाँसी पर चढ़ने वाले मोतीचन्द आपके जलाये हुए ही चिराग थे। स्वयं सेठी को हत्याकाण्ड तथा हार्डिंग्ज बम काण्ड के कारण जयपुर में पाँच वर्ष तक नजरबन्द रखा गया। उनकी नजरबन्दी से सारे भारत में तहलका मच गया और सरकार ने उनको जयपुर से वेलूर भेज दिया। वहाँ पर आपने जेल अधिकारियों के दुर्व्यवहार के विरोध में 70 दिन की भूख हड़ताल की। सारे देश का ध्यान सेठीजी की ओर गया और उनके समर्थन में देश भर में आंदोलन शुरू हो गया। अंतत: सरकार को सेठीजी को रिहा करना पड़ा।

जेल से छूटते ही वे पूना आए जहाँ क्रांतिदृष्टा लोकमान्य तिलक के सान्निध्य में सेठीजी के सम्मान में एक स्वागत समारोह का आयोजन हुआ। इसमें अर्जुनलाल को महान् देशभक्त, कठोर तपस्वी तथा महात्मा बताया गया। पूना से वे इन्दौर गए। वहाँ भी उनका भारी स्वागत हुआ। छात्र उनकी बग्घी हाथों से खींच कर सभा स्थल पर ले गए।

इन्दौर से सेठीजी अजमेर आए और वहाँ पर महात्मा गाँधी द्वारा संचालित सत्याग्रह में उत्साह से भाग लिया। वे गिरफ्तार हुए, डेढ़ वर्ष का कारावास मिला। 1923 ई. में सेठीजी अजमेर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चुने गए, परन्तु उनके अत्यधिक उग्र और क्रांतिकारी विचारों के कारण कांग्रेसी नेताओं से कोई तालमेल नहीं बैठ सका। अत: उन्होंने राजनीति से पूरा संन्यास लेकर, सामाजिक कार्यों में जुट गए। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य हिन्दू और मुसलमानों में कौमी एकता को बढ़ावा देना था। इसके लिए उन्होंने अजमेर को अपना कार्यक्षेत्र चुना और प्रसिद्ध तीर्थ स्थल ख्वाजा साहब की दरगाह में रहने लगे।

सेठीजी का उदारवादी दृष्टिकोण संकीर्ण धर्मान्ध हिन्दुओं को अच्छा नहीं लगा। वे उनको अनेक प्रकार से तंग करने लगे। उनको छुरे से घायल कर दिया गया। अन्त में 2 दिसम्बर, 1941 ई. को वे चिर निद्रा में सो गए, परन्तु राष्ट्र को आजादी प्राप्त करने के लिए जाग्रत कर गए।

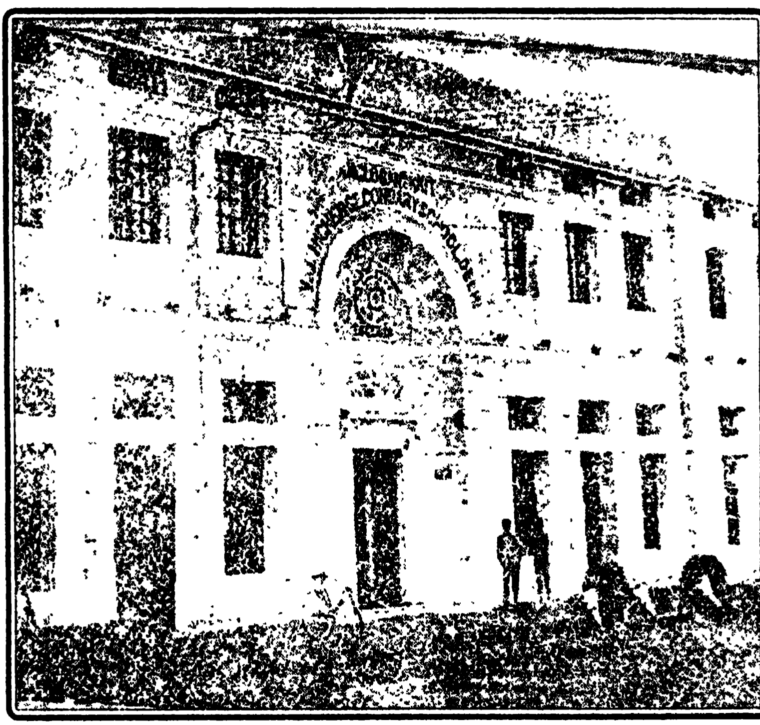
एक क्रांतिकारी के रूप में सेठीजी के कार्यों का ठीक सा मूल्याँकन नहीं हुआ। गरम दल के नेता विपिनचन्द्र पाल का इस सम्बन्ध में ठीक ही कहना है—"सेठीजी स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाने वाले पहले व्यक्ति थे। यदि उनका जन्म बंगाल में होता तो वे देश के प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता के रूप में जाने जाते।" रासबिहारी बोस ने उन्हें राजनीति का सिंह बताया था।

सेठीजी के प्रयत्न से अंधकार युक्त सामन्तवादी राजस्थान में राजनीतिक रोशनी की चमक दिखाई दी। सेठीजी ने अपनी शिक्षण संस्था में अनेक क्रांतिकारी युवक तैयार किए, जिन्होंने दिल्ली तक आतंकवाद के क्षेत्र में तहलका मचा दिया था। वे राजस्थान के पहले क्रांतिकारी थे, उन्हीं के प्रयास से आगे भी राजस्थान में क्रांतिकारी पैदा होते रहे। उनमें विजयसिंह पथिक, रामनारायण चौधरी, स्वामी कुमारानन्द, ज्वालाप्रसाद, बाबा नरसिंह दास प्रसिद्ध हैं।

सेठीजी राजनैतिक क्रांतिकारी के साथ-साथ एक उच्च कोटि के समाज सुधारक भी थे। जाति पांति में उनका बिल्कुल विश्वास नहीं था। उन्होंने अपनी एक लड़की की शादी अपने ब्राह्मण शिष्य से करके एक आदर्श उपस्थित किया। देश की आजादी व कौमी एकता के लिए समर्पित सेठी जी का जीवन स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है।

दिल्ली व क्रांतिकारी योजनाएँ :

दिल्ली सर्वदा से ही देश की भावात्मक एकता का प्रतीक रहा है। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व दिल्ली ने संभाला था। उस समय देश के कोने-कोने से दिल्ली चलो का नारा गूँज उठा था। 1911 ई. में जब सरकारी आदेश से राजधानी कलकत्ता के स्थान पर दिल्ली घोषित की गई तो क्रांतिकारियों का क्रीड़ा स्थल भी दिल्ली बन गया। तरह-तरह के क्रांतिकारी परचे बँटने लगे। लाला हरदयाल, रासबिहारी बोस तथा जितेन्द्रनाथ चटर्जी ने दिल्ली, बनारस तथा अमृतसर में क्रांतिकारी संगठनों को तेज कर दिया। यहाँ बम बनाने का पूरा इंतजाम कर लिया था।



दिल्ली के सबसे पुराने स्कूल के 100 वर्ष :
प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कभी यहाँ अध्यापक थे

हमने देखा कि बंगाल तथा महाराष्ट्र में जन्मे क्रांतिकारी आंदोलन ने थोड़े समय में राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया। अब क्रांतिकारियों का कार्य प्रान्त विशेष की राजधानी तक ही सीमित न रहकर देश की राजधानी तक बढ़ चला। छोटे-छोटे ब्रिटिश अधिकारियों के स्थान पर अब वे ब्रिटिश सत्ता के सर्वोच्च अधिकारी

वायसराय तक को अपने बमों का निशाना बनाने की सोचने लगे। रासबिहारी बोस, शचीन्द्र सान्याल तथा लाला हरदयाल ने क्रांतिकारी युवकों का एक अच्छा दल बना लिया था, जिनमें दिल्ली के मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी, भाई बालमुकुन्द, दीनानाथ आदि प्रमुख थे। अब रासबिहारी ने ही वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंकने की योजना तैयार की।

दिल्ली का बम काण्ड :

राजधानी दिल्ली बन चुकी थी। 23 दिसम्बर, 1912 को वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज बड़ी धूमधाम से दिल्ली में प्रवेश करेंगे। बस फिर क्या था? दोनों ओर से तैयारी होने लगी, क्रांतिकारी चुपचाप अपना काम करने लगे और सरकारी अधिकारी अपना। अधिकारी वायसराय के जुलूस के लिए हाथी, घोड़े और गाजे बाजे का प्रबन्ध करने लगे। 23 दिसम्बर को तो दिल्ली के चाँदनीचौक का निराला ही ठाट-बाट था। अन्त में अपार मनुष्यों की भीड़ के बीच से वायसराय की सवारी बड़े ठाट-बाट से निकली। वायसराय एक सजे सजाए हाथी पर सवार थे। साथ में अनेक घोड़े, हाथी, तोपें व भारी सैनिक समूह था। बड़े-बड़े राजा महाराजा उनके जुलूस में थे। सभी झुक-झुक कर वायसराय को सलाम कर रहे थे। जुलूस मीलों लम्बा था। जुलूस जब चाँदनी चौक के फव्वारे के पास पहुँचा तो एक ओर से बम आकर लॉर्ड हार्डिंग्ज के हाथी पर गिरा। बड़े जोरों का धमाका हुआ। वायसराय तो बच गए, परन्तु उनके अंगरक्षक का शरीर टुकड़े टुकड़े होकर बिखर गया।

यह एक ऐसी घटना थी, जिससे अजेय कहलाने वाला अंग्रेजी शासन काँप उठा। चारों ओर से पकड़ो-पकड़ो की आवाज आने लगी, परन्तु कोई पकड़ में न आया। क्रांतिकारियों ने कोई कच्ची गोलियाँ नहीं खाई थीं। बसन्तकुमार,भाई बालमुकुन्द तथा जोरावरसिंह बारहठ बुरके पहनकर पंजाब नेशनल बैंक के भवन की छत पर स्त्रियों के साथ बैठे थे। बसन्तकुमार ने वायसराय के हाथी के निकट आते ही निशाना ताक कर बम फेंका, परन्तु पास में बैठी स्त्री के हाथ का टल्ला लग जाने से बम वायसराय पर न गिरकर अंगरक्षक पर गिर पड़ा। तीनों क्रांतिकारी भीड़भाड़ में इस तरह मिल गए कि कुछ भी पता न लग सका।

परन्तु यह बम काण्ड देशभक्तों की ब्रिटिश शासन को एक गंभीर चुनौती थी कि हम चुपचाप विदेशी शासन के अत्याचार व राष्ट्रीय अपमान को सहन नहीं कर सकते। देश से अभी वीरत्व समाप्त नहीं हुआ है। इधर सरकार भी देशभक्तों के इस प्रकार के साहस को कैसे सहन कर सकती थी? अत: सारे देश में जासूसों का जाल बिछा दिया गया। स्थान-स्थान पर तलाशियाँ ली जाने लगीं। बड़े-बड़े पुलिस अधिकारियों की मान्यता थी कि अवश्य ही बम काण्ड में रासबिहारी बोस

का हाथ है। अतः उन्हें पकड़ने के लिए भारी प्रयास किया जाने लगा, परन्तु वे अदृश्य हो गए। कलकत्ता में उनके मकान पर छापा मारा गया। वहाँ पर अमीरचन्द व अवध बिहारी के हाथ का लिखा हुआ पत्र मिला। अवध बिहारी से पूछताछ की गई। उनके घर पर एक पत्र मिला जो एम.एस. का लिखा हुआ था। पूछताछ करने पर अवध बिहारी ने एम.एस. के बारे में इतना ही बताया कि यह लाहौर का दीनानाथ है।

फिर क्या था लाहौर में जितने भी दीनानाथ थे सबके सब पकड़े गए। तीन को निर्दोष समझकर छोड़ दिया गया, किन्तु चौथे को जब कठिन यातनाएँ दी गईं तो सारा भेद खोल दिया। इसी आधार पर मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी, बसन्तकुमार पकड़े गए। भाई बाल मुकुन्द भी पकड़े गए। सब पर मुकदमा चला। सबको फाँसी हुई। क्रांतिवीर हँसते-हँसते मातृभूनि के लिए शहीद हो गए। इन क्रांति वीरों के जीवन परिचय के बिना तो हमारा स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास अधूरा ही रहेगा। अनेक क्रांति वीर लाला हरदयाल, रासबिहारी बोस विदेश चले गए।

मास्टर अमीरचन्द :



मास्टर अमीरचन्द

मास्टर साहब का जन्म दिल्ली के एक वैश्य परिवार में 1869 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम हुक्मचन्द था। बी.ए. पास करके कैम्ब्रिज मिशन हाई स्कूल में अध्यापक हो गए। अध्यापन के साथ-साथ वे समाज सुधार के कार्यों में गहरी रुचि रखने लगे। 1908 ई. में अमेरिका में गदर पार्टी के संस्थापक हरदयाल जब दिल्ली आए तो दिल्ली व आस-पास के क्षेत्रों में लोगों को क्रांति के लिए तैयार करने का काम मास्टर साहब को ही सौंपा। अमीरचन्द तन मन धन से देश सेवा में जुट गए। इसके कारण उनकी स्कूल की नौकरी भी खतरे में पड़ गई।

उन्हीं दिनों दिल्ली में हनुमन्तसहाय नामक समाज सेवी धनी व्यापारी ने दिल्ली के किनारी बाजार में नेशनल स्कूल नामक पाठशाला खोली। अमीरचन्द उसी में मास्टर बन गए। वहाँ भी वे शांत न रहे। रासबिहारी बोस के निर्देशन में 21 फरवरी, 1915 की सशस्त्र क्रांति के लिए जन जागृति का कार्य करने लगे।

दिल्ली बम काण्ड को लाहौर के बम काण्ड से जोड़ा गया, जिसमें एक सिपाही मारा गया था। इसी बीच भाई बाल मुकुन्द और बसन्तकुमार विश्वास को गिरफ्तार कर लिया गया। चारों पर मुकदमा चला। मास्टर साहब को क्रांतिकारी

भावना को भड़काने का दोषी बताया गया और कहा गया कि क्रांतिकारी पर्चों के लेखक वे ही थे, जिसमें यह लिखा रहता था 'हम संख्या में इतने अधिक हैं कि आसानी से अंग्रेजों से शस्त्र छीन सकते हैं।'

फैसले में मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी और भाई बाल मुकुन्द को फाँसी की सजा सुनाई गई और बसन्तकुमार विश्वास को काले पानी की सजा मिली। सभी ने मुख्य अदालत में अपील की, तो सजा अधिक कठोर कर दी गई। बसंतकुमार विश्वास को भी फाँसी की सजा मिली।

आजादी और क्रांति के दीवाने इन अमर शहीदों ने हँसते-हँसते मातृभूमि की बलिवेदी पर चढ़कर अपना नाम इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा लिया। यह प्रसन्नता की बात है कि दिल्ली प्रशासन ने चाँदनी चौक में जिस स्थान से वायसराय हार्डिंग्ज पर बम फेंका गया था, वहीं पर इन वीरात्माओं का स्मारक बनाया गया है, जो प्रशंसनीय है।

भाई बाल मुकुन्द :

भाईजी का जन्म 1885 ई. को पंजाब में झेलम जिला अंतर्गत चकवाल गाँव में हुआ था। यद्यपि उनके घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, परन्तु उनके पिताजी ने उनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया। प्रारम्भिक शिक्षा चकवाल गाँव में हुई। इसके बाद लाहौर में हाई स्कूल से लेकर बी.ए. तक की परीक्षा पास की। 1910 ई. में राजकीय ट्रेनिंग कॉलेज से बी.टी. की परीक्षा उत्तीर्ण की।



भाई बाल मुकुन्द

बी.टी. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद भाईजी ऐबटाबाद में एलबर्ट विक्टर ऐम्ले संस्कृत हाई स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए, परन्तु जल्दी ही अध्यापन कार्य छोड़कर भाईजी देश सेवा में लग गए क्योंकि बाल्यावस्था से ही देशभक्ति का अंकुर उनके हृदय में फूट चुका था। बचपन में देशभक्तों के सम्पर्क में आने लगे, जिनमें तपसीराम मुख्य थे। तपसीराम एक साधु थे, जो भाईजी के गाँव के पास ही, बन रहे नाले के तट पर रहते थे। तपसीराम अंग्रेजी शासन से बहुत नाराज थे। वे युवकों को क्रांति के लिए उकसाते रहते थे। उनके पास एक अखाड़ा भी था, भाईजी अपने चचेरे भाई परमानन्द के साथ प्रायः तपसीराम के अखाड़े में जाया करते थे। वहाँ तपसीराम साधु की उन बातों को बहुत ही ध्यान से सुनते जिनमें अंग्रेजी शासन के प्रति

गहरा रोष भरा रहता था। बाद में वे अपनी आँखों से ब्रिटिश शासन के अत्याचार भी देख रहे थे। उन्होंने मन ही मन यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी कि "विदेशी शासन को समाप्त करने के लिए वे अपने आप को मिटा देंगे।"

भाईजी पहले समाज सुधार के कार्य गें लगे। महान् उग्रवादी नेता शेरे पंजाब लाला लाजपतराय के अछूतोद्धार के कार्य में जुट गए, किन्तु भाईजी को केवल समाज सुधार के कार्य से ही कहाँ संतोष होने वाला था, उनके हृदय में तो अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध आंधियाँ उठ रही थीं। उन दिनों समस्त उत्तरी भारत में देशभक्तों का एक ऐसा विप्लवी दल तैयार हो रहा था, जिसके सदस्य हमेशा अपने सिर पर मृत्यु का कफन बाँधकर घूमते रहते थे। भाईजी इन क्रांति वीरों के सम्पर्क में आए और क्रांतिकारी कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे।

पंजाब तो उस समय क्रांतकारी कार्यों से पूरी तरह भरा हुआ था। सरदार अजीतसिंह, सूफी अंबाप्रसाद और लाला हरदयाल जैसे क्रांतिकारी नेता नवयुवकों में नवजीवन का संचार कर रहे थे और उन्हें बमों तथा आयुधों से सुसज्जित करने में जुटे थे। भाईजी तो इसी तलाश में थे। वे भी इन क्रांतिकारी वीरों के सम्पर्क में जा पहुँचे। अपनी निष्ठा के कारण वे थोड़े ही दिनों में सभी के प्रिय बन गए। इन्हीं दिनों सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता रासबिहारी बोस भी पंजाब पहुँचे। उनके आने से पंजाब में क्रांतिकारियों में नया जोश उमड़ पड़ा। फलस्वरूप नयी-नयी योजनाएँ तथा समितियाँ बनने लगीं जिनका उद्देश्य भारत से अंग्रेजी राज्य को समाप्त करना था।

लाला हरदयाल जब अमेरिका चले गए तो क्रांतिकारी संगठनों का उत्तरदायित्व मास्टर अमीरचन्द ने संभाला था। भाईजी नौकरी छोड़कर मास्टर जी के कार्य में सहयोग देने के लिए दिल्ली पहुँच गए। दिल्ली में भाईजी को तथा अवध बिहारी को क्रांतिकारी पर्चे निकालने तथा बाँटने का काम सौंपा गया। भाईजी ने इस कार्य को बड़ी लगन से किया। प्रतिदिन हजारों की संख्या में छोटी छोटी पुस्तकें छपती थीं। केवल दिल्ली में ही नहीं देहरादून, कसौली, अंबाला. फिरोजपुर, लाहौर आदि बड़े-बड़े शहरों में भी क्रांतिकारी साहित्य की धूम थी। पर्चें जनता में ही नहीं सैनिक छावनियों में भी बाँटे जाते थे। पर्चों में अंग्रेजी राज्य समाप्त करने के लिए देशवासियों को ललकारा गया था।

उन्हीं दिनों रासबिहारी बोस ने भाईजी को बम बनाने तथा उसके प्रयोग का अभ्यास करने का काम सौंप दिया था। साथ में बसन्तकुमार भी थे। रासबिहारी की योजना के अनुसार ही 23 दिसम्बर को हार्डिंग्ज पर बम फेंका गया। दो वर्ष तक इस बम काण्ड का लाख प्रयत्न करने पर भी ब्रिटिश सरकार

पता न लगा सकी थी। भाईजी सुरक्षित रूप से दिल्ली से निकल गए और अपनी पत्नी रामरखी बाई को भाई परमानन्द के परिवार में छोड़ वे जोधपुर चले गए। जोधपुर में राजकुमारों के शिक्षक के रूप में कार्य करने लगे। वहाँ भी उनका यही उद्देश्य था कि राजकुमारों के ट्यूटर होने के कारण वे आसानी से वायसराय के जोधपुर आगमन पर मिल सकेंगे और उन पर दुबारा बम का वार कर सकेंगे, परन्तु दीनानाथ द्वारा भण्डा फोड़ देने के कारण 16 फरवरी, 1914 ई. को ही भाईजी बन्दी बना लिए गए। 21 मई को भाईजी पर मुकदमा चला। भाई परमानन्द ने बहुत ही साहस व निर्भीकता के साथ उनके मुकदमे की पैरवी की, परन्तु सफलता नहीं मिली। 5 अक्टूबर को भाईजी को मृत्यु दण्ड दिया गया। पंजाब चीफ कोर्ट में अपील भी की गई, परन्तु अपील खारिज हो गई। मृत्युदण्ड यथावत रहा। भाईजी इस फैसले को सुनकर उछल पड़े और वे बोल उठे 'मुझे अपार हर्ष हो रहा है कि मैं आज अपने आपको भारत माता के चरणों पर चढ़ा रहा हूँ।

1915 ई. की 8 मई को दिल्ली गेट के पास, खूनी दरवाजे के सामने भाईजी को फाँसी पर चढ़ा दिया गया। भाईजी की भौतिक काया तो नष्ट हो गई, परन्तु उनका शौर्यपूर्ण बलिदान हमेशा के लिए अमर हो गया। स्वयं मिटकर देश की आजादी का मार्ग प्रशस्त कर गंए। उनके बलिदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

अवधबिहारी :

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि दिल्ली से लाला हरदयाल ने नवयुवकों को संगठित कर उनमें क्रांतिकारी भावना कूट-कूट कर भर दी थी। उनके विदेश चले जाने के बाद क्रांतिकारी कार्यों का उत्तरदायित्व मास्टर अमीरचन्द पर आ पड़ा। उस समय वे दिल्ली में ही एंग्लो संस्कृत हाईस्कूल के हैडमास्टर थे। अत: उन्होंने अपने सहयोगी अध्यापकों में क्रांतिकारी भावना जगाने का कार्य शुरू कर दिया। अवधबिहारी उस समय इसी स्कूल में गणित के अध्यापक थे। अवधबिहारी पर भी देशभक्ति का रंग चढ़ चुका था। क्रांतिकारी साहित्य का वितरण करने में वे भाई बाल मुकुन्द तथा मास्टर अमीरचन्द का पूरा साथ देते थे।

प्रसिद्ध क्रांतिकारी रासबिहारी बोस के निर्देशन में हार्डिंग्ज पर बम फेंकने की योजना में अवधबिहारी ने भी सक्रिय रूप से भाग लिया था। अपने अन्य साथियों के साथ आप पकड़े गए और 7 अक्टूबर 1914 ई. को हँसते-हँसते देश की आजादी के लिए फाँसी पर चढ़ गए।

बसन्तकुमार विश्वास :

बसन्तकुमार विश्वास रासबिहारी बोस के परम शिष्यों में से एक थे। विशेषकर वे दिल्ली में मास्टर अमीरचन्द के साथ रहते थे और गुप्त रूप से क्रांतिकारी साहित्य का वितरण करने तथा बम बनाने का काम करते थे। भाई बाल मुकुन्द के साथ आप वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंकने के लिए पंजाब नेशनल बैंक की छत पर बुर्का पहिन कर महिलाओं में शामिल हो बैठे थे। कहा जाता है कि वायसराय पर बसन्तकुमार ने ही अपने हाथ से बम फेंका था। सेना तथा पुलिस का पूरा प्रबन्ध होने पर भी वे वहाँ से भागने में सफल हो गए, परन्तु बाद में अवधबिहारी के घर की तलाशी के कारण सारा भेद खुल गया। मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी, भाई बाल मुकुन्द के साथ आप भी पकड़े गए। मुकदमा चला। इसमें अ।पके तीन साथियों को मृत्यु दण्ड मिला और आपको आजीवन कारावास काले पानी की सजा सुनाई गई।

सभी ने मुख्य न्यायालय में अपील की तो वहाँ सजा और अधिक कठोर हो गई अर्थात् बसन्तकुमार को भी फाँसी की सजा दी गई। इस तरह से भारत माँ के इस सच्चे सपूत ने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपनी बलि देकर भारत का भाल ऊँचा किया।

क्रांतिकारी कार्यों का मूल्याँकन :

हमने इस इकाई में अच्छी तरह से देखा कि क्रांतिकारियों ने अपने आतंक से ब्रिटिश शासन के नाक में दम कर दिया था। यह तो स्वीकार करना पड़ेगा ही कि क्रांतिकारी आन्दोलन की जड़ें किसान तथा मजदूरों तक उस समय न जम पायी थी, क्योंकि क्रांति वीरों के काम इतने जोखिमपूर्ण तथा बहादुरी के होते थे कि आम लोगों से इस प्रकार के साहस की आशा नहीं की जा सकती थी। इसके विपरीत इस प्रकार का आतंकवाद भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के अनुकूल भी नहीं था। इसका मतलब यह नहीं है कि सशस्त्र क्रांति से हम डरते थे, परन्तु गुप्त रूप से हत्यायें, छिपकर आक्रमण करना तथा डाके डालना आदि कार्य धर्मपरायण, शांति प्रिय जन मानस के गले नहीं उतर सकते थे।

देश की स्वाधीनता के लिए, देश को विदेशी सत्ता से मुक्त कराने के लिए हिंसक सशस्त्र क्रांति का प्रत्येक देश को पूरा अधिकार है, परन्तु यह सब खुले रूप में होना चाहिए। बंगाल के क्रांतिकारियों के मान्य नेता देशबन्धु चितरंजन दास ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि "मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सिद्धान्त की दृष्टि से किसी भी तरह की राजनीतिक हत्याएँ तथा हिंसा के

विरुद्ध हूँ। यह मेरे लिए तथा मेरे दल के लिए नितान्त अरुचिकर है। मैं इसे देश की प्रगति के लिए बाधक मानता हूँ। यह हमारी धार्मिक शिक्षा के भी विरुद्ध है।" आगे चलकर महात्मा गाँधी ने हमारे स्वतन्त्रता संग्राम को पूर्ण रूप से सत्य व अहिंसा पर आधारित कर दिया था।

इतना सब कुछ होने पर भी हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि क्रांतिकारियों का आतंकवाद देश काल की परिस्थितियों की उपज थी। यह एक प्रकार से लोगों को सशस्त्र क्रांति के लिए तैयार करने का प्रयास मात्र था, कोई खुला सशस्त्र संग्राम नहीं था। आततायी विदेशी शासन ने जिस प्रकार हमारे शांतिपूर्ण वैध राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने का प्रयास किया, उसके उत्तर में देश के प्रति दर्द रखने वाले और कर ही क्या सकते थे? संख्या में कम होने के कारण मजबूरन उन्हें छिपे रूप में यह सब करना पड़ा।

लेकिन यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हुतात्मा क्रांति वीरों ने हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में एक रंगीन एवं प्रेरणादायक अध्याय जोड़ा है। हमें इन क्रांति वीरों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करनी पड़ेगी। भारत माँ के इन सपूतों के शरीर के परमाणु-परमाणु में देश सेवा और विदेशी सत्ता से अपने देश को मुक्त कराने की भावना भरी हुई थी। देश की आजादी उनके जीवन का मूल मंत्र था और इसके लिए वे मृत्यु तक का आलिंगन करने के लिए तत्परता से तैयार रहते थे। देश की पराधीनता से उनकी आत्मा बेचैन थी। वे हृदय से भारत माता को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कर, उसे संसार के प्रगतिशील तथा स्वतंत्र राष्ट्रों की श्रेणी में ला खड़ा करना चाहते थे।

स्वार्थ व निजी अभिलाषा उनके पास तनिक भी फटक नहीं पाई थी। उनका केवल एक ही लक्ष्य था और वह था भारत की मुक्ति, भारत की स्वाधीनता। इस उपलब्धि के लिए कितने ही वीर हँसते-हँसते स्वाधीनता की बलिवेदी पर चढ़ गए। इतिहास में इन नर बहादुरों का नाम कभी मिट नहीं सकता। देश को स्वाधीन करने की उनकी महान् अभिलाषा को और उनके अनुपम त्याग को इतिहास में सदा गौरवपूर्ण शब्दों में याद किया जाता रहेगा। एक इतिहासकार ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि "उन्होंने हमें पुरुषत्व का गौरव पुनः प्रदान किया। अपनी वीरता के कारण वे हम वतनों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय हो गए।"

वे अपने बलिदानों से भावी पीढ़ी में त्याग एवं बलिदान की भावना पैदा करना चाहते थे। इस दृष्टि से वे सफल रहे। उन्होंने स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त किया। ब्रिटिश सरकार को भारतीयों को शासन सुधारों के रूप में कुछ राहत देने

का विचार करना पड़ा, परन्तु क्रांतिकारियों की भावना के अनुसार ही कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य से कम लेने को तैयार नहीं हुई।

क्रांतिकारी आन्दोलन के दमन के लिए ब्रिटिश सरकार ने कुछ कसर उठा कर न रखी। अनेकों को फाँसी दी गई। काले पानी की सजा तो साधारण बात हो गई। स्वातंत्र्य भावना को दबाने के लिए अनेक दमनकारी कानून बने। इन सब का नतीजा यह निकला कि भारत में कुछ समय के लिए क्रांतिकारी अंग्रेजों की आँखों में धूल झोंककर यूरोप, अमेरिका आदि जाने में सफल हो गए। वहीं बैठकर उन्होंने जबरदस्त सैनिक क्रांति के लिए साधन जुटाये। यदि वे इस कार्य में सफल हो जाते तो देश 21 फरवरी, 1915 को ही स्वतंत्र हो जाता।

इन प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों ने जो कार्य स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किया, वह हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है।

इतना सब कुछ होने पर भी हमें एक निष्पक्ष इतिहास के विद्यार्थी होने के नाते यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कुछ अनदिखे छिद्र क्रांतिकारी योजना में रह गए, जिसके कारण साम्प्रदायिक भावना जोर पकड़ने लगी। जैसे क्रांतिकारियों ने अपनी प्रेरणा का स्रोत हिन्दू देवी देवताओं से जोड़ा, जिससे देश के अन्य धर्मावलम्बियों का क्रांतिकारी योजना में सहयोग कम रहा। केन्द्रीय शक्ति के अभाव तथा परस्पर समन्वय की कमी से भी उन्हें अधिक सफलता नहीं मिल सकी।

□□

इकाई 8

प्रवासी भारतीय क्रान्तिकारी व सशस्त्र क्रान्ति की योजना

दिल्ली बम काण्ड के बाद ब्रिटिश शासन ने क्रांतिकारी संगठनों तथा उनके नेताओं को कुचलने में कोई कसर उठा नहीं रखी। अत: अनेक क्रान्तिकारियों ने भारत से बाहर जाकर क्रान्तिकारी संगठनों की स्थापना की। इन संगठनों का मुख्य उद्देश्य भारत में क्रान्तिकारी शक्तियों को मजबूत बनाना तथा उनके लिए शस्त्र तथा धन जुटाना था। क्रान्तिकारी साहित्य का सृजन कर उसे भारत पहुँचाना भी उनका एक उद्देश्य था। अवसर आने पर ब्रिटेन के शत्रुओं से सहायता प्राप्त कर भारत में 1857 ई. जैसी सशस्त्र क्रान्ति करने की उनकी प्रमुख योजना थी। उन्होंने भारत में वही कार्य किया जो इटली की स्वतन्त्रता व एकता के लिए गैरीवाल्डी तथा कावूर ने किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने मातृभूमि की मुक्ति के लिए प्रवासी भारतीयों को संगठित किया तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत के बाहर कार्य करने वाली सैनिक टुकड़ियों में घुसपैठ करके उन्हें क्रान्ति के लिए प्रेरित किया।

प्रवासी भारतीयों का पहला केन्द्र सबसे पहले श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा 'इण्डिया होम रूल सोसाइटी' के नाम से 1905 ई. में लंदन में कायम किया गया। यहीं पर इनके द्वारा 'इण्डियन सोशियोलोजिस्ट' नामक पत्रिका प्रकाशित की गई। यह पत्रिका पाठकों को भारत की स्वतन्त्रता के लिए ललकारती थी।

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने इंग्लैण्ड में अध्ययनरत छात्रों के लिए 'इण्डिया हाउस' नामक छात्रावास की स्थापना की। आगे चलकर 'इण्डिया हाउस' भारतीय क्रान्तिकारियों का प्रमुख केन्द्र बन गया। वीर सावरकर, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, एस. राव, भाई राणा, वी.वी.ए. अय्यर आदि ने 'इण्डिया हाउस' को क्रान्तिकारी संगठन का रूप देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। ब्रिटिश पुलिस इस प्रकार के क्रान्तिकारी कार्यों को कैसे सहन कर सकती थी? अत: इंग्लैण्ड की पुलिस से तंग आकर इण्डिया हाउस के अधिकांश सदस्य 1909 तथा 1910 में पेरिस जाने के लिए मजबूर हो गए। आगे चलकर वीर सावरकर के प्रयत्न से इण्डिया हाउस फिर चमक उठा।

पेरिस में क्रान्तिकारी संगठन को जन्म देने का श्रेय मैडम कामा तथा हरदयाल को है। बाद में लन्दन से आए श्यामजी कृष्ण वर्मा, राव भाई राणा, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय, अय्यर आदि भी इनके साथ काम करने लगे।

पेरिस केन्द्र ने भारत में भूमिगत संगठनों तथा आतंकवादी गतिविधियों को भरपूर सहायता पहुँचाई। वर्माजी का "इण्डियन सोशियोलोजिस्ट" पत्र व मैडम कामा का 'वन्दे मातरम्' पत्र यहीं से भारत पहुँचता था। मैडम कामा तथा हरदयाल का फ्रांसीसी समाजवादियों से गहरा सम्पर्क था, परन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद पेरिस केन्द्र वस्तुत: भंग हो गया, क्योंकि फ्रांस इंग्लैण्ड का मित्र था। मैडम कामा व राणा पेरिस में नजरबन्द कर लिए गए। श्यामजी कृष्ण वर्मा स्विट्जरलैण्ड चले गए, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय बर्लिन चले गए। उनकी पत्रिकाओं का प्रकाशन भी बन्द हो गया।

इसी अवधि में कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में भी क्रांतिकारी संगठन कायम हुए। प्रारम्भिक संगठन 'युनाइटेड इण्डियन लीग' था, जिसका मुख्य कार्य प्रवासी मजदूरों की स्थिति सुधारना था, परन्तु बाद में लाला हरदयाल आदि क्रान्तिकारियों के प्रयास से इस संगठन ने जल्दी ही राजनैतिक रूप धारण कर लिया। इस सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य तारकनाथ दास का रहा, जिन्होंने 1906 में कनाडा पहुँच कर प्रवासी भारतीयों को संगठित किया। फिर 1909 में यू.एस.ए. (संयुक्त राज्य अमेरिका) गए और वहाँ से 'फ्री हिन्दुस्तान' नामक पत्रिका निकालना शुरू की। यह पत्रिका प्रवासी भारतीयों में जल्दी ही लोकप्रिय हो गई। इस तरह से तारकनाथ दास ने अमेरिका में प्रवासी भारतीयों के एक बड़े क्रान्तिकारी संगठन की आधारशिला रखी, जिसकी परिणति आगे चलकर लाला हरदयाल की 'गदर पार्टी' के रूप में हुई।

लालाजी 1911 ई. में भारत से अमेरिका पहुँचे थे। 1913 ई. में उन्होंने वहाँ गदर पार्टी की स्थापना की। गदर पार्टी का मुख्य उद्देश्य प्रवासी भारतीयों तथा भारत में भूमिगत क्रांतिकारी संगठनों के माध्यम से सशस्त्र युद्ध की तैयारी करना था। कुछ ही दिनों में गदर पार्टी की शाखाएँ, अमेरिका, जापान, फिलीपीन, इण्डोनेशिया, मलाया तथा चीन सहित प्रशान्त महासागर के तटीय देशों में फैल गई। लालाजी ने 'गदर' अखबार भी निकालना शुरू किया, जो भारत की आजादी के लिए लोगों को ललकारता था।

प्रथम महायुद्ध शुरू हो चुका था। अत: इंग्लैण्ड के शत्रु जर्मनी से शस्त्र सहायता लेकर भारतीय क्रांतिकारियों ने इंग्लैण्ड के विरुद्ध आजादी का जंग छेड़ने का यह उचित अवसर समझा। इस संदर्भ में अमेरिका से गदर पार्टी के लगभग आठ हजार लोग भारत पहुँचे। सोहनसिंह भकना, करतारसिंह सराबा आदि गदर पार्टी के नेता विशद् सशस्त्र क्रांति के प्रयासों में जुट गए।

उधर सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी राजा महेन्द्रप्रताप सिंह जर्मनी पहुँचकर जर्मनी के सम्राट केसर से मिले। भारत की स्वतन्त्रता को गति देने के लिए बर्लिन में भारतीय स्वतन्त्रता समिति काम कर रही थी। वहाँ प्रसिद्ध क्रांतिकारी चैम्पेकर पिल्लई क्रांतिकारी योजनाओं में जुटे थे। बाद में हरदयाल भी अमेरिका से बर्लिन पहुँच गए। वहाँ पर उन्होंने जर्मन सरकार से शस्त्रादि प्राप्त करने का पूरा प्रयास किया गया। भाई परमानन्द ने गदर पार्टी के निर्देश से जर्मनी जाकर हजारों रायफलें जुटाई और उन्हें जहाज में भरकर समुद्र के रास्ते से बटेविया भेजा। बटेविया (सुमात्रा) उन दिनों भारतीय क्रांतिकारियों का प्रमुख केन्द्र था। बंगाल के क्रान्तिकारियों को बटेविया से ही शस्त्र मिलने थे, परन्तु बटेविया से शस्त्र न पहुँच सके। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि सशस्त्र क्रांति में लाला हरदयाल गदर पार्टी को मुख्य भूमिका निभानी थी। अत: हजारों की संख्या में गदर पार्टी के सदस्य भारत पहुँचने लगे। इनमें करतारसिंह सराबा भी थे, जिनका प्रमुख नारा था :

"चलो चल्लिए देश नू युद्ध करन,
एहो आखिरी वचन से फर्मान हो गये।"

लोगों में बड़ा उत्साह था जिसका पता हमें गदर पार्टी के विज्ञापन से लगता है। विज्ञापन था 'आवश्यकता है : वीर सिपाहियों की। वेतन: 'मृत्यु'। पुरस्कार : 'बलिदान'। पेन्शन: 'स्वतन्त्रता'। तोशामारु जहाज में बैठकर अनेक क्रांतिकारी भारत लौटने लगे। इससे पहले 'कोमागाटामारू' जहाज के यात्रियों से कलकत्ता में ब्रिटिश अधिकारियों से झगड़ा हो गया था। 'कोमागाटामारू' एक भाड़े का जहाज था जिसमें अनेक पंजाबी गुरुदत्तसिंह के नेतृत्व में रोटी रोजी के तलाश में कनाडा गए थे, परन्तु वहाँ के प्रवासीय नियमों के अनुसार इन्हें वहाँ नहीं उतरने दिया गया। अत: जहाज पुन: भारत लौटा। कलकत्ता में इन यात्रियों के लिए सीधा पंजाब ले जाने के लिए रेलगाड़ी तैयार खड़ी थी, परन्तु यात्रियों ने कलकत्ता में रुक कर प्रदर्शन करने का निश्चय कर लिया। अत: अधिकारियों तथा यात्रियों में झगड़ा हो गया। इस दंगे में दोनों ओर के लगभग चालीस लोग मारे गए। इस झगड़े से इसके पीछे आने वाला 'तोशामारु' जहाज के यात्री जिनमें अधिकांश गदर पार्टी के सदस्य थे, उत्तेजित हो गए।

सिंगापुर की क्रांति :

तोशामारु जहाज जब सिंगापुर पहुँचा तो क्रांतिकारियों का वहाँ के प्रवासी भारतीयों ने भाव-भीना स्वागत किया। भाई परमानन्द इसी जहाज में थे। अत: उनसे दो शब्द कहने का अनुरोध किया गया। स्वागत समारोह में सिंगापुर स्थित भारतीय सैनिक भी थे। परमानन्द ने सभी को ललकारते हुए कहा "सत्तावन की

क्रांति के दमन चक्र याद करो, जब आततायी विदेशी शासकों ने हमारे कितने ही पूर्वजों को मारकर उनको वृक्षों पर लटका दिया था। उसी खून का बदला आज हमें लेना है। उठो, शस्त्र पकड़ो, स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़ो।" परमानन्द के इस उद्बोधन का सैनिकों पर आशातीत प्रभाव पड़ा। देखते ही देखते सिंगापुर स्थित पाँचवीं लाइट इन्फेन्ट्री के जवानों ने जमादार चिस्ती खाँ तथा सूबेदार उण्डे खाँ के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। आठ सौ अंग्रेज सैनिक मारे गए, ब्रिटिश सैनिक दुर्ग पर तिरंगा झण्डा लहराया गया। सात दिन तक सिंगापुर भारतीय सैनिकों के अधिकार में रहा, परन्तु कलकत्ता तथा मद्रास से भारी कुमुक आ जाने के कारण क्रांति कुचल दी गई। सैंतीस प्रमुख क्रांतिकारी नेताओं को फाँसी पर लटका दिया गया और 41 सैनिकों को आजन्म कारावास की सजा मिली।

देशव्यापी क्रांति की योजना :

'तोशामारु' जहाज के अनेक क्रांतिकारी पंजाब पहुँचने में सफल हो गए। वहाँ रासबिहारी बोस, शचीन्द्र सान्याल, महाराष्ट्रीयन युवक विष्णु पिंगले देश व्यापी क्रांति की योजना में जुटे हुए थे। अतः कपूरथला में एक गुप्त बैठक हुई। इसमें परमानद, अमरसिंह, निधानसिंह, मथुरासिंह, करतारसिंह सराबा, विष्णु पिंगले आदि नेताओं ने भाग लिया। सभी ने मिलकर यह निश्चय किया कि 19 फरवरी, 1915 को 1857 की क्रांति की तरह ही एक विशद् सशस्त्र क्रांति की जाए। पहले देश के प्रमुख बारह पुलों को नष्ट करके संचार व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर दिया जाए, जिससे ब्रिटिश सैनिक अधिकारी अपने ठिकानों पर हाथ मलते ही रह गए। इसके बाद देश के पच्चीस बड़े शहरों पर अधिकार किया जाए। क्रांति की सफलता के लिए सैनिक छावनियों के सहयोग की नितान्त आवश्यकता है। अतः किसी तरह से गदर पार्टी के लोग सैनिक छावनियों में घुसपैठ कर सैनिकों को क्रांति में कूदने के लिए प्रेरित करें, परन्तु इस योजना की भनक सरकार को लग जाने के कारण क्रांति की तिथि में कुछ परिवर्तन कर दिया गया। अब क्रांति 19 फरवरी के स्थान पर 21 फरवरी, 1915 की मध्य रात्रि को बारह बजे करने की योजना बनी।

प्रमुख क्रांतिकारी सैनिक सम्पर्क के लिए चल पड़े। भाई परमानन्द, कानपुर, दिल्ली, झांसी, इलाहाबाद के सैनिकों को क्रांति के लिए तैयार करने लगे। करतारसिंह सराबा विष्णु पिंगले आदि मेरठ व बनारस गए। मुल्तान तथा जालन्धर की डोगरा व अन्य रेजीमेन्ट भी क्रांति के लिए तैयार बैठी थी। सबसे पहले लाहौर के तेईसवें सैनिक रिसाले व फिरोजपुर स्थित सैनिक रेजीमेन्टों को क्रांति का शंख फूँकना था। लाहौर से ही रासबिहारी बोस ने 'ऐलाने जंग' के पर्चे छपवाकर सारे देश में बँटवा दिए। सब मामला तैयार था। इसी बीच हांगकांग से आए लुधियाना

निवासी कृपालसिंह ने सारे भेद खोल दिए। फिर क्या था? सरकार चौकन्नी हो गई। चारों ओर पकड़ा धकड़ी हुई, परन्तु रासबिहारी बोस फरार होकर जापान पहुँचने में सफल हो गए। अन्य क्रांतिकारी पकड़े गए। उनमें 42 को फाँसी पर लटकाया गया, 114 को आजन्म काले पानी की सजा तथा 93 को लम्बी सजाएँ दी गईं। लाहौर के तेबीसवें फौजी रिसाले को बिल्कुल तोड़ दिया गया। 15 नवम्बर, 1915 को गदर पार्टी के सात प्रमुख क्रांतिकारी नेताओं को एक साथ फाँसी दी गई। वे क्रांति वीर थे— करतारसिंह सराबा, विष्णु पिंगले, हरनामसिंह, बख्शीशसिंह, जगतसिंह, श्रवणसिंह प्रथम, श्रवणसिंह द्वितीय। इन प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानियों का जीवन परिचय अगली पंक्तियों में पढ़ेंगे।

इधर बंगाल के क्रांतिकारियों को शस्त्र न मिलने पर भी उन्होंने अपने ही साधनों से स्वतन्त्रता संग्राम जारी रखा। प्रमुख क्रांतिकारी नेता यतीन्द्रनाथ मुकर्जी के नेतृत्व में पाँच बंगाली क्रांतिकारी पुलिस से बालान नदी के तट पर बालाशोर में भिड़ पड़े। इस तरह से यतीन्द्र बाबू मातृभूमि के लिए शहीद हो गए।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि 1915 ई. में स्थापित बर्लिन की भारतीय स्वतन्त्रता समिति भी जर्मनी तथा तुर्की की सरकारों से समर्थन जुटाने का भरसक प्रयास कर रही थी। सहायता की आशा से इस समिति ने 1916 ई. में भारतीयों के द्वारा इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा भी कर दी थी। लाला हरदयाल तथा वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी बर्लिन की भारतीय स्वतन्त्रता समिति में उत्साह से कार्य कर रहे थे, परन्तु 21 फरवरी, 1915 की सशस्त्र क्रांति जब भारत में भेद खुल जाने के कारण न हो सकी तो प्रवासी क्रांतिकारियों का निराश होना स्वाभाविक था। राजा महेन्द्रप्रताप सिंह आदि क्रांतिकारियों ने जोश बनाए रखा और एक निर्वासित भारत सरकार की स्थापना काबुल में की गई। इसके राष्ट्रपति महेन्द्रप्रताप सिंह, प्रधान मंत्री बरकतुल्लाह और विदेश मंत्री उबेदुल्लाह नियुक्त हुए। इस अस्थायी सरकार ने रूस की जारशाही के पास सहायता के लिए अपने दूत भी भेजे, परन्तु सफलता नहीं मिली। युद्ध के दौरान भारतीय क्रांतिकारियों को यह स्पष्ट हो गया कि न तो जर्मन साम्राज्य और न ही उस्मान तुर्की साम्राज्य ब्रिटेन के औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध मदद करने वाले हैं तो बर्लिन केन्द्र के अधिकांश सदस्य स्टाकहोम चले गए और वहाँ से उपनिवेशवाद के विरुद्ध शीत युद्ध जारी रखा।

गदर पार्टी की भाँति देवबन्द (उत्तर भारत) में मुस्लिम राष्ट्रवादियों का एक भूमिगत संगठन भी भारत में औपनिवेशिक शासन का बलपूर्वक तख्ता पलटने में विश्वास रखता था। इस क्रांतिकारी संगठन के प्रमुख नेता महमूद हसन थे। महमूद हसन और उनके अनुयायियों ने सर्व इस्लामाबाद के नाम पर तुर्की के खलीफा के

अधिकारों की रक्षा के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध प्रचार अभियान चलाया। देवबन्द केन्द्र के क्रांतिकारियों ने भारत के बाहर इंग्लैण्ड के शत्रु राष्ट्र जर्मनी तथा तुर्की सरकारों से सम्पर्क साधने का प्रयास किया। 1915 ई. में हसन के साथी उबेदुल्लाह सिंधी जर्मन दूतावास से बात करने के लिए काबुल पहुँचे। अफगानिस्तान के अमीर हबीबुल्लाह को भी क्रांति में सहायता करने के लिए प्रेरित किया, जिससे भारत स्थित सीमावर्ती पठान कबीले उत्साह से क्रांति में भाग लेने को तैयार हो सकते थे, परन्तु अमीर हबीबुल्लाह ने तटस्थता की नीति बनाए रखी। फिर देवबन्द संगठन ने क्रांति की योजनाओं को छपवाकर तैयार किया, क्योंकि क्रांति की योजनाएँ पीले रेशमी कपड़ों पर लिखी गई थीं। जो इतिहास में 'रेशमी पत्र षड्यंत्र' के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु इसका जल्दी ही भेद खुल गया। इसमें भाग लेने वालों को कठोर सजाएँ दी गईं।

भारत के इतिहास का यह दुःखद अध्याय ही रहेगा कि 21 फरवरी, 1915 ई. की सशस्त्र क्रांति पहले ही भेद खुल जाने के कारण पूरी तैयारी होने पर भी क्रियान्वित नहीं हो सकी। भारत का इतिहास इस प्रकार की दुःखान्त विभीषिकाओं से भरा पड़ा है कि हमारे साथी ही हमारी पराजय के कारण बने हैं। कुछ देशद्रोही गद्दारों के काले कारनामों से हमारी सन्निकट आजादी दूर भागती रही। फिर भी जिस उत्कट देश प्रेम से अनुप्राणित हो क्रांतिकारियों ने अपना तन, मन, धन देश की आजादी के लिए अर्पित कर दिया, उसे कभी इतिहास के पृष्ठों से ओझल नहीं किया जा सकता। क्रांति वीरों के त्याग एवं कुर्बानी ने एक नये वातावरण का सृजन किया, जिससे आगे भी क्रांति अनवरत रूप से चलती रही, अन्त में वह मंजिल पर पहुँच कर ही रही।

क्रांति की विफलता के वे ही कारण रहे, जो आम तौर पर सभी क्रांतियों की विफलता के लिए होते हैं। क्रांतिकारियों में परस्पर समन्वय की कमी, सभी क्षेत्रों से पूरा सहयोग नहीं मिलना, शस्त्रादि तथा धन का अभाव, विदेशी सहायता न मिलना आदि से भी दुष्कर कारण यह था, लालची देशद्रोही लोगों ने क्रांति के सभी भेद पहले ही हमारे शत्रु ब्रिटिश शासन को बता दिए।

क्रांति की सफलता व असफलता का इतिहास में इतना मूल्य नहीं है जितना कि इस बात का है कि किस निष्ठा व त्याग से लोग क्रांति में भाग ले रहे थे। हमारे देशभक्तों ने हँसते-हँसते मरना मंजूर किया, परन्तु दासता कभी स्वीकार नहीं की। उनकी शहादत तथा शौर्य गाथाएँ हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं। क्रांतिकारी वीरों के जीवन परिचय के बिना स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास अधूरा ही रहेगा।

क्रान्तिवीर श्यामजी कृष्ण वर्मा (1857-1930 ई.) :



श्याम जी कृष्ण वर्मा

इंग्लैण्ड में क्रांतिकारी संगठन कायम करने का श्रेय श्यामजी कृष्ण वर्मा को है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के आदेश से ही आप अंग्रेजों के घर में ही क्रांति की अलख जगाने गए थे। वहाँ आपने प्रवासी भारतीय विद्यार्थियों के निवास के लिए 'इण्डिया हाउस' की स्थापना की, जो आगे चलकर क्रांतिकारियों का प्रमुख केन्द्र बन गया।

आपका जन्म, 1857 ई. में कच्छ राज्य के माण्डवी नामक गाँव में हुआ था। दस वर्ष की आयु में ही आपको मातृशोक हुआ। अतः आपका लालन पालन अपनी नानी के हाथों हुआ। आप शुरू से ही कुशाग्र बुद्धि थे। अतः आपकी शिक्षा का भार बम्बई के उद्योगपति भंसालीजी ने उठाया। आपकी असाधारण प्रतिभा को देख कर भाटिया सेठ छबीलालजी ने 1870 ई. में अपनी सुपुत्री सुशीला का विवाह आपके साथ कर दिया।

1879 ई. में वर्माजी विद्याध्ययन के लिए इंग्लैण्ड गए और वहाँ आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से एम.ए. तथा कानून की उपाधि लेकर भारत लौटे। यहाँ पर आपने आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचार के साथ-साथ रतलाम तथा अलवर राज्य के प्रधान मंत्री पद को भी सुशोभित किया। मेवाड़ के स्वाधीन चेत्ता महाराणा फतेहसिंह से भी आपका निकट का सम्पर्क था।

उच्च शिक्षा व ऊँचे पदों से वर्माजी के मन को शांति नहीं मिली। उनका हृदय देशभक्ति की भावना से हिलोरें मारने लगा। आप लोकमान्य तिलक से विदेशी शासन से मुक्ति के उपायों पर बराबर परामर्श लेते रहते थे। अतः विदेशों में क्रांतिकारी संगठनों के निर्माण का आपने बीड़ा उठाया और 1897 ई. में पुनः इंग्लैण्ड चले गए। वहाँ क्रांतिकारी भावना को जाग्रत करने के लिए आपने 'सोशियोलोजिस्ट' नामक पत्र निकला और प्रवासी भारतीय छात्रों की सुविधा के लिए 'इण्डिया हाउस' की स्थापना की। लाला हरदयाल तथा वीर सावरकर भी आपके पास इण्डिया हाउस में रहने लगे। तीनों क्रांति वीरों ने 'इण्डियन होम रूल सोसायटी' लन्दन शाखा से दस हजार रुपए देने की घोषणा की। इन रुपयों का उपयोग नवयुवक देशभक्तों को राजनीतिक प्रशिक्षण देने के लिए किया जाता था।

उन दिनों पंजाब के किसानों में भारी असंतोष था। उन्होंने ब्रिटिश नौकरशाही के विरुद्ध एक वीरतापूर्ण संग्राम छेड़ दिया। सरकार ने इस आन्दोलन

के लिए लाजपतराय तथा अजीतसिंह को उत्तरदायी ठहराकर, उन्हें देश से निर्वासित कर दिया। इन समाचारों से श्यामजी कृष्ण वर्मा को बड़ा दुःख हुआ और कहा कि "हमें पूर्ण विश्वास हो गया है कि देशभक्ति की भावना रखने वाले स्वाधीन चेत्ता भारतीयों के लिए अंग्रेजी राज्य में कोई सुरक्षित स्थान नहीं है। अतः मनुष्यों की तरह जीने के लिए हमें अंग्रेजों को भारत से खदेड़ना आवश्यक है।"

इण्डिया हाउस का कार्य वीर सावरकर को सौंप कर आप पेरिस चले गए। वहाँ मैडम कामा, सरदारसिंह राणा व लाला हरदयाल के साथ कार्य करने लगे। प्रथम महायुद्ध शुरू हो जाने से क्रांतिकारियों को पेरिस छोड़ना पड़ा। निरन्तर परिश्रम व रात-दिन की भाग दौड़ से आपका स्वास्थ्य खराब रहने लगा और जिनेवा में चिकित्सा के लिए चले गए, परन्तु स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ और वहीं 31 मार्च, 1930 ई. को आप स्वर्ग सिधारे। तीन वर्ष बाद आपकी पत्नी का भी देहान्त हो गया। इस तरह आपने सारा जीवन ही देश सेवा के लिए अर्पित कर दिया। एक महान् देशभक्त तथा उच्च कोटि के क्रांतिकारी के रूप में वे सदा स्मरणीय रहेंगे। वे भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन के जन्मदाता थे। उन्होंने ऐसे परम वीर क्रांतिकारियों को देश की आजादी के लिए तैयार किया, जो हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ गए। इन वीरों के बलिदान से ही हमें स्वतन्त्रता मिली है।

वीर सावरकर (1885-1960 ई.) :

भारत माँ के सच्चे सपूत महान् क्रांतिकारी विनायक दामोदर सावरकर का जन्म 26 फरवरी, 1885 ई. को महाराष्ट्र में नासिक जिला अन्तर्गत 'भागुर' नामक गाँव में हुआ। आपके बड़े भाई का नाम गणेश दामोदर सावरकर तथा छोटे भाई का नाम नारायण दामोदर सावरकर था। चापेपकर बन्धुओं की भाँति सावरकर बन्धु भी देशभक्ति में बेजोड़ थे।



वीर सावरकर

बचपन से ही सावरकर वीरतापूर्ण कहानियाँ पढ़ा करते थे। छत्रपति शिवाजी के शौर्यपूर्ण जीवन का उन पर अटूट प्रभाव पड़ा। 1857 ई. की महान् क्रांति की शौर्य गाथाओं ने उनके मन में देशभक्ति को उजागर किया और विदेशी शासन के प्रति घृणा की भावना पैदा कर दी। गोखले तथा तिलक महाराज के जीवन से भी उन्होंने प्रेरणा ली, परन्तु स्वतन्त्रता के लिए उनके मन को सबसे अधिक उद्वेलित करने वाले स्वामी अगम्य गुरु परमहंस थे।

स्वामीजी देश में घूम-घूम कर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विप्लव की भावना पैदा करते थे। सावरकर के हृदय में देशभक्ति का अंकुर पैदा करना उनका ही कार्य था।

सावरकर पूना के फर्ग्यूशन कॉलेज से 1905 ई. में बी.ए. की उपाधि प्राप्त कर बैरेस्टरी पढ़ने के लिए लन्दन पहुँचे। वहाँ वे प्रमुख क्रांतिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा के सम्पर्क में आए और उनके साथ इण्डिया हाउस में ही रहने लगे। जब वर्मा जी पेरिस चले गए तो इण्डिया हाउस का सारा कार्य वीर सावरकर देखते थे। उनके प्रयास से क्रांति के क्षेत्र में इण्डिया हाउस खूब चमका।

1907 ई. में सावरकर ने 1857 ई. की स्वर्ण जयंती बहुत ही धूमधाम से मनाई और सम्राट बहादुरशाह जफर, नाना साहब तथा महारानी लक्ष्मीबाई को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई और यह प्रतिज्ञा की कि "हम आपके स्वप्न को साकार करेंगे व देश की आजादी के लिए मर मिटेंगे।" आपने भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम पुस्तक लिखी जिसे ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर ली।

इधर भारत में भी सावरकर बन्धुओं ने क्रांति की ज्वाला जलाने में कुछ कसर उठा कर न रखी। गणेश विनायक सावरकर ने 'लघु भारत अभिनव मेला' नामक देशभक्ति पूर्ण कविता का प्रकाशन किया। सरकार ने इन्हें बंदी बनाकर काले पानी की सजा दे दी। लंदन में वीर सावरकर ने इस सजा की कड़ी निन्दा की और सजा देने वाले न्यायाधीश. जैक्शन को सबक सिखाने का भारतीय क्रांतिकारियों को निर्देश दिया, फलस्वरूप एक क्रांतिकारी ने औरंगाबाद में जैक्शन की गोली मार कर हत्या कर दी।

उधर लन्दन में भी 'इण्डिया हाउस' की पल-पल की खबर देने वाले जासूस 'कर्जन वायली' भी देशभक्तों की आँख का काँटा बना हुआ था। अत: एक दिन वीर सावरकर के शिष्य मदनलाल ढींगरा ने 'इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट' में उसको अपनी गोली का निशाना बना लिया। भारत व लंदन में क्रांतिकारियों के इस प्रकार के बुलन्द हौंसले के लिए सरकार ने सावरकर को दोषी ठहराया। अत: उन्हें 8 जुलाई, 1910 को लंदन में बन्दी बनाकर एक जहाज द्वारा भारत रवाना कर दिया। काफी गोरे सैनिकों का पहरा होने पर भी सावरकर फ्रांस के मर्सलीज बन्दरगाह के निकट जहाज से निकल कर समुद्र में कूदने में सफल हो गए। पाँच मील तैरकर फ्रांस के तट पर पहुँच गए, परन्तु फ्रांस की पुलिस ने भाषा न समझने के कारण उन्हें पुन: जहाज के कप्तान को सौंप दिया। सावरकर जी के इस अद्भुत शौर्यपूर्ण साहस की चारों तरफ चर्चा होने लगी।

भारत लाकर उन पर अनेक मुकदमे लगाए। अनेक हत्याकाण्डों से उनका सम्बन्ध जोड़ा गया। अन्त में उनको काले पानी की सजा देकर अण्डमान भेज दिया गया। जेल में उन्हें अनेक यातनाएँ दी गईं, परन्तु वीर सैनिक की भाँति

स्वाधीनता के लिए सभी कष्ट उठाते रहे। भारी यंत्रणाओं से उनका स्वास्थ्य खराब रहने लगा। अत: उन्हें 1924 ई. में भारत लाकर रत्नागिरि में नजरबन्द रखा गया। वहाँ से 1938 ई. में छूट कर बाहर आये। उन दिनों भारत विभाजन की योजना बन रही थी। अत: सावरकर ने इसका जोरदार विरोध किया और हिन्दू जाति को संगठित करने लगे। वे हिन्दू महासभा के कितनी ही बार अध्यक्ष बने। इन्हीं कारणों से उन्हें कुछ लोग साम्प्रदायिक कहने लगे, परन्तु उनकी साम्प्रदायिकता के पीछे अखण्ड भारत की राष्ट्रीय भावना ही थी। वे संकुचित साम्प्रदायिकता के शिकार नहीं थे। एक सच्चे देशभक्त क्रांतिकारी के लिए यह संभव भी नहीं है।

सन् 1948 ई. में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की हत्या के सम्बन्ध में इन्हें बंदी बनाया गया, परन्तु प्रमाण न मिलने के कारण वे छोड़ दिए गए। इसके बाद वे पूरी तरह से हिन्दू जाति के संगठन में लगे रहे। 26 फरवरी, 1966 को वे चिर निद्रा में सो गए। चाहे लोग उनके बारे में कुछ भी कहें, परन्तु उनकी देशभक्ति व राष्ट्र प्रेम की गाथा इतिहास में हमेशा गूँजती रहेगी। उनके जैसे साहसी देशभक्त कभी-कभी ही इस धरा पर अवतरित होते हैं।

मदनलाल ढींगरा (1887-1909 ई.) :



मदनलाल ढींगरा

क्रांति वीर मदनलाल ढींगरा का जन्म 1887 ई. को अमृतसर के निकट एक गाँव में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा लाहौर में हुई तथा बी.ए. की उपाधि लाहौर से ली। 1906 ई. में इंजीनियरिंग की शिक्षा हेतु इंग्लैण्ड चले गए। इंग्लैण्ड में वीर सावरकर के सम्पर्क में आए और इण्डिया हाउस में रहने लगे। वहाँ से सावरकर के निर्देशन में क्रांतिकारी योजनाओं में उत्साह से भाग लेने लगे। पढ़ने का उनका कार्य गौण हो गया और मुख्य कार्य देश सेवा बन गया। जब उनके पिताजी को यह समाचार मिला तो वे नाराज हुए और भारत सचिव के कार्यालय सहायक कर्जन वायली को उसको रास्ते पर लाने के लिए लिखा। कर्जन वायली इंग्लैण्ड की सरकार की ओर से 'इण्डिया हाउस' में प्रवासी भारतीय छात्रों के कार्य को देखते थे, परन्तु वे प्रवासी भारतीयो की सेवा करने के स्थान पर उनके क्रांतिकारी कार्यों की सूचना सरकार को देते रहते थे। एक तरह से वे जासूस का कार्य करते थे। इस कारण वे क्रांतिकारियों की आँखों का काँटा बने हुए थे। मदनलाल ढींगरा ने इस कांटे को निकालने का निश्चय कर लिया।

एक कोल्ट रिवाल्वर तथा बेल्जियम निर्मित पिस्तोल खरीद ली। उसी वर्ष जुलाई में इण्डियन नेशनल एसोसियेशन की बैठक लंदन में इंपीरियल इन्स्टीट्यूट में सम्पन्न होने जा रही थी। इसमें भारत सरकार के सेवा निवृत्त अंग्रेज अफसरों की उपस्थिति अधिक थी। समारोह के मुख्य अतिथि कर्जन वायली थे। अतः मदनलाल भी सूटेड बूटेड हो एक जेब में रिवाल्वर तथा दूसरी जेब में कागज का टुकड़ा रख कर सभा भवन में पहुँच गए। वायली के सभा भवन में प्रवेश करते ही ढींगरा उनकी तरफ बढ़े और अपनी जेब से एक कागज का टुकड़ा निकालते हुए उनसे कहा 'सर मेरे घर से कुछ पत्र आए हैं। बड़े भाई साहब ने आपसे मिलने के लिए कहा है।' वायली ने सहानुभूति पूर्वक कहा! "देखो। मदन मेरी तुम्हारे साथ पूरी हमदर्दी है और मैं चाहता हूँ कि ·····' इसके आगे वायली कुछ न बोल सके, क्योंकि कोल्ट रिवाल्वर से मदन ने उन पर गोलियाँ दाग दीं। वायली अचेत हो जमीन पर गिर पड़े। थोड़ी ही देर में उसके प्राण पखेरू उड़ गए। गोरे सिपाहियों ने तत्काल मदन को पकड़ लिया और उन पर हत्या का मुकदमा चला।

जेल में ब्रिटिश सरकार के डर से उनके सगे संबंधी मिलने नहीं गए, परन्तु सावरकर उनसे मिलने गए। अपने राजनैतिक गुरु के दर्शन करके मदन खुशी से नाच उठे। 23 जुलाई, 1909 ई. को उनके मुकदमे का फैसला हुआ और उन्हें मौत की सजा सुनाई गई। सजा सुनकर मदन बड़े प्रसन्न हुए और जज महोदय से कहा— 'मैं मेरी ओर से तथा मेरे देश की ओर से आपको धन्यवाद देता हूँ कि आपने मुझे अपने देश के लिए इस शरीर को अर्पित करने का अवसर प्रदान किया।' परम देशभक्त क्रांतिवीर 1 अगस्त 1909 ई. को 'पेंटो-विला' जेल में हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गए।

मदनलाल ढींगरा का अमर बलिदान सदा सदा के लिए इतिहास के पृष्ठों पर अंकित रहेगा, जिसे पढ़कर देशवासी देश की एकता व समृद्धि के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए सदा तत्पर रहेंगे।

लाला हरदयाल (1884-1939 ई.) :

लाला जी मूलरूप से दिल्ली निवासी थे। दिल्ली में मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी तथा बसन्तकुमार जैसी क्रांतिकारी शक्तियाँ आपकी ही देन हैं। देश में ही नहीं विदेशों में भी क्रांति की अलख जगाने में हरदयाल का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। अपनी गदर पार्टी के माध्यम से सशस्त्र क्रांति के द्वारा अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने की महती योजना आपने ही बनाई थी।

14 अक्टूबर, 1884 ई. को दिल्ली के चीरखाने मुहल्ले में आपका जन्म हुआ। पिता का नाम गौरीदयाल तथा माता का नाम भोली रानी था। आपकी



लाला हरदयाल

प्रारंभिक शिक्षा दिल्ली में हुई। आपकी स्मरण शक्ति अद्वितीय थी, जो कुछ पढ़ते थे, हमेशा के लिए याद हो जाता था।

दिल्ली से लाहौर गए। वहाँ पर आपने लाहौर राजकीय महाविद्यालय से अंग्रेजी व इतिहास में एम.ए. किया। अंग्रेजी में तो आपने इतने अंक प्राप्त किए कि वर्षों तक पंजाब विश्वविद्यालय में उनका मुकाबला कोई न कर सका। अत: उन्हें विश्वविद्यालय की ओर से 'सितारे की उपाधि' मिली। भारत सरकार की स्टेट स्कालरशिप पर अध्ययन के लिए इंग्लैण्ड गए। वहाँ आप सेन्ट जान्स कॉलेज में इतिहास विषय का अध्ययन करने लगे। कुछ ही दिनों में आपकी प्रतिभा की छाप सारे कॉलेज पर लग गई, परन्तु लालाजी का अन्तर्मन न तो उच्च शिक्षा में रुचि ले रहा था और न कोई सरकारी उच्च पद प्राप्त करने की उनकी इच्छा थी। वे बनना चाहते थे देशभक्त। संयोग से उनका परिचय लन्दन में श्यामजी कृष्ण वर्मा से हुआ। वे पढ़ाई लिखाई छोड़कर अपने बोरिये बिस्तर लेकर 'इण्डिया हाउस' में आ टिके। कुछ दिनों बाद वीर सावरकर भी वहाँ आ गए। फिर क्या था? जैसे सोने को सुहागा मिल गया। तीनों क्रांति वीर देश की दासता से बड़े दु:खी थे। अत: वे उसकी स्वतन्त्रता का प्रयास करने लगे।

उन दिनों भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा देशभक्तों को अनेक प्रकार से तंग किया जा रहा था। कितने ही देशभक्तों को आजीवन कारावास दिया गया। कितने ही को देश से निर्वासित किया गया। नवयुवक क्रांतिकारी फाँसी पर लटकाये जा रहे थे। इन नृशंस अत्याचारों ने लालाजी के हृदय में ब्रिटिश राज के प्रति गहरी घृणा पैदा कर दी। अत: उन्होंने सेन्ट जान्स कॉलेज से अपना नाम कटवा लिया और स्टेट स्कालरशिप को ठुकरा दी। कॉलेज के प्रिंसिपल साहब ने उनको बहुत समझाया और उच्च पद के प्रलोभन भी दिए, परन्तु लाला जी टस से मस नहीं हुए और उन्होंने प्रिंसिपल साहब को जो उत्तर दिया, वह देशभक्ति के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। उन्होंने कहा— "किसी दूसरे से हमें सहायता मिले या न मिले, हम अंग्रेजों से तो सहायता लेने वाले नहीं हैं। इनके हाथ तो खून से सने हुए हैं। इन्होंने हमारे निर्दोष राष्ट्र का खून कर रखा है, डाकुओं से हम कैसे पैसा ले सकते हैं? फिर आप का यह रुपया।"

इण्डिया हाउस में कुछ दिन रहने के बाद वे भी श्यामजी कृष्ण वर्मा के साथ पेरिस चले गए। वहाँ से उन्हें भारत में क्रांतिकारी संगठनों को मजबूत करने के लिए भेजा गया। वहाँ पर लाला हनुमन्त सहाय, मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी, भाई बाल मुकुन्द, जितेन्द्रनाथ चटर्जी आदि को क्रांति पथ पर आरुढ़ किया। उन्होंने ही वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंकने की योजना में अपने अद्‌भुत साहस का परिचय दिया था।

दिल्ली में लाला जी के क्रांतिकारी कार्यों से सरकार उनके पीछे पड़ गई और बन्दी बनाने का प्रयास करने लगी। अत: लाला जी पुन: लन्दन आ गए, परन्तु उस समय वीर सावरकर बन्दी बनाकर भारत भेजे जा चुके थे। अत: लाला जी अमेरिका के फ्रेंच टापू मार्टीनिक चले गए। वहाँ वे तपस्वी का जीवन बिताने लगे।

इसी बीच 1911 ई. में भाई परमानन्द अमेरिका पहुँचे और उनके तपस्वी जीवन को देखकर कहने लगे— 'क्रांति क्षेत्र से इस तरह से भागने से काम नहीं चलेगा। संघर्षों से जूझते हुए लक्ष्य सिद्धि की ओर बढ़िए।' परमानन्द जी के इस उद्‌बोधन का उन पर काफी असर हुआ और वे 'सान-फ्रांसिस्को' आ गए। यहाँ पर उन्होंने हिन्दू दर्शन पर ओज पूर्ण भाषण देकर विवेकानन्द की याद को ताजा कर दिया। आप वहाँ हिन्दू ऋषि के रूप में सम्मानित हुए। कुछ समय के लिए आपने अवैतनिक रूप से चैम्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद पर कार्य किया, परन्तु विश्वविद्यालय के अधिकारियों से खटपट होने के कारण वे पुन: सान-फ्रांसिस्को आ गए। यहाँ पर उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध खुला विद्रोह खड़ा कर दिया। प्रवासी भारतीयों के सहयोग से 'गदर पार्टी' की स्थापना की और युगान्तर आश्रम से 'गदर' अखबार निकाला जाने लगा। 'गदर' अखबार में क्रांति के शोले दहकते रहते थे। प्रवासी भारतीयों में ही नहीं वरन् भारत स्थित क्रांतिकारियों में यह पत्र क्रांति की आग बरसाता था। लाला जी की गदर पार्टी और गदर अखबार के कार्य भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं।

इधर यूरोप में प्रथम महायुद्ध शुरू हो चुका था। अत: गदर पार्टी के अनेक लोग भारत पहुँचने लगे। उनका मुख्य उद्देश्य भारतीय क्रांतिकारियों से मिलकर 1857 ई. की भाँति अंग्रेजों के विरुद्ध एक मजबूत सशस्त्र क्रांति करना था। लाला जी युगान्तर आश्रम व गदर पार्टी का काम अपने सहयोगी रामचन्द्र को सौंपकर स्वीडन आ गए और वहाँ जर्मन दूतावास से सम्पर्क किया। वहाँ से वे बर्लिन गए, परन्तु जर्मन सरकार से सक्रिय सहयोग की आशा न देखकर, वे हालैण्ड चले गए। हालैण्ड से इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री रेमजे मेक्डानल्ड के आश्वासन पर इंग्लैण्ड आ

गए। इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री उनका काफी सम्मान करते थे, परन्तु इंग्लैण्ड में उनका मन अधिक दिन नहीं लगा। वहाँ से वे फिलाडेल्फिया आ गए। वहाँ से 1939 ई. में भारत आने की तैयारी करने लगे। भारत में उनके स्वागत की भरपूर तैयारी हो रही थी, परन्तु विधि का विधान ही निराला है, वे चार मार्च, 1939 ई. को ही हमें बिलखता छोड़कर इस संसार से कूच कर गए। उनका पार्थिव शरीर न रहा, परन्तु देश विदेश में जो स्वतन्त्रता की दीप शिखा उन्होंने जलाई थी, वह बराबर हमें रोशनी देती रही। इसी रोशनी से हमें आजादी प्राप्त हुई। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में लालाजी के कार्य स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं। राष्ट्र उनके देशोपकार का सदा ऋणी रहेगा।

करतारसिंह सराबा (1896-1916 ई.) :

करतारसिंह सराबा उत्कट देशभक्त एवं गदर पार्टी के प्रमुख क्रांतिकारी नेता थे। आपका जन्म लुधियाना जिले के सराबा गाँव में 1896 ई. में हुआ था। आप सिक्ख जाट परिवार से थे। अपने पिता मंगलसिंह के एक मात्र पुत्र थे। प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव सराबा में ही हुई। इसके बाद आप अपने चाचा के साथ उड़ीसा चले गए। वहीं से आपने मैट्रिक पास की। फिर 16 वर्ष की अवस्था में ही 1912 में सान फ्रांसिस्को (अमेरिका) चले गए। वहाँ पर काम करने लगे। पैसे तो खूब मिलने लगे, परन्तु भारतीय मजदूरों की अपमानजनक स्थिति को देखकर वे दु:खी रहने लगे। उन्हीं दिनों 1913 में सानफ्रांसिस्को में गदर पार्टी की स्थापना हो चुकी थी। करतार उसमें शामिल हो गए और गदर अखबार का काम काज देखने लगे। वे गदर पार्टी के सबसे कम आयु के नेता थे, परन्तु काम उनका सबसे अधिक था।



करतारसिंह सराबा

प्रथम महायुद्ध शुरू हो जाने पर गदर पार्टी के सदस्यों ने सोचा कि हमारा शत्रु इस समय आफत में है। अत: उसे दबोचने का यह अच्छा मौका है। अत: हजारों की संख्या में गदर पार्टी के लोग भारत आने लगे। हमारे चरित्रनायक सराबा भी दल बल सहित भारत चल पड़े। उनका नारा था— 'चलो चल्लिए देश नूँ युद्ध करन एहो आखिरी वचन से फरमान हो गए।'

भारत आते ही अन्य क्रांतिकारी नेता भाई परमानन्द व रासबिहारी बोस से मिल कर भारतीय सैनिक टुकड़ियों को क्रांति में भाग लेने के लिए तैयार करने

लगे। 21 फरवरी, 1915 को देशव्यापी सशस्त्र क्रांति होनी थी, परन्तु भेद खुल जाने के कारण सारा काम गुड-गोबर हो गया। पकड़ा-धकड़ी शुरू हुई। करतार सिंह भी पकड़े गए। अपने सात साथियों के साथ उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई। सजा सुनकर वे मुस्कराए और जज को धन्यवाद दिया। अन्त में 27 नवम्बर, 1915 ई. को वे हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ गए। उनके अनन्य मित्र महान् क्रांतिकारी भाई परमानन्द ने उनको रुँधे कण्ठ से विदाई गीत के साथ फाँसी के लिए रवाना किया।

फक्र है भारत को, ऐ करतार। तू जाता है आज।
'जगत' व पिंगले को भी तू साथ ले जाता है आज।
हम तुम्हारे मिशन को पूरा करेंगे साथियो।
कसम हर हिन्दी तुम्हारे खून की खाता है आज।

इस तरह से 19 वर्ष की किशोरावस्था में ही करतार ने देश की आजादी के लिए अपने आपको बलि पर चढ़ा दिया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इस युवा बलिदानी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। उनके निम्नलिखित बोल देशभक्तों को सदा क्रांति पथ पर आरुढ़ करते रहेंगे—

उन्हीं के सिर बंधे सेहरा, उन्हीं पर ताज कुरबा हो।
जिन्होंने फाड़कर कपड़े, रखा सिर पर कफन पहले।।

पं. परमानन्द :

झाँसी के युवा क्रांतिकारी पं. परमानन्द स्वातंत्र्य समर के उद्भट योद्धा थे। समस्त जीवन उन्होंने देश की आजादी के लिए खपा दिया। जीवन के पूरे इकतीस वर्ष उन्होंने यातनामय जेलों में काटे। देश के लिए शायद ही किसी क्रांतिकारी ने इतनी लंबी सजा पाई हो। मृत्यु को वे खेल समझते थे। 21 जनवरी, 1915 ई. की संभावित क्रांति के योजनाकारों में से वे प्रमुख थे और गदर पार्टी के तो वे मुख्य कर्णधार थे।



पं. परमानन्द

क्रांति को सफल बनाने के लिए उन्होंने अनेक देशों की खाक छानी। जर्मनी से शस्त्रों से लदे जहाज को बटेविया भेजने का प्रबन्ध आपने ही किया था। तोशामारु जहाज से जब आप अमेरिका से लौट रहे थे तो आप कुछ समय सिंगापुर रुके। वहाँ भारतीय प्रवासियों ने आपका अच्छा स्वागत किया। उस समय

सिंगापुर में तीन हजार भारतीय सैनिक थे। स्वामीजी के उद्‌बोधन से भारतीय सैनिक अंग्रेजों पर टूट पड़े। छः सौ गोरे मारे गए। सिंगापुर के ब्रिटिश सेना के दुर्ग पर तिरंगा झण्डा लहराया गया। सात दिन तक सिंगापुर पर भारतीय क्रांति वीरों का अधिकार रहा।

इतना सब कुछ हो जाने पर भी अपने बुद्धि कौशल से पैनांग द्वीप होते हुए आप भारत पहुँचे। पंजाब में उस समय के महान् क्रांतिकारी नेता रासबिहारी बोस के सम्पर्क में आये। उनके साथ मिलकर 21फरवरी, 1915 को देशव्यापी सशस्त्र क्रांति की योजना बनाई, परन्तु भेद खुल जाने से अंग्रेज सचेत हो गए और क्रांतिकारियों की धर पकड़ शुरू कर दी। हमारे चरित्र नायक पं. परमानन्द भी पकड़े गए। अपने 62 क्रांतिकारियों के साथ लाहौर केन्द्रीय कारागार में ठूँस दिए गए। स्पेशल अदालत बैठी। परमानन्द को आजन्म कारावास की सजा दी गई और अण्डमान निकोबार भेजे गए। वहाँ तेईस वर्ष जेल में रहे। जेल में भी किसी से दबे नहीं। मातृभूमि के लिए अपमानजनक गंदे शब्द कहने वाले अंग्रेज जेल अधीक्षकों की समय-समय पर जमकर पिटाई की। वीर सावरकर ने अपनी "मांझी जन्म टेप" नामक पुस्तक में पं. परमानन्द की शूरवीरता पर पूरे चार पृष्ठ लिखे हैं। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"झाँसी के उस वीर युवक ने सिंह की तरह झपटकर अण्डमान जेल के गोरे जेलर मि. बोरी को दे पटका और जमकर उसकी पिटाई की। बदले में उन्हें तीस बैंतें खानी पड़ीं। बैंतों के निशान आजीवन रहे। इतना ही नहीं एक अन्य अवसर पर जेल उप-अधीक्षक कर्नल मरे की भी अच्छी मरम्मत की।"

अण्डमान से छूटने के बाद भी 8 वर्ष तक वे देश की विभिन्न जेलों में आजादी की अलख जगाते रहे। परमानन्द के चरित्र की मुख्य विशेषता यह थी कि उनका जीवन बड़ा सादा तथा पवित्र था। मान सम्मान से वे कोसों दूर रहते थे। एक बार जब वे जेल से छूटे तो हजारों लोग उनके स्वागत सत्कार के लिए एकत्रित हुए। इस पर परमानन्द ने कहा— देश अभी स्वतंत्र नहीं है। मैं एक घायल पराजित सिपाही हूँ। अतः इस सम्मान के मैं कदापि योग्य नहीं हूँ। परमानन्द जी के इस उत्तर का उल्लेख गाँधीजी ने भी अपनी प्रतिदिन की प्रार्थना सभा में एक दिन किया— "अभी कुछ दिन पहले मेरा एक क्रांतिकारी भाई छूटा है, जिसने आजादी की लड़ाई में सबसे अधिक सजा भुगती, वह है पं. परमानन्द। जब जेल से रिहा हुआ तो उसे मान-पत्र दिया जाने लगा, लेकिन उसने मान-पत्र लेने से मना कर दिया, क्योंकि हम अभी गुलाम हैं। हमारे कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को इसका अनुसरण करना चाहिए।"

इस तरह परमानन्द ने सारा जीवन देश के लिए समर्पित कर दिया। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में उनका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है।

पंडित जगतराम (1891-1955 ई.) :

आप गदर पार्टी के मुख्य नेता थे। जन्म पंजाब के हरियाणा गाँव जिला होशियारपुर में हुआ। पिता दीपूराम जाति से भारद्वाज ब्राह्मण थे और कांग्रेस के सदस्य थे। जगतराम 1911 ई. में अमेरिका चले गए। अमेरिका में लाला हरदयाल के साथ गदर पार्टी के कार्यों में लग गए। आप सान-फ्रांसिस्को में गदर प्रेस के महासचिव तथा गदर पार्टी के प्रचार-प्रसार का कार्य करते रहे।

प्रथम महायुद्ध के शुरू होते ही आप भारत आए, परन्तु कलकत्ता में पकड़ लिए गए, परन्तु कुछ दिनों बाद जेल से निकल भागे और भूमिगत हो गए। दो वर्ष बाद पुनः पेशावर में पकड़े गए। द्वितीय लाहौर षड्यंत्र केस में आपको फँसाया गया और मृत्युदण्ड दिया गया, परन्तु बाद में वायसराय ने मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में बदल दिया। 25 वर्ष जेल में रहने के बाद आप कांग्रेस के कार्यों में भाग लेने लगे। खान अब्दुल गफ्फार खाँ तथा मीराबेन के साथ स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े। देश सेवा में रत इस परम देशभक्त का 1955 ई. में देहावसान हो गया।

विष्णु पिंगले :

इनका पूरा नाम वासुदेव गणेश पिंगले था। पूना जिले के एक छोटे से गाँव में चितपावन ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म हुआ था। गाँव में शिक्षा पूरी कर वे उच्च शिक्षा के लिए पूना आ गए। वहाँ वे प्रोफेसर विजापुरकर द्वारा स्थापित समर्थ कॉलेज में भर्ती हो गए, परन्तु राष्ट्रीय विचारों के कारण सरकार ने इस कॉलेज को ही बन्द कर दिया।

पूना तथा कोल्हापुर प्रवास के समय आप में क्रांतिकारी भावनाएँ घर कर गईं और इनका दृढ़मत हो गया कि सशस्त्र क्रांति के बिना देश स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसी बीच 1911 ई. में आपको उच्च तकनीकी शिक्षा के लिए सान-फ्रांसिस्को जाना पड़ा। वहीं आप गदर पार्टी के लोगों के सम्पर्क में आए। गुलाम देश के कारण भारतीय लोगों का विदेशों में सर्वत्र अपमान होता था। अतः गुलामी के अभिशाप को मिटाने के लिए गदर पार्टी कृत संकल्प थी। इसके लिए वे भारत लौटने लगे और सशस्त्र क्रांति की भूमिका तैयार करने लगे। पिंगले तो पहले से ही क्रांतिकारी तो थे ही, गदर पार्टी में शामिल हो गए और गदर पार्टी के सदस्यों के साथ भारत लौट आए। अमृतसर में रासबिहारी बोस के निकट सहयोगी बन गए।

पिंगले बहुत ही चतुर तथा अपने विचारों को दूसरों के गले उतारने में सिद्धहस्त थे। अतः आपको मेरठ छावनी के सैनिकों को क्रांति के लिए तैयार करने का काम सौंपा गया। आप युवा क्रांतिकारी करतारसिंह सराबा के साथ मेरठ

पहुँचे और मेरठ छावनी के जमादार नादिरखाँ को अपनी और मिला लिया। दोनों ही बनारस गए और वहाँ से तीन सौ बम लाकर ज्योंही मेरठ छावनी में प्रवेश करने लगे कि पिंगले पकड़ लिए गए, क्योंकि नादिरखाँ ऊपर से तो क्रांतिकारियों के साथ था, परन्तु अंदर से अंग्रेजों से मिला हुआ था।

गिरफ्तार करके पिंगले लाहौर लाए गए। लाहौर के केन्द्रीय कारागार में विशेष अदालत के सामने 82 क्रांतिकारियों पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने बल पूर्वक सरकार पलटने का षड्यंत्र रचा है। पिंगले को अपने छः अन्य साथियों के साथ मृत्युदण्ड की सजा सुनाई गई। स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी पिंगले 16 नवम्बर 1915 ई. को हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ कर अपना नाम अमर कर गए। उस समय उनकी शांत धैर्यशील मन:स्थिति से पंजाब के लैफ्टिनेन्ट गवर्नर जनरल डायर भी प्रभावित हुए बिना न रहे। इस तरह से विष्णु पिंगले उन महान् शहीदों की श्रृंखला में अपना नाम जुड़ा गए, जिन्होंने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के सामने अपने शरीर को कुछ नहीं समझा।

डॉक्टर मथुरासिंह (1883-1917 ई.) :

इनका जन्म, 1883 ई. में झेलम जिले के एक छोटे से गाँव में हुआ था। इनके पिता सरदारसिंह मध्यम वर्ग के किसान परिवार से थे। गाँव की शिक्षा पूरी करके आपने चकवाल से मैट्रिक किया और रावलपिण्डी में चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करने लगे। इसके बाद संघाई में आपने दवा की दूकान खोली। कुछ समय में काबुल मेडिकल अफसर के पद पर भी रहे, परन्तु उनका मन तो देश के लिए कुछ करने के लिए व्याकुल हो रहा था। अत: वे कनाडा चले गए।

उन दिनों लाला हरदयाल की गदर पार्टी की अमेरिका में बड़ी धूम मची हुई थी। अत: वे उसमें शामिल हो गए। गुरुदत्तसिंह के 'कामगाटामारु' जहाज से वे भी कनाडा से कलकत्ता पहुँचे, परन्तु वहाँ ब्रिटिश अधिकारियों से सशस्त्र संघर्ष हो गया जो इतिहास में बज बज के झगड़े के नाम से प्रसिद्ध है। डॉक्टर साहब भी बन्दी बना लिए गए और पंजाब लाये गए, परन्तु वे जेल से निकल भागे और काबुल पहुँच गए। काबुल भारत की अस्थाई आजाद सरकार के अध्यक्ष राजा महेन्द्रप्रताप सिंह से उन्होंने भेंट की और उनकी सरकार के दूत बनकर वे रूस गए। जार से भेंट की, परन्तु जार स्वयं ही उस समय गृहयुद्ध की आग की लपटों में था। अत: वह मदद करने की स्थिति में नहीं था। उल्टा उसने इंग्लैण्ड की सरकार के दबाव में आ कर डॉक्टर साहब को गिरफ्तार करवा दिया। 1916 ई. में भारत लाए गए और लाहौर जेल में रखे गए। मनसुख डकेत केस में आपको बम विस्फोट के केस में फँसाया गया और लाहौर षड्यंत्र केस प्रथम में आप पर राजद्रोह का दोष लगाकर मृत्युदण्ड दे दिया गया। 27 मार्च, 1917 ई. को लाहौर

के केन्द्रीय कारागार में आपको फाँसी हुई। इस तरह से डॉ. मथुरासिंह अपना सर्वस्व देश की आजादी के लिए अर्पित कर शहीदों की पंक्ति में अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर गए।

बाबा गुरुदत्तसिंह :

'कामागाटामारू' नामक जापानी जहाज को किराए पर लेकर भारतीय मजदूरों को कनाडा ले जाने वाले ये ही सज्जन थे। इनका जन्म सरहली गाँव में 1860 ई. में हुआ था। अधिक पढ़े लिखे तो नहीं थे, परन्तु पंजाबी के अच्छे वक्ता थे। मकानों की ठेकेदारी का काम करते थे। जैसा कि पहले उल्लेख आ चुका है कि कनाडा में जहाज के यात्रियों को नहीं उतरने दिया। जहाज पुनः भारत की ओर चल पड़ा। रास्ते में स्थान-स्थान पर अंग्रेज अधिकारियों ने जहाज के यात्रियों को बहुत तंग किया। किसी तरह जहाज कलकत्ता पहुँचा तो वहाँ भी ब्रिटिश अधिकारियों से झगड़ा हो गया। अनेक लोग मारे गए और बहुत से पकड़े गए, परन्तु बाबा गुरुदत्त पकड़ में नहीं आये, वे भूमिगत हो गए। 1920 ई. में महात्मा गाँधी की सलाह पर उन्होंने आत्म समर्पण कर दिया। पाँच वर्ष जेल में रहने के बाद 1925 ई. में छूटे। छूटने के बाद भी वे पंजाब में किसानों तथा मजदूरों के हित में सरकार से लोहा लेते रहे। उन्होंने ब्रिटिश अधिकारियों तथा जमींदारों द्वारा ली जाने वाली 'बेगार' (बिना कुछ दिए जबरन काम करवाना) का विरोध किया। रचनात्मक तथा समाज सुधार के कार्यों में सहयोग देते देते वे 1954 ई. में इस संसार से कूच कर गए। लोगों में आत्म-विश्वास भरने तथा स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने की भावना भरने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।


बाबा गुरुदत्तसिंह

भाई बलवन्तसिंह (1882-1917 ई.) :

आपका जन्म 16 सितम्बर, 1882 ई. को जालंधर जिले के खुर्दपुर गाँव में हुआ था। आपके पिता सरदार बुद्धासिंह जाट सिक्ख परिवार से थे। शिक्षा केवल कक्षा 8 तक हुई थी। युवा अवस्था में ही संत कर्मसिंह के प्रभाव से धार्मिक कार्य में विशेष रुचि लेने लगे। कुछ समय बाद सिक्ख रेजीमेन्ट नं. 36 में भर्ती हो गए और लान्स नायक के पद तक पहुँच गए। धार्मिक रुचि के कारण वे सेना में 'पादरी जनरल' के नाम से पुकारे जाते थे, लेकिन सेना की नौकरी छोड़कर धार्मिक कार्यों के लिए कनाडा चले गए। भाई भागसिंह, सुन्दरसिंह तथा अर्जुनसिंह

के सम्पर्क से गदर पार्टी के नेता बन गए और स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े। उन दिनों कनाडा में प्रवासी भारतीय को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। अत: उनकी समस्या को सुलझाने में लग गए। इस कार्य के लिए वे इंग्लैण्ड भी गए, लेकिन कुछ लाभ नहीं हुआ। इन सब बातों से उन्होंने निष्कर्ष निकाल लिया कि भारत की स्वतन्त्रता के बिना हमें कहीं आराम नहीं मिल सकता।

अत: कामागाटामारु जहाज से भारत लौटे और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े। 21 फरवरी, 1915 की संभावित क्रांति को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने कुछ उठाकर न रखा, परन्तु जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भेद खुल जाने से क्रांति न हो सकी। शासन ने अँधाधुँध पकड़ा-धकड़ी की। देशभक्तों पर सत्ता को पलटने के आरोप लगाए गए। भाई बलवन्तसिंह पर कोई स्पष्ट आरोप सिद्ध न हो सके, परन्तु उन पर भी द्वितीय लाहौर षड्यंत्र केस में मुकदमा चलाया गया और मृत्यु दण्ड दिया गया। मार्च, 1917 ई. को हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ कर मातृभूमि की मुक्ति के लिए अपनी बलि दे गए।

यतीन्द्रनाथ मुकर्जी (1879-1916 ई.) :

महर्षि अरविन्द ने एक बार अपने साथियों को यतीन्द्र बाबू का परिचय देते हुए कहा था— "वे अलौकिक व्यक्ति व मानवता की प्रतिमूर्ति थे। सौंदर्य के साथ शक्ति का ऐसा अद्भुत समावेश अन्यत्र कहीं नहीं देखा, जैसा यतीन्द्र में था।"



यतीन्द्रनाथ मुकर्जी

यतीन्द्र बाबू का जन्म दिसम्बर, 1879 ई. को बंगाल के जौसेर गाँव में हुआ था। पिता का नाम उमेशचन्द्र तथा माता का नाम शशि देवी था, जो अच्छी कवयित्री भी थीं। पाँच वर्ष की आयु में ही आपके पिता का देहान्त हो गया। अत: आपका लालन पालन आपकी माता के हाथों आपके ननिहाल में हुआ। शिवाजी महाराज की माता जीजाबाई की तरह शशि देवी ने भी अपने पुत्र में बचपन से ही वीरता की भावना भर दी थी। आपकी माता की हार्दिक इच्छा थी कि यतीन्द्र बड़ा होकर देशभक्ति के क्षेत्र में अपना नाम रोशन करे। वस्तुत: यतीन्द्र ने बड़ा होकर अपनी माँ के स्वप्न को पूरा किया।

ननिहाल कोया में पढ़ाई के साथ-साथ शस्त्र विद्या तथा घुड़सवारी भी सीखी। कोया में ही आपने एक बाघ को मार डाला तभी से वे बाघा यतीन

कहलाने लगे। दुष्टों तथा दुर्जनों के लिए तो वे काल के समान थे, परन्तु निर्धन तथा असहाय लोगों के लिए वस्तुतः वे भगवान के समान थे।

एम.ए. तक शिक्षा प्राप्त करके आपने शोर्ट हैण्ड सीख ली और कलकत्ता में राज्यपाल के दफ्तर में काम करने लगे, परन्तु स्वाभिमानी यतीन्द्र दासता के ढाँचे में कब ढ़लने वाले थे। उन्हें गोरे अफसरों की दम्भ तथा पक्षपातपूर्ण नीति पसन्द नहीं आई और नौकरी छोड़कर ठेकेदारी का काम करने लगे। कमाई भी अच्छी हुई और क्रांतिकारियों से भी परिचय बढ़ा। इस समय बंगाल में अनेक छोटे-छोटे क्रांतिकारी संगठन थे। यतीन्द्र बाबू ने सभी को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया।

यतीन्द्र बाबू ने 21 फरवरी, 1915 की सम्भावित देशव्यापी सशस्त्र क्रांति को सफल बनाने के लिए अनेक क्रांतिकारी युवक तैयार किए तथा सैनिक छावनियों से सम्पर्क किया, परन्तु भेद चल जाने से तथा शस्त्रों के अभाव में क्रान्ति न हो सकी, परन्तु यतीन्द्र बाबू यों हार मानने वाले नहीं थे। गदर पार्टी के सैनिकों के साथ मिलकर उन्होंने संघर्ष का रास्ता अपनाया, जिसे इन्होंने पूर्वी बंगाल, कलकत्ता तथा बालासौर तीन भागों में बाँटा। तीन प्रमुख पुलों को तोड़कर बंगाल को अन्य प्रान्तों से अलग-अलग रखने की योजना बनी। इसमें गोपाल मुकर्जी, यतीन बाबू, नरेन्द्र भट्टाचार्य, भोलानाथ, अतुल घोष ने इस योजना में सक्रिय रूप से भाग लिया, परन्तु शस्त्रादि समय पर न मिलने से योजना सफल नहीं हुई।

यतीन्द्र बाबू अपने पाँच रणबांकुरे साथियों के साथ बालासौर बटेविशिया से आने वाले जर्मन जहांज से शस्त्र लेने चले गए। पुलिस को पता चल जाने से वह भी वहाँ पहुँच गई। पुलिस व क्रांतिकारियों के बीच बालासौर में बालान नदी के तट पर जमकर संघर्ष हुआ। कहाँ तो सैकड़ों की संख्या में पुलिस बल के सदस्य, कहाँ केवल पाँच क्रांतिकारी, परन्तु बड़े साहस से शत्रु का मुकाबला करके उनके साथी चित्रप्रिय वीर गति को प्राप्त हुए। स्वयं यतीन्द्र बाबू बुरी तरह से घायल हो गए। अन्त में साथियों सहित यतीन बाबू बंदी बनाए गए। मुकदमा चला। धीरेन्द्र और मनोरंजन को फाँसी हुई। ज्योतिन को आजन्म कारावास हुआ, परन्तु वे बीच में ही स्वर्ग सिधार गए। यतीन्द्र बाबू की वीर आत्मा भी कटक में अस्पताल में शरीर के पिंजरे को तोड़कर स्वर्ग चली गई।

वास्तव में यतीन्द्र बाबू जैसे महान् देशभक्त विरले ही होते हैं। वे जीवन भर स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते रहे। अन्त में स्वतन्त्रता समर में वीर गति को प्राप्त कर अपना नाम अमर कर गए।

गेंदालाल दीक्षित (1892-1921 ई.) :

यतीन्द्रनाथ की तरह ही उत्तर प्रदेश तथा मध्यप्रदेश में सशस्त्र क्रांति की धूम मचाने वाले गेंदालाल दीक्षित थे। दीक्षित जी का जन्म आगरा जिला तहसील वाह के मई गाँव में हुआ था। आपके पूर्वज गुलाबशंकर दीक्षित 1805 ई. में भरतपुर महाराजा की ओर से अंग्रेजों से लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हो गए थे। इस तरह से वीरता व देशभक्ति आपको विरासत में मिली थी।

दीक्षित जी का 1915 ई. की संभावित सशस्त्र क्रांति की योजना में पूरा हाथ था। इसके लिए उन्होंने पंजाब, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश के क्रांतिकारियों से गहरा सम्पर्क किया। चम्बल घाटी के पंचम डाकू को क्रांति में योग देने के लिए आपने ही तैयार किया था। इनकी सहायता से धन प्राप्ति हेतु अनेक डाके डाले गए, परन्तु स्वतन्त्रता समर के लिए धन एकत्रित करने में गरीबों को तंग नहीं किया जाता था। स्वतन्त्रता समर में रंगरूटों की भर्ती के लिए आपने शिवाजी समितियाँ बनाई थीं। उनके सैनिक संगठन का नाम 'मातृ-वेदी ' था। इस कार्य में मथुरा के विरजानन्द पाठशाला के ब्रह्मचारी लक्ष्मणानंद का भी आपको पूरा सहयोग रहा। उनकी सलाह से ही चंबल के डाकू मन्नू राजा व सरदार पंचमसिंह ने स्वतन्त्रता समर के लिए डाके डालकर धन एकत्रित किया था। दीक्षित जी का रामप्रसाद विस्मिल से भी अच्छा सम्पर्क था। वे उनकी तहसील वाह में शस्त्राभ्यास के लिए रहे थे। राजस्थान के क्रांतिकारी खरवा ठाकुर गोपालसिंह भी दीक्षित जी के चरित्र से अत्यधिक प्रभावित थे। 1915 ई. की सशस्त्र क्रांति की असफलता के बाद आपने सिंगापुर के लिए प्रस्थान किया, परन्तु रास्ते में से ही लौट आए। कुछ दिनों तक आप कोटा में अपने बड़े भाई भागीरथप्रसाद के पास रहे जो उस समय कोटा में नार्मल स्कूल के हैडमास्टर थे। बाद में आप ग्वालियर चले गए वहाँ क्रांतिकारी कार्यों में संलग्न रहे और अपने साथी ब्रह्मचारी लक्ष्मणानन्द के साथ पकड़े गए। कुछ दिनों जेल में रहे, परन्तु प्रमाण के अभाव में आपको सजा न मिली तो आपको मैनीपुरी षड्यंत्र केस में फँसाया गया। यह एक राजनीतिक डकैती का मामला था। इस मुकदमे की पैरवी पुरुषोत्तमदास टंडन ने की थी जिनके परामर्श के लिए देशबन्धु चितरंजन दास भी आए थे। गेंदालाल घायलावस्था में ही जेल से फरार होने में सफल हो गए। आपका स्वास्थ्य काफी खराब हो गया। अन्त में दिल्ली की एक प्याऊ में पानी पिलाने का काम करने लगे और एक मंदिर में रहने लगे। बहुत बीमार होने पर आपके सगे सम्बन्धी वहाँ आए। उनको अस्पताल में भरती कराया गया, परन्तु 21 दिसम्बर सन् 1919 को भरी जवानी में केवल तीस वर्ष की अवस्था में ही देश की आजादी की लड़ाई लड़ते-लड़ते प्राण त्याग दिए।

आपकी वीरता व त्यागपूर्ण जीवन की स्वतन्त्रता समर के इतिहास में अमिट छाप रहेगी। हम श्रद्धा से आपका स्मरण करते रहेंगे।

राजा महेन्द्रप्रताप :

राजा महेन्द्रप्रतापसिंह महान् क्रांतिकारी तथा उच्च कोटि के देशभक्त थे। आपका जन्म 12 दिसम्बर 1886 ई. को अलीगढ़ जिले के मुरलन गाँव में हुआ था। आपके पिता हरनामसिंह अच्छे जागीरदार थे, परन्तु महेन्द्रप्रताप सिंह को हाथरस के राजा ने हरनामसिंह को गोद ले लिया। कुछ समय बाद आपका विवाह जिन्द रियासत की राजकुमारी से हो गया।

अलीगढ़ कॉलेज से इन्टर करके आपने 1907 ई. में पढ़ाई छोड़ दी और रियासत के कार्यों को देखने लगे, परन्तु आपका हृदय इन कार्यों से संतुष्ट नहीं था। उन दिनों देश की आजादी के लिए क्रांतिकारी आतंकवाद का बोलबाला था, परन्तु आपकी मान्यता थी कि देश की आजादी का स्वप्न बिना विदेशी सहायता के पूरा नहीं हो सकता। अत: वे 1914 से लेकर 1945 तक देश की स्वतन्त्रता के लिए विदेशी सहायता जुटाने में लगे रहे। भारतीय नरेशों में वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सारा जीवन देश की आजादी के लिए निर्वासित रूप में बिता दिया।

शुद्ध राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होने के कारण हिन्दू मुस्लिम एकता में आपका पूर्ण विश्वास था। प्रथम महायुद्ध शुरू होते ही आप जर्मनी, तुर्की आदि देशों में गए। वहाँ की सरकारों से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। इसके बाद वे अफगानिस्तान गए। वहाँ निर्वासित 'आजाद भारत सरकार' की स्थापना की जिसके राष्ट्रपति राजा महेन्द्रप्रताप सिंह बने और बरकतुल्लाह प्रधानमंत्री, उबेदुल्लाह विदेश मंत्री के रूप में काम करने लगे, परन्तु विदेशी राष्ट्रों का समर्थन न मिलने के कारण सारी योजनाएँ खटाई में पड़ गईं। सहायता के लिए वे रूस भी गए, परन्तु सफलता नहीं मिली। उत्तर पश्चिमी भारत के राजाओं का संघ बनाने का भी प्रयास किया। फिर जापान गए और वहाँ 'इण्डिया लीग' की स्थापना की। बाद में रासबिहारी बोस व नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने इसका विस्तार किया। दूसरे महायुद्ध के बाद जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया तो क्रांतिकारियों को भारी आघात लगा। राजा साहब भी 1945 ई. में भारत लौट आए। राष्ट्रवादियों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। 1946 ई. में मेरठ कांग्रेस की स्वागत समिति के उपाध्यक्ष बने। आपके सम्मान में कांग्रेस अधिवेशन स्थल को महेन्द्रप्रताप नगर का नाम दिया गया। मुस्लिम लीग की सीधी कार्यवाही के कारण दंगा भड़क जाने के कारण उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में आप धर्मान्धता के तूफान को रोकने चल पड़े। जीवन भर क्रांतिकारी रहने के बाद आप जीवन के अंतिम चरण में गाँधीवादी बन गए। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में कांग्रेस की भूमिका को स्वीकार किया। मथुरा से

संसद सदस्य बनने के बाद 1962 में राजनीति से संन्यास ले लिया और रचनात्मक कार्य में लग गए।

महान् देशभक्त के साथ-साथ वे विश्व बन्धुत्व में विश्वास रखते थे। शिक्षा के क्षेत्र में वे औद्योगिक शिक्षा पर जोर देते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपने वृन्दावन में प्रेम विद्यालय की स्थापना की। राजा साहब एक अच्छे वक्ता व लेखक थे। आर्थिक समाजवाद में विश्वास रखते थे। देश के लिए आपकी सेवाओं को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

बरकतुल्लाह :

आपके प्रारम्भिक जीवन के बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। इतना तो स्पष्ट है कि आप भोपाल के निवासी थे। भोपाल से उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड गए। वहाँ पर प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों के सम्पर्क से आपमें क्रांतिकारी भावना का समावेश हुआ। भारत लौटने पर आपका बंगाल के क्रांतिकारियों से संपर्क हुआ। भारत में क्रांतिकारियों का जीवन सुरक्षित नहीं था। अतः आप जापान चले गए। वहाँ हिन्दुस्तानी भाषा के शिक्षक बन गए। जापान उन दिनों भारतीय क्रांतिकारियों का केन्द्र था। रासबिहारी बोस भी वहाँ चले गए थे। प्रथम महायुद्ध के दौरान आप अमेरिका गए और गदर पार्टी के नेता हरदयाल से सम्पर्क साधा। वहाँ से जर्मनी तथा तुर्की से सहायता प्राप्त करने के लिए इस्तम्बूल (तुर्की) गए। वहीं पर भारत जर्मन मैत्री संघ की स्थापना की। चंपक रमन पिल्लई तथा अन्य क्रांतिकारियों की भाँति आपकी मान्यता थी कि स्वतन्त्रता के लिए जर्मन सहायता आवश्यक है।

जर्मनी से आप अफगानिस्तान गए और वहाँ राजा महेन्द्र प्रताप की अध्यक्षता में प्रवासी भारत सरकार के प्रधान मंत्री बने, परन्तु अफगानिस्तान से सहायता न मिलने के कारण पुनः जर्मनी आ गए। वहाँ भी जर्मनी द्वारा बन्दी बनाए गए भारतीय सैनिकों में विद्रोह की भावना भड़काने लगे। वहीं चंपक रमन पिल्लई द्वारा स्थापित 'इण्डियन नेशनल पार्टी' में काम करने लगे।

युद्ध समाप्ति के बाद भी आपने रूस आदि देशों का भ्रमण किया और भारत में आजादी की अलख जगाते रहे। अन्त में 5 जनवरी, 1928 ई. को ही इस महान् स्वतन्त्रता सेनानी के जीवन का अन्त हो गया। भारत की आजादी के लिए आपकी सेवाएँ सदा स्मरणीय रहेंगी।

उबेदुल्लाह सिंधी (1872-1944 ई.) :

1872 ई. में सिक्ख परिवार में आपका जन्म हुआ, परन्तु बाद में 1887 ई. में स्यालकोट के मुस्लिम संतों के प्रभाव से मुसलमान बन गए। संत उबेदुल्लाह

की पुस्तक 'तुफातुल हिन्द' से प्रभावित होकर आपने अपना नाम ही उबेदुल्लाह सिंधी रख लिया। कुछ दिन सिंध में रहने के बाद आप उत्तर प्रदेश में देवबन्द स्कूल में भर्ती हो गए। देवबन्द उन दिनों क्रांतिकारियों का प्रमुख प्रशिक्षण केन्द्र था। देवबन्द से काबुल चले गए। वहाँ से आपने काबुल के बादशाह की सहायता से उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त पर हमला कर अंग्रेजी राज्य को समाप्त करने की योजना बनाई, परन्तु काबुल के शाह के तटस्थ रहने से काम नहीं बना। काबुल में ही भारत की अस्थायी आजाद हिन्द सरकार के विदेश मंत्री के रूप में तुर्की तथा रूस आ गए। फिर बाद में खिलाफत आन्दोलन के सम्बन्ध में भी 1922 ई. में तुर्की गए। 1922 ई. के बाद स्वतन्त्रता सग्राम में आपका कोइ उल्लेखनीय कार्य उपलब्ध नहीं होता है। आप सन् 1944 ई. में स्वाभाविक मृत्यु को प्राप्त हुए।

सरदार अजीतसिंह :

पंजाब के लुधियाना जिले के खतर कालान गाँव में आपका जन्म हुआ। बाद में आपके पिता अर्जुनसिंह तथा माता जयकौर लायलपुर जिले के बंगा कस्बे में आकर बस गए। आप सिक्ख जाट परिवार से थे और अमर शहीद भगतसिंह के चाचा थे। डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर से बी.ए. किया। 1907 ई. से क्रांतिकारी कार्य में अपना नाम कमाने लगे। उस समय पंजाब सरकार ने भूमि तथा सिंचाई कर में वृद्धि कर दी थी। अत: सरकार के विरुद्ध किसानों ने ज़बरदस्त आंदोलन छेड़ दिया। आन्दोलन के लिए लाजपतराय तथा सरदार अजीतसिंह को उत्तरदायी ठहराकर उन्हें देश से निर्वासित कर माण्डले जेल भेज दिया।

अजीतसिंह युवावस्था से ही तिलक के क्रांतिकारी विचारों से प्रभावित थे। लाला पिण्डीदास, लालचन्द्र फलक तथा सूफी अंबाप्रसाद ने आपके क्रांतिकारी विचारों को संबल प्रदान किया। आपके बड़े भाई किशनसिंह तथा स्वर्णसिंह भी क्रांतिकारी कार्यों में लगे थे। ये लोग ताकत से विदेशी शासन को बदलने के पक्षधर थे। सूफी अंबाप्रसाद के 'पेशवा' पत्र में क्रांतिकारी विचारों का प्रचार होने लगा। हैदर रजा तथा सूफी अम्बाप्रसाद के साथ मिलकर अजीतसिंह 'भारत माता सोसायटी' क्रांतिकारी सभा की स्थापना की।

अजीतसिंह के क्रांतिकारी कार्यों से सरकार बोखला उठी और आपको बन्दी बनाने के लिए जासूसों का जाल बिछा दिया, परन्तु सरकार को अंगूठा दिखाकर वे सूफी अंबाप्रसाद के साथ ईरान पहुँचने में सफल हो गए। वहाँ भी अंग्रेजों का शासन था। अत: ईरानियों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भड़काने लगे। सरकार वहाँ भी उनके पीछे पड़ गई। वहाँ से रोम, जिनेवा, पेरिस होते हुए सान-फ्रांसिस्को पहुँचने में सफल हो गए। वहाँ पर गदर पार्टी से सम्पर्क किया। दूसरे महायुद्ध के दौरान आप पुन: जर्मनी तथा इटली पहुँचे। इटली में सुभाष

बाबू से भेंट हुई, परन्तु जर्मनी तथा इटली के पतन से आप अंग्रेजों द्वारा वहीं बन्दी बना लिए गए। युद्ध की समाप्ति के बाद भारत आने की स्वीकृति मिली, परन्तु यहाँ आते ही 15 अगस्त, 1947 ई. को आपने शरीर छोड़ दिया। मरते समय आपने संतोष प्रकट करते हुए कहा था कि 'ईश्वर के हम कृतज्ञ हैं कि हमारा उद्देश्य सफल हुआ।'

इस तरह से अजीतसिंह ने अपना सारा जीवन देश को अर्पित कर दिया। आपका सारा परिवार देश को स्वतंत्र कराने में संलग्न था। चापेपकर बन्धुओं तथा सावरकर बन्धुओं के परिवार की भाँति आपका परिवार भी स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में सदा गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करता रहेगा।

सूफी अंबाप्रसाद (1858-1915 ई.) :

सूफी अंबाप्रसाद का जन्म 1858 ई. में मुरादाबाद के कायस्थ परिवार में हुआ। जन्म से ही आपका दाहिना हाथ कटा हुआ था। खड़े होने पर लोग जब उनके इस हाथ के बारे में पूछते तो वे हंसकर उत्तर देते "अरे भाई 1857 ई. के गदर में हमने अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी थी। उसमें हाथ कट गया और हम वीर गति को प्राप्त हुए। दूसरा जन्म तो हो गया, परन्तु हाथ कटा ही रह गया।"



सूफी अम्बाप्रसाद

मुरादाबाद से वे उच्च शिक्षा के लिए जालंधर आये। वहाँ सरदार अजीत सिंह, स्वर्णसिंह, लालचन्द फलक, पिण्डी दास जैसे क्रांतिकारी नेताओं से आपका सम्पर्क हुआ। तिलक के विचारों का आप पर पहले से ही प्रभाव था। अत:

क्रांतिकारी कार्यों में सक्रिय हो गए। 'पेशवा' नामक अखबार द्वारा निर्भीकता से ब्रिटिश शासन की धज्जियाँ उड़ाने लगे। पकड़े गए तो राजद्रोह का मुकदमा चला। डेढ़ वर्ष की सजा मिली। 1889 ई. में जेल से छूटते ही पुन: क्रांतिकारी कार्यों में लग गए। फिर पकड़े गए। इस वर्ष आपको छ: वर्ष का कठोर कारावास भोगना पड़ा। जेल में अनेक यातनाएँ दी गई, परन्तु आप कभी विचलित नहीं हुए। 1905 ई. में सूफी जेल से बाहर आए। हैदराबाद के निजाम के आमंत्रण पर हैदराबाद गए, परन्तु क्रांति वीरों का मन राजसी ठाट बाट में कहाँ लग सकता है। अत: आप वहाँ से कुछ दिन बाद पंजाब लौट आए। सरकार ने साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति के अनुसार सूफी जी को 1800 रुपये प्रति माह में जासूसी विभाग में काम करने का भी प्रस्ताव रखा, परन्तु क्रांति वीर चाँदी के टुकड़ों में कब बिकने वाले थे? अत: सूफी जी ने सरकारी प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

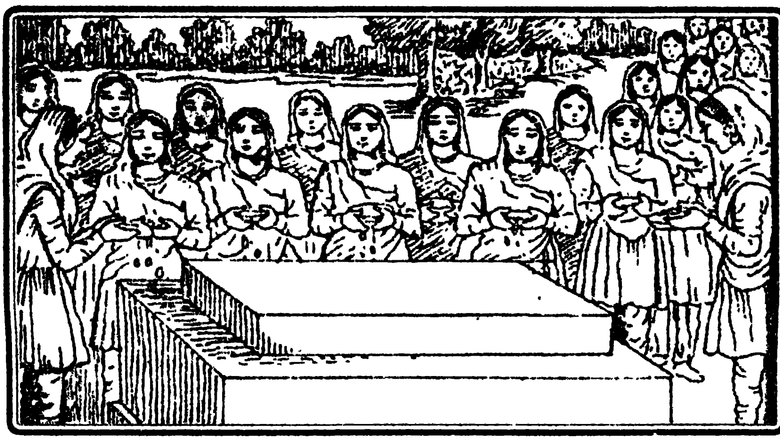
उन्हीं दिनों सरदार अजीतसिंह ने 'भारत माता सोसायटी' की नींव डाली। सूफी जी भी इस सोसायटी में काम करने लगे। अजीतसिंह के साथ मिलकर आपने 'न्यू कोलोनी बिल' का जोरदार विरोध किया, जिससे सारे पंजाब में तहलका मच गया। अजीतसिंह तथा अन्य नेता गिरफ्तार किए गए, परन्तु सूफीजी व 'भारत माता सोसायटी' के मंत्री आनन्द किशोर सरकार की आँखों में धूल झोंककर नेपाल पहुँचने में सफल हो गए। वहाँ राणा जंगबहादुर ने आपका अच्छा स्वागत सत्कार किया। फलस्वरूप राणा जंगबहादुर को भी ब्रिटिश सरकार का कोप भाजन बनना पड़ा। सूफीजी को नेपाल छोड़कर लाहौर आना पड़ा।

उन्हीं दिनों अजीतसिंह जेल से छूट कर बाहर आये। दोनों ने मिलकर 'भारत माता बुक सोसायटी' कायम की। इसके माध्यम से क्रांतिकारी साहित्य प्रकाशित किया जाने लगा। 'बागी मसीहा' पुस्तक को छपते ही सरकार ने जब्त कर लिया। उन दिनों क्रांतिकारी आंदोलन अपने ज्वार पर था। अलीपुर षड्यंत्र केस में अनेक क्रांतिकारी पकड़े गए। खुदीराम बोस फाँसी पर चढ़े। सरकार ने पंजाब में क्रांतिकारियों की धर पकड़ शुरू कर दी ताकि बंगाल की भाँति पंजाब में भी कहीं क्रांति उबल न पड़े। सूफी जी तथा अजीतसिंह को बन्दी बनाने के लिए सरकार हाथ धोकर पीछे पड़ गई, परन्तु वे पकड़ में नहीं आए और ईरान पहुँचने में सफल हो गए।

ईरान पर भी उन दिनों अंग्रेजों का शासन था। अत: सूफी जी तथा अजीतसिंह को वहाँ भी तंग किया जाने लगा, परन्तु क्रांति वीर विपत्तियों का पहाड़ उठाने में सक्षम होते हैं। अत: वहाँ भी ईरानी जनता को ब्रिटिश शासन के खिलाफ भड़काया जाने लगा। सूफी जी ने वहाँ 'आबे हयात' अखबार निकाला जिसमें अंग्रेजी राज के विरुद्ध आग बरसती थी। जब ईरान में स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन छिड़ा

तो सूफी जी इसमें शामिल हो गए। लेख लिखने के साथ-साथ भाषण भी देने लगे, क्योंकि सूफी जी फारसी भाषा के प्रकाण्ड पंडित थे। ईरानी जनता उनका अत्यधिक सम्मान करने लगी। उन्हें 'आका सूफी' के नाम से जाना जाने लगा।

अजीतसिंह तो टर्की चले गए, परन्तु सूफी साहब वहीं बस गए। सरकार ने उनको पकड़ लिया। सैनिक अदालत में मुकदम. चला। उन्हें गोली से उड़ाने की सजा सुनाई गई। दूसरे दिन जब उन्हें जेल की कोठरी से बाहर निकाला गया तो वे समाधिस्थ अवस्था में मृत पाये गए। अंग्रेज अफसर भौंचक्के रह गए। ईरान की जनता ने सूफी जी का बड़ी धूमधाम से जनाजा निकला। असंख्य ईरानी इसमें शामिल हुए। शोक व आँसुओं के बीच उन्हें दफनाया गया। सूफी जी की कब्र आज भी ईरान में मौजूद है। उनके सम्मान में प्रतिवर्ष उर्स मनाया जाता है। श्रद्धा सुमन चढ़ाये जाते हैं।



सूफी अम्बाप्रसाद की कब्र

इस तरह से भारत माँ के सच्चे सपूत ने जीवन भर आजादी के लिए संघर्षरत रहकर एक निर्वासित क्रांतिकारी के रूप में पड़ौसी देश ईरान में अपने शरीर को 1915 ई. में छोड़ दिया। भारत के इतिहास में वे प्रमुख क्रांतिकारी के रूप में सदा स्मरणीय रहेंगे।

शचीन्द्रनाथ सान्याल (1895-1945 ई.)

शचीन्द्र सान्याल का जन्म 1895 ई. में ब्राह्मण परिवार में बनारस में हुआ। आपके पिता हरिनाथ सान्याल राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत थे और महर्षि योगीराज अरविन्द के छोटे भाई वारेन घोष के साथी थे। अतः राष्ट्रीय भावना सान्याल बन्धुओं को विरासत में मिली थी। हरिनाथ के चारों पुत्र क्रांतिपथ के पथिक थे और प्रारंभ से ही ढाका अनुशीलन समिति में काम करने लगे थे।

शचीन्द्र सान्याल ने बनारस में बंगाली टोला स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। जब आप केवल 15 वर्ष के थे तब ही आपने 1908 ई. में 'यंग मेन्स एसोसियेशन' की स्थापना की। क्रांतिकारी योजनाओं के लिए रासबिहारी बोस के सम्पर्क में आए और उनके दाहिने हाथ बन गए। रासबिहारी ने सान्याल को पंजाब में गदर पार्टी के नेताओं से तथा किसानों से सम्पर्क करने भेजा जो सशस्त्र क्रांति की एक महती योजना बना रहे थे।

सान्याल गदर पार्टी के नेताओं का विश्वास अर्जित करने में सफल हुए और गदर पार्टी के प्रमुख नेता विष्णु पिंगले को बनारस ले आए और रासबिहारी से उनका परिचय कराया। पिंगले को रासबिहारी तथा सान्याल ने पूरी तरह से आश्वस्त किया कि हम लोग शस्त्रादि सहित हर प्रकार से सहायता करेंगे। फिर क्या था। 21 फरवरी, 1915 को समस्त उत्तरी भारत में एक साथ क्रांति करने की योजना बनी। उत्तर भारत की सैनिक छावनियों से सम्पर्क हुआ, परन्तु इसी बीच देशद्रोही कृपालसिंह ने सारा भेद खोल दिया। गोरे सैनिक सावधान कर दिए गए। भारतीय सैनिक टुकड़ियाँ तोड़ दी गईं। पंजाब में सभी क्रांतिकारी नेता पकड़ लिए गए, परन्तु शचीन्द्र सान्याल व रासबिहारी भूमिगत हो गए। रासबिहारी तो कुछ समय बाद जापान चले गए, परन्तु 26 जून, 1915 को अपने साथी विभूति के साथ पकड़े गए। 'लिबर्टी' तथा 'स्वाधीन भारत' नामक पर्चे उनके कमरे में मिले। बनारस षड्यंत्र केस में आपको आजीवन कारावास की सजा मिली। आप अण्डमान की सेलुलर जेल में रखे गए। वहाँ भारतीय क्रांतिकारियों को अनेक यातनाएँ दी जाती थीं। 1919 ई. की आम माफी से सेलुलर जेल से छूटे। उन्होंने जेल जीवन पर एक पुस्तक 'बन्दी-जीवन' लिखी। इसमें जेल में स्वाधीनता प्रेमियों की दुर्दशा के साथ-साथ क्रांति दर्शन पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है। आगे चलकर यह पुस्तक क्रांतिकारियों की बाईबल बन गई।

जेल से छूटते ही आप पुनः क्रांति पथ के राही बन गए। मैनपुरी बाकुड़ा तथा काकोरी केस में पुनः आजन्म कारावास की सजा मिली। 1937 ई. में कांग्रेस मंत्री मण्डल बनने पर आप छोड़े गए, परन्तु दूसरा महायुद्ध होते ही पुनः पकड़ लिए गए। देवली कैम्प में नजरबन्द रखे गए। जब आपकी हालत अधिक खराब हुई तो छोड़ दिए गए, परन्तु गोरखपुर के एक घर में नजरबन्द रखे गए। वहीं 1945 ई. में आपका शरीर छूट गया। उस समय देश के सभी क्रांतिकारी व अन्य नेता जेलों में बंद थे। अतः ससम्मान दाह संस्कार न हो सका, न ही कोई शोक सभा आयोजित हुई, परन्तु अपने त्याग व तपस्या से स्वतन्त्रता प्रेमियों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ गए।

शचीन्द्र बाबू के अन्य दो भाई जितेन्द्रनाथ सान्याल तथा भूपेन्द्रनाथ सान्याल भी प्रमुख क्रांतिकारी थे। जितेन्द्र बाबू को भी अनेक जेल यातनाएँ उठानी पड़ीं। आपको द्वितीय लाहौर केस में सजा हुई। इस तरह से सान्याल बन्धुओं का भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। शचीन्द्र बाबू तो भारतीय क्रांतिकारियों की आत्मा ही थे। आपने अपना जीवन देकर स्वतन्त्रता का पथ प्रशस्त किया, जिसके सुखदेव, राजगुरु और भगतसिंह अमर राही बने।



रासबिहारी बोस (1880-1945 ई.) :

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में क्रांतिकारी रासबिहारी बोस का नाम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। स्थानीय क्रांति वीरों तथा गदर पार्टी के सेनानियों के सहयोग से प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम जैसी ही साहस पूर्ण सशस्त्र क्रांति की योजना आपने ही बनाई थी। उत्तरी भारत की सभी सैनिक छावनियों में क्रांतिकारी वीरों की घुसपैठ हो चुकी थी। यदि इस योजना का भेद न खुलता तो भारत निश्चित रूप से 1915 में स्वतंत्र हो जाता। इस स्वतंत्रता सेनानी का जीवन परिचय इस प्रकार है—

रासबिहारी का जन्म 25 मई, 1885 ई. को हुगली जिले के पारलावुगती ग्राम में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा अपने बाबा कालीचरण की देखरेख में हुई। बाद में चन्द्रनगर के डुपलेक्स कॉलेज में भरती हुए, परन्तु वहाँ आपका पढ़ने में मन बिल्कुल नहीं लगा। आप शरीर से बलिष्ठ बनना चाहते थे ताकि सेना में भर्ती हो सकें। दो बार इस ओर प्रयास भी हुआ, परन्तु सफलता नहीं मिली। इसी अवधि में आपके पिता विनोद के शिमला चले जाने पर रासबिहारी भी वहाँ चले गए, और आपकी नियुक्ति राजकीय मुद्रणालय में हो गई। इसके बाद 1906 ई. को देहरादून वन अनुसंधान केन्द्र में लिपिक बनकर चले गए। यहीं से क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आने लगे। 1908 ई. में लाला हरदयाल तथा 1910 ई. में जितेन्द्र मोहन चटर्जी के यूरोप चले जाने पर पंजाब व उत्तर भारत के आप ही प्रमुख क्रांतिकारी बन गए। 1912 ई. में लॉर्ड हार्डिंग्ज पर बमबारी की योजना आपने ही बनाई थी।

1915 ई. की सशस्त्र क्रांति के लिए मेरठ की बारहवीं केवेलरी, लाहौर की तेईसवीं केवेलरी तथा फिरोजपुर की 26 वीं पंजाबी रेजीमेन्ट में क्रांतिकारी बीज बोए वो आपके ही दूत थे। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि समस्त उत्तर

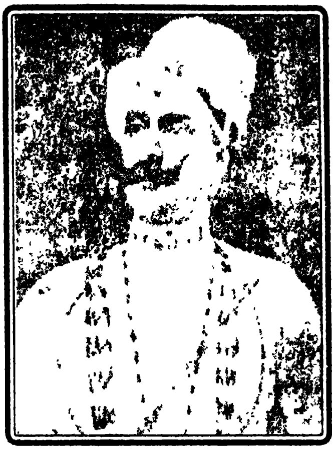
भारत की सैनिक छावनियों ने क्रांति में पूरा आश्वासन दे दिया था, परन्तु भेद खुल जाने से सारा काम गुड गोबर हो गया। पकड़ा-धकड़ी शुरू हुई। रासबिहारी सरकार की आँखों में धूल झोंककर जापान पहुँचने में सफल हो गए। इस कठिन परिस्थिति में चीनी नेता सनयात सेन ने जापान में प्रतिष्ठित व्यक्ति 'टोमाय मितसुरु' से बोस की सहायता करने की अपील की। उसकी सहायता से जापान में बोस के अनेक मित्र बन गए। एक होटल मालिक ने अपनी लड़की 'तोसीखे' से आपकी 1919 ई. में शादी कर दी। इस विवाह से 1923 ई. में बोस को जापान की नागरिकता मिली। अब आप भारतीय स्वतन्त्रता के कार्यों में जुट गए। 1924 ई. में आपने टोक्यो में 'इण्डियन लीग' की स्थापना कर दी। यद्यपि उस समय जापान में भारतीयों की संख्या 500 से अधिक न थी।

कुछ ही वर्षों बाद दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया। जापान इंग्लैण्ड के विरुद्ध दक्षिण-पूर्वी एशिया के ब्रिटिश उपनिवेशों पर अधिकार करने लगा। इस स्थिति से लाभ उठाकर रासबिहारी बोस ने कैप्टन मोहनसिंह तथा प्रीतमसिंह के सहयोग से आजाद हिन्द फौज की स्थापना की जिसकी संख्या 50 हजार तक पहुँच गई। इस बीच भारत माता के महान् सपूत सुभाषचन्द्र बोस जर्मनी पहुँच गए थे। रासबिहारी ने जापान सरकार से उन्हें जापान लाने का आग्रह किया। 16 मई, 1943 ई. को सुभाष बाबू का टोकियो में आगमन हुआ। 2 जुलाई, 1943 ई. को वे रासबिहारी बोस के साथ सिंगापुर पहुँचे। चार जुलाई, 1943 की एक विशाल जन सभा में रासबिहारी ने सुभाष का परिचय देते हुए कहा "यह मेरे जीवन के सबसे सुखद क्षणों में से एक है। मैं आपके सामने मातृभूमि की महान् विभूति से देश के स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व करने का आग्रह कर रहा हूँ। मैं आज से दक्षिण-पूर्वी एशिया की भारत स्वतन्त्रता समिति के पद को त्याग रहा हूँ। आज से सुभाष बोस मेरे स्थान पर कार्य करेंगे। मुझे विश्वास है कि इनके नेतृत्व में आप में अद्‌भुत जीवन का संचार होगा और स्वतन्त्रता प्राप्ति में सफलता मिलेगी।"[1]

अपनी तीस वर्ष की कमाई को इस तरह से बिना किसी विवाद व झगड़े के सुभाष को सौंप देना रासबिहारी के चरित्र की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। आपको तो देश की आजादी प्यारी थी, भले ही वह किसी अन्य के नेतृत्व से ही क्यों न मिले? आपकी साधना सफल हुई। 21 अक्टूबर सन् 1943 ई. को स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार बनी, जिसको जापान, जर्मनी, इटली, थाईलैण्ड, बर्मा, मंचूरिया तथा नानकिंग की सरकारों ने मान्यता प्रदान की। जनवरी, 1944 ई. में आजाद हिन्द सरकार का तिरंगा झण्डा अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह पर लहराने लगा, जिसमें बीचों-बीच चर्खे के स्थान पर शेर का चिह्न था। इन सबके पीछे रासबिहारी की जीवन भर की साधना थी। इसी महान् स्वतन्त्रता सेनानी ने

अठावन वर्ष की आयु में ही 21 जनवरी, 1945 ई. को जापान के आत्मसमर्पण के पहले ही अपनी आँखें मूँद ली और अपनी कीर्ति पताका सदा-सदा के लिए फहरा गए। स्वतंत्र भारत के लोगों के हृदय मंदिर में आप हमेशा समाए रहेंगे।

खरवा ठाकुर गोपालसिंह (1872 - 1939 ई.) :



ठाकुर गोपालसिंह खरवा

सन 1915 ई. को संभावित सशस्त्र क्रांति में ठाकुर गोपालसिंह अपने तीन हजार साथियों के साथ शामिल होने के लिए तैयार बैठे थे। गोपालसिंह का जन्म 1872 ई. में अजमेर मेरवाड़ा के खरवा ग्राम में हुआ था। प्रारंभ से ही आप देशप्रेम व क्रांतिकारी भावना से ओत-प्रोत थे। महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी व तिलक उनके प्रेरणा स्रोत थे। अंग्रेजों से उनका पहला विवाद 1897 ई. में उस समय खड़ा हुआ जब पड़ोस के मसूदा राज्य को, वहाँ के ठाकुर के निःसंतान मरने पर हड़पना चाहते थे। गोपालसिंह ने ब्रिटिश शासन को स्पष्ट चेतावनी दे दी थी कि यदि ऐसा हुआ तो इसके गंभीर परिणाम होंगे। आप 1898 ई. में बनारस के धर्म महासभा मंडल के सदस्य बने। इस सम्बन्ध में वे वायसराय से मिलने कलकत्ता भी गए, क्योंकि उस समय राजधानी कलकत्ता ही थी। वहाँ से प्रसिद्ध क्रांतिकारी महर्षि अरविन्द घोष से भी मिले। पंडित बालकृष्ण के माध्यम से लाहौर तथा दिल्ली के क्रांतिकारियों से गहरा सम्पर्क था। रासबिहारी बोस से भी आपके निकट के सम्बन्ध थे। आप क्रांतिकारियों को जन, धन तथा शस्त्रों की सहायता करते रहते थे।

आप पर क्रांतिकारी कार्यों में सक्रिय होने का आरोप लगाकर जून, 1915 ई. को आपको टाटगढ़-(अजमेर) में नजरबन्द रखा, परन्तु 15 दिन बाद ही आप वहाँ से फरार हो गए। बड़ी कठिनाई से पुनः पकड़े गए और पुनः 6 वर्ष तक टाटगढ़ में नजरबन्द रहे। उसी वर्ष आप पर बनारस षड्यंत्र केस में मुकदमा चलाने का सरकार ने प्रयास किया, परन्तु ठोस प्रमाण न मिलने के कारण मुकदमा न चल सका। बाद में आपको टाटगढ़ से उत्तर प्रदेश की जेल में रखा गया। 1900 ई. में जेल से छूटे। छूटते ही आपने दिल्ली-अजमेर मेरवाड़ा की अध्यक्षता की। वहाँ आपने राजपूतों के शौर्य व स्वाधीन परंपरा की याद दिलाई।

देश के अधिकांश रजवाड़े मौजमस्ती में विदेशी शासन की गुलामी में ही

सुख का अनुभव कर रहे थे। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उठ खड़ा होना वास्तव में आपके देश प्रेम का ज्वलंत उदाहरण है। स्वाधीन चेत्ता-देशभक्त ठाकुर गोपालसिंह का स्वर्गवास 1939 ई. में आंत के केंसर से हो गया।

भीकाजी कामा (1861-1936 ई.) :

मैडम भीकाजी कामा प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों में अपना विशेष स्थान रखती हैं। आप जीवन भर विदेशों में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की सफलता के लिए हर संभव प्रयास करती रहीं। रानी लक्ष्मीबाई की तरह आपके हृदय में देश प्रेम उमड़ पड़ा था। स्वतन्त्रता संग्राम की इस वीरांगना का जन्म 24 सितम्बर, 1861 ई. को बम्बई में हुआ था। आपके पिता सोराब जी पाटिल व माता जीजाबाई सम्पन्न पारसी परिवार से थे। आपने अपनी संतान के लिए अपार धन राशि छोड़ी। भीकाजी की शिक्षा प्रसिद्ध अलेकजेन्ड्रिया कॉलेज में हुई। 1885 ई. में आपका विवाह रुस्तम जी कामा के साथ सम्पन्न हुआ। रुस्तम जी शांति प्रिय व गंभीर स्वभाव के थे, जबकि मैडम कामा उग्र क्रांतिकारी स्वभाव की थी। इसी कारण आपका वैवाहिक जीवन अधिक सफल नहीं रहा।



भीकाजी कामा अपने तिरंगे झण्डे के साथ

अध्ययन काल में ही आप पर बंगाल के बाल गंगाधर तिलक के जीवन का प्रभाव पड़ने लग गया। 1902 ई. में जब इंग्लैण्ड चिकित्सा के लिए गई थी तब भारतीय राजनीति के पितामह दादा भाई नौरोजी से आपकी भेंट हुई और आपने उनसे राजनैतिक कार्य में सफलता के लिए आशीर्वाद लिया। इसके बाद आपने अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों का भ्रमण किया। फ्रांस में विश्व के समाजवादी देशों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन में आपने भारत राष्ट्र का ध्वज तिरंगा फहराया। वह पहली भारतीय क्रांतिकारी थी, जिसने सबसे पहले तिरंगे झण्डे की कल्पना की व उसे उत्साह से फहराया। उस समय के झण्डे में लाल, सफेद व हरा रंग था। झण्डे पर सात तीर कमल का चिन्ह था। बीच के सफेद भाग पर वन्दे मातरम् गीत लिखा हुआ था। फ्रांस से वह लंदन आई। वहाँ गरम दल के नेता विपिनचन्द्र पाल से आपकी भेंट हुई। इसी बीच इण्डिया हाउस स्थित श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, सरदारसिंह राणा, मुकुन्द देसाई व वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय

से भेंट हुई। ये सभी क्रांतिकारी ताकत से देश को आजाद कराने के पक्षधर थे। अत: मैडम कामा भी सशस्त्र क्रांति की पक्षधर बन गई। लंदन प्रवास के समय में व्हाइट पार्क में जोशीले भाषण देने लगी। सरकार उन्हें बंदी बनाने की सोचने लगी। इसी बीच वह पेरिस आ गई। 1890 ई. से ही पेरिस उनके क्रांतिकारी कार्यों का प्रमुख केन्द्र बन गया। सरदारसिंह राणा, लाला हरदयाल, बाद में श्यामजी कृष्ण वर्मा भी उनसे वहाँ आ मिले। पेरिस से भारतीय क्रांतिकारियों को सहायता पहुँचाने लगी और उन्हें क्रांति के लिए ललकारती रही। क्रांतिकारी साहित्य पाण्डिचेरी होकर पहुँचाने लगी। कितने ही क्रांतिकारी वीरों को पेरिस में बम बनाना सिखाया जाता था।

प्रथम महायुद्ध के पूर्व आप बहुत ही उत्साह से पेरिस में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को गति देने के लिए हर संभव प्रयत्न करती रहीं, परन्तु महायुद्ध के दौरान फ्रांस इंग्लैण्ड का मित्र था। अत: इंग्लैण्ड के दबाव से फ्रांस की सरकार ने कामा जी को बन्दी बनाकर तीन वर्ष तक पेरिस की जेल में रखा जो युद्ध समाप्ति के बाद ही छोड़ी गई। इसी तरह से मैडम भीकाजी कामा ने अपने जीवन के तीस वर्ष स्वतन्त्रता संग्राम को सफल बनाने में लगा दिए। वह भारत को सर्वप्रभुता संपन्न गणतंत्र देखना चाहती थी, जिसकी राष्ट्र भाषा हिन्दी व देवनागरी होगी। इस इच्छा को पूरी करने के लिए आपने अपना सारा जीवन ही दाव पर लगा दिया।

1935 ई. में 74 वर्ष की अवस्था में यह वीरांगना भारत लौटीं और एक त्रर्ष बाद ही बम्बई के पारसी अस्पताल में स्वतन्त्रता की महान् पुजारिन भीकाजी कामा का स्वर्गवास हो गया। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आपके अमूल्य योगदान को सर्वदा ससम्मान स्मरण किया जाता रहेगा।

सरदारसिंह राणा :

आप सौराष्ट्र में लंबदी गाँव के निवासी थे। आप प्रारम्भ से ही क्रांतिकारी थे। मैडम कामा के साथ आप पेरिस क्रांतिकारी केन्द्र पर काम करते रहते थे। यूरोप के देशों तथा अमेरिका में भारतीय स्वतन्त्रता के पक्ष को उजागर करने में आपने अद्भुत योगदान दिया। पाण्डिचेरी के माध्यम से क्रांतिकारी साहित्य एवं बम बनाने की सामग्री पहुँचाने का आपका कार्य बहुत ही सराहनीय रहा। प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों में आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सुश्री पेरिन नौरोजी :

आपका जन्म 1890 ई. में कच्छ राज्य में हुआ था। आप भारतीय राजनीति के पितामह दादा भाई नौरोजी की पौत्री थी। आपकी शिक्षा दीक्षा भी उनके संरक्षण में लन्दन में ही हुई। इंग्लैण्ड से फ्रेंच भाषा के अध्ययन के लिए 1907 ई. में आप पेरिस चली गईं। वहाँ आप मैडम भीकाजी कामा के सम्पर्क में आईं।

कामाजी के निर्देशन में क्रांतिकारी कार्यों में जुट गईं। इससे पहले आप इण्डिया हाउस में वीर सावरकर के पास रह चुकी थी। सावरकर की गिरफ्तारी पर आपने 'वन्देमातरम्' के नारे के साथ भाव-भीनी विदाई दी। पेरिस आने पर वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय, लाला हरदयाल तथा सरदारसिंह राणा जैसे क्रांतिकारी लोगों के साथ काम करने लगी। फ्रेंच भाषा का अच्छा ज्ञान होने के कारण आप भारतीय क्रांतिकारियों व फ्रांसीसी समाजवादी नेताओं में विचारों के आदान प्रदान के लिए एक सेतु का काम करती थीं।

उधर भारत में सशस्त्र क्रांति की तैयारियाँ हो रही थीं। अत: पेरिन व उसकी बहिन गोसी को मैडम कामा ने भारत भेजा ताकि वे भारतीय राजाओं विशेषकर राजस्थान के राजाओं से सम्पर्क साधकर उन्हें क्रांति में सहयोग देने के लिए तैयार करने का काम कर सकें, क्योंकि राजस्थान के स्वातंत्र्य प्रेम के कारण उनको राजाओं से सहायता की आशा थी। भारत आकर पेरिन बीकानेर की राजकुमारियों की संरक्षिका (गार्जियन) बन गई। भारत सरकार के राजनैतिक विभाग ने इस पर गहरी आपत्ति प्रकट की, क्योंकि उस समय राजस्थान में भाई बाल मुकुन्द, अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारहठ व उनका परिवार खरवा, ठाकुर गोपालसिंह काफी सक्रिय थे। अत: पेरिन को बीकानेर छोड़ना पड़ा, परन्तु 21 फरवरी, 1915 की संभावित क्रांति के लिए साधन जुटाने के लिए बराबर काम करती रहीं।

परन्तु जैसा कि हमने ऊपर देखा कि भेद खुल जाने के कारण क्रांति न हो सकी। यदि यह क्रांति अपनी योजनानुसार संपादित हो जाती तो आज भारत का इतिहास कुछ और ही होता। इसे 1857 ई. की क्रांति की अपेक्षा जन समर्थन अधिक मिलता, क्योंकि सिक्ख भाइयों का इसमें महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा था। इटली तथा जर्मनी के एकीकरण की क्रांति की भाँति यदि इसे भी स्थानीय शासकों का सहयोग मिलता तो क्रांति की स्थिति कुछ और ही होती। इतना सब कुछ होने पर भी भारत के बाहर व भीतर विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए जो कार्य उस समय के क्रांतिकारियों ने किया, वे हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास मे स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं। यह क्या कम बात है कि देश के होनहार, मेधावी तथा सम्पन्न लोगों ने हँसते-हँसते अपने देश की आजादी के लिए सब कुछ न्यौछावर कर दिया। उन्होंने स्वतन्त्रता के पौधे को अपने रक्त से सींचा जिसके मधुर फल आज हम सभी चख रहे हैं। मैजिनी के अनुसार स्वतन्त्रता का पौधा उसकी बलिवेदी पर चढ़ने वाले वीरों के रक्त से पनपता है। इन स्वातंत्र्य वीरों के देशभक्ति पूर्ण कार्य से राष्ट्र कभी उऋण नहीं हो सकता। स्वतंत्र भारत में वे सदा आदर एवं श्रद्धा से स्मरण किए जाते रहेंगे।

□□

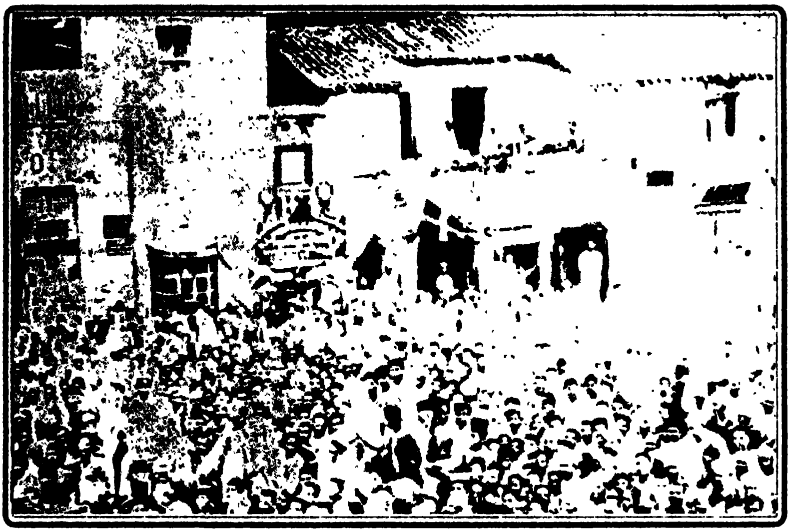
इकाई 9

होमरुल आन्दोलन तथा सत्याग्रह संग्राम

कांग्रेस में दो भिन्न प्रकार की विचारधारा काम कर रही थी- एक ओर 'नरम दल' के लोग थे जो सरकार से अनुनय विनय कर सुधारों की माँग करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे, तो दूसरी ओर गरम दल के लोग सरकार से निडर होकर अधिकारों की माँग करते थे। उनका विश्वास था कि जो चीज हमारी है, उसे पुन: लेने का हमें पूरा अधिकार है। इसमें डरने तथा झेंपने की क्या बात है? अत: इस विचार भिन्नता के कारण दोनों दलों में बराबर टकराव होता रहता था। 1907 ई. के सूरत कांग्रेस अधिवेशन में इस टकराव ने विकराल रूप धारण कर लिया। अत: गरम दल वाले कांग्रेस से अलग हो गए। 1907 ई. से 1916 ई. तक कांग्रेस नरम दल के हाथों एक निष्क्रिय संस्था बनी रही। इस राजनीतिक शून्यता के कारण ही बंगाल तथा महाराष्ट्र में आतंकवादी राजनीति का जन्म हुआ।

गरम दल के नेता निडर होकर सरकार की आलोचना करते थे तथा क्रांतिकारी युवकों की शौर्य गाथाओं को अपना नैतिक समर्थन देते रहते थे। इसी कारण गरम दल के नेता बाल गंगाधर तिलक को छ: वर्ष का कठोर कारावास देकर माण्डले जेल भेज दिया गया था। सन् 1914 में जेल से छूटकर आए तो देखा कि देश की राजनीतिक स्थिति बड़ी दयनीय है। प्रथम महायुद्ध शुरू हो चुका था। नरम दल के लोग सरकार से कठोर भाषा में बात करने में सक्षम नहीं थे। गरम दल में भी पहले जैसी ताकत नहीं रही थी। अरविन्द घोष राजनीति से संन्यास ले चुके थे, विपिनचन्द्र पाल व लाजपतराय भी अपने विचारों में नरम पड़ गए थे। ऐसी स्थिति में भारतीय राजनीति को गरिमा प्रदान करने वाले लोकमान्य तिलक अकेले पड़ गए थे, परन्तु वे हिम्मत हारने वाले नहीं थे। अत: जेल से छूटते ही राष्ट्रीय भावना को जगाने लगे। इसके लिए उपयुक्त मंच की आवश्यकता तो थी ही, क्योंकि कांग्रेस का मंच गरम दल वालों के लिए बन्द था। अत: अप्रेल, 1916 ई. को लोकमान्य ने पूना में 'होमरुल लीग' की स्थापना की और 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'

का नारा बुलन्द किया। इस नारे से देशवासियों में नवजीवन का संचार हुआ और स्थान-स्थान पर होमरुल लीग की शाखाएँ खुलीं। इसमें किसान, मजदूर व मध्यम श्रेणी के लोग शामिल होने लगे।



पूना में होमरुल लीग का जुलूस

इसी प्रकार का एक संगठन 1 सितम्बर, 1916 को श्रीमती एनीबेसेन्ट तथा एस. सुब्रह्मण्यम् अय्यर द्वारा स्थापित किया गया। इसका उद्देश्य भी भारतवासियों के लिए स्वशासन की माँग करना था। यद्यपि इस 'होमरुल लीग' की स्थापना मद्रास में हुई थी, तथापि शीघ्र ही उत्तर प्रदेश में लोकप्रिय हो गई। पं. मोतीलाल नेहरू इलाहाबाद होमरुल शाखा के अध्यक्ष बने और पं. जवाहरलाल नेहरू सचिव। होम रूल आन्दोलन ने देश को पुन: जाग्रत कर दिया। सरकार इस आंदोलन के पीछे पड़ गई और आदेश प्रसारित करके इसमें छात्रों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया, परन्तु सरकारी दमन से इसकी ख्याति बढ़ती गई। स्थिति कहीं विकराल रूप धारण न कर ले इसलिए। सरकार ने मद्रास के गवर्नर पेट लैण्ड को श्रीमती एनीबेसेन्ट, वी.पी.वाड़िया एवं रुण्डले की नजरबन्दी के आदेश दे दिए और श्रीमती एनीबेसेन्ट के पत्र 'कामवीले' तथा 'न्यू इण्डिया' को जब्त कर लिया। सरकार के इस कदम का व्यापक विरोध हुआ। जगह-जगह सरकार के दमन की निन्दा की गई और श्रीमती एनीबेसेन्ट की रिहाई की माँग की गई।

आन्दोलन का योगदान :

वास्तव में इस आन्दोलन ने देश में राष्ट्रीयता का नया दौर शुरू कर दिया। पं. मोतीलाल नेहरू जैसे नरम पंथियों में भी गर्मी आए बिना न रही। उन्होंने स्पष्ट

शब्दों में कहा— "जो सत्ता हमारी उपेक्षा करती है और हमारे साथ घृणा का व्यवहार करती है, उसके सामने दबना और उससे अपील करना बेहद शर्मनाक है। मोडरेटों (नरम दल) की कार्य पद्धति किसी काम की नहीं है।"

आन्दोलन की लोकप्रियता को देखकर नरम दल के नेता भी घबराने लगे कि कहीं कांग्रेस का अस्तित्व खतरे में न पड़ जाए। अत: गोखले के प्रयास से राष्ट्रवादी शक्तियों में पुन: एकता के प्रयास शुरू हुए। लंबी बातचीत के बाद 'होमरुल' आंदोलन की स्वशासन की माँग को कांग्रेस ने भी स्वीकार कर लिया। गरम दल के नेताओं पर लगे प्रतिबंधों को हटा दिया गया। इस तरह से राष्ट्रवादी शक्तियों को एक करने में इस आंदोलन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। यह एकता 1916 ई. के लखनऊ समझौते में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। होमरुल के तिरंगे झण्डे को कांग्रेस ने भी अपना लिया। मुस्लिम लीग ने स्वशासन की माँग करना शुरू कर दिया और वह कांग्रेस के साथ मिलकर चलने को तैयार हो गई। लखनऊ समझौता हुआ जिसमें राष्ट्रीय शक्तियों की एकता उभर कर सामने आई। इसका वर्णन हम अगली पंक्तियों में पढ़ेंगे। इससे पहले उन अंग्रेज सज्जनों के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करना आवश्यक समझते हैं जिन्होंने हृदय से हमारे राष्ट्रीय आंदोलन में सहयोग दिया।

श्रीमती एनीबेसेन्ट (1847-1935 ई.) :



श्रीमती एनीबेसेन्ट

आपका जन्म 21 अक्टूबर, 1847 ई. को लन्दन में हुआ था। आपके पिता पेज वुड के स्वर्गवास के बाद एनी के लालन-पालन का भार उसकी माता 'एमिल मोरिस' पर पड़ा जो शुद्ध रूप से आयरिस रक्त से थी। 1866 ई. में 'एनी' का विवाह बेसेन्ट नामक युवक से हो गया, परन्तु विचार भिन्नता के कारण दोनों का सम्बन्ध विच्छेद हो गया। अब एनी अपनी माता के पास ही रहने लगी और एक होटल में परिचारिका के रूप में काम करने लगी। 'रिफार्मर' नामक पत्रिका के प्रभाव से वह समाज सेवा की ओर अग्रसर हुई। वह फेबियन सोसायटी की सदस्या बन गई।

1889 ई. में वह 'थियासोफिकल सोसायटी' की सदस्या बनी और 1907 ई. में 'ओलक्ट' के निधन के बाद इसकी अध्यक्षा बन गई। भारत में पहली बार वह 16 नवम्बर, 1893 ई. में तूतीकोरन बंदरगाह पर उतरी और 1894 ई. में मद्रास पहुँची। वहाँ से वह बनारस चली गई और 1898 ई. में सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की आधारशिला रखी। भारतीय सभ्यता व संस्कृति के यशोगान के लिए अनेक सभाएँ आयोजित कीं। वे इलाहाबाद भी आती जाती रहती थी। वहाँ नेहरू परिवार से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। 1907 ई. में वह पुनः मद्रास आ गई और वहीं उन्होंने 'कामवीले' नामक साप्ताहिक पत्र एवं 'न्यू इण्डिया' नामक दैनिक पत्र निकाला जिनमें भारतीयों के लिए स्वशासन की माँग करने लगी।

इतना ही नहीं भारतीयों के औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग के लिए एक सितम्बर, 1916 ई. को आपने मद्रास में 'होमरुल लीग' की स्थापना की। मद्रास सरकार द्वारा बन्दी बनाई गई। इसका सर्वत्र विरोध हुआ। अन्त में सरकार ने इनको रिहा कर दिया। फिर कांग्रेस में काम करने लगी। 1917 ई. में कलकत्ता में कांग्रेस के तैंतीसवें अधिवेशन के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। भारतीय चरित्र की यह विशेषता है कि जो थोड़ा बहुत भी भारत के लिए काम करता है, उसका सम्मान किए बिना भारत के लोग नहीं रहते। वास्तव में भारत के स्वशासन व इसके राष्ट्रीय जागरण में श्रीमती एनीबेसेन्ट का अद्वितीय योगदान रहा, परन्तु दुःख है कि इस परम्परा को एनीबेसेन्ट आगे नहीं निभा सकीं और कांग्रेस से अलग होकर कांग्रेस की जुझारू राजनीति का विरोध करने लगी, परन्तु उनके भारत प्रेम को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

अरुण्डले (1878-1945 ई.) :

जार्ज सिडनी अरुण्डले उन इने गिने भारत भक्तों में से हैं जिन्होंने सारा जीवन भारत की सेवा में खपा दिया। आपका जन्म 1878 ई. को इंग्लैण्ड में हुआ। ऑक्सफोर्ड से आप अंग्रेजी तथा इतिहास में एम.ए. करके आए और भारत में 'बनारस सेन्ट्रल कॉलेज' में अंग्रेजी पढ़ाने लगे। कुछ समय बाद आप इस कॉलेज के प्रिंसिपल बन गए। इसी बीच आप होमरुल आन्दोलन के माध्यम से जन संघर्ष को समर्थन देने लगे। 1917 ई. को मद्रास सरकार की निषेधाज्ञा भंग करने पर आप बन्दी बनाए गए और उटकमण्ड जेल में रखे गए। जेल से छूटने के बाद कांग्रेस के कार्यों में हाथ बँटाने लगे और 1917 के कांग्रेस अधिवेशन में शामिल हुए। स्वदेशी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय शिक्षा को आपका पूरा समर्थन था। वह कहा करते थे कि प्रत्येक भारतीय नेता को ब्रिटिश-शासन से यह माँग करनी चाहिए कि 'हमारे बच्चे हमको वापिस दो' भारत के बच्चों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे उनमें देश के लिए मर मिटने की भावना पैदा हो। इस तरह से पूरे चालीस वर्ष तक भारत की

सेवा करने के बाद 12 अगस्त, 1945 ई. को आप स्वर्ग सिधारे। आपकी भारत सेवा को कृतज्ञता के साथ हमेशा याद किया जाता रहेगा।

सी. एफ. एन्डूज (1870-1940 ई.) :

भारत भक्तों में सी.एफ. एन्डूज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत तथा लंदन में पिछड़े लोगों के उद्धार का काम जितना आपने किया उतना शायद ही किसी अंग्रेज ने किया होगा। आपका जन्म 12 फरवरी, 1870 ई. को न्यूकैसल में हुआ। आप 20 मार्च 1904 को भारत आए और दिल्ली के सेंट स्टिफन कॉलेज में काम करने लगे। आपकी राय से एस. के रुद्रा को कॉलेज का पहला भारतीय प्रिंसिपल बनाया गया। उन्हीं के द्वारा आपका भारतीय नेताओं से सम्पर्क हुआ। गोखले, लाला लाजपतराय व तेजबहादुर सप्रू से आपका प्रारंभिक परिचय हुआ। 1912 ई. में लंदन में रवीन्द्रनाथ टैगोर से भेंट हुई और उनको अपना गुरु मानने लगे। वे भारत की कला व संस्कृति से बहुत प्रभावित थे और ब्रिटिश शासन को इस बात के लिए कोसते रहते थे कि उसने भारत का शोषण कर रखा है।

भारतीयों की सामाजिक सुरक्षा के लिए गोखले जी के कहने पर 1914 में आप डरबन गए। वहीं गाँधीजी से आपकी भेंट हुई। वहाँ से लौटने पर गुरुदेव के शांतिनिकेतन में काम करने लगे। इसके साथ ही वे भारत को मिस्र जैसी आजादी देने की माँग करते रहे। गरीब तथा पद दलित लोगों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए आप हमेशा प्रयास करते रहे। इसीलिए महात्मा गाँधी उनको 'दीनबन्धु' कहते थे। जलियाँवाले बाग हत्याकाण्ड के बाद पंजाब गए और पीड़ितों की सहायता में जुट गए। इस हत्याकाण्ड के लिए आपने डायर को दोषी ठहराया और ब्रिटिश शासन की घोर निन्दा की।

जीवन भर आप महात्मा गाँधी और ब्रिटिश शासन के बीच सेतु का काम करते रहे। गाँधीजी के साथ इसी गोलमेज सभा में लन्दन गए और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों से उनकी मुलाकात करवाई। संक्षेप में आप भारत के सच्चे सेवक थे। इस महान् भारत हितैषी का 5 अप्रेल, 1940 ई. को कलकत्ता के अस्पताल में देहान्त हो गया। भारतवासी आपके सेवाभाव का सम्मान सदा करते रहेंगे।

भारत में मुस्लिम राजनीति :

यह हम पहले पढ़ चुके हैं कि सर सैयद अहमद खाँ ने सबसे पहले मुसलमानों में नई शिक्षा का प्रसार किया। इसके लिए उन्होंने अलीगढ़ कॉलेज की स्थापना की। यह भी हम देख चुके हैं कि पहले आपके विचार काफी उदार थे, परन्तु कालान्तर में आपके विचारों में काफी परिवर्तन आ गया और वे मुसलमानों को राष्ट्रीय धारा में बहने से रोकने लगे। जबकि प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में हिन्दू

और मुसलमान कंधे से कंधा मिला कर ब्रिटिश शासन से लोहा ले चुके थे। आगे भी भारत की मान मर्यादा की रक्षा के लिए दोनों ही जाति के लोग अपना सर्वस्व न्यौछावर करते रहे, परन्तु दोनों में मन-मुटाव हमारी राष्ट्रीयता के लिए गंभीर खतरे के रूप में प्रकट होने लगा। इस मनमुटाव में कुछ अन्य कारण भी थे, परन्तु मुख्य कारण अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का अपनाना ही था। अंग्रेजों ने अच्छी तरह से देख लिया कि यदि हिन्दू व मुसलमान एक होकर आजादी की लड़ाई लड़ते रहे तो जल्दी ही हमें भारत से अपने बोरिये बिस्तर बाँधने पड़ेंगे। अत: मुसलमानों के मन में अनेक प्रकार के भय पैदा किए गए और उनकी कोमल भावनाओं को उभारा जाने लगा।

मुसलमानों को समझाया जाने लगा कि स्वतंत्र भारत में तुम्हारे हित सुरक्षित नहीं हैं। हिन्दुओं का बहुमत होने से उनका ही वर्चस्व रहेगा। अत: मुसलमानों का हित भारत में ब्रिटिश शासन के बने रहने में ही है। इस प्रकार के घृणित विचारों को जन्म देने वाले भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड मिन्टो थे। उन्होंने ही सबसे पहले 1909 ई. में 'मिन्टो मार्ले सुधार के रूप में साम्प्रदायिक निर्वाचन का सूत्रपात किया। उन्हीं के इशारे पर एक अक्टूबर, 1906 ई. को ढाका नवाब तथा आगा खाँ के नेतृत्व में मुसलमानों का एक प्रतिनिधि मण्डल शिमला में मिन्टो से मिला। वायसराय ने ही इनको पृथकृता का पाठ पढ़ाया।

अंग्रेजों की भाषा में बोलने वाले मुसलमान भाइयों को अलगाववादी नीति से हटाने के लिए काफी प्रयास किए गए। बंग-भंग विरोधी आंदोलन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मुसलमान भाइयों को राखी बाँधकर उन्हें बहिष्कार आन्दोलन में शरीक होने के लिए तैयार किया। भारत मंत्री लॉर्ड मार्ले ने भी पृथक् निर्वाचन मण्डल का विरोध किया और स्थान सुरक्षित रखने का सुझाव दिया, परन्तु वायसराय पृथक् निर्वाचन मण्डल पर अड़े रहे। पृथक् मनोवृत्ति को दृढ़ करने वाले गृह विभाग के एक प्रतिक्रियावादी परन्तु कुशल अधिकारी 'हरबर्ट रिजले' ने हवा दी और उसने मार्ले के सुझाव का विरोध करने आगा खाँ व अमीर अली को लन्दन भेजा।

कांग्रेस के 1886 के अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी ने स्पष्ट कर दिया था कि 'कांग्रेस केवल राष्ट्रीय प्रश्न ही उठायेगी, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में हाथ नहीं डालेगी।' लोकमान्य तिलक ने भी स्पष्ट कर दिया था कि स्वराज्य का मतलब ब्रिटिश सरकार के आर्थिक एवं राजनैतिक शोषण से मुक्ति पाना है। तिलक महोदय ने कहा कि "यदि हम मिलकर न रहे तो अंग्रेज बंदर बाँट नीति से हमें चूसते रहेंगे।"

राष्ट्रीय भावना का उदय :

ब्रिटिश शासन के काफी जोर लगाने पर भी प्रारम्भ में साम्प्रदायिक भावना अधिक जोर न पकड़ सकी। इसका मुख्य कारण नई वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाली

शिक्षा से मुसलमानों में एक तबका ऐसा भी तैयार हुआ जो यह मानने लगा था कि विदेशी शासन को समाप्त किए बिना भारत की आर्थिक समृद्धि नहीं हो सकती। ऐसे विचारकों में बदरुद्दीन तैय्यब जी, आर. एम. सयानी, ए. भीम जी., बेरिस्टर अब्दुल रसूल, हसरत मोहानी स्वदेशी आंदोलन में भाग लेकर अपनी राष्ट्रीयता का परिचय दे चुके थे। आगे चलकर मुहम्मद अली जिन्ना भी कांग्रेस के युवा नेता सिद्ध हुए। अहरार आंदोलन के प्रमुख व्यक्ति हकीम अजमल खाँ, मौलाना आजाद आदि थे। अलीगढ़ स्कूल की साम्प्रदायिक भावना का जवाब देने के लिए देवबन्द स्कूल तथा आगे चलकर 'जामिया-मिल्लिया इस्लामिया' ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिन्होंने मुसलमानों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध ला खड़ा करने में बड़ी मदद की। बल्कान युद्ध में इंग्लैण्ड तुर्की के खिलाफ ईसाई राष्ट्रों की मदद कर रहा था। अत: तुर्की के प्रति अन्याय को भारत के मुसलमानों ने सारी मुसलमान जाति के विरुद्ध अन्याय समझा। इसी भावना ने 'खिलाफत आन्दोलन' को जन्म दिया।

प्रथम महायुद्ध व भारत :

प्रथम महायुद्ध पुराने साम्राज्यवादी देशों तथा नवोदित साम्राज्यवाद की अभिलाषा रखने वाले यूरोपीय देशों की अपने-अपने स्वार्थों की लड़ाई थी। जर्मनी भी अपने औद्योगिक माल की खपत के लिए औपनिवेशिक बाजार चाहता था। इधर इंग्लैण्ड व फ्रांस अपने एकाधिकार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। जर्मनी को अपनी समस्या के लिए युद्ध का सहारा लेना पड़ा। तुर्की भी अपने हितों की रक्षा के लिए जर्मनी के साथ हो गया।

इधर इंग्लैण्ड ने अच्छी तरह देख लिया कि यदि युद्ध में भारत की सहायता न मिली तो विजय असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। अत: भारत की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अनेक आश्वासन देना शुरू कर दिया। अनेक सब्ज बाग दिखाए गए। भारत के तत्कालीन उप-सचिव चार्ल्स रॉबर्ट ने लोक सभा में कहा कि 'युद्ध के बाद भारत की न्यायोचित माँगों की पूर्ति की जाएगी।' अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने भी अपने सुप्रसिद्ध चौदह बिन्दुओं का ऐलान किया जिनके अनुसार युद्ध की समाप्ति पर सभी जातियों को स्वभाग्य निर्णय के अधिकार दिए जाएँगे। भारत के नेता तिलक व महात्मा गाँधी भी साम्राज्यवादियों के झांसे में आ गए और इस आशा से इंग्लैण्ड की खुलकर मदद की कि युद्ध के बाद औपनिवेशिक स्वराज्य तो अवश्य मिल जाएगा। अत: गाँधीजी ने इंग्लैण्ड की सैनिक भर्ती में पूरी मदद की। भारत के आर्थिक साधनों का युद्ध में खूब प्रयोग हुआ।

भारत में ब्रिटिश शासन की अनेक कुटिल नीतियों में विश्वासघात उनका मुख्य बिन्दु था। अपने स्वार्थ के लिए ब्रिटिश शासन खुशामद करने में पीछे नहीं रहा। ज्योंही अपना मतलब पूरा हुआ आँख दिखाने को तैयार हो गया। इस बार

भी ऐसा ही हुआ। जब मित्र राष्ट्र 1915 ई. में विजय की ओर उन्मुख हुए तो देने के स्थान पर 'भारत सुरक्षा एक्ट' पास किया। इस कानून से राष्ट्रीय शक्तियों का दमन किया जाने लगा। अनेक देशभक्त क्रांतिकारियों को फाँसी दी गई व जेलों में ठूँस दिया गया। देने के लिए 1919 ई. में मॉण्टेग्यु चैम्स फोर्ड सुधार पास किया गया जो स्वशासन से काफी दूर था। देने की बात छोड़िए रोलेट एक्ट जैसे दमनकारी कानून बनाकर भारतीयों के रहे-सहे अधिकार भी छीन लिए गए। यहाँ हमें यह समझ लेना चाहिए कि बार-बार धोखा खाने पर भी हम कुछ भी सबक न सीख सके। हम इस बात को भूल गए कि 'हाथी के दाँत खाने के और होते हैं और दिखाने के और।'

इससे अधिक वेदना की बात यह थी कि देश की आजादी के लिए मर मिटने वाले भाइयों की योजना में राष्ट्रवादी शक्तियों ने कुछ भी मदद नहीं की। क्रांतिकारी भाई अंग्रेजों की चालों को अच्छी तरह जानते थे कि 'लातों के खाने वाले बातों से नहीं मानेंगे।' अतः उन्होंने शत्रु की मुसीबत का फायदा उठाने के लिए सशस्त्र क्रांति की योजना बनाई, परन्तु भेद खुल जाने से वह कार्यान्वित न हो सकी।

ब्रिटिश शासन की इस धोखा-धड़ी से इतना लाभ तो अवश्य हुआ कि राष्ट्रवादी शक्तियों की आँखें खुल गई। होमरुल आंदोलन के अन्तर्गत राष्ट्रीयता का प्रसार होने लगा। राष्ट्रीय शक्तियाँ जो बिखरी हुई थी एकता की ओर अग्रसर हुईं। गरमदल तथा नरम दल दोनों एक होकर स्वशासन के बारे में सोचने लगे।

कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन (1916 ई.)

1907 ई. से 1915 ई. तक कांग्रेस पर नरम दल का प्रभाव था। नरम दल वालों की नीति आवश्यकता से अधिक भीरू थी। इस कमजोरी को दूर करने के लिए गरम दल वालों को पुनः कांग्रेस में लाना आवश्यक समझा गया। गोखले के प्रयत्न से भारत में राष्ट्रवाद के प्रणेता बाल गंगाधर तिलक कांग्रेस में ससम्मान वापिस ले लिए गए। स्वशासन की माँग को कांग्रेस के कार्यक्रम में शामिल कर लिया गया।

लखनऊ समझौता :

मुस्लिम लीग भी यह अच्छी तरह समझने लगी थी कि ब्रिटिश शासन 'बंदर बाँट नीति' पर चल रहा है जिससे न कांग्रेस कुछ कर पा रही है और न मुस्लिम लीग ही। इस प्रकार की विचारधारा को जन्म देने वाले युवा नव शिक्षित मुसलमान थे, जो मुस्लिम लीग के पुराने ढर्रे को कतई पसन्द नहीं करते थे और जुझारू राष्ट्रवाद के पक्षधर थे। इन दिनों लीग में राष्ट्रीय विचार वाले नवयुवकों

का ही बोलबाला था। अतः लीग एवं कांग्रेस ने सीटों के बँटवारे के सिद्धान्त पर समझौता कर लिया जो इतिहास में लखनऊ समझौते के नाम से प्रसिद्ध है। कांग्रेस तथा लीग को एक मंच पर लाने का श्रेय लोकमान्य तिलक को है। दोनों संगठनों ने अपने अधिवेशन में एक जैसे प्रस्ताव पास किए। पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों पर आधारित राजनीतिक सुधारों की संयुक्त योजना रखी गई कि 'ब्रिटिश सरकार जल्दी ही औपनिवेशिक स्वराज्य की घोषणा करे।'

वास्तव में लखनऊ समझौता एकता के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। पृथक् निर्वाचन मण्डल की नीति को मान लेने से आगे की साम्प्रदायिक राजनीति के लिए आधारशिला रख दी गई। इससे आगे चलकर राष्ट्रीय एकता में बाधा ही पहुँची, परन्तु ब्रिटिश शासन की कुचालों का जवाब देने के लिए एकता का प्रयास भी जरूरी था इससे विदेशी शासन को आघात तो पहुँचा ही। कांग्रेस एवं लीग का एक स्वर में बोलना कोई कम बात नहीं थी।

भारतीय शक्तियों की एकता को देखकर ब्रिटिश शासन को 1919 ई. के सुधारों की घोषणा करनी पड़ी। इसके अनुसार प्रान्तों में दोहरे शासन की स्थापना हुई। वित्त एवं कानून व्यवस्था को आरक्षित विषय कहा गया जो गवर्नर के सीधे अधिकार में रखे गए। शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि को हस्तान्तरित विषयों में रखा गया, जो विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों को सौंप दिए गए। यद्यपि केन्द्रीय विधान मण्डल में निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई, परन्तु वायसराय तथा उसकी मंत्रि परिषद पर विधान मण्डल का कुछ भी नियंत्रण नहीं था। केन्द्रीय मंत्री मण्डल चुने हुए मंत्रियों के प्रति उत्तरदायी नहीं था वरन् ब्रिटिश ताज के प्रति उत्तरदायी था।

अन्त में 1919 ई. के मॉण्टेग्यु चैम्सफोर्ड सुधारों पर विचार करने के लिए बम्बई में हसन इमाम महोदय की अध्यक्षता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। इसमें सुधारों को 'अंसतोषजनक तथा निराशाजनक' बताया गया और प्रभावकारी उत्तरदायी शासन की माँग दोहराई गई, परन्तु सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में कुछ लोग सुधारों के पक्षधर बन गए। अतः ये लोग कांग्रेस से अलग हो गए और उन्होंने इण्डियन लिबरल फैडरेशन की स्थापना कर ली। कहा जाता है कि कांग्रेस की इस फूट में भी अंग्रेजों का ही हाथ था, परन्तु अब भारतीय राजनीति बहुत आगे कदम रख चुकी थी। प्रार्थना व प्रशंसा के दिन अब लद गए थे। अतः इस प्रकार के विचारों का कोई महत्त्व नहीं रह गया। लिबरल दल का कुछ भी प्रभाव नहीं था। स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष की नीति आवश्यक समझी गई। यह संघर्ष भी विश्व इतिहास में निराला ही था जिसे महात्मा गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में अच्छी तरह अजमा लिया था।

संघर्ष का नूतन उपाय सत्याग्रह :

अपने अधिकारों की रक्षा के लिए तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए हर प्रकार के साधन काम में लाए जा चुके थे। शांतिपूर्ण आंदोलन से लेकर सशस्त्र क्रांति के कदम भी उठाए जा चुके थे, परन्तु दैत्याकार ब्रिटिश शासन को हम रास्ते पर न ला सके। इसी समय भारतीय राजनीति में ऐसे महापुरुष ने प्रवेश किया जिसने न केवल भारत को वरन् समस्त विश्व की पददलित जाति को उसकी मुक्ति का नया रास्ता बताया। वे महापुरुष महात्मा गाँधी थे जिन्होंने सारी परिस्थितियों का मूल्याँकन कर आत्मबल पर आधारित अहिंसात्मक सत्याग्रह की योजना देश के सामने रखी। संसार के इतिहास की यह अनोखी घटना थी कि बिना शस्त्र के, शस्त्रों से सुसज्जित साम्राज्य से लोहा लिया गया। अत: गाँधीजी ने स्वतन्त्रता संग्राम को नया मोड़ दिया जिसमें सभी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सहयोग दे सकते थे। स्वराज्य की लड़ाई को कुछ इने गिने नेताओं तथा क्रांतिकारी नेताओं के हाथ से निकाल कर इसे जन क्रांति में बदल दिया। सच्चे अर्थ में उनके नेतृत्व में ऐसी जन क्रांति हुई कि ब्रिटिश शासन को अपने बोरिए बिस्तर बाँधने ही पड़े। नये ढंग की आजादी की इस लड़ाई का वर्णन करने के पहले हमें इसके प्रणेता महात्मा गाँधी के बारे में जान लेना आवश्यक है।

महात्मा गाँधी व उनका जीवन दर्शन (1869-1948) :

मोहनदास करमचन्द गाँधी का जन्म दो अक्टूबर, 1869 ई. को गुजरात के पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ था। ब्रिटेन में कानून की परीक्षा (बैरेस्टरी) पास करके वे वकालत करने के लिए दक्षिण अफ्रीका चले गए। वहाँ पर न्याय की उदात्त भावना से प्रेरित हो दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के प्रति हो रहे अन्याय के विरुद्ध उनका मन विद्रोह कर बैठा।

दक्षिण अफ्रीका गए भारतीय मजदूरों तथा उनके बाद जाने वाले भारतीय व्यापारियों को मतदान का अधिकार नहीं था। उन्हें पंजीकरण कर तथा व्यक्तिगत कर देना पड़ता था। अफ्रीका तथा एशिया के काले लोगों को सभी को नौ बजे घर से निकलने का अधिकार नहीं था और न ही वे सार्वजिनक फुटपाथों का प्रयोग कर सकते थे। गोरे लोगों की सड़क पर वे आ जा नहीं सकते थे।

सन 1907 ई. में वहाँ एक ऐसा कानून बना जिसके अनुसार दक्षिण अफ्रीका में प्रवेश लगभग बन्द हो गया था। इस 'ट्रान्सवाल प्रवासी रजिस्ट्रेशन' कानून के अनुसार भारतीयों को पुलिस में अपने नाम की रजिस्ट्री करानी पड़ती थी और उन्हें अँगूठे का निशान भी लगाना पड़ता था। अत: भारतवासियों के आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचाने वाले कानून का विरोध करने का महात्मा गाँधी ने निश्चय कर लिया।

दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह :



महात्मा गाँधी

शांतिपूर्ण अहिंसात्मक सत्याग्रह के द्वारा इस कानून का विरोध करने के लिए तीन हजार भारतीयों ने एक विशाल सभा में शपथ ग्रहण की कि 'हम कागज पर अँगूठे की छाप नहीं लगायेंगे और न ही पंजीकरण कर देंगे।' इसके लिए जो भी दण्ड सरकार देगी हम उसे बिना किसी प्रतिरोध के सहर्ष स्वीकार करेंगे।' सरकार ने दमन चक्र शुरू किया। गाँधीजी सहित अनेक लोगों को बन्दी बना लिया। जेलें भर गईं। अन्त में दक्षिण अफ्रीका के गवर्नर जनरल स्मट्स को सत्याग्रही लोगों से समझौता करना पड़ा। इस समझौते के अनुसार रजिस्ट्रेशन कानून रद्द हो जाएगा और भारतवासी स्वेच्छा से अपना पंजीकरण करा लेंगे, परन्तु आगे चलकर सरकार ने इस समझौते का पालन नहीं किया और आश्वासन के बावजूद भी रजिस्ट्रेशन कानून रद्द नहीं किया गया। फिर क्या था, जनता ने पुनः शांतिपूर्ण आन्दोलन शुरू कर दिया।

16 सितम्बर, सन् 1908 को जोन्हसबर्ग में एक बड़ी होली का आयोजन किया गया जिसमें जनरल स्मट्स के साथ किए गए समझौते के अनुसार स्वेच्छा से कराई गई रजिस्ट्रियों के दो हजार प्रमाण-पत्र जलाए गए। सरकार ने भी इस धुँआधार आंदोलन को दबाने में कोई कसर उठाकर नहीं रखी। अनेक लोग बन्दी बनाए गए और जेलों में उन्हें भारी यातनाएँ दी गईं। इसी बीच दक्षिण अफ्रीका की हाई कोर्ट ने ऐसा फैसला दिया जिससे प्रवासी भारतीयों के वैवाहिक सम्बन्ध नाजायज हो गए, क्योंकि वैवाहिक सम्बन्ध दक्षिण अफ्रीका के कानून के अनुसार नहीं थे। भारतीय पद्धति से किए गए विवाह को मान्यता नहीं दी गई। इससे भारतीय महिलाओं के अन्तःकरण को भारी चोट पहुँची। अब महिलाएँ भी सत्याग्रह संग्राम में कूद पड़ीं। 'फोनिक्स पार्क' में महिलाएँ कानून तोड़कर सत्याग्रह में शामिल होने लगीं। उन्हें बन्दी बनाकर कठोर यातनाएँ दी गईं।

सरकारी दमन से सत्याग्रही थोड़े भी विचलित नहीं हुए। दो हजार सैंतीस मनुष्य, एक सौ सत्ताईस महिलाएँ व सत्तावन बच्चे देखते-देखते जेलों में चले गए। सत्याग्रह के संचालक गाँधीजी व पोलक भी बन्दी बना लिए गए। इस गिरफ्तारी के विरोध में खानों में काम करने वाले मजदूरों ने भी हड़ताल करना शुरू कर दिया। जेलों में सत्याग्रहियों पर भीषण अत्याचार किए गए, परन्तु शांतिपूर्ण ढंग से सभी को सहन किया जाता रहा। इस तरह से सत्याग्रही भाई इस कठोर अग्नि परीक्षा में कुन्दन के समान तप कर खरे निकले। सरकार भी इनके आत्म त्याग से प्रभावित हुए बिना न रही। अत: सरकार ने भी भारतीयों की समस्या पर विचार करने के लिए एक आयोग बिठाना स्वीकार कर लिया।

महान् विजय :

महात्मा गाँधी, पोलक तथा सभी सत्याग्रही छोड़ दिए गए। सरकार ने तीन पौण्ड वाला प्रवेश कर हटा दिया। हिन्दू तथा मुसलमानों के अपने-अपने रीति रिवाजों से हुए विवाह को कानूनी मान्यता दे दी गई। अधिवास के प्रमाण पत्र (डोमेसाइल सर्टिफिकेट) को ही नागरिकता का अंतिम प्रमाण-पत्र मान लिया गया।

इस तरह से दक्षिण अफ्रीका में अन्याय के विरुद्ध लड़ने का एक अनूठा सत्याग्रह शस्त्र का आविष्कार हुआ जिसके अनुसार आत्मबल के द्वारा शस्त्र बल पर विजय पाना संभव हो गया। यह संसार के इतिहास में अनूठा उदाहरण था। इसी अमोध सत्याग्रह उपाय को भारत की दासता से मुक्ति के लिए व्यापक स्तर पर काम में लाया गया।

सत्याग्रह का अर्थ :

सत्याग्रह का अर्थ सत्य के लिए आग्रह करना है। दूसरे शब्दों में सत्य पक्ष के लिए डटे रहना तथा अपने सिद्धान्तों से विचलित न होना ही सत्याग्रह है। कष्ट सहन करके अधिकार प्राप्त करने की कला ही सत्याग्रह है। इसमें शस्त्र बल के स्थान पर आत्मबल का प्रयोग होता है। इसको अधिक स्पष्ट करने के लिए गाँधीजी ने कहा—'डेनियल पर्शियन कानून की अवहेलना की, क्योंकि वे कानून उसकी अंतरात्मा के विरुद्ध थे। इस अवज्ञा के लिए उसने कष्ट सहन किये।' अत: 'डेनियल' सच्चा सत्याग्रही था। सुकरात ने ग्रीक लोगों को सत्य का उपदेश देने में मुँह नहीं मोड़ा। चाहे इसके लिए उन्हें जहर ही क्यों न पीना पड़ा हो ? सत्य के लिए हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करना एक शुद्ध सत्याग्रह है। प्रहलाद ने अपने पिता की आज्ञा की अवहेलना की, क्योंकि वह उसे अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध समझता था। उसने बिना चूँ चा किए उन सब कष्टों को सहन किया जिन्हें उसके पिता ने दिए थे। मीराँबाई ने सत्य के लिए अपने पति से विरोध मोल लिया। अत: मीराँबाई एक आदर्श सत्याग्रही थी। विशेष उल्लेखनीय बात यह है

कि इन सत्याग्रहियों ने अपने को कष्ट देने वालों के प्रति किसी प्रकार की बुरी भावना न रखी।'

यहाँ पर यह बात भी उल्लेखनीय है कि गाँधीजी की अहिंसा में भीरूपन तथा कायरता का कोई स्थान नहीं था। उन्होंने 'यंग इण्डिया' पत्र में स्पष्ट किया "अहिंसा कमजोर तथा कायर लोगों का हथियार नहीं है। केवल शक्तिशाली बहादुर लोग ही अहिंसा का पालन कर सकते हैं। अहिंसा उसी प्रकार मानव जाति का नियम है जिस प्रकार हिंसा पशु जाति का। मगर जहाँ कायरता एवं हिंसा के बीच चुनाव करना है, वहाँ मैं चाहूँगा कि अपने अपमान को असहाय नजरों से देखने के स्थान पर भारत अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए हथियारों का सहारा ले।'

महात्मा गाँधी की विशेषता यह थी कि सत्य एवं अहिंसा जो केवल व्यक्ति तक सीमित थी उसका समाज में व्यापक प्रयोग कर दिखाया। उनके सत्य व अहिंसा के सिद्धान्त लेखों, भाषणों तक ही सीमित नहीं थे, वरन् दैनिक जीवन के व्यवहार के लिए थे। सच तो यह है कि सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों को उन्होंने व्यापक सामाजिक रूप प्रदान किया।

भारत की स्वतन्त्रता के लिए इनका प्रयोग कर संसार को आश्चर्य चकित कर दिया। स्वतन्त्रता संग्राम को व्यापक जन आंदोलन बनाने में सत्य व अहिंसा के सिद्धान्तों ने बड़ा काम किया। किसान तथा मजदूरों ने इस सत्याग्रह संग्राम के माध्यम से अपने कष्टों से मुक्ति प्राप्त की।

यह हम देख चके हैं कि दक्षिणी अफ्रीका में प्रवासी भारतीय हितों की रक्षा के लिए महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह का सफल प्रयोग कर दिखाया था। अब इस अमोघ शस्त्र का उपयोग भारत की आजादी के लिए करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से 44 वर्ष की अवस्था में 1915 ई. को वे भारत पधारे। आते ही साबरमती (अहमदाबाद) में अपना आश्रम खोला जिसमें सत्याग्रह पद्धति की शिक्षा देने के लिए कुछ कार्यकर्त्ता भर्ती किए गए। इसके पहले उन्होंने भारत की समस्याओं तथा राजनीतिक स्थिति का मूल्याँकन करना उचित समझा। इसी उद्देश्य से वे 1916 ई. के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में शामिल हुए। कुछ माह में ही उन्होंने अनुभव कर लिया कि हमारा आंदोलन कुछ विशेष जलसों, सभाओं तथा, कुंछ राजनीतिक प्रस्ताव तक ही सीमित है। इसमें अपेक्षित जन समर्थन का सर्वथा अभाव है। अत: आजादी के महत्त्व को उन्होंने जनता तक पहुँचाना उचित समझा। इसके लिए अहिंसात्मक सत्याग्रह ही उचित साधन था। किसान तथा मजदूरों को अपने शोषण से मुक्ति पाने के लिए सत्याग्रह की सीख दी जाने लगी। भारत में इसका सर्वप्रथम प्रयोग बिहार के चम्पारन जिले में किया गया।

चम्पारन सत्याग्रह :

चम्पारन जिला बिहार का उत्तरी-पश्चिमी भाग है। लगभग सौ वर्ष से वहाँ के नील बागानों के गोरे मालिक काफी लाभ कमा रहे थे तथा किसानों का बुरी तरह से शोषण कर रहे थे। किसानों को अपनी जमीन के 3/20 भाग पर नील की खेती करनी पड़ती थी और उपज को गोरों की मनमानी निश्चित दर पर बेचनी पड़ती थी। यदि किसान नील नहीं बोते तो किसानों को क्षतिपूर्ति की रकम देनी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त गोरे जमींदारों ने अनेक प्रकार के अनुचित कर भी लगा रखे थे। गोरे अफसरों का पर्वतीय स्थलों पर हवा खोरी का सारा खर्च किसानों को उठाना पड़ता था, जिसे 'पहाड़ी कर' कहते थे। उनकी आज्ञा का पालन न करने पर अनेक प्रकार के जुर्माने किए जाते थे। 'नील्हा साहब' एक प्रकार के सामंत बने हुए थे। ब्रिटिश सरकार भी मूक दृष्टा बनकर इस अन्याय को देख रही थी। स्थानीय नेता चाहते हुए भी कुछ कर नहीं पा रहे थे। ऐसी स्थिति में इस भीषण अत्याचार को समाप्त करने का बीड़ा महात्मा गाँधी ने उठाया और वे डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, मजरूल हक, जे. बी. कृपलानी तथा महादेव देसाई के साथ अप्रेल, सन् 1917 को चम्पारन जिले के मुख्य कस्बा 'मोतिहर' पहुँचे।

मोतिहर से जब नील बागान वाले गाँवों की ओर जाने लगे तो सरकार ने उन्हें जिला छोड़ देने का आदेश दिया, परन्तु महात्माजी ने इसे मानने से इन्कार कर दिया और अपनी गिरफ्तारी देने को तैयार हो गए। अन्त में सरकार को अपना आदेश वापिस लेना पड़ा और किसानों की समस्या के समाधान के लिए एक कमीशन की स्थापना की। किसानों की ओर से महात्मा गाँधी कमीशन के सदस्य थे। अन्त में कमीशन के निर्णय के अनुसार नील की जबरन खेती करवाना तथा तीन कठिया कर लेना बन्द कर दिया गया। किसानों की यह भारी विजय थी। नील्हा साहब अपने बोरिये-बिस्तर बाँध कर चम्पारन जिले को ही छोड़ चले। भारत में गाँधीजी का यह सर्वप्रथम सत्याग्रह था जो पूरी तरह से सफल रहा।

गाँधीजी किसानों की दयनीय स्थिति से बहुत द्रवित हुए और उन्होंने अपने आश्रम के कुछ कार्यकर्त्ता किसानों की सेवा के लिए भेजे। इस तरह महात्मा गाँधी ने रचनात्मक कार्यों को भी सत्याग्रह कार्यक्रम का प्रमुख अंग बना डाला। किसानों की शिक्षा तथा चिकित्सा सम्बन्धी सेवा के लिए अवन्तिका बाई गोखले ने उल्लेखनीय कार्य किया। राजेन्द्र बाबू और मजरूल हक ने भी रचनात्मक कार्यों में बड़े उत्साह से भाग लिया। यहाँ पर मजरूल साहब की सेवाओं का वर्णन करना आवश्यक है।

मजरूल हक (1866-1930 ई.) :

आपका जन्म 22 सितम्बर, 1866 ई. को पटना जिले के बाहपुरा में हुआ था। यह गाँव नील की खेती के जमींदारों का गढ़ था। पटना से मैट्रिक करके

उच्च शिक्षा के लिए लंदन गए, वहीं गाँधीजी से भेंट हुई। बैरिस्टर बनकर 1891 ई. में भारत लौटे। छपरा में वकालत करने लगे, परन्तु चम्पारन सत्याग्रह में शामिल होने, गाँधीजी की सेवा में मोतिहर पहुँचे। होमरुल आन्दोलन में भाग लिया। बिहार शाखा के अध्यक्ष बने। मुस्लिम लीग के भी आप सदस्य थे। 1915 के बम्बई लीग अधिवेशन के आप अध्यक्ष थे। लीग को साम्प्रदायिक रुझान से हटाकर राष्ट्रवाद की ओर ले जाने में आपके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। खिलाफत तथा असहयोग आंदोलन में भी आपने उत्साह से भाग लिया। आपके पत्र 'मदर लैण्ड' द्वारा असहयोग आंदोलन का खूब प्रचार हुआ।

रचनात्मक कार्यों में आपका विशेष सहयोग रहा। सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार कर 'बिहार विद्यापीठ' की स्थापना आपकी ही देन है और आप ही इसके उप कुलपति बने। डीग (पटना) में सदाकत आश्रम की स्थापना की। यह आश्रम बिहार कांग्रेस की गतिविधियों तथा रचनात्मक कार्यों का प्रमुख केन्द्र बन गया। सन् 1930 को आप इस दुनियाँ से कूच कर गए, परन्तु राष्ट्रीय एकता एवं गरीबों की मेवा के क्षेत्र में अपना अमर नाम छोड़ गए।

खेड़ा सत्याग्रह :

गुजरात के खेड़ा जिले में सन् 1918 को भयंकर अकाल पड़ा, परन्तु सरकार अनेक अत्याचार करके किसानों से भूमिकर वसूल करने में पीछे नहीं हट रही थी। महात्मा गाँधी को जब इन अत्याचारों की खबर मिली तो उन्होंने किसानों को सलाह दी कि लगान न दें, चाहे सरकार उनको जेलों में ही क्यों न ठूँस दे। सत्याग्रह में भाग लेने के लिए लोगों मे अपील की गई और स्वयं सेवक दल तैयार किया गया। सबसे पहले स्वयं सेवक बनने वाले सरदार पटेल थे जिन्होंने अपनो सारी वकालत को लात मारकर सत्याग्रह का संचालन करने को तैयार हुए। पटेल साहब गाँव-गाँव घूमकर किसानों में आत्मबल का संचार करने लगे। उन्होंने किसानों को समझाया—आप डरें नहीं, सरकारी अफसर आपके नौकर हैं, मालिक नहीं। आप अपनी बोई हुई फसल काट लावें चाहें सरकार ने उनको कुर्क ही क्यों न कर ली हो।'

किसानों ने कर देना बन्द कर दिया और अपनो फसल घर लाना शुरू कर दिया। किसानों की अँधाधुँध गिरफ्तारियाँ शुरू हो गईं। किसान नेता मोहनलाल पण्ड्या बन्दी बना लिए गए। किसान बड़े उत्साह से महात्मा गाँधी की जय-जय कार के साथ जेलें भरने लगे। सरकार तंग आ गई और उसने कर वसूली में ढील दे दी। इस सफलता से लोगों में आत्म-विश्वास का संचार हुआ और सोचने लगे कि अन्याय का विरोध करना हमारा नैतिक अधिकार है। महात्मा गाँधी ने अपनी आत्म कथा में इस सत्याग्रह के बारे में लिखा है--"खेड़ा सत्याग्रह से लोगों के

मन पर अमिट छाप पड़ी कि उनकी मुक्ति उनके कष्ट सहन और आत्म-त्याग की योग्यता पर निर्भर है। खेड़ा किसान आंदोलन से गुजरात भूमि पर सत्याग्रह की नींव मजबूती से जमेगी।''

बिजौलिया किसान आन्दोलन :

बिजौलिया राजस्थान में मेवाड़ रियासत की एक छोटी सी जागीर थी। यहाँ के सामन्त किसान जनता पर अनेक अत्याचार करते थे। अपने नेता साधु सीताराम के नेतृत्व में किसान जागीरदार के अत्याचारों का विरोध कर चुके थे, परन्तु संगठित तथा व्यापक रूप में जागीरदार की मनमानी का विरोध करने के लिए श्री विजयसिंह पथिक के नेतृत्व में एक विशाल सत्याग्रह 1918 ई. में संचालित किया, जो पूरे दो वर्ष तक चला। पथिक जी ने समस्त जागीर को किसान पंचायतों के रूप में संगठित किया और किसानों को मारपीट सहन करके भी जागीरदार की अनुचित बेगार प्रथा का विरोध करने के लिए पूरी तरह से तैयार किया।

किसान सभा बुलाकर यह निर्णय लिया गया कि बेगार नहीं देंगे। जागीरदार द्वारा थोपे हुए कर नहीं चुकाएँगे तथा छुआछूत के अन्त की भी प्रतिज्ञा ली। इस तरह से किसान शक्ति ने अहिंसात्मक आन्दोलन के द्वारा जागीरदारों से युद्ध छेड़ दिया।

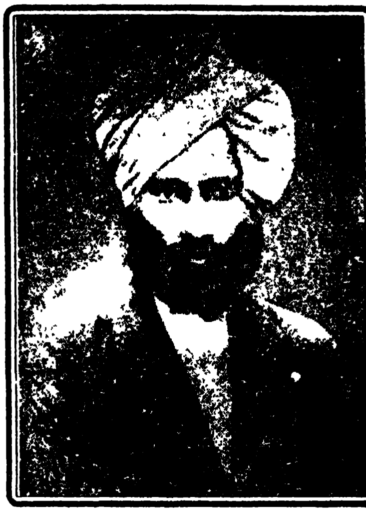
सामन्तों ने दमन चक्र में कोई कसर उठा कर नहीं रखीं, परन्तु किसान भी अपनी बात पर अड़े रहे। खुशी-खुशी जेल जाने लगे। महिलाओं ने भी सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया। रामनारायण चौधरी जी की पत्नी अंजना देवी ने 500 किसान महिलाओं का नेतृत्व कर जेल यात्रा की। चारों ओर वन्देमातरम् के नारों से आकाश गूँज उठा। जैसे कोई बंकिम बाबू के अमर उपन्यास 'आनन्द मठ' के पात्र सजीव हो उठे हों। किसानों का नेतृत्व पथिक जी का राजस्थान सेवा संघ कर रहा था।

आन्दोलन की शक्ति की खबर सारे देश में फैल गई। विद्यार्थी जी के 'प्रताप' तथा बम्बई के 'वेंकटेश्वर' में सत्याग्रह की खूब खबरें छपती थी। महात्मा गाँधी ने भी किसानों की माँगों का समर्थन करते हुए मेवाड़ के महाराणा को पत्र लिखा। अन्त में सरकार को झुकना पड़ा और किसानों से समझौता किया। समझौते में ब्रिटिश सरकार की ओर से ए.जी.जी. हालैण्ड, मेवाड़ के रेजीडेन्ट विल्किन्सन, मेवाड़ रियासत की ओर से प्रकाशचन्द्र चटर्जी तथा जागीरदार की कामदार मण्डली शामिल थी। किसानों के प्रतिनिधि राजस्थान सेवा संघ के मंत्री रामनारायण चौधरी, साधू सीताराम, माणिक्यलाल वर्मा तथा सरपंच मोतीचन्द थे। दोनों दल कस्बे के बाहर चौक में एकत्रित हुए। लंबे विचार विमर्श के बाद समझौता हुआ जिसके अनुसार जागीरदार की ओर से 84 प्रकार के अनुचित कर बन्द करने की घोषणा हुई। बेगार प्रथा समाप्त हुई।

बिजौलिया का सत्याग्रह संग्राम बहुत सफल रहा। भारत के इतिहास में यह पहला अवसर था कि किसानों की संगठित शक्ति ने अहिंसक सत्याग्रह के द्वारा बिजौलिया के सामंत, मेवाड़ के महाराणा तथा ब्रिटिश शासन के प्रतिनिधियों को एक साथ नत मस्तक किया। इस महान् उपलब्धि का श्रेय विजयसिंह पथिक को है।

विजयसिंह पथिक (1882-1954 ई.)

ये मूल रूप से उत्तरप्रदेश के गुठवाली गाँव के रहने वाले थे। आपका जन्म 9 मार्च, 1882 ई. को एक गुर्जर परिवार में हुआ था। आपके पूर्वज 1857 की क्रांति में बढ़ चढ़ कर भाग ले चुके थे। अत: देशभक्ति आपको विरासत में मिली।



विजयसिंह पथिक

पथिकजी पहले क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग ले चुके थे। रासबिहारी बोस के साथ आपने कार्य किया। क्रांतिकारी कार्यों के कारण अजमेर के निकट टाटगढ़ में नजरबन्द रखे गए, परन्तु यहाँ से फरार हो गए। इसी बीच आपका परिचय बिजौलिया क्षेत्र के समाज सेवी साधु सीताराम से हुआ। वे उन्हें बिजौलिया ले आये। आपके साथ हरि भाई किंकर भी थे। दोनों सीताराम के साथ मिलकर किसान संगठन में लग गए।

पथिक जी राजस्थान में जन क्रांति के जन्मदाता माने जाते हैं। भारत में सबसे पहले अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा सामंतवाद के घुटने टिकाने वाले आप पहले 'नर केसरी' थे। इसीलिए आप 'राजस्थान केसरी' कहे जाने लगे। राजस्थान सेवा संघ के माध्यम से आपने कितने ही स्वतन्त्रता सेनानी तैयार किए जिनमें रामनारायण चौधरी, श्रीमती अंजना चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा एवं शोभालाल गुप्त मुख्य हैं।

पथिकजी जीवन भर दमन एवं शोषण के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। देश की स्वाधीनता के लिए वे सदा तत्पर रहते थे। उनका यह उद्बोधन देशभक्तों को सदा प्रेरण देता रहता था—

"प्राण मित्र भले ही गंवाना।
पर न झण्डा यह नीचे झुकाना।"

स्वतन्त्रता के महान् पुजारी धरती पुत्र विजयसिंह का देहान्त अजमेर में 28 मई, 1954 ई. को हो गया, परन्तु उनके कार्य सदा स्मरणीय रहेंगे। विशेषकर उनका यह कथन मानव स्वतन्त्रता के इतिहास में सदा अमर रहेगा—

"यहाँ वैभव की चाह नहीं, परवाह नहीं जीवन रहे न रहे।
यदि इच्छा है, यह है, जग में स्वेच्छा दमन न रहे।"

अहमदाबाद मजदूर सत्याग्रह :

भारत में सबसे पहले सत्याग्रह द्वारा औद्योगिक विवादों को हल करने का प्रयोग अहमदाबाद में किया गया। अहमदाबाद में मिल मालिकों एवं मजदूरों के बीच में महँगाई भत्ते तथा बोनस को लेकर कुछ दिनों से विवाद चल रहा था। गाँधीजी ने बीच में पड़कर दोनों पक्षों को पंच फैसला मानने के लिए राजी कर लिया, परन्तु इसी बीच मिल मालिकों ने दमन तथा फूट डालो की नीति से काम लेना शुरू कर दिया। मजदूर महात्मा गाँधी के पास मार्ग-दर्शन के लिए पहुँचे। गाँधीजी को मजदूरों की माँग में वजन दिखाई दिया। अत: उन्होंने मजदूरों को अपनी माँग बोनस तथा महँगाई में 35 प्रतिशत वृद्धि करने के लिए सत्याग्रह करने की सलाह दे दी।

मजदूरों ने हड़ताल कर दी। महात्मा गाँधी तथा उनके अनुयायी मजदूर सत्याग्रह का समर्थन करने लगे, परन्तु सरकार तथा मिल मालिक फूट डालकर मजदूर आन्दोलन को कमजोर करनें लगे और उन्हें सत्य के पक्ष से हटाने लगे। इस विकट परिस्थिति में बापू ने यह घोषणा कर दी कि "जब तक मजदूरों की माँगें नहीं मानी जाएगी मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगा व किसी सवारी का उपयोग नहीं करूँगा।" बापू के इस कदम से मजदूरों का मनोबल बढ़ गया। सरकार तथा मिल मालिक घबरा उठे। अन्त में पंच फैसले को मानने के लिए मिल मालिक तैयार हो गए। प्रोफेसर ध्रुव ने पंच फैसले में यह निर्णय दिया की मजदूरों को जुलाई माह से उनके वेतन की 35 प्रतिशत वृद्धि दी जाए। दोनों पक्षों ने इसे स्वीकार कर लिया।

इस तरह से औद्योगिक विवादों को हल करने में भी सत्याग्रह शस्त्र उपयोगी सिद्ध हुआ। इस मजदूर सत्याग्रह को सफल बनाने में श्रीमती अनुसूइया बहिन और शंकरलाल बैंकर का सराहनीय योगदान रहा। इनके नेतृत्व में 'मजदूर महाजन संगठन' की स्थापना हुई, जो मजदूरों के हितों की रक्षा करता रहा।

रोलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह :

प्रथम महायुद्ध में भारत ने इंग्लैण्ड की इस आशा से सहायता की थी कि युद्ध के बाद और कुछ नहीं तो औपनिवेशिक स्वराज्य तो अवश्य प्रदान किया

जाएगा, परन्तु देने के स्थान पर रोलेट एक्ट द्वारा सरकार ने नागरिकों के बचे खुचे अधिकार भी ले लिए। इस एक्ट के अनुसार सरकार बिना कारण बताये तथा बिना मुकदमा चलाये अपनी इच्छानुसार किसी भी व्यक्ति को बन्दी बनाकर जेल में डाल सकती है। इस काले कानून का विरोध करते हुए मालवीयजी तथा श्रीनिवास शास्त्री ने कहा कि "इस कानून से नागरिक स्वतन्त्रता का बिल्कुल अन्त हो जाएगा और भले आदमियों का स्वाधीनता से जीना दूभर हो जाएगा। इस कानून से ऐसा विद्रोह भड़केगा कि सरकार के संभालने पर भी नहीं संभलेगा।" परन्तु इन जन-प्रतिनिधियों की आवाज न सुनकर सरकार ने अच्छी तरह सिद्ध कर दिया कि विदेशी शासन में भारत पुत्रों की राय की कोई कीमत नहीं है। अत: केन्द्रीय कौंसिल से मोहम्मद अली जिन्ना, मालवीय जी तथा मजरूल हक ने अपना त्याग-पत्र दे दिया।

अब महात्मा गाँधी ने इस दमनकारी कानून का विरोध करने का बीड़ा उठाया और 23 मार्च, 1919 ई. को मद्रास से यह घोषणा कर दी कि 30 मार्च को रोलेट एक्ट के विरोध में देशव्यापी हड़ताल होगी तथा विरोध प्रदर्शन होंगे, परन्तु बाद में यह तारीख 30 मार्च के स्थान पर 6 अप्रेल कर दी गई, लेकिन समय पर सूचना न मिलने के कारण अनेक स्थानों पर 30 मार्च को ही विरोध प्रदर्शन होने लगा।

दिल्ली के प्रदर्शन :

दिल्ली में 30 मार्च को ही स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में एक विशाल जुलूस रोलेट एक्ट का विरोध करने के लिए निकल पड़ा। स्वामीजी के त्याग व तपस्या का लोगों पर बहुत प्रभाव था। अत: भारी संख्या में लोग जुलूस में शामिल हुए। स्वामीजी जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। कुछ गोरे सिपाहियों ने स्वामीजी को आगे बढ़ने से रोकने का प्रयास किया और गोली मारने तक की धमकी दी, परन्तु स्वामीजी ने अपनी छाती खोलते हुए कहा कि "लो मारो गोली" बस गोरों की धमकी, हवा हो गई। जुलूस बढ़ता गया, परन्तु आगे चलकर स्टेशन के पास कुछ झगड़ा हो गया।

महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी :

विरोध प्रदर्शन तथा हड़तालें शांतिपूर्ण थीं, परन्तु नौकरशाही की बर्बर दमन नीति के कारण दिल्ली, कलकत्ता तथा अहमदाबाद में हिंसक घटनाएँ घटीं। इनकी सूचना मिलते ही गाँधीजी मद्रास से दिल्ली की ओर चल पड़े, परन्तु सरकार ने उनके दिल्ली तथा पंजाब प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया। गाँधीजी ने इसे मानने से इन्कार कर दिया। सरकार ने उनको दिल्ली के निकट के स्टेशन पर आगे जाने से

रोक दिया और गिरफ्तार कर स्पेशल ट्रेन द्वारा बम्बई भेज दिया। पूज्य बापू की गिरफ्तारी की खबर ने आग में घी का काम किया। अहमदाबाद में कई उपद्रव हुए जिनमें कुछ अंग्रेज तथा हिन्दुस्तानी अफसर मारे गए। कलकत्ता में भी गिरफ्तारी का विरोध हुआ, गोली चली, छः आदमी मारे गए। बम्बई पहुँच कर गाँधीजी ने सभी पक्षों को शांति रखने की अपील की।

पंजाब में विरोध प्रदर्शन :

रोलेट एक्ट का सबसे कड़ा विरोध पंजाब में हुआ। हड़तालों के साथ-साथ बड़े-बड़े प्रदर्शन हुए जिनमें हिन्दू, मुसलमान एवं सिक्ख भाइयों ने बड़े उत्साह से भाग लिया। मानों राष्ट्रीय एकता एवं भावात्मक एकता सजीव हो उठी हो। अमृतसर के सुप्रसिद्ध नेता शैफुद्दीन किचलू तथा डॉ. सत्यपाल ने जुलूस का नेतृत्व किया। एक सभा हुई जिसमें लगभग 50 हजार लोगों ने भाग लिया। मि. बदरूल खाँ सभापति थे। सभा में देश प्रेम हिलोरे मार रहा था। रोलेट कानून रद्द करने तथा किचलू व सत्यपाल के भाषण करने पर लगे प्रतिबंध को हटाने की माँग की जा रही थी। इसके तीन दिन बाद एक विशाल प्रदर्शन हुआ।

जुलूस बहुत ही शांतिपूर्ण था, परन्तु विदेशी शासन स्वच्छन्द देशभक्ति पूर्ण कार्य को सहन न कर सका। पंजाब के लैफ्टिनेन्ट गवर्नर सर माइकेल ओड वायर ने अपना मानसिक संतुलन खो दिया और डॉ. किचलू व सत्यपाल को पंजाब से निष्कासित करने के आदेश दे दिए। इतना ही नहीं दोनों को बन्दी बनाकर किसी अज्ञात स्थान पर पहुँचा दिया।

अपने प्रिय नेताओं की गिरफ्तारी की खबर सुनकर अथाह जन-समूह उमड़ पड़ा और लोग शांतिपूर्ण जुलूस में पूछताछ के लिए डिप्टी कमिश्नर के बंगले की ओर चल पड़े। रेलवे पुल के पास सैनिक टुकड़ी द्वारा जुलूस को रोक दिया गया। इतना ही नहीं शांत जुलूस पर गोलियाँ चलने लगीं। बीस आदमी मारे गए। फिर क्या था जन समूह ने भी अपना धैर्य खो दिया और एलायन्स बैंक पर धावा बोल दिया गया और उसका मैनेजर थामसन मारा गया। सार्जेन्ट रोलेण्ड भी मारा गया। देखा जाए तो इस उपद्रव का उत्तरदायित्व नौकरशाही पर ही था, क्योंकि इन्होंने ही सबसे पहले शांत जुलूस पर गोली वर्षा की थी, जिसके कारण ही जनता उत्तेजित हुई और कुछ अंग्रेज मारे गए। इसका बदला लेने के लिए सारे पंजाब में सैनिक शासन लागू कर दिया गया। जनरल डायर के क्रूर हाथों में पंजाब को सौंप दिया। इस व्यक्ति में बदला लेने की भावना अत्यधिक उग्र हो गई। अमृतसर शहर में आतंक छा गया। नल व बिजली के कनेक्शन काट दिए गए। डायर के काले कारनामों का वर्णन करने के पहले हमें भारत माँ के सपूत डॉ. किचलू व सत्यपाल के बारे में जानना जरूरी है।

शैफुद्दीन किचलू (1888-1963 ई.) :

आपके पिता का नाम अजिमुद्दीन तथा माता का नाम जान बाई था। सन् 1888 को अमृतसर में जन्म हुआ। लन्दन से बैरिस्टर होकर 1915 ई. में भारत आए। अमृतसर नगरपालिका के अध्यक्ष के रूप में आपका सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ हुआ। पंजाब में कांग्रेस की स्थापना करने वालों में आप प्रमुख थे।

सन् 1915 की संभावित सशस्त्र क्रांति के लिए सैनिकों को भड़काने के आरोप में आप बन्दी बनाए गए और करांची जेल में रखे गए। इसके बाद रोलेट एक्ट के विरोध में पंजाब में आपने तहलका मचा दिया। सरकार ने भयभीत होकर आपको बन्दी बनाकर अज्ञात स्थान पर भेज दिया। खिलाफत आंदोलन में आपने खुलकर भाग लिया। 1924 ई. में कांग्रेस के महासचिव बने। दिल्ली तथा पंजाब कांग्रेस के अध्यक्ष पद को आपने सुशोभित किया। 1929 ई. के लाहौर कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष बनने का आपको सुअवसर प्राप्त हुआ। आजादी की लड़ाई में सक्रिय भाग लेने के कारण आपको 14 वर्ष कारावास में बिताने पड़े।

किसान तथा मजदूरों की हिमायत तथा साम्प्रदायिकता के लिए आपने अपना समस्त जीवन लगा दिया, हिन्दू, मुस्लिम व सिक्ख भाइयों की एकता के लिए जीवन भर कार्य करते रहे। इस कारण आप सभी धर्म के लोगों के लिए सर्वमान्य नेता थे। जीवन के अंतिम चरण में आपका झुकाव साम्यवाद की ओर हो गया। अक्टूबर, 1963 ई. को राष्ट्रीय एकता एवं स्वतन्त्रता संग्राम में अपनी अमिट छाप छोड़कर इस संसार से कूच कर गए।

डॉ. सत्यपाल (1885-1954 ई.)

शैफुद्दीन किचलू व डॉ. सत्यपाल परस्पर परम मित्र थे और दोनों ने मिलकर पंजाब में जो क्रांति की लहर फैलाई वह स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगी। डॉ. सत्यपाल का जन्म 1885 ई. में वजीराबाद (पाकिस्तान) में मध्यम वर्गीय खत्री परिवार में हुआ। सन् 1908 में लाहौर मेडिकल कॉलेज से एम.बी.बी.एस. की परीक्षा में पंजाब विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम रहे। जीवन के प्रारंभ से ही उत्कट देशप्रेम की भावना से आप ओत-प्रोत थे। अमृतसर में आपने हिन्दू-मुस्लिम युवकों की एक ऐसी टीम तैयार की जिसने विदेशी शासन के विरुद्ध जेहाद बोल दिया। रोलेट एक्ट के विरोध प्रदर्शन के अगुआ आप ही थे। 1919 ई. में बन्दी बने और धर्मशाला जेल में रखे गए। महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन में भी आपने उत्साह से भाग लिया। संक्षेप में आप पंजाब की राजनीति में सर्वेसर्वा थे।

साम्प्रदायिक एकता में आपके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। किचलू साहब, महाशय रतनचन्द तथा चौधरी बागामल के साथ मिलकर पंजाब में रोलेट एक्ट के विरुद्ध जो प्रदर्शन आयोजित किया गया वह देश में बेमिशाल था। 1919 ई. के अमृतसर अधिवेशन की सफलता के लिए पंजाबी भाइयों ने दिन रात एक कर दिया था। इसका श्रेय आपको ही है। हिन्दू-मुस्लिम एकता, समाज सुधार तथा जलियाँवाले बाग हत्याकाण्ड से पीड़ित लोगों की सहायता के लिए आपने कुछ भी उठाकर नहीं रखा। कितने ही वर्षों तक आप पंजाब विधान सभा के अध्यक्ष रहे। इस तरह से डॉ. सत्यपाल हर क्षेत्र में देश की सेवा कर अपने आपको भारत माँ का सच्चा सपूत सिद्ध करके 1954 ई. में इस संसार को छोड़कर इतिहास में अमर पद प्राप्त किया।

जलियाँवाले बाग का हत्याकाण्ड (13 अप्रेल, 1919 ई.)

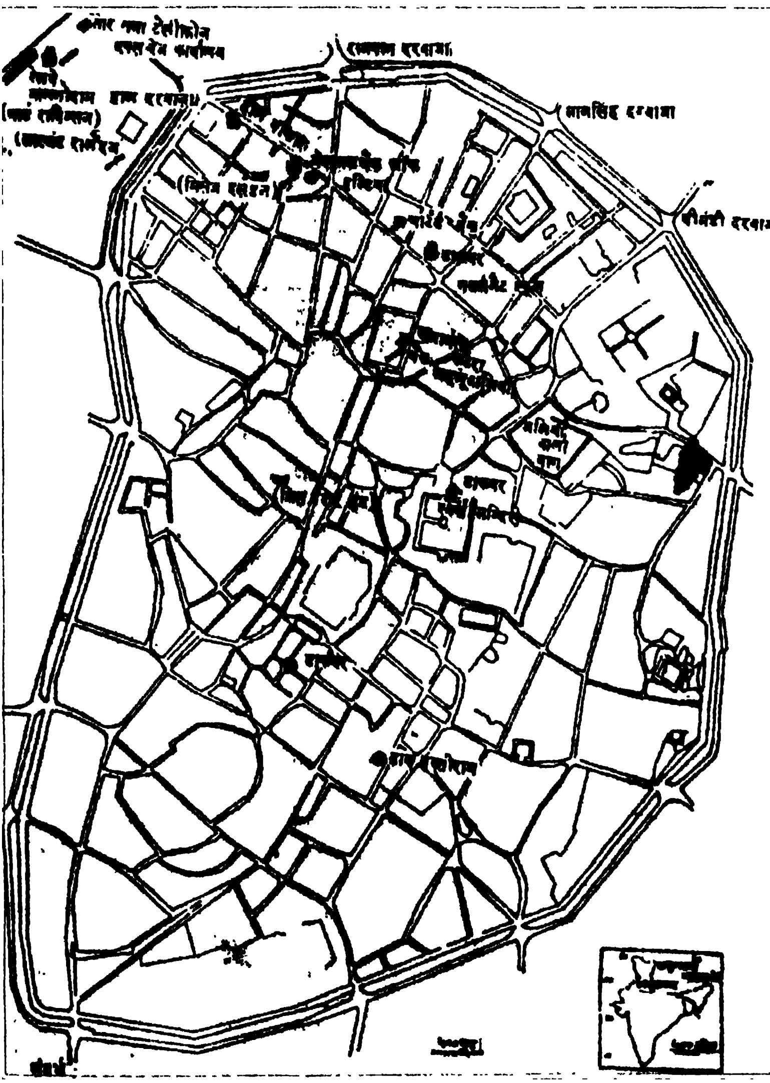
डॉक्टर किचलू एवं सत्यपाल को बन्दी बनाकर अज्ञात स्थान पर ले जाने के विरोध में 13 अप्रेल, 1919 ई. को अमृतसर शहर के एक चौक (आंगन) में विशाल सभा का आयोजन किया गया। इसकी सूचना टिन का डिब्बा बजा बजा कर सर्व साधारण को दी गई। इसके विपरीत जनरल डायर ने अमृतसर में फौजी शासन की आम सूचना नहीं दी। खाना पूर्ति के लिए एक दो स्थानों पर सभा आदि



जलियाँवाला बाग

पर प्रतिबंध की सूचना दी गई। इसके पीछे सरकार का सुनियोजित षड्यंत्र था। सरकार का सहज भाव से एकत्रित भीड़ पर गोली वर्षा कर नरसंहार करना था। इसी कारण लोगों को जलियाँवाले बाग में एकत्रित होने से नहीं रोका गया।

पूर्व सूचना के अनुसार अमृतसर के जलियाँवाले बाग में 13 अप्रेल, 1919 को सायं चार बजते बजते हजारों लोग एकत्रित होने लगे। उस दिन बैशाखी का त्यौंहार था। अत: बाहर से मेला देखने आए हुए किसान भी सभा में शामिल होने लगे। बाहर कुछ बच्चे खेल रहे थे। वे भी सभा में आकर बैठ गए। बाग जहाँ



सभा जुड़ रही थी शहर के मध्य में एक स्थान था। बाग में स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी मिला कर बीस हजार आदमी जमा थे। सभी शांत बैठे थे। हंसराज नामक व्यक्ति सभा में भाषण कर रहे थे। इतने में ही जनरल डायर दल बल सहित सभा स्थल पर आ पहुँचे। सभा को तीन मिनट में तीतर बीतर होने को कहा गया। कम बुद्धि के आदमी के भी यह बात समझ में आ सकती है कि तीन मिनट में बीस हजार की भीड़ एक सकड़ी गली से कैसे निकल सकती है ? परन्तु डायर ने इस पर विचार नहीं किया और गोली चलाने का आदेश दे दिया। लगभग सोलह चक्र गोलियाँ चली। यदि स्टाक समाप्त न होता तो गोलियाँ और भी चलती। लाशों का ढेर मच गया। लगभग बारह सौ व्यक्ति शहीद हुए। घायलों का तो कोई ठिकाना ही नहीं। बद इंतजामी कहें या बदनियति कहें, घायलों की चिकित्सा तो दूर रही, पानी के बिना भी व्यक्ति रात भर तड़फते रहे। मानव विनाश तथा नृशंस अत्याचारों का ऐसा अधम उदाहरण कम ही सुनने को मिलता है।

अत्याचारों की कहानी यहीं तक समाप्त नहीं हुई। पूरे पंजाब में सैनिक कानून (मार्शल ला) लागू कर दिया गया। प्रत्येक अंग्रेज को सलाम ठोकना भारतीय युवकों के लिए अनिवार्य कर दिया गया। श्रीमती शेरवुड पर जिस गली पें हमला हुआ था, उस गली में आने जाने वालों को पेट के बल रेंग कर आना पड़ता था। कोड़ों की सजा देने के लिए एक मंच बनाया गया था। छात्रों को 16 मील पैदल चलकर प्रतिदिन सैनिक ठिकानों पर हाजिरी देने आना पड़ता था। बिना मुकदमा चलाये ही हजारों देशभक्तों को जेल में ठूँस दिया गया। मृत्यु दण्ड तथा काले पानी की सजाएँ दी गईं। 298 व्यक्तियों को मार्शल लॉ कमीशन के सामने पेश किया गया। इनमें से 51 को फाँसी, 46 को काले पानी की तथा शेष को दस-दस वर्ष की सजाएँ दी गईं। सभा के प्रमुख संयोजक महाशय रतनचन्द्र को अनेक यातनाएँ दी गई।



नरसंहार का दृश्य

रतनचन्द्र महाशय :

आप जाति से खत्री, खन्ना उपजाति के थे। आप मूल निवासी लुधियाना के परन्तु अमृतसर में स्थायी रूप से आकर बस गए। अजीतसिंह की 'भारत माता सोसाइटी' के सदस्य थे। कांग्रेस में भी आपकी सेवाएँ अमूल्य रहीं। अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन को सफल बनाने में आपका अद्भुत योग रहा। सन् 1907 से 1947 तक पंजाब की राजनीति पर छाये रहे और जन जागृति करते रहे। 'पगरे संभल जट्टा' गाना गाया करते थे। रोलेट एक्ट विरोधी प्रदर्शन के आप मुख्य संचालक थे।

सरकार ने आप पर जन विद्रोह भड़काने का दोष लगा कर, मृत्यु दण्ड दिया था, परन्तु बाद में यह सजा आजीवन कारावास में बदल गई। 1920-1928 ई. तक अण्डमान जेल में रहे, फिर मुल्तान जेल में रहे। सन् 1938 में छूटे। हिन्दू-मुस्लिम एकता में आपका अपूर्व योगदान रहा। 1942 ई. की अगस्त जन क्रांति में भी आपने उल्लास से भाग लिया। सच्चे देशभक्त के रूप में आपकी स्मृति सदा बनी रहेगी।

अन्य स्थानों पर अत्याचार :

अमृतसर के अतिरिक्त पंजाब के अन्य स्थानों पर भी विदेशी शासन का भीषण अत्याचार था। लाहौर तथा कसूर में भी खूब दमन चक्र चला। गुजरान वाला में निर्दोष लोगों पर बम तक गिराए गए। कर्नल ओब्रायन ने हण्टर कमेटी के सामने इस तथ्य को स्वीकार किया। सारा पंजाब दमन की भीषण भट्टी में झोंक दिया गया था।

हत्याकाण्ड की प्रतिक्रिया :

पंजाब के नर संहार तथा अत्याचारों की खबर फैलते ही सारे देश में हा हा कार मच गया। वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य सी. शंकर नायर ने विरोध स्वरूप त्याग-पत्र दे दिया। अत्यधिक सहिष्णु तथा मानवतावादी धैर्य शील कवीन्द्र रवीन्द्र भी इस नर संहार से विचलित हुए बिना न रहे। 30 मई, 1919 को अपना विरोध प्रकट करते हुए वायसराय को लिखा। "अब समय आ गया है कि जबकि सम्मान के बिल्ले हमारी इस जिल्लत (दमन) की पृष्ठभूमि में बड़े असंगत लगते हैं और हमारी शर्म को भी उभार देते हैं। इसलिए मैं अपनी तरफ से इन सब विशेष सम्मानों से मुक्त होकर अपने सभी देशवासियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ा होना चाहता हूँ, जो अपनी कथित नगण्यता के कारण उस नीचता को सहन करने के लिए बाध्य है, जो मनुष्यों के लिए कदापि उपयोगी नहीं है। इन्हीं कारणों से आपसे मजबूर होकर अनुरोध कर रहा हूँ कि आप मुझे नाइट की उपाधि से मुक्त कर दें।'

सरकार द्वारा नियुक्त हण्टर कमेटी के सामने फौजी अफसरों ने इस बर्बरता को स्वीकार किया। कांग्रेस कमेटी की ओर से जाँच करने वाले सी.आर. दास तथा पंडित मोतीलाल थे। कितने ही दिनों तक अनेक लोगों से पूछताछ कर अपनी विस्तृत रिपोर्ट कांग्रेस कमेटी के सामने रखी गई। देशबन्धु ने इस प्रतिवेदन के समापन में लिखा ''दुनियाँ का कोई भी कानून यह नहीं कहता कि शांति स्थापना के लिए बिना सूचना दिए निःशस्त्र शांत लोगों को गोलियों से भून दिया जाए, परन्तु जनरल डायर ने इस असंभव कार्य को भी संभव कर दिखाया। यह क्रूर हत्याकाण्ड भारत के इतिहास में काले अक्षरों में लिखा गया है।'' महामना मालवीय तथा स्वामी श्रद्धानन्द महाराज ने पीड़ितों की सहायता के लिए रात-दिन एक कर दिया।

इतिहास में स्थान तथा मूल्याँकन :

जलियाँवाले बाग हत्याकाण्ड ने हमारे स्वतन्त्रता संग्राम को एक नई दिशा दी। डॉ. राजेन्द्र बाबू के अनुसार, 'जलियाँवाले बाग के नृशंस हत्याकाण्ड ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की समस्त कलई खोलकर रख दी। इस हत्याकाण्ड के बाद सारे भारत ने अंग्रेजों का खुलकर सामना करना शुरू कर दिया।'

इस घटना ने भारतीयों को यह सोचने के लिए विवश कर दिया कि हमें आजादी ताकत से मिलेगी या शांति से। आगे चलकर रामप्रसाद बिस्मिल तथा चन्द्रशेखर आजाद की शहीद टोली ने ईंट का जवाब पत्थर से देने का दृढ़ निश्चय कर लिया। इसके पीछे अंग्रेजों के ऐसे नृशंस अत्याचार ही तो थे। इस नर संहार ने देशभक्तों के खून में एक नया उबाल ला दिया, जिसकी परिणति सरदार उधमसिंह द्वारा डायर की हत्या के रूप में होकर रही।

लुई फिशर जैसे प्रसिद्ध लेखक एवं भारत भक्त सी.एफ. एन्ड्रूज ने इस सम्बन्ध में लिखा कि ''गाँधीजी के जीवन में जो परिवर्तन आया उससे वे अंग्रेजी साम्राज्य के कट्टर विरोधी हो गए। यह जलियाँवाले बाग के शोपित तर्पण का ही प्रतिफल था।'' एन्ड्रूज ने इस सम्बन्ध में आगे लिखा कि ''मेरी व्यक्तिगत जाँच के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह नृशंस हत्याकाण्ड सुनियोजित था और यह मेरे तथा मेरी जाति के लिए एक अकथनीय कलंक है, जो अक्षम्य है।''

तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने इसका मूल्याँकन करते हुए लिखा है ''जलियाँवाले बाग हत्याकाण्ड से भारत के इतिहास का एक नया पन्ना खुला है। स्वतन्त्रता आन्दोलन ने एक नया मोड़ लिया है। जो आंदोलन थोड़े से पढ़े लिखे लोगों तक सीमित था, उसने सारी जनता में फैलकर राष्ट्रीय आंदोलन का रूप धारण कर लिया है।''

भारत के स्वतन्त्रता समर सेनानियों को बाग की शहादत ने नया जोश प्रदान किया। पंडित नेहरू ने इस सम्बन्ध में लिखा— "जलियाँवाले बाग की एक ऐसी कहानी है जो हर भारतीय की जबान पर रहेगी और हमें प्रेरणा देती रहेगी। जलियाँवाले बाग का नाम सुनते ही हमारा मस्तक उन शहीदों की याद में झुक जाता है, जो देश के लिए शहीद हो गए।' कवियों की वाणी में बाग की शहादत की गौरव गाथा फूट पड़ी। हल्दी घाटी की भाँति बाग की मिट्टी भी पवित्र समझी जाने लगी। बच्चे बच्चे की जबान पर यह गीत गूँज उठा—

"आओ बच्चो तुम्हें दिखावें, झाँकी हिन्दुस्तान की।
इस मिट्टी से तिलक करो, यह धरती है बलिदान की।"

अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन (1919 ई.) :

पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में होने वाले अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन का इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस अधिवेशन में लगभग सभी चोटी के नेता शामिल हुए थे। यह राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता का अद्‌भुत दृश्य था। अधिवेशन के दौरान लीग के सुप्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता हकीम अजमल खाँ तथा पं. मोतीलाल नेहरू के सहयोग से अमृतसर के स्वर्ण मंदिर में एकता सम्मेलन हुआ। अधिवेशन में जलियाँवाले बाग के नर संहार की खुलकर निन्दा की गई।



दिसम्बर 1919 में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल प्रतिनिधि।

अधिवेशन का महत्त्वपूर्ण पहलू गाँधीजी का बढ़ता हुआ प्रभाव था। तिलक तथा देशबन्धु जैसे लोकप्रिय नेता उपस्थित होते हुए भी गाँधीजी की जय-जय कार से पाण्डाल गूँज उठा। पण्डित नेहरू ने अपने 'महात्मा गाँधी' नामक अंग्रेजी ग्रंथ में इसे 'प्रथम गाँधी कांग्रेस के रूप में चित्रित किया है।'

अधिवेशन में विवाद का मूल प्रश्न सन् 1919 के सुधार को स्वीकार करना या नहीं करना था। महात्मा गाँधी सुधार को लागू करने के पक्ष में थे। देशबन्धु इससे सहमत नहीं थे, परन्तु गाँधीजी के प्रभाव के कारण अधिक विरोध न कर सके। आचार्य जावेडकर ने अपने 'आधुनिक भारत' नामक ग्रंथ में इस अधिवेशन का वर्णन इस प्रकार किया है—अमृतसर में महात्मा गाँधी ने सहयोग नीति, देशबन्धु अडंगा नीति व लोकमान्य तिलक प्रतियोगी सहकारिता की नीति के पक्ष में थे। अत: तीनों के लिए संतोषजनक शब्द रचना इस प्रस्ताव में इस प्रकार की गई—

(क) भारतवर्ष पूर्ण उत्तरदायी शासन के योग्य है, इसके विपरीत जो कुछ भी कहा जाता है, उसे कांग्रेस अस्वीकार करती है।

(ख) कांग्रेस की राय में सुधार अपूर्ण, असंतोषजनक एवं निराशापूर्ण हैं।

(ग) आगे यह कांग्रेस अनुरोध करती है कि आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के अनुसार भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए ब्रिटेन की संसद ठोस कदम उठाए।

(घ) कांग्रेस विश्वास करती है, जब तक इस प्रकार के कदम न उठाए जाएँ तब तक जहाँ तक संभव हो, लोग सुधारों को इस तरह लागू करें कि जिससे भारत में शीघ्र उत्तरदायी शासन की स्थापना हो सके। सुधारों के लिए मॉण्टेग्यू साहब को धन्यवाद।'

इस तरह अमृतसर कांग्रेस से ही भारत की राजनीति महात्मा गाँधी के हाथ में आ गई। भारतीय राजनीति में गाँधीजी का नेतृत्व न केवल भारत वरन् विश्व इतिहास की अनोखी घटना है। साबरमती के संत ने किस तरह से असहयोग आंदोलन के द्वारा ब्रिटिश शासन के छक्के छुड़ा दिए।

□□

इकाई 10

महात्मा गाँधी व असहयोग आन्दोलन

महात्मा गाँधी भारत के पहले राष्ट्रवादी नेता थे, जिन्होंने अपना जीवन तथा जीने का तरीका आम जनता जैसा बना लिया था। उनका व्यक्तित्व पूरी तरह से ग्रामीण जनता के साथ एकाकार हो गया था। उन्होंने उसी भाषा का प्रयोग किया जिसे गाँव वाले आसानी से समझ सकते थे। दूसरे शब्दों में, वे भारत की आत्मा एवं भारतीय जन के सच्चे प्रतीक थे। उनका स्वराज्य गरीबों के लिए था। वे कहा करते थे—"मैं ऐसे भारत के लिए काम करूँगा जिसमें गरीब से गरीब व्यक्ति भी यह अनुभव करे कि यह उसी का देश है और इसके निर्माण में उसकी प्रभावकारी आवाज है। स्वतंत्र भारत में कोई छोटा बड़ा नहीं होगा। महिलाओं के अधिकार भी पुरुषों के समान होंगे।"

उनका स्वराज्य प्राप्त करने का साधन भी बड़ा निराला था। उनका विश्वास था कि शस्त्र बल से नहीं आत्मबल से सच्चा स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। शांतिपूर्ण असहयोग आंदोलन से हम विदेशी शासन को अपनी बात मानने के लिए बाध्य कर सकते हैं, क्योंकि विदेशी शासन हमारे सहयोग से चल रहा है। अत: हमारा सहयोग न रहने पर वह लाचार होकर अपने आप समाप्त हो जाएगा। विदेशी शासन को पराभूत करने का दूसरा अमोघ शस्त्र विदेशी माल का बहिष्कार है, क्योंकि ब्रिटेन का उद्देश्य आर्थिक शोषण था। अत: 'असहयोग आंदोलन' तथा 'विदेशी माल के बहिष्कार' से हम निश्चित रूप से स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु इसके लिए परस्पर एकता अत्यन्त आवश्यक है। इसी संदर्भ में महात्मा जी ने प्रारंभ में तीन प्रमुख कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया— (1) हिन्दू मुस्लिम एकता, (2) छुआछूत का निवारण एवं (3) महिलाओं के मान की रक्षा।

सबसे पहले उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर ध्यान दिया। संयोग से देश विदेश में ऐसी घटनाएँ घट रही थीं जिनसे हिन्दू व मुसलमानों में सौहार्द्र बढ़ा। मुस्लिम लीग में राष्ट्रवादी युवा मुसलमानों का बोलबाला था, जो कांग्रेस की भाँति ही स्वशासन की माँग करने लगे। लखनऊ समझौता इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

'जामिया मिलिया' जैसी राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं ने भी राष्ट्रीय विचारों को बढ़ावा दिया। इन सबके अतिरिक्त इंग्लैण्ड द्वारा तुर्की के राज्य को खण्ड-खण्ड करने तथा वहाँ के शासक खलीफा के अधिकार छीन लेने के कारण भारतीय मुसलमान भी ब्रिटिश विरोधी हो गए। कांग्रेस के नेताओं ने भी खलीफा के अधिकारों के प्रश्न के लिए मुसलमानों का पूरा साथ दिया। कांग्रेस तथा लीग ने मिलकर खलीफा के अधिकारों की रक्षा के लिए एक आंदोलन चलाया जिसे इतिहास में खिलाफत आन्दोलन कहते हैं।

खिलाफत आन्दोलन (1919-1920 ई.) :

इस आंदोलन के प्रमुख सूत्रधार अली बन्धु, मौलाना आजाद, हकीम अजमल खाँ तथा हसरत मौहानी थे। इस खिलाफत कमेटी का पहला जलसा नवम्बर 1919 ई. को दिल्ली में हुआ। महात्मा गाँधी भी इसमें शामिल हुए और वे खिलाफत कमेटी के अध्यक्ष चुन लिए गए। इस अवसर पर गाँधीजी ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि "यदि इंग्लैण्ड ने खलीफा के मामले में भारतीय मुसलमानों की भावना का आदर नहीं किया तो देशव्यापी असहयोग आंदोलन शुरू होगा।" कमेटी द्वारा सरकारी स्कूलों व कॉलेजों के बहिष्कार का कार्यक्रम स्वीकृत किया गया। सरकारी समारोह तथा उपाधियों का त्याग किया जाएगा। सबसे पहले महात्मा गाँधी ने उनको युद्ध के दौरान अच्छी सेवाओं के लिए दिया गया 'केसरे हिन्द पदक' लौटा दिया।

सन 1920 में हिन्दू तथा मुसलमानों का संयुक्त प्रतिनिधि मण्डल वायसराय से मिला, परन्तु निराशा ही हाथ लगी। जिन्ना के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल लंदन भी गया, परन्तु उसे भी सफलता नहीं मिली। इससे खिलाफत आंदोलन और तेज हो गया और करांची के अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि कोई भी मुसलमान ब्रिटिश सेना में भर्ती नहीं होगा और न ही अंग्रेजों को किसी प्रकार की सहायता देगा। सरकार ने भी अपना दमन चक्र शुरू किया। अली बन्धुओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इससे ब्रिटिश शासन के प्रति सर्वत्र रोष फैल गया। गाँधीजी ने अली बन्धुओं की गिरफ्तारी का विरोध किया और अपने असहयोग आन्दोलन की घोषणा कर दी।

असहयोग आन्दोलन (1919-1922 ई.) :

सरकार की गलत नीतियों के कारण ही असहयोग आंदोलन शुरू करना पड़ा। जबरदस्त जन विरोध होते हुए भी रोलेट एक्ट जैसे काले कानून को रद्द नहीं किया गया। पंजाब में नृशंस हत्याओं की क्षतिपूर्ति तो दूर रही, सरकार ने इस लोमहर्षक नरमेध पर दु:ख तक प्रकट नहीं किया। स्वशासन की माँग पर सरकार ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। खिलाफत आंदोलन की माँगों को तिरस्कार पूर्ण दृष्टि

से देखा गया। ऐसी स्थिति में गाँधीजी के पास असहयोग आंदोलन की रणभेरी बजाने के अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं था, परन्तु इसके लिए कांग्रेस का समर्थन जरूरी था। कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। इससे पहले ही भारतीय राष्ट्रवाद के जनक लोकमान्य तिलक का 64 वर्ष की अवस्था में एक अगस्त, 1920 को स्वर्गवास हो चुका था। अत: इस अधिवेशन में उनकी कमी बहुत अखरी, परन्तु उनकी स्वशासन की माँग को मनवाने का बीड़ा महात्मा गाँधी, देशबन्धु तथा पं. मोतीलाल नेहरू ने अपने कंधों पर ले लिया।

कलकत्ता अधिवेशन में असहयोग आंदोलन शुरू करने के प्रस्ताव को पारित कराने के लिए महात्मा गाँधी को एडी से चोटी तक का जोर लगाना पड़ा। मोतीलाल नेहरू तो पहले ही प्रस्ताव के पक्ष में थे। मालवीय जी तथा देशबन्धु जी को यह प्रस्ताव जचा नहीं परन्तु गाँधीजी के त्यागमय जीवन से प्रभावित होकर वे भी इसका डटकर विरोध न कर सके। प्रस्ताव के पक्ष में 1886 मत पड़े विपक्ष में 884। प्रस्ताव के पारित हो जाने से गाँधीजी की राजनैतिक पटुता स्पष्ट दिखाई देने लगी। प्रस्ताव में स्वशासन की बात जोड़ कर नरम पंथियों के हृदय को जीत लिया तो दूसरी ओर सरकार के साथ असहयोग की बात जोड़कर क्रांतिकारी देशभक्तों की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली। आंदोलन ऐसे समय छेड़ा गया कि खिलाफत आंदोलन के कारण मुसलमान भी विदेशी शासन से नाराज थे। अत: मुसलमानों का समर्थन भी सरलता से मिल गया, परन्तु अभी आंदोलन की पुष्टि मुख्य अधिवेशन में होनी थी।

नागपुर कांग्रेस अधिवेशन (दिसम्बर, 1920 ई.)

नागपुर अधिवेशन कांग्रेस के मूलभूत अधिवेशनों में माना जाता है। इसमें 14582 सदस्यों ने भाग लिया, जिनमें 1050 मुसलमान व 169 महिलाएँ थीं। अधिवेशन में असहयोग आंदोलन का उत्साह से समर्थन किया गया। पहले जो विरोध में थे, वे भी पक्ष में हो गए। देशबन्धु जी ने प्रस्ताव रखा और लाला जी ने इसका समर्थन किया। प्रस्ताव में निम्नलिखित बिन्दुओं का समावेश किया गया—

1. सरकारी उपाधियों तथा पदक लौटाना।
2. सरकारी दरबार तथा समारोह का बहिष्कार।
3. सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी स्कूल व कॉलेजों का बहिष्कार और उनके स्थान पर राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना।
4. अदालतों का बहिष्कार व पंचायतों की स्थापना।
5. विधान सभा एवं मतदान का बहिष्कार।
6. विदेशी माल का बहिष्कार।

इनके साथ ही महात्मा गाँधी ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी कि 'यदि सरकार न्यायपूर्ण माँगे नहीं मानती है तो जनता को यह अधिकार है कि वह असहयोग करके सरकार को ठप्प कर सकती हैं।



चितरंजनदास, एन.सी. केलकर, सत्यमूर्ति आदि 1920 के कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के समय

नागपुर में कांग्रेस को एक जन-प्रतिनधि संस्था बनाने के लिए इसके संविधान में आमूल-चूल परिवर्तन किया गया। कांग्रेस का नेतृत्व 15 सदस्यीय कार्यकारिणी समिति को सौंपा गया। इसे वर्किंग कमेटी कहा जाने लगा। इसका एक अध्यक्ष तथा दो महासचिव होते थे। महत्त्वपूर्ण निर्णय करने तथा दिशा निर्देश देना इसी का काम था, परन्तु इस पर महासमिति का अंकुश अवश्य था। महासमिति का निर्माण प्रान्तीय प्रतिनिधियों से होता था। इसकी संख्या लगभग 350 होती थी। प्रान्तीय महासमिति के लोग जिलों से तथा जिलों के प्रतिनिधि तहसील से, तहसील कांग्रेस का निर्माण ग्राम या देहात कांग्रेस के प्रतिनिधियों से होता था। इस तरह से कांग्रेस कुछ पढ़े लिखे लोगों का जमघट ही न रहकर वास्तविक जन-प्रतिनिधि संस्था बन गई थी। इसका सदस्यता शुल्क भी केवल 25 पैसे (चार आने) थी। 21 वर्ष या इससे ऊपर की आयु का कोई भी व्यक्ति सदस्य बन सकता था। बाद में आयु सीमा 18 वर्ष कर दी गई। कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने वाले महासमिति का चुनाव सदस्य संख्या के आधार पर होता था। 50 हजार पर एक प्रतिनिधि चुनकर आता था। इस तरह से कांग्रेस की पहुँच गाँवों

तक हो गई। 1923 के आते-आते तो ग्रामीण सदस्य संख्या शहरी सदस्य संख्या से दुगुनी हो गई। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों का गठन भाषायी आधार पर किया गया।

केवल संगठनात्मक ढाँचे में ही परिवर्तन नहीं किया, वरन् कांग्रेस को सामाजिक एवं आर्थिक क्रांति लाने के लिए अनेक रचनात्मक कार्यों से जोड़ा गया। खादी, ग्रामोद्योग, छुआछूत निवारण, मद्य निषेध एवं राष्ट्रीय शिक्षा जैसे कार्यक्रम अपने हाथ में लिए गए। हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग से शिक्षितों एव आम जनता के बीच की दीवार टूट गई। तिलक स्वराज कोष की स्थापना हुई। इसमें एक करोड़ रुपए के लक्ष्य से भी 15 लाख रुपए अधिक जमा हुए। महिलाओं ने बड़ी उदारता से गहने तक स्वराज्य कोष में दिए। संक्षेप में कांग्रेस गाँधीजी के नेतृत्व में एक मजबूत धर्म निरपेक्ष राजनैतिक दल बन गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने नागपुर अधिवेशन का वर्णन करते हुए लिखा है—"असहयोग आंदोलन की योजना से देश में नव-जीवन का संचार हुआ। नव चेतना से राष्ट्र का परमाणु मंत्र मुग्ध हो गया। देश में नवीन आशा व नवीन उत्साह की वायु जोर से बहने लगी। लोग स्वराज्य के सुख स्वप्न देखने लगे। राष्ट्रीयता का सूरज निकल आया।"

सन् 1921 का महान् असहयोग आन्दोलन :

सन् 1921 में देश में जैसी अपूर्व जागृति हुई वह भारत के इतिहास में एक अद्भुत घटना है। राष्ट्र प्रेम का मानो समुद्र उमड़ पड़ा। गाँधीजी के अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन ने इस विराट को जाग्रत कर इससे अपनी महान् शक्ति का भान करवाया। सदियों से पद दलित किसान व मजदूरों को अपने कष्टों की मुक्ति की नई दिशा मिली। बंगाल के मिदनापुर जिले में किसान अपने अधिकारों के लिए उठ खड़े हुए। उन्होंने कर बंदी का आंदोलन चलाया। पंजाब का किसान महन्तों के शोषण से मुक्ति पाने के लिए जाग उठा। उत्तर प्रदेश में जमींदारों व ताल्लुकदारों के विरुद्ध किसानों ने आवाज उठाई। विद्यार्थियों ने स्कूल व कॉलेज छोड़ दिए। मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु, सरदार पटेल व राजेन्द्र बाबू ने अपनी वकालत छोड़ दी। विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। खादी आजादी की प्रतीक बन गई।

आंदोलन का उग्र रूप :

आंदोलन को गति देने के लिए राष्ट्रीय सेवा दल की स्थापना हुई। अनेक युवक इसमें भर्ती हुए। सेवादल के सदस्य अपनी विशेष ड्रेस पहनते थे और मार्च करते हुए राष्ट्रीय गीतों का उच्चारण कर गाँव-गाँव में जागृति फैलाने लगे। बंगाल

में तो सेवादल के कार्यों से सरकार घबरा उठी। मजदूर तथा किसानों को तो असहयोग आंदोलन मानो अपनी मुक्ति का अमोघ शस्त्र मिल गया। जगह-जगह किसान अपने अधिकारों की रक्षा के लिए उठ खड़े हुए।

सिक्खों का सत्याग्रह :

ननकाना साहब गुरुद्वारे का महन्त भ्रष्टाचार में लिप्त था। किसानों द्वारा चढाई सारी भेंट-पूजा को अपने एशो आराम में खर्च करता था। अत: 1921 ई. में महन्त के खिलाफ भारी प्रदर्शन हुआ। 150 सिक्ख जब गुरुद्वारे में घुसे तो दरवाजे बन्द कर दिए गए और 100 सिक्खों को निर्दयतापूर्वक कत्ल कर दिया गया। इस जघन्य हत्याकाण्ड से सारे देश में क्रोध की लहर फैल गई। अकालियों के क्रोध का तो कोई पार भी नहीं था। यदि महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक आंदोलन के संदेश से प्रभावित न होते तो न मालूम कितना खून खराबा होता।

अगले वर्ष ही गुरु के बाग में अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सिक्खों ने अहिंसात्मक सत्याग्रह प्रारंभ किया। सरकार तथा महन्त के पिछलग्गू लोगों ने सत्याग्रहियों पर अनेक जुल्म ढाए, परन्तु सिक्ख लोग बापू की अहिंसा नीति पर डटे रहे। सिक्ख सत्याग्रहियों की प्रशंसा करते हुए महामना एन्ड्रूज ने लिखा है—"सैनिक मनोवृत्ति के मनुष्यों पर भी गाँधीजी ने अपने प्रेम तथा अहिंसा का कितना प्रभाव डाला?" अन्त में सत्याग्रहियों की विजय हुई और गुरुद्वारों का प्रबन्ध चुनी हुई कमेटी के हाथ में आ गया।

अवध में किसान आन्दोलन :

अवध में भी जमींदार तथा ताल्लुकदार किसानों पर अनेक प्रकार के जुल्म ढाहते थे। अनेक प्रकार के अनुचित कर लेते थे। अत: उन्होंने ताल्लुकदारों के विरुद्ध आवाज उठाना शुरू किया। अवध के किसानों का पहला धमाका प्रतापगढ़ में हुआ। दो सौ से अधिक किसान इलाहाबाद पंडित नेहरू के पास पहुँचे। पंडित जी किसानों की करुण गाथा से द्रवित हो उठे और उनके साथ प्रतापगढ़ चल पड़े वहाँ किसानों की दयनीय स्थिति को देखकर वे लिखते हैं—"मैं उनकी मुसीबतों को देखकर दु:ख व शर्म के मारे गड़ गया। दु:ख तो हिन्दुस्तान की जबरदस्त गरीबी और जिल्लत पर और शर्म मेरी आराम की जिंदगी पर और शहरों की न कुछ राजनीति पर।'

एक और जलियाँवाला काण्ड :

महात्मा गाँधी के असहयोग आंदोलन की घोषणा से किसानों में अद्भुत उत्साह का संचार हुआ और अब वे अपनी मुक्ति का रास्ता ढूँढ़ने लगे। अब तक वे अपने कष्टों को दैवी प्रकोप ही समझते थे। किसान ने नई अंगड़ाई लेना शुरू

कर दिया। बाबू जानकीदास, अमोलक शर्मा, कालीप्रसाद आदि नेताओं के नेतृत्व में तीन हजार से अधिक किसानों का एक जुलूस चंदनिहा पहुँचा। ताल्लुकेदार साहब की कोठी घेर ली। ताल्लुकदार के आग्रह पर पुलिस आ पहुँची और निहत्थे किसानों पर गोलियाँ चला दीं। अनेक किसान घायल हुए। किसान नेता बन्दी बनाए गए।

इससे भी भयंकर मुन्शीगंज का गोली काण्ड था। रायबरेली के निकट मुन्शीगंज में किसान गोली काण्ड का विरोध करने तथा अपने नेताओं की रिहाई के लिए इकट्ठे हुए थे। प्रदर्शन शांतिमय था, परन्तु पुलिस तथा सेना ने किसान समूह को चारों ओर से घेर लिया। यहाँ की स्थिति जलियाँवाले बाग जैसी हो गई। एक ओर सई नदी की धारा थी, पुल पर बैलगाड़ियों की कतार लगा कर रास्ता रोक दिया गया था। पुल के इस पार सशस्त्र सेना खड़ी थी। नदी के उस पार किसानों का अपार जन समूह था। पीछे की ओर रेलवे फाटक था। सड़क व रेल पटरी के मध्य त्रिकोणात्मक स्थान किसानों का जमाव स्थल था, जिनके भागने का कोई ठिकाना नहीं था। इस भीड़ में बाबू किस्मतराय उसी प्रकार भाषण कर रहे थे जैसे जलियाँवाले बाग में हंसराज।

पण्डित नेहरू भी किसानों से मिलकर उन्हें शांत करना चाहते थे, परन्तु उन्हें तथा उनके साथी मार्तण्ड को किसानों से मिलने नहीं दिया गया। अकारण ही शांत किसान जन समूह पर अँधाधुँध गोली वर्षा होने लगी। सई नदी की रेत लहुलुहान हो गई। नदी का पानी लाल हो गया। रातों रात लाशें फौजी ट्रक में भरकर 'डलमऊ' भेज दी गईं। उन्हें सामूहिक रूप से रेत में गाड़ दिया गया। इस लोम हर्षक हत्याकाण्ड की चारों ओर निंदा होने लगी। पंडित नेहरू ने मुन्शीगंज हत्याकाण्ड के बारे में अपनी आत्म-कथा में उल्लेख किया है—"ब्रिटिश साम्राज्य अपनी खतरनाक हरकतें जारी रखे हुए है। अभी जलियाँवाले बाग के नरमेध को तो हम भूल भी न पाये हैं कि मुन्शीगंज में फिर किसानों के खून से होली खेली गई। उनके खून से सई नदी के किनारे सुर्ख बन गए। पानी लाल हो गया।"

तमिलनाडु तथा आन्ध्र में किसान आन्दोलन :

सन् 1921 के मध्य तक किसान आंदोलन की लपटें सारे देश में फैल गईं। गुंटूर के दुग्गिराला गोपालकृष्ण के नेतृत्व में जो किसान आंदोलन हुआ वह सबकी आँखें खोल देने वाला था। नगरपालिका के करों का विरोध करने के लिए चिराला के सारे लोग नई बस्ती बनाने के लिए बाहर निकल आये। बेजवाड़ा में तो एक समानान्तर समिति ही शासन संचालन के लिए बना ली गई। पेद्दानदिपाड़ के सभी ग्राम अधिकारियों ने त्याग-पत्र दे दिया। 95 प्रतिशत किसानों ने लगान देने से मना कर दिया। गुंटूर, कृष्णा, गोदावरी जिलों में कर

न अदा करने का फैसला किया गया। पालनाडा में चराई कर देने से मना कर दिया गया।

अन्य किसान आन्दोलन :

बिहार में छोटा नागपुर के किसानों ने 'ताना भगत' आंदोलन के माध्यम से लगान बंदी की घोषणा कर दी। उड़ीसा में कणिका राज्य के किसानों ने करों की अदायगी रोक दी। उत्तरी केरल में 'मोपला' जाति के किसानों ने जमींदारों की ज्यादतियों का मुँह तोड़ जवाब दिया। मोपला किसान आंदोलन तो इतना प्रबल था कि एर्नाट तथा बल्लभनाद ताल्लुक्रों में तो विदेशी शासन की सत्ता को समाप्त कर किसानों ने अपना शासन ही जमा लिया, जिसके प्रधान स्थानीय मुस्लिम नेता मुसलिआर और बाद में कुनीअहमद हाजी थे। अन्त में सेना तथा पुलिस ने निर्मम अत्याचार कर आंदोलन को दबा दिया। अनेक मोपला देशभक्त वीर गति को प्राप्त हुए।

मजदूरों का योगदान :

मजदूरों ने असहयोग आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। मई, सन् 1921 के असम के चाय बागानों को एक विशाल हड़ताल ने ठप्प कर दिया। इस हड़ताल में बारह हजार मजदूरों ने भाग लिया। इससे पहले बम्बई में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (ऐटक) की स्थापना हो चुकी थी जिसके अध्यक्ष लाजपतराय चुने गए। असहयोग आंदोलन के दौरान लगभग चार सौ हड़तालें हुई जिनमें सबसे बड़ी बम्बई की मजदूर हड़ताल थी। यह प्रिंस ऑफ वेल्स के स्वागत समारोह के बहिष्कार के रूप में की गई।

प्रिंस ऑफ वेल्स का बहिष्कार :

ब्रिटिश सरकार का अनुमान था कि भारत की जनता शुरू से ही राजभक्त रही है। अत: प्रिंस ऑफ वेल्स की भारत में उपस्थिति से क्षुब्ध वातावरण कुछ शांत हो जाएगा। अत: 17 नवम्बर 1921 को युवराज बम्बई उतरे। कांग्रेस कार्यकारिणी ने युवराज का स्वागत न करने का निर्णय लिया। इसके फलस्वरूप बम्बई में जबरदस्त हड़ताल हुई। विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। समुद्र तट पर विशाल सभा का आयोजन हुआ, परन्तु भीड़ के अनियंत्रित होने पर पुलिस ने गोली चला दी। 53 व्यक्ति मारे गए। महात्मा जी को इस घटना से बड़ा दु:ख हुआ।

कलकत्ता में बहिष्कार आंदोलन अधिक व्यापक एवं सफल रहा। राष्ट्रीय सेवादल के स्वयं सेवकों ने अभूतपूर्व उत्साह दिखाया। सारे बाजार बन्द रहे। 'स्टेट्स मैन' अखबार ने तो यहाँ तक लिख दिया कि 'कलकत्ता पर कांग्रेस स्वयं सेवकों का कब्जा हो गया।' सरकार भी दमन चक्र में पीछे नहीं रही। कांग्रेस

स्वयं सेवक मण्डल को अवैध घोषित कर दिया गया, परन्तु दमन नीति ने आग में घी का काम किया। बंगाली युवकों में देशप्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। सारा बंगाल आंदोलन के लिए तैयार हो गया। आंदोलन का नेतृत्व देशबन्धु ने संभाला। फिर क्या था? गिरफ्तारियों का ताँता लग गया। देशबन्धु की पत्नी तथा उनकी बहिन उर्मिला देवी ने अनेक महिलाओं के साथ अपनी गिरफ्तारी दी। देशबन्धु के पुत्र पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। मजदूर व छात्रों ने गिरफ्तारी के लिए स्वयं सेवकों में भारी मात्रा में अपने नाम लिखवाए। कलकत्ता के दो बड़े जेल खाने भर गए। अनेक शिविर जेल कायम की गई। वे भी भर गईं। 10 दिसम्बर, सन् 1921 को देशबन्धु को उनके अनेक साथियों के साथ बन्दी बना लिया गया। इस घटना से सारे देश में क्रोध की लहर छा गई और सत्याग्रह ने अधिक जोर पकड़ लिया।

अहमदाबाद कांग्रेस :

देश के इस उत्तेजना पूर्ण वातावरण में अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। लोगों में सत्याग्रह के लिए अपूर्व उत्साह था। देशबन्धु अध्यक्ष चुने गए, परन्तु उनके जेल में होने से हकीम अजमल खाँ ने अध्यक्ष के आसन को सुशोभित किया। इस अधिवेशन में समस्त देश को सत्याग्रह में उत्साह से भाग लेने के लिए कहा गया। अधिक से अधिक स्वयं सेवक बनकर सरकार के अन्यायपूर्ण कानून को तोड़कर जेलें भर दें। सत्याग्रह की कमान महात्मा गाँधी को सौंप दी गई। इसी अधिवेशन में सुप्रसिद्ध मुस्लिम नेता हसरत मोहानी ने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव रखा, परन्तु महात्मा गाँधी के विरोध के कारण यह प्रस्ताव पारित न हो सका। महात्मा गाँधी धीरे-धीरे आगे बढ़ने के पक्ष में थे। बम्बई की हिंसक घटनाओं से उनका मन बड़ा दु:खी था।

इधर सरकार भी असहयोग आंदोलन को विफल करने के लिए पूरी तरह से तुली हुई थी। कांग्रेस सेवा दल व खिलाफत कमेटी गैर-कानूनी घोषित कर दिए गए। अली बन्धु, देशबन्धु, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, गोप बन्धु दास, जवाहरलाल नेहरू आदि सबके सब जेल में बन्द कर दिए गए। गाँधीजी इन घटनाओं से बड़े दु:खी थे। उनको इस बात की चिंता थी कि शहरों में अहिंसात्मक आंदोलन अधिक सफल नहीं हो पा रहा था। शहरी देशभक्तों का जोश नियंत्रित नहीं हो पा रहा था। अत: गाँधीजी आंदोलन को गाँवों की ओर ले जाने का विचार करने लगे। इसी संदर्भ में उन्होंने पहले फरवरी, सन् 1922 को वायसराय को चुनौती देते हुए लिखा—

'यदि सात दिन में सभी राजनीतिक कैदी न छोड़े गए और प्रेस को सरकारी नियंत्रण से मुक्त नहीं किया गया तो वे कर बन्दी सहित सविनय अवज्ञा आंदोलन बड़े पैमाने पर शुरू करेंगे।'

बारदोली सत्याग्रह :

महात्मा गाँधी ने एक माह तक सभी परिस्थितियों का अध्ययन कर बहुत ही सोच समझकर गुजरात राज्य के बारदोली तालुके को कर बन्दी आन्दोलन के लिए चुना। यहाँ सरदार पटेल के नेतृत्व में किसानों का संगठन काफी मजबूत था जो हर परिस्थिति का सामना करने की क्षमता रखता था। अन्य प्रान्तों में भी शांतिपूर्ण सविनय अवज्ञा आंदोलन की स्वीकृति दी जा चुकी थी। सारे भारत में अमीरों से लेकर गरीबों की झोंपड़ी तक स्वतन्त्रता की भावना फैल चुकी थी। सर्वत्र आंदोलन के लिए अद्भुत उत्साह दिखाई दे रहा था। इसी बीच उत्तर प्रदेश में चौरी चौरा गाँव में हिंसक घटना के कारण गाँधीजी ने आंदोलन को एकदम स्थगित कर दिया।

चौरी चौरा काण्ड :

बारदोली सहित अनेक स्थानों पर कर बन्दी आंदोलन तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन से लोगों में भारी जोश था। इसी बीच उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के चौरी चौरा गाँव में तीन हजार किसानों ने विशाल प्रदर्शन किया। जुलूस पूरी तरह से शांत था, परन्तु 5 फरवरी को पुलिस ने किसानों पर अकारण ही गोली चला दी। इससे भीड़ उत्तेजित हो गई और उसने पुलिस थाने पर धावा बोल दिया और 22 पुलिस कर्मियों को जिन्दा जला दिया। गाँधीजी ने इस घटना को गंभीरता से लिया और विचार किया कि अभी देश अहिंसात्मक आंदोलन के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं है। उनकी दृष्टि में हिंसा किसी तरह से क्षम्य नहीं है। जनता के साथ सरकार भी आवेश में आएगी। परिणामस्वरूप दोनों ओर से हिंसा का ताण्डव नृत्य होगा जो उनके अहिंसात्मक सत्याग्रह के बिल्कुल विपरीत है।

बारदोली प्रस्ताव :

चौरी चौरा काण्ड के कारण कांग्रेस के भावी कार्यक्रम पर विचार करने के लिए 12 फरवरी, 1922 ई. बारदोली में कांग्रेस कार्यकारिणी की एक आवश्यक बैठक हुई। इसमें निर्णय लिया गया कि कर बन्दी व सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित किया जाता है। कांग्रेसजन अब रचनात्मक कार्यों में लगेंगे।

इस प्रस्ताव ने देश को आश्चर्य में डाल दिया। देशभक्तों को आंदोलन के स्थगन से बहुत ही दुःख हुआ। कांग्रेस के युवा नेता सुभाषचन्द्र बोस ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन स्ट्रगल' में इसका उल्लेख करते हुए लिखा है—

'ठीक उस समय जब जन उत्साह अपनी पराकाष्ठा पर था, पीछे हटने का आदेश देना राष्ट्रीय विपत्ति से कुछ कम नहीं था। गाँधीजी के प्रधान सहयोगी देशबन्धु, मोतीलाल नेहरू जो सब जेल में थे जनता की नाराजगी से सहमत थे। मैं

उस समय देशबन्धु के साथ था और मैंने देखा कि महात्मा गाँधी ने जिस तरह बार-बार घपला किया, उस पर वे क्रोध तथा दु:ख के कारण आपे से बाहर थे।" जवाहरलाल नेहरू ने भी जो उस समय जेल में थे स्वतन्त्रता संग्राम को इस तरह रोक देने पर बड़ा दु:ख प्रकट किया, परन्तु गाँधीजी के त्यागमय जीवन के कारण किसी ने सार्वजनिक रूप से इसका विरोध नहीं किया और बारदोली प्रस्ताव को मान लिया।

गाँधीजी की गिरफ्तारी :

सरकार को गाँधीजी की अपार शक्ति का बोध हो गया था। जनता पर उनका अथाह प्रभाव था। कहीं अन्य भावी आंदोलन की रूपरेखा न बना ली जाए। अत: 10 मार्च, 1922 ई. को गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया तथा उन पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया। गाँधीजी ने अभियोग को स्वीकार करते हुए जो बयान दिया वह भारतीय इतिहास का ऐतिहासिक दस्तावेज बन गया। उन्होंने कहा—"बुराई के साथ असहयोग करना उतना ही बड़ा कर्त्तव्य है, जितना अच्छाई के साथ सहयोग। वस्तुत: ब्रिटिश शासन ने अपने दलालों की मार्फत भारतीय जनता को पीस डाला। उसकी समस्त शक्ति चूस कर उसे कंकाल मात्र बना दिया। ऐसी स्थिति में सरकार से असहयोग करना मेरा कर्त्तव्य है।"

न्यायाधीश ब्रूमफिल्ड ने यह मानते हुए कि "आप महान् देशभक्त तथा अपने देशवासियों के आराध्य देव हैं, परन्तु अदालत की दृष्टि में आपने कानून तोड़ा है और उसे आपने स्वीकार भी किया है। अत: आपको छ: वर्ष की उसी प्रकार की सजा दी जाती है जो लोकमान्य तिलक को 1908 में दी गई थी।"

आन्दोलन का मूल्याँकन :

ऊपर से देखने में तो प्रथम असहयोग आंदोलन पूरी तरह से असफल रहा। सरकार से कुछ भी प्राप्त नहीं हो सका, परन्तु इसके दूरगामी परिणाम अवश्य निकले। इस आंदोलन स किसानों में आत्म-विश्वास का संचार हुआ जो किसान व मजदूर अपने कष्टों को पीते रहते थे। वे सरकार की अनुचित आज्ञा को भी लोहे की लकीर मानते थे। उनमें निर्भीकता एवं अपने कष्ट को सार्वजनिक रूप से प्रकट करने की शक्ति पैदा हुई। सत्याग्रह ने उनको संगठित कर दिया। इससे पहले वे बिखरे बिखरे विपदाओं को ईश्वरीय देन समझ कर सहन करते रहते थे। इस आंदोलन ने संगठन शक्ति के महत्त्व को लोगों के सामने रखा और यह अनुभव करा दिया कि अपने कष्टों की मुक्ति संगठन शक्ति पर निर्भर है। इससे जनता में जुझारू मनोवृत्ति का विकास हुआ।

वास्तव में यह एक प्रयास था अंतिम नहीं। किसानों के संगठन के कारण जमींदार तथा ताल्लुकेदार भी अब फूँक-फूँक कर कदम रखने लगे। उनका दु:साहस कम हुआ। राजनैतिक चेतना तथा देश प्रेम जाग्रत करने में आन्दोलन का अच्छा योगदान रहा। असहयोग आन्दोलन देश व्यापी होने के कारण राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।

रचनात्मक क्षेत्र में तो इस आंदोलन ने अच्छी सफलता प्राप्त की। खादी का संदेश गाँव-गाँव तक फैल गया। गाँवों में 20 लाख से भी अधिक चर्खे चलने लगे। स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से लोगों को रोजगार मिलने लगा और देश प्रेम की भावना बढ़ने लगी। छुआछूत, मदिरा पान जैसी बुराइयों के विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा। लोगों में सेवा भावना का विकास हुआ। भारतीय सभ्यता, संस्कृति व शिक्षा का प्रसार होने लगा।

इसी तरह से खिलाफत आंदोलन से भी एकता की भावना जोर पकड़ने लगी। यद्यपि तुर्की के खलीफा के अधिकारों की रक्षा के लिए यह आंदोलन शुरू हुआ, परन्तु यह प्रतीक मात्र था। वास्तव में मुसलमान भाइयों को भी विदेशी शासन से वैसी ही घृणा थी जैसी कि हिन्दू लोगों को, क्योंकि ब्रिटिश शासन के शोषण की शिकार दोनों जातियाँ थीं। जब तुर्की के नव-जागरण के समय कमाल पाशा ने खलीफा पद ही समाप्त कर दिया तब यहाँ के मुसलमानों ने खलीफा के लिए कोई आवाज नहीं उठाई। इससे स्पष्ट है कि खिलाफत आंदोलन के पीछे भी विदेशी शासन का अन्याय ही था।

स्वराज्यवादी :

यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि असहयोग आंदोलन के स्थगन से भारतीय राजनीति में निराशा का वातावरण छा गया। जब निराशा आ जाती है तो विघटन व दिशाहीनता को भी अपने साथ ले आती है। ऐसी स्थिति कांग्रेस में 'गया' अधिवेशन में देखने को मिली।

गया कांग्रेस में देशबन्धु तथा मोतीलाल नेहरू इस मत के थे कि हमें देश काल की परिस्थिति के अनुसार नागपुर अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में कुछ परिवर्तन करना चाहिए और हमें विधान सभाओं का बहिष्कार समाप्त कर, चुनावों द्वारा उनमें प्रवेश कर, सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए लड़ना चाहिए, परन्तु कांग्रेस में एक गुट ऐसा भी था जो विधान परिषदों में प्रवेश को अनुचित मानता था। उनका कहना था कि विधायी राजनीति राष्ट्रवादी जोश को कम करेगी, नेताओं में कुर्सी के लिए प्रतिद्वन्द्विता पैदा करेगी, जनता में सरकार के साथ असहयोग करने के स्थान पर सहयोग की भावना बढ़ेगी। अत: हमें अपनी सारी शक्ति रचनात्मक कार्यों में लगा देनी चाहिए। इस प्रकार की विचारधारा के

प्रतिपादक चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल व डॉ. अन्सारी मुख्य रूप से थे। महात्मा गाँधी उस समय जेल में थे, परन्तु वे भी विधायी राजनीति के पक्ष में नहीं थे।

इधर परिवर्तनवादी भी अपनी बात पर अड़े रहे, परन्तु बहुमत अपरिवर्तनवादियों के साथ था। अतः गया कांग्रेस में देशबन्धु के अध्यक्ष होते हुए भी उनका विधान-परिषद प्रवेश का प्रस्ताव गिर गया। अतः उन्होंने त्याग-पत्र देकर नये दल के गठन की घोषणा कर दी। इस नये 'स्वराज्यदल' के अध्यक्ष देशबन्धु बने तथा सचिव मोतीलाल नेहरू। विट्ठल भाई पटेल, मालवीय, जयकर आदि भी इस नये दल में शामिल हो गए। नये दल का कांग्रेस से केवल कौंसिल प्रवेश तक का ही मतभेद था। शेष बातों में वे कांग्रेस की नीतियों में पूर्ण विश्वास रखते थे।

महात्मा गाँधी कांग्रेस में इस प्रकार की फूट पसन्द नहीं करते थे। अतः उन्होंने तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना मोहम्मद अली को संकेत दिया कि दोनों पक्षों में मेल मिलाप का प्रयास करें। फिर क्या था? 1923 ई. के दिल्ली अधिवेशन में दोनों पक्षों में समझौता हो गया। इसके अनुसार व्यक्तिगत रूप से कांग्रेस सदस्यों को चुनाव में भाग लेने की स्वीकृति मिल गई, परन्तु कांग्रेस दल के रूप में चुनाव में भाग नहीं लेगा।

यद्यपि समय तो बहुत कम था, परन्तु स्वराज्यवादियों ने चुनाव में अच्छी सफलता प्राप्त की। केन्द्रीय धारा सभा में 101 में से 42 स्थान प्राप्त किए। बंगाल तथा मध्य प्रदेश में भी अच्छी सफलता मिली। अन्य भारतीय गुटों से मिलकर उन्होंने केन्द्रीय असेम्बली में एक राष्ट्रवादी मोर्चा बना लिया। इस मोर्चे ने सभी राजनीतिक बन्दियों की रिहाई, दमनकारी कानूनों की समाप्ति तथा प्रान्तीय स्वायत्तता की माँग रखी। उत्तरदायी शासन की स्थापना पर विचार करने के लिए जल्दी ही गोलमेज सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव रखा। साथ में यह धमकी भी दी गई कि यदि उनकी माँगें नहीं मानी गई तो वे आपूर्ति बजट का विरोध करके सरकार ठप्प कर देंगे। स्वराज्यवादी दल की मुख्य-उपलब्धि यह थी कि उन्होंने अपने दल के सदस्य विट्ठल भाई पटेल को केन्द्रीय असेम्बली का अध्यक्ष निर्वाचित करवा दिया था। आचार्य जावेदकर के अनुसार, "धारा सभा में अडँगा नीति, बाहर रचनात्मक संगठन, अन्त में सत्याग्रह जैसा तिहरा बल दल के पास था।"

जनवरी, 1924 ई. में महात्मा गाँधी आंत्र शोध की बीमारी के कारण रिहा कर दिए गए। ऑपरेशन के बाद कुछ दिन वे 'जुहू' (बम्बई) विश्राम के लिए रहे।

मोतीलाल नेहरू तथा देशबन्धु दास उनसे मिलने गए और महात्मा जी को पूरा आश्वासन दिया कि यदि सरकार ने उनके सुझावों पर ध्यान नहीं दिया तो वे विधान सभाओं का बहिष्कार कर बाहर आ जाएँगे। आगे चलकर बेलगाँव अधिवेशन में अपरिवर्तनवादी तथा परिवर्तनवादियों में समझौता हो गया। दोनों दल एक हो गए। इस अधिवेशन के अध्यक्ष स्वयं गाँधीजी थे। महात्मा गाँधी पुनः सत्याग्रह की रूपरेखा पर देशबन्धु दास से विचार विमर्श करने के लिए कलकत्ता गए, परन्तु 1925 ई. में देशबन्धु चितरंजन दास का देहान्त हो गया। उनके देहान्त से राष्ट्रवादी शक्तियों की अपार क्षति हुई।

निराशाजनक वातावरण (1922-1928 ई.) :

प्रथम असहयोग आंदोलन के स्थगन के बाद देश में निराशा का वातावरण छा गया। क्रांतिकारी संगठनों ने इसलिए शांति रखी थी कि कांग्रेस ने विदेशी शासन के विरुद्ध लड़ाई तो छेड़ दी है, चाहे वह अहिंसात्मक आन्दोलन ही क्यों न हो, परन्तु बिना किसी उपलब्धि के जब यह लड़ाई बन्द कर दी गई तो क्रांतिकारियों ने अपने हथियार संभाले।

आंदोलन के स्थगन से राष्ट्रवादी शक्तियाँ भी निष्क्रिय होने लगीं। फलस्वरूप विघटनकारी शक्तियाँ उभरने लगीं। श्रीमती एनीबेसेन्ट, मुहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस की उग्रवादी नीति के कारण इससे पहले ही किनारा कर चुके थे। मालवीय जी आदि भी कांग्रेस की नीति स्पष्ट न होने के कारण हिन्दू संगठनों को मजबूत करने लग गए। दूसरे अंग्रेजों के प्रोत्साहन पर मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने अपना ताण्डव नृत्य शुरू कर दिया। जगह-जगह भीषण दंगे हुए। देश भयंकर अंधकार में डूबा जा रहा था। महात्मा गांधी इन सब बातों से वड़े दुःखी थे। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता का पुनः प्रयास किया। दोनों संप्रदायों में सद्भाव पैदा करने के लिए उन्होंने सितम्बर, 1924 ई. में मौलाना मोहम्मद अली के दिल्ली स्थित मकान पर 21 दिन का उपवास भी किया। सर्वदलीय सम्मेलन भी बुलाया गया, परन्तु कुछ भी परिणाम नहीं निकला। अन्त में निराश हो गाँधीजी को कहना पड़ा 'मेरी एक मात्र आशा प्रार्थना तथा प्रार्थना के उत्तर में निहित है।'

आशा की नयी किरण :

पुराने नेता आपसी मनमुटाव एवं विवादों में लगे हुए थे। ऐसी स्थिति में कांग्रेस के युवा नेताओं ने जनता में नई जागृति पैदा की। उन्होंने केवल सत्ता परिवर्तन में ही अपना विश्वास प्रकट नहीं किया वरन् शोषणविहीन समाजवादी समाज की रचना का नया नारा दिया। किसान तथा मजदूरों की तकलीफों के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट की। युवा नेता सुभाषचन्द्र बोस तथा जवाहरलाल

नेहरू ने सारे देश का दौरा करके युवा शक्ति को संगठित किया। कांग्रेस में भी इन युवा नेताओं ने औपनिवेशिक स्वराज्य के स्थान पर पूर्ण स्वराज्य की आवाज उठाई। इन युवा नेताओं के परिश्रम से युवा शक्ति अंगड़ाई भरने लगी। स्थान-स्थान पर विद्यार्थी संगठनों की स्थापना हुई। बंगाली युवा छात्रों का एक विराट सम्मेलन सुभाष बाबू के प्रयास से अगस्त, 1928 ई. में कलकत्ता में आयोजित हुआ जिसकी अध्यक्षता युवा नेता जवाहरलाल नेहरू ने की। दिसम्बर, 1928 ई. में आल इण्डिया यूथ कांग्रेस का जलसा हुआ। युवकों का रुझान समाजवाद की ओर अधिक था। वे औपनिवेशिक स्वराज्य से संतुष्ट नहीं थे। सुभाष बाबू तथा पं. नेहरू के प्रयास से ही 1927 के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य की माँग रखी गई।

किसान तथा मजदूरों में युवा शक्ति ने नव-जीवन का संचार किया। उत्तर प्रदेश में काश्तकारी कानून में संशोधन के लिए बड़ा भारी आंदोलन शुरू हुआ। किसान लगान में कमी, बेदखली पर रोक तथा ऋणों में राहत की माँग कर रहे थे। गुजरात में भू-राजस्व बढ़ाने का सरकारी प्रयास का विरोध होने लगा। इसी प्रसंग में ऐतिहासिक बारदोली सत्याग्रह पुनः शुरू हुआ।

बारदोली सत्याग्रह :

यह हम देख चुके हैं कि उत्तर प्रदेश में चौरी चौरा काण्ड के कारण बारदोली सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित करना पड़ा। सन् 1928 ई. में बारदोली में फिर से कर बन्दी का सत्याग्रह आयोजित किया गया। इस सत्याग्रह संग्राम के मुख्य सेनापति बल्लभ भाई पटेल थे।

बम्बई सरकार ने अगले तीस वर्ष के बन्दोबस्त में राजस्व कर बढ़ा दिया था। बारदोली क्षेत्र में यह कर तीस प्रतिशत तक बढ़ गया। सरकार के इस मनमाने निर्णय को बारदोली के किसानों ने चुनौती देने की ठान ली। महात्मा गाँधी ने किसानों को आशीर्वाद प्रदान किया और बल्लभ भाई ने इसकी कमान संभाली। महादेव देसाई ने अपनी 'स्टोरी ऑफ बारदोली' नामक पुस्तक में इस आन्दोलन का सजीव चित्रण किया है—

'बल्लभ भाई पटेल ने बारदोली ताल्लुके का सांगो-पांग और सुन्दर संगठन किया। सत्याग्रह के सोलह शिविर कायम किए गए। प्रत्येक में 250 स्वयं सेवक लोक जागृति एवं सेवा का कार्य करते थे। किसान पूर्ण रूप से अहिंसक रहकर अपनी गिरफ्तारियाँ दे रहे थे। स्त्री, पुरुष, बाल, युवा, वृद्ध सभी ने इस आंदोलन में उत्साह से भाग लिया। किसान शक्ति के सामने सरकार को घुटने टेकने पड़े। बम्बई के राज्यपाल ने कर वृद्धि की जाँच के लिए एक कमीशन बैठाया। कमीशन

ने तीस प्रतिशत कर वृद्धि को अनुचित बताया और केवल सवा छः प्रतिशत कर वृद्धि का सुझाव दिया।'

किसानों की इस विजय से सर्वत्र हर्ष छा गया। गाँधीजी ने इस विजय पर बल्लभ भाई को 'सरदार' की उपाधि दी। श्रीमती सरोजनी नायडू ने इस अवसर पर गाँधीजी को बधाई देते हुए लिखा "बारदोली सत्याग्रह अपने आप में एक महान् उपलब्धि है। इसने सत्याग्रह की अमोघ शक्ति को सत्य सिद्ध कर दिया। आपका स्वप्न पूरा हुआ।"

मजदूरों में भी अपने अधिकारों की रक्षा के लिए चेतना प्रारम्भ हुई। 1927-28 के दौरान अनेक हड़तालें हुईं। खड़गपुर के रेलवे वर्कशाप में दो माह लंबी हड़ताल चली। दक्षिण भारत रेल मजदूरों ने भी हड़ताल की। जमशेदपुर में टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी में हड़ताल हुई। सुभाष बाबू के बीच बचाव से यह हड़ताल टूटी। बम्बई की कपड़ा मिलों में डेढ़ लाख मजदूरों में समाजवादी तथा साम्यवादी विचारों का जन्म हुआ। मानवेन्द्रनाथ राय (एम.एन.राय) ने इन विचारों को आगे बढ़ाया। आगे चलकर इस दल को भी सरकारी दमन का शिकार होना पड़ा।

किसान तथा मजदूरों की उथल-पुथल से सरकार का चिन्तित होना स्वाभाविक था। अत: असंतोष को दूर करने के लिए शासन सुधारों की संभावना पर विचार करने के लिए सात सदस्यीय कमीशन की स्थापना हुई। इस कमीशन के अध्यक्ष 'साइमन' नामक एक अंग्रेज थे। इसमें एक सदस्य भी भारतीय नहीं था। अत: कांग्रेस ने इस कमीशन के बहिष्कार का निश्चय किया।

साइमन कमीशन का बहिष्कार :

कमीशन में एक भी सदस्य भारतीय नहीं था। भारत के लोगों ने इसे हास्यास्पद ही समझा कि विदेशी इस बात पर विचार करेंगे कि भारतीय स्वराज्य के लायक हैं या नहीं। दूसरे शब्दों में यह कमीशन भारत के आत्म-निर्णय के अधिकार की अवहेलना तथा उसके आत्म-सम्मान पर सीधी चोट थी। कोई भी स्वाभिमानी नागरिक इसे कैसे सहन कर सकता था? अत: इसका विरोध करने की जबरदस्त लहर भारत में उठ खड़ी हुई।

सन 1927 के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में डॉ. अन्सारी की अध्यक्षता में कांग्रेस ने 'हर रूप तथा हर चरणों में इसका विरोध करने का निश्चय किया। हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग तथा सुधारवादी राष्ट्रवादियों ने भी एक जुट होकर विरोध प्रदर्शन का निश्चय किया। किसान मजदूर तथा नव जाग्रत युवा शक्ति ने इस बहिष्कार में बड़े उत्साह से भाग लिया। एक बार पुन: राष्ट्रीय भावना सजीव हो उठी।



मद्रास में साइमन कमीशन के खिलाफ़ प्रदर्शन

तीन फरवरी, 1928 को जब आयोग बम्बई में उतरा तो उसे एक विशाल विरोध प्रदर्शन का सामना करना पड़ा. जिसमें लोग काले झण्डे व साइमन वापिस जाओ की तख्तियाँ लिए हुए थे। पचास हजार लोगों की सभा में सरकार के इस कदम की निन्दा की गई। लखनऊ, मद्रास, कलकत्ता सर्वत्र इसे काले झण्डे दिखाये गए। पजाब में लाहौर पहुँचने पर लाजपतराय के नेतृत्व में एक विशाल प्रदर्शन हुआ। सरकार ने डण्डे बरसा कर अपनी बर्बरता का परिचय दिया। लाला जी इसमें बुरी तरह से घायल हो गए और 15 दिन बाद ही इन चोटों से उनका स्वर्गवास हो गया। जिसका बदला भारतीय युवकों ने लाहौर के उप-पुलिस अधीक्षक सांडर्स को गोली मारकर लिया।

नेहरू रिपोर्ट :

साइमन कमीशन के विरोध ने लोगों में नये उत्साह एवं एकता का संचार किया। भारतीय नेताओं ने सोचा कि कमीशन के बहिष्कार तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। वरन् हमें विधान निर्माण का कार्य शुरू कर कमीशन का प्रत्युत्तर देना चाहिए। इस उद्देश्य से पहले दिल्ली तथा बाद में पूना में सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए एक समिति की स्थापना की गई जिसके अली इमाम, तेज बहादुर सप्रू व सुभाष बाबू सदस्य थे। समिति ने अगस्त, 1928 ई. में अपनी रिपोर्ट पेश की जिसे नेहरू रिपोर्ट कहा जाता है।

इस रिपोर्ट में कहा गया कि भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना हो। भाषायी प्रान्तों तथा प्रान्तीय स्वायत्तता पर आधारित एक संघीय इकाई हो तथा विधान मण्डलों में दस वर्ष के लिए धार्मिक अल्प संख्यकों के लिए स्थानों का आरक्षण हो। दिसम्बर, 1928 को कलकत्ता में सम्पन्न द्वितीय सर्व दलीय सम्मेलन ने नेहरू रिपोर्ट को मंजूर नहीं किया। मुस्लिम लीग का राष्ट्रवादी गुट तो रिपोर्ट के पक्ष में था, परन्तु जिन्ना साहब ने अपनी 'चौदह सूत्री' माँग पेश की जिसमें पृथक् निर्वाचन क्षेत्र, केन्द्रीय विधान मण्डल में मुसलमानों के लिए एक तिहाई स्थानों का आरक्षण, बंगाल तथा पंजाब में जनसंख्या के आधार पर विधान परिषदों में सीटों का आरक्षण तथा अवशिष्ट शक्तियाँ प्रान्तों को देने जैसी बातें शामिल थीं। हिन्दू महासभा ने रिपोर्ट को मुस्लिम परस्त कह कर ठुकरा दिया। इस तरह से राष्ट्रीय एकता के प्रयास को साम्प्रदायिक गुटों ने आग लगा दी। कांग्रेस में युवा लोग भी औपनिवेशक स्वराज्य से संतुष्ट नहीं थे।

मूल्यॉंकन :

वास्तव में नेहरू रिपोर्ट में एकता के सभी बिन्दुओं का समावेश था। राज्यों में तथा केन्द्र में पूर्ण उत्तरदायी शासन की व्यवस्था थी, परन्तु मुसलमान भाइयों को बहुसंख्यक लोगों के हावी होने का डर सता रहा था। इस अनावश्यक भय को विदेशी शासन ने हवा प्रदान की, क्योंकि उसकी नीति फूट डालो व राज करो की थी। गहराई से देखा जाए तो राष्ट्रीय एकता के लिए मुसलमान भाइयों के लिए स्थान छोड़ना कोई बुरी बात नहीं थी। इस भूल को आगे चलकर महसूस भी किया गया। इस सम्बन्ध में मौलाना आजाद साहब का कथन उल्लेखनीय है— "मुसलमान मूर्ख थे जो उन्होंने सुरक्षा की माँग की। हिन्दू उनसे भी अधिक मूर्ख थे जिन्होंने इस माँग को ठुकरा दिया।"

पूर्ण स्वराज्य की माँग :

यह भी एक विडम्बना ही है कि विदेशी शासन भारतवासियों को उत्तरदायी स्वशासन देने को भी तैयार नहीं था। यह अवसर उसने हाथ से खो दिया। भारत की युवा शक्ति अब आगे कदम रख चुकी थी। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 31 दिसम्बर, 1929 को सर्वप्रभुता सम्पन्न भारत राष्ट्र का तिरंगा झण्डा लहरा दिया गया था। पंडित नेहरू की अध्यक्षत्व में 26 जनवरी, 1929 ई. को गणतंत्र दिवस माना गया। तभी से सभी लोग इस आशय की शपथ लेते थे कि "ब्रिटिश शासन के सामने घुटने टेकना मानव और ईश्वर के प्रति अपराध है। हम पूर्ण स्वराज्य लेकर रहेंगे।" अब सर्व प्रभुत्व सम्पन्न पूर्ण स्वराज्य को प्राप्त करने की तैयारी होने लगी। गाँधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सत्याग्रह संग्राम चला तो क्रांति वीरों ने विदेशी शासन को सबक सिखाने के लिए अपने हथियार संभाले।

प्रकरण की समाप्ति के पहले हमें सत्याग्रह संग्राम के उन अमर सेनानियों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है जिन्होंने राष्ट्र सेवा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। स्वतन्त्रता आन्दोलन की इस पीढ़ी के नेताओं के चरित्र की मुख्य विशेषता यह है कि इन्होंने सुख सुविधापूर्ण जीवन को तिलांजलि देकर फकीरी वेश धारण किया। अपनी खासी कमाई को छोड़कर देश सेवा में लग गए। सब कुछ राष्ट्र के अर्पित कर दिया। इनके त्याग एवं तपस्यापूर्ण जीवन को राष्ट्र सदैव श्रद्धा से स्मरण करता रहेगा।

देशबन्धु चितरंजन दास (1870-1925 ई.) :


देशबन्धु चितरंजन दास

कलकत्ता के सुप्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी परिवार में 5 नवम्बर, 1870 ई. को देशबन्धु चितरंजन दास का जन्म हुआ। आपके पिता भुवन मोहन दास कलकत्ता उच्च न्यायालय के अच्छे वकील थे। साथ ही वे अच्छे कवि, पत्रकार एवं प्रसिद्ध दानी थे। चितरंजन दास को ये सभी गुण अपने पिता से विरासत में मिले थे। आई. सी. एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए इंग्लैण्ड गए, परन्तु दादा भाई नौरोजी के चुनाव प्रचार में कार्य करने के कारण, अंग्रेज अधिकारियों ने उनका चुनाव नहीं किया। वे इंग्लैण्ड से बैरिस्टर बनकर भारत लौटे।

पिता की अत्यन्त दानशीलता के कारण आपको अनेक वर्षों तक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, परन्तु आपने हिम्मत नहीं हारी। पिता के ऋण को चुका कर अपनी सारी आय गरीबों तथा असहाय लोगों में बाँटने लगे। कबीर की इस साखी को आपने चरितार्थ कर दिखाया—

"ज्यों जल बढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही संतन का काम॥"

देश प्रेम के तो मानो आप प्रतिमूर्ति थे। लंदन में छात्र जीवन से ही आप देश सेवा में रुचि रखने लगे। एक बार 'जैम्स मैकाले' नामक संसद सदस्य ने भारत के बारे में अशिष्ट टिप्पणी की तो आपने इसका कड़ा विरोध किया और अन्त में मैकाले को माफी माँगनी पड़ी। भारत में सबसे पहले देशभक्त क्रांतिकारियों के मुकदमों की पैरवी करने वाले आप ही थे। अलीपुर बम काण्ड के सत्र न्यायाधीश वाचकावर को मुँह तोड़ जवाब देने वाले आप ही थे।

क्रांतिकारियों की सभी अभियोगों में आपने निःशुल्क सेवा की। 'वन्देमातरम् व संस्था' के विरुद्ध चल रहे अभियोग की पैरवी से आपकी खूब ख्याति बढ़ी।

देशबन्धु कांग्रेस में एक दीप्तिमान नक्षत्र के रूप में उभर कर चमके। कम समय में ही आप कांग्रेस अध्यक्ष के उच्च पद तक पहुँच गए। असहयोग आन्दोलन तथा खिलाफत आंदोलन में आपके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। आपकी एक आवाज पर सारा बंगाल आंदोलन में कूद पड़ा। आपकी पत्नी, पुत्र, बहिन आदि सभी ने गिरफ्तारियाँ दीं। इससे नवयुवकों में अत्यधिक जोश उमड़ पड़ा। दस दिसम्बर सन् 1921 को आप स्वयं भी बन्दी बना लिए गए। चौरी चौरा काण्ड के कारण महात्मा गाँधी द्वारा आन्दोलन स्थगित कर देने से आपको बहुत दुःख हुआ। बाद में आपने देखा कि आधे मन से लड़ाई लड़ने से कोई लाभ नहीं है तो आपने विट्ठल भाई पटेल, मोतीलाल नेहरू के साथ मिलकर स्वराज्य दल की स्थापना की और विधान परिषदों में प्रवेश का निर्णय लिया। कम समय होने पर भी चुनावों में आपको अच्छी सफलता मिली। यह आपकी कर्मठता तथा लोकप्रियता की परिचायक है। अंग्रेजी शासन की अड़ियल नीति के कारण आपका दल विधान मण्डलों से बाहर आ गया और कांग्रेस की नीतियों में सहयोग देने लगा। कांग्रेस में शामिल होकर आप गाँधीजी के निर्देश से पुनः असहयोग आन्दोलन की तैयारी कर रहे थे कि 16 जून, 1925 ई. को समस्त राष्ट्र को बिलखता छोड़कर आप स्वर्ग सिधार गए। तीन लाख से अधिक लोगों ने आपके अंतिम संस्कार में भाग लिया। महात्मा गाँधी ने आपकी अर्थी के कंधा लगाया। इस अवसर पर उन्होंने कहा 'मनुष्यों में से एक देवता आज चला गया'। कवि गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर ने आपको श्रद्धांजलि देते हुए लिखा—

तुम लाये अपने साथ मृत्यु रहित जीवन का उपहार।
और अपनी मृत्यु के साथ दे दिया है
तुमने अपने देशवासियों को यह उपहार।

महान् देशभक्त देशबन्धु चितरंजन दास का जीवन हमारे राष्ट्रीय उद्यान का सुसंगठित पुष्प है, जो युगों-युगों तक देशभक्ति का सौरभ बिखेरता रहेगा।

विट्ठल भाई पटेल (1871-1933 ई.) :

गुजरात के खेड़ा जिले के 'करमसद' गाँव में 18 फरवरी सन्, 1871 ई. में आपका जन्म हुआ। आपके पिता 1857 की क्रांति में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के सहायक रह चुके थे। अतः पिता की देशभक्ति पुत्र में फूट पड़ी। इंग्लैण्ड से बैरिस्टर होकर लौटने के बाद आप बम्बई में वकालत करने लगे। आपकी वकालत काफी अच्छी चली। वकालत के साथ आप समाज सेवा में भी पूरी रुचि

लेने लगे। जन सेवा के लिए ही आप बम्बई प्रान्तीय विधान सभा व केन्द्रीय कौंसिल में पहुँचे। वहाँ आपने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से यह दिखा दिया कि बुद्धि, ज्ञान व राजनीतिक पटुता में भारतीय किसी से कम नहीं हैं।

असहयोग आन्दोलन के समय आपने कौंसिल की सदस्यता छोड़ दी। खेड़ा व बारदोली किसान आंदोलन में आपका काफी योगदान रहा। असहयोग आंदोलन के स्थगन के बाद आप देशबन्धु दास के साथ स्वराज्य दल में शामिल हो गए। कौंसिल में पहुँचकर आप गैर-सरकारी सदस्य होते हुए भी अध्यक्ष चुने गए। केन्द्रीय कौंसिल के अध्यक्ष के रूप में आपके कार्य सदा स्मरणीय रहेंगे। बड़े से बड़े अंग्रेज अधिकारी को भी आप बिना झिझक फटकार देते थे। सरकारी पक्ष को उनकी गलतियों के लिए बराबर ताड़ते रहते थे। राजनीति में आप चाणक्य थे। पेशावर गोली काण्ड की जाँच रिपोर्ट आपने ही तैयार की थी, परन्तु वह प्रकाशित होने के पहले ही जब्त कर ली गई थी।

बम्बई कारपोरेशन के अध्यक्ष के रूप में आपकी सेवाओं को कभी भुलाया नहीं जा सकता। अपने कार्यकाल में आपने निगम के कर्मचारियों के लिए खादी पहनना अनिवार्य कर दिया था। वायसराय को मानपत्र देने की प्रथा को भी बन्द कर दिया। कांग्रेस कार्यकारिणी के भी आप सदस्य रहे। 1931 ई. में अन्य सदस्यों के साथ सरकार ने आपको बन्दी बना लिया, परन्तु खराब स्वास्थ्य के कारण जल्दी ही छोड़ दिए गए।

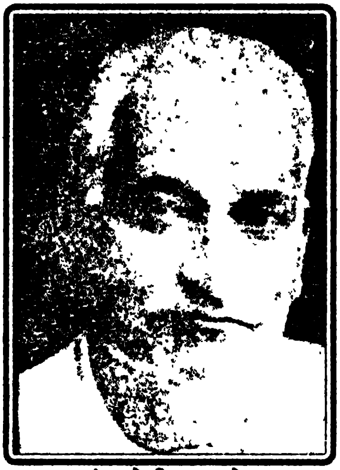
चिकित्सा के लिए आप वियना गए। इसके बाद अमेरिका गए। अमेरिका में स्वास्थ्य ठीक न रहने पर भारत की स्वतन्त्रता के लिए लोगों में प्रचार करते रहे। अन्त में 22 अक्टूबर, 1933 ई. को विदेश में ही इस भारत पुत्र का स्वर्गवास हो गया। अन्तिम समय में उनके मुँह से यही शब्द निकले—

'भारत जल्दी से जल्दी स्वतंत्र हो'

अपने अग्रज की इस मनोकामना को उनके अनुज सरदार बल्लभ भाई पटेल ने पूरा किया। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में विट्ठल भाई का योगदान सदा स्मरणीय रहेगा।

पंडित मोतीलाल नेहरू (1861-1931 ई.) :

पं. मोतीलाल जी के पूर्वज राजकौल मुगल सम्राट फरुखसियर के आग्रह पर दिल्ली में आकर बस गए थे। बादशाह ने उनको एक नहर के किनारे जागीर दी, जिससे उनके नाम के आगे 'नेहरू' जुड़ गया। मोतीलाल जी के दादा दिल्ली दरबार में कम्पनी सरकार के पहले वकील थे और पिता गंगाधर नेहरू दिल्ली के कोतवाल रहे, परन्तु वे चौंतीस वर्ष की आयु में ही इस दुनियाँ से चल बसे।



पं. मोतीलाल नेहरू

1857 ई. के स्वाधीनता संग्राम के बाद नेहरू परिवार भी अंग्रेजों की विनाश लीला का शिकार हुआ और उसे दिल्ली छोड़कर आगरा में बस जाने को मजबूर होना पड़ा। वहीं 6 मई, 1861 ई. को मोतीलाल का जन्म हुआ। पिताजी का स्वर्गवास हो चुका था। अतः उनका लालन पालन उनके चचेरे भाई नन्दलाल के हाथों हुआ जो अच्छे वकील थे। आगरे से हाईकोर्ट इलाहाबाद आया तो नन्दलाल भी इलाहाबाद आ गए। वहाँ वे सर्व श्रेष्ठ वकीलों में गिने जाने लगे। मोतीलाल ने पहले फारसी की शिक्षा प्राप्त की और बड़े भाई नन्दलाल के साथ वकालात करने लगे। वकालात के व्यवसाय में मोतीलाल ने अत्यधिक ख्याति प्राप्त की और उनकी गणना देश के सर्वश्रेष्ठ वकीलों में होने लगी। उनकी वार्षिक आय लाखों रुपये तक पहुँच गयी और बहुत ही राजसी ठाट-बाट से रहने लगे। उनका निवास स्थान राजप्रसाद की भाँति सजा रहता था।

नेहरू परिवार की यह विशेषता थी कि वह समयानुसार अपने को ढाल लेता था। वे समन्वयवादी संस्कृति में विश्वास करते थे। उनका घर भी मिली-जुली संस्कृति का सुन्दर सोपान.था। सर्व प्रथम वे सन् 1888 ई. के इलाहाबाद अधिवेशन में सम्मिलित हुए।

वे गोखले व दादा भाई नौरोजी के प्रभाव से जल्दी ही नरम दल के नेताओं की पंक्ति में जा बैठे। जब गरम दल वाले कांग्रेस छोड़ चुके तो मोतीलाल नरम दल के प्रधान नेता कहे जाते थे, परन्तु शीघ्र ही उनके विचारों में बदलाव आया और वे तिलक तथा एनीबेसेन्ट द्वारा संचालित 'होमरुल' आंदोलन में शामिल हो गए और यू. पी. शाखा के अध्यक्ष बनाए गए। जलियाँवाले बाग के लोमहर्षक हत्याकाण्ड ने उनके मन को बहुत ठेस पहुँचाई और वे खुलकर राजनीति में भाग लेने लगे। महात्मा गाँधी के सम्पर्क से वे सत्याग्रह संग्राम के प्रमुख सदस्य बन गए। पंजाब अत्याचारों की जाँच समिति के आप अध्यक्ष थे। आपने बहुत ही परिश्रम से रिपोर्ट तैयार की जिसमें विदेशी शासन के काले कारनामों का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत किया। इसी समय से आप गाँधीजी के अनुयायी बन गए और 1919 ई. के कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष बने।

इस अधिवेशन के एक वर्ष बाद ही प्रथम असहयोग आंदोलन शुरू हुआ। बहुत ही उत्साह से आपने उसमें भाग लिया और जेल गए। गाँधीजी द्वारा यकायक आंदोलन स्थगित करने से आपके हृदय को बहुत ठेस पहुँची और विरोध के स्थान पर सहयोग से भारतीय हितों की रक्षा के लिए प्रेरित हुए और देशबन्धु के साथ मिलकर आपने स्वराज्य दल की स्थापना की और चुनावों में भाग लिया। केवल दो माह के समय में ही आपके दल को अच्छी सफलता मिली, परन्तु बाद में उन्होंने अनुभव किया कि ब्रिटिश शासन की नीति साफ नहीं है और वह भारत के शोषण पर तुली हुई है तो पुन: महात्मा गाँधी के असहयोग आंदोलन में शरीक हो गए। इसी बीच आपको भारत के संविधान निर्माण का कार्य सौंपा गया। आपने समयोचित प्रतिवेदन तैयार किया जिसे इतिहास में नेहरू रिपोर्ट कहते हैं। इसमें औपनिवेशिक स्वराज्य का प्रारूप तैयार किया गया, परन्तु हिन्दू तथा मुस्लिम रूढ़िवादिता के कारण इसे स्वीकार नहीं किया जा सका।

सन् 1928 के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के आप सभापति थे। इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने सरकार को चुनौती दी कि "यदि 1 वर्ष में औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं दिया गया तो भारत अपने आप पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर देगा।" अन्त में विदेशी शासन की अदूरदर्शिता के कारण ही महात्मा गाँधी को पुन: सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ना पड़ा। आपके होनहार पुत्र जवाहरलाल के नेतृत्व में 1929 के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य की घोषणा कर दी गई। महात्मा गाँधी सत्याग्रह के प्रारम्भिक चरण में ही बन्दी बना लिए गए। उनकी गिरफ्तारी के बाद मोतीलालजी ने ही आंदोलन का नेतृत्व संभाला। वे भी बन्दी बना लिए गए, परन्तु बीमारी के कारण सरकार ने उन्हें बिना शर्त ही रिहा कर दिया। इसके बाद गाँधी इरविन समझौते के विचार-विमर्श में बराबर भाग लेते रहे, परन्तु ईश्वर ने उनके सबल हाथों से राष्ट्र का नेतृत्व छीन लिया और 6 फरवरी, 1931 ई. को राष्ट्र का वह प्रकाशमय दीपक बुझ गया। अपनी आत्मा की अमर ज्योति छोड़ गया, जिसके प्रकाश में स्वाधीनता आंदोलन अविरल रूप से चलता रहा। अन्त में उनके पुत्र ने उनकी इच्छा पूरी की और देश को स्वतंत्र करवाया।

पं. मोतीलाल नेहरू का देश की आजादी के लिए जो समर्पण भाव था, वह स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। उन्होंने सर्वस्व राष्ट्र को समर्पित कर दिया। अपना सुख वैभव पूर्ण आनन्द भवन, उसमें रहने वाला समस्त परिवार राष्ट्र सेवा में अर्पित कर दिया गया। संसार के इतिहास में ऐसे विरले ही पुरुष हुए हैं जिन्होंने अपना सब कुछ मातृभूमि के चरणों में रख दिया हो।

प्यारेलाल शर्मा (1873-1941 ई.) :

आपका जन्म 1873 ई. में पंडित हनुमानप्रसादजी के घर हुआ। आप मथुरा जिले के जागीरदार थे। प्यारेलालजी ने अंग्रेजी में एम. ए. तथा एल-एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। राजनैतिक क्षेत्र में उनकी प्रारम्भिक रुचि आतंकवादियों के साथ थी, परन्तु महात्मा गाँधी के भारत आगमन पर उनके प्रभाव से शर्माजी का सारा जीवन ही बदल गया। खिलाफत आंदोलन में भी खूब सहयोग किया। मेरठ व मुजफ्फरनगर में कांग्रेस संगठन को मजबूत किया। दिल्ली तथा उसके आस-पास के क्षेत्र में कांग्रेस के प्रचार प्रसार में हकीम अजमल खाँ तथा डॉ. अन्सारी साहब के साथ काम किया। 1924 से 1928 तक केन्द्रीय धारा सभा के लिए स्वराज्य दल से चुने गए। मेरठ तथा काकोरी अभियोग में फँसे स्वतन्त्रता सेनानियों की आपने पैरवी की। नमक सत्याग्रह में भाग लिया। 1932 ई. में दिल्ली में कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष बने। सरकार की उस आज्ञा का आपने बड़े साहस के साथ उल्लंघन किया कि दिल्ली के फव्वारे के पास तीन सौ आदमी से अधिक एकत्रित नहीं हो सकते।

1937 ई. में गोविन्द बल्लभ पंत मंत्री मण्डल में शामिल हुए, परन्तु मतभेद के कारण अलग हो गए। 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया। गिरफ्तार हुए, परन्तु बीमारी के कारण जल्दी ही छोड़ दिए गए। 12 जनवरी, 1941 को आपका स्वर्गवास हो गया। स्वतन्त्रता संग्राम तथा गाँधीवादी आर्थिक नीति, ग्राम स्वराज्य के प्रति समर्पण भावना को सदा याद किया जाता रहेगा।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद (1884-1963 ई.) :



डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

'भारत रत्न' की उपाधि तो देश में कई नेताओं को मिली, परन्तु 'देश रत्न' के रूप में जनता का प्यार अभी तक सिर्फ राजेन्द्र बाबू को ही मिला। यह उनकी जन सेवा का ही प्रतिफल है। इस महान् देशभक्त का जन्म तीन दिसम्बर, 1884 ई. को बिहार के जीरीदेई गाँव में हुआ। प्रारम्भ से आप साधु प्रवृत्ति के थे। शुरू से ही कुशाग्र बुद्धि के थे। 1902 ई. में कलकत्ता विद्यालय की मैट्रिक परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त किए। इसके बाद भी आपका शैक्षिक जीवन बहुत उज्ज्वल रहा। विद्यार्थी जीवन से ही आप समाज सेवा में

लग गए। नवयुवकों में सद्गुणों का विकास करने वाली 'डान सोसायटी' के आप सक्रिय सदस्य रहे। पहले आप शिक्षक बने, फिर मुजफ्फरनगर कॉलेज में प्रोफेसर बन गए, परन्तु परिवार की इच्छानुसार वे कलकत्ता हाई कोर्ट में वकालत करने लगे। उन्हीं दिनों आप गोखलेजी के सम्पर्क में आये, जिन्होंने उनमें देश सेवा के अंकुर पैदा किए। उस समय तक आपकी वकालात काफी अच्छी चल पड़ी थी, परन्तु देश सेवा के सामने सब कुछ तुच्छ लगने लगा और उन्होंने वकालात छोड़कर देश सेवा का व्रत ले लिया। इससे उनके बड़े भाई महेन्द्रप्रसाद को बड़ा संताप हुआ, परन्तु उनको संतुष्ट करते हुए राजेन्द्र बाबू ने जो पत्र लिखा वह सबकी आँखें खोलने वाला है। पत्र में लिखा था कि "सादगी बुरी चीज नहीं है। संसार में महापुरुष अभावों में ही फले-फूले हैं। वे आज सभी के हृदय में बसे हुए हैं। अत: मुझे भारत माता की सेवा करने की अनुमति प्रदान करने की कृपा करें।"

फिर क्या था? 1928 ई. में चम्पारन में महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आए और सत्याग्रह संग्राम में कूद पड़े। तब से लगातार 25 वर्षों तक देश की आजादी के लिए जेल यात्रा चलती रही। अपनी सेवा के कारण ही आप तीन बार कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। कांग्रेस के महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों में आपकी विद्वता की छाप स्पष्ट झलकती थी। आप गाँधीजी के अनन्य भक्त थे। जब भी कोई नीति सम्बन्धी विवाद खड़ा हुआ तो आप गाँधीजी के साथ रहे। वे गाँधीवादी विचारकों में प्रथम थे।

भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक तथा राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। आप उच्च कोटि के विद्वान् थे। 1942-1944 के दौरान जेल में आपकी लिखी पुस्तक 'इण्डिया डिवाइडेड' साम्प्रदायिक शक्तियों को मुँह तोड़ जवाब था। आप पहले प्रमुख भारतीय नेता थे जिन्होंने अपनी आत्मकथा हिन्दी में लिखी। क्षेत्रीय भाषाओं के भी आप अच्छे विद्वान् थे। बंगला में तो आप धारा प्रवाह भाषण देते थे। इन सबके अतिरिक्त आपके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता 'सादा जीवन व उच्च विचार' था। विरोधियों से भी आपका उतना ही स्नेह था जितना सहयोगियों से। इसीलिए आप अजातशत्रु कहे जाते थे। इब्राहिम लिंकन की तरह आपमें दृढ़ता थी जो आपको सही मार्ग चुनने में सदा सहयोग देती रही। आपकी दृढ़ता की मुख्य विशेषता यही थी कि उसमें विरोधियों के प्रति कोई कटुता नहीं थी। आपकी चरित्र की महानता तब और अधिक उभर कर सामने आयी जब आप राष्ट्र के सर्वोच्च पद पर आसीन होते हुए भी त्याग व तपस्या की मूर्ति बने रहे। विदेहराज राजा जनक की तरह आप निष्काम भाव से राष्ट्रपति पद को 12 वर्ष तक सुशोभित करते रहे। संविधान सभा के आप अध्यक्ष रहे। राष्ट्रपति पद से मुक्त होकर आप सीधे सदाकत आश्रम पटना चले गए जहाँ

आपने स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में काम किया था। जीवन पर्यन्त राष्ट्र सेवा में रत रहते हुए 12 फरवरी, 1963 ई. को आप स्वर्ग सिधारे।

समाज तथा राष्ट्र सेवा में आपके अद्वितीय योगदान को हम सब श्रद्धा से स्मरण करते रहेंगे और आपके दिव्य जीवन से आलोकित होते रहेंगे।

सरदार बल्लभ भाई पटेल (1875-1950 ई.)

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी नेता बल्लभ भाई पटेल का जन्म 'करमसद' गाँव में 31 अक्टूबर, 1875 ई. को हुआ। आप कृषक कुरमी परिवार से थे। इंग्लैण्ड से बैरिस्टर बनकर आने के बाद अहमदाबाद में वकालात करने लगे। वकालात में खूब नाम कमाने के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन में भी गहरी रुचि लेने लगे और गुजरात सभा में कार्य करने लगे। इसी गुजरात सभा के सम्मेलन में गाँधीजी से आपकी भेंट हुई और आप उनके परमभक्त बन गए।



सरदार पटेल

महात्मा गाँधी के खेड़ा सत्याग्रह में सबसे पहले स्वयं सेवक बनने वाले बल्लभ भाई ही थे। इसके बाद जब व्यापक स्तर पर असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ तो बैरिस्टरी को सदा के लिए तिलांजली देकर आप स्वतन्त्रता समर में कूद पड़े। वोरसद के 'ताजीरीकर' विरोधी सत्याग्रह तथा नागपुर के झण्डा सत्याग्रह में आपने अपनी अद्‌भुत नेतृत्व शक्ति का परिचय दिया। राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में "गुजरात विद्यापीठ आपकी मुख्य देन है। सबसे प्रसिद्ध एवं विकट विजय आपको मिली 'बारदोली' सत्याग्रह में। एक ओर तो यह विजय आपके अद्‌भुत शौर्य का प्रतीक है तो दूसरी ओर आपके व्यापक नेतृत्व शक्ति की सूचक सिद्ध हुई कि किस प्रकार आपके आदेश पर जनता अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत थी। इस अद्‌भुत नेतृत्व कुशलता से महात्मा गाँधी भी प्रवाहित हुए बिना नहीं रहे और आपको 'सरदार' की उपाधि से विभूषित किया। तब से आप वास्तव में सभी आन्दोलनों में सरदार ही रहे। 1930 ई. के नमक सत्याग्रह में आपने बड़े उत्साह से भाग लिया और जेल गए। गाँधी-इरविन संधि के बाद 1931 में करांची कांग्रेस के आप अध्यक्ष चुने गए। इसके एक वर्ष बाद आप पुनः गिरफ्तार कर लिए गए और दो वर्ष जेल में रहे।

सन् 1937 ई. में जब कांग्रेस ने विधान मण्डलों में जाने का निर्णय लिया तब सरदार साहब संसदीय बोर्ड के अध्यक्ष चुने गए। कांग्रेस मंत्रिमण्डलों के निर्माण तथा जनहित के लिए उन्मुख करना आपकी नियंत्रण क्षमता का परिचायक था। सन् 1940 में आपने व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया और बन्दी बनाए गए। सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में आप फिर पकड़े गए और तीन वर्ष तक अहमदनगर के किले में नजरबन्द रहे। जेल से निकलते ही आपने 'भारत छोड़ो' के स्थान पर 'एशिया छोड़ो' का नारा बुलन्द किया।

सन् 1946 ई. की अन्तरिम सरकार तथा उसके बाद स्वतंत्र भारत की स्थायी सरकार के गृह मंत्री व उप-प्रधान मंत्री के रूप में जो आपने कार्य किया वह सभी को चौंका देने वाला है। समस्त देशी राज्यों को बहुत ही कुशलता से भारत में मिला कर इंग्लैण्ड के कूटनीतिज्ञों को भी आपने नत मस्तक कर दिया। कूटनीति में आपकी तुलना चाणक्य तथा प्रिंस बिस्मार्क से आसानी से की जा सकती है।

सरदार पटेल भारतीय राजनीति में लौह पुरुष माने जाते हैं। संगठन शक्ति तथा सबल नेतृत्व के तो आप साक्षात अवतार थे, लेकिन आपकी शक्ति एवं प्रभुत्व नृशंस न होकर वात्सल्य पूर्ण था। जूनागढ़ तथा हैदराबाद को भारतीय संघ में मिलाना आपके ही पौरस का काम था। 'दुर्बल की रक्षा करो दुर्जन को मारो' आपके जीवन का लक्ष्य था। आपके देशप्रेम और राष्ट्र सेवा से भारत देश कभी उऋण नहीं हो सकता।

राष्ट्र भक्त मुसलमान :

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में हिन्दू एवं मुसलमानों ने एक जुट होकर विदेशी शासन से लोहा लिया था। इसके बाद राष्ट्रीय असहयोग आन्दोलन में भी मुसलमान भाइयों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। मजरूल हक तथा सैफुद्दीन किचलु ने सत्याग्रह संग्राम में खुल कर भाग लिया था। यद्यपि सर सैयद अहमद खाँ व उनके द्वारा स्थापित अलीगढ़ मुस्लिम महाविद्यालय असहयोग आन्दोलन में मुसलमानों को भाग न लेने के लिए तरह-तरह से भड़का रहा था, परन्तु राष्ट्रवादी शक्तियाँ भी यों हार मानने वाली नहीं थीं। अत: उन्होंने साम्प्रदायिक राजनीति की ज़नक शिक्षण संस्थाओं को तिलांजिल देकर नयी शिक्षण संस्थाओं का सृजन किया और स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के लिए मुसलमान भाइयों को प्रेरित करने लगे।

इस प्रकार की संस्थाओं में 'जामिया मिल्लिया इस्लामिया' और उसके संस्थापक अजमल खाँ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसके बाद डॉ. अन्सारी, अली बन्धु, हसरत मोहानी तथा मुहम्मद अली जिन्ना ने राष्ट्रीय आन्दोलन में

महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इन देशभक्त मुसलमान भाइयों की सेवाओं का उल्लेख किए बिना तो हमारा स्वतन्त्रता संग्राम अधूरा ही रहेगा।

हकीम अजमल खाँ (1863-1927 ई.) :

आपका जन्म दिल्ली में सन् 1863 ई. को गुलाम मुहम्मद खाँ साहब के घर हुआ था। शिक्षा प्राप्त करके आप अलीगढ़ मुस्लिम कॉलेज में काम करने लगे। 1917 ई. में महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आए और 1919 ई. के 'रोलेट एक्ट' विरोधी आन्दोलन में भाग लेने लगे। चिकित्सा के क्षेत्र में भी आपकी सेवा बहुत ही उल्लेखनीय थी। अत: सरकार ने आपको 'हाजिल-उल-मुल्क' की उपाधि प्रदान की, परन्तु आपने जलियाँवाले बाग हत्याकाण्ड के विरोध में इस उपाधि को लौटा दिया। दिल्ली के कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत समिति के आप अध्यक्ष थे। अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन के सी. आर. दास के जेल में होने के कारण आपने अध्यक्ष पद के आसन को सुशोभित किया।

हकीम साहब का राष्ट्रीयता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान 'जामिया मिल्लिया इस्लामिया' की स्थापना माना जाएगा। मुस्लिम कॉलेज अलीगढ़ के अनेक छात्र व प्राध्यापक असहयोग आन्दोलन में भाग लेने से रोक दिए गए थे। अत: खाँ साहब ने कॉलेज छोड़ दिया और स्वतंत्र रूप से राष्ट्रीय शिक्षा से ओत-प्रोत 'जामिया मिल्लिया इस्लामिया' की स्थापना की। पहले इसकी स्थापना अलीगढ़ में हुई, परन्तु बाद में महात्मा गाँधी की राय से इसे दिल्ली लाया गया। हकीम साहब इस राष्ट्रीय संस्थान के प्रथम कुलपति बने।

कुछ दिनों बाद हृदय रोग से ग्रसित हो गए। चिकित्सा के लिए इंग्लैण्ड तथा फ्रांस भी गए। अस्वस्थ होते भी वहाँ भारत की स्वतन्त्रता के पक्ष को लोगों के सामने रखते रहे। 29 दिसम्बर सन् 1927 को आप इस दुनिया को छोड़ चुके, परन्तु शिक्षा, चिकित्सा, राष्ट्रीयता व देशप्रेम के क्षेत्र में अपना अमर नाम छोड़ गए।

डॉ. मुख्तार अहमद अन्सारी (1880-1936 ई.) :

गाजीपुर जिले के यूसुफपुर गाँव में 25 दिसम्बर, 1880 ई. में आपका जन्म हुआ। गाजीपुर से हाई स्कूल करके विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए दक्षिण हैदराबाद चले गए जहाँ आपके दो भाई निजाम की सेवा में थे। मद्रास मेडिकल कॉलेज से औषध विज्ञान के स्नातक बनकर आप उच्च शिक्षा के लिए लन्दन चले गए। वहाँ एम.डी. तथा एम.एस. की परीक्षा में प्रथम रहे और रजिस्ट्रार के पद पर नियुक्त होने वाले आप प्रथम भारतीय थे। आगे चलकर चेरिंग क्रॉस हास्पिटल में शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में आपकी सराहनीय सेवा की स्मृति में वहाँ अन्सारी वार्ड की स्थापना हुई।



डॉ. मुख्तार अहमद अंसारी

1900 से 1910 ई. तक लंदन प्रवास के समय लन्दन आने वाले भारत के राष्ट्रीय नेताओं से बराबर सम्पर्क बना रहा। इनमें पं. मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमल खाँ व युवा जवाहरलाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वहाँ आप भारतीय औषध संघ के सचिव चुने गए।

लंदन में आपको सभी प्रकार की सुख सुविधा थी, परन्तु मातृभूमि के स्नेह का आप विस्मरण न कर सके। अत: 1910 ई. में आप भारत लौट आए और दिल्ली में बस गए। यहीं पर आप प्राइवेट चिकित्सा के साथ-साथ राजनीतिक कार्यों में भी भाग लेने लगे। यद्यपि सरकार आपको लाहौर मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल का पद दे रही थी, परन्तु देश व समाज सेवा के सामने विदेशी शासन की सेवा को आपने तुच्छ समझा और समाज सेवा में लग गए। सन् 1912 में आपने बल्कान युद्ध में घायल तुर्की सैनिकों की चिकित्सा के लिए भेजे गए भारतीय चिकित्सा दल का नेतृत्व किया। घायलों की सेवा के साथ-साथ आपके कार्य से विश्व जगत में भारत का व्यक्तित्व भी उभर कर सामने आया।

उस समय राष्ट्रीयता अपनी नई अंगड़ाई ले रही थी। अन्सारी साहब राष्ट्रीय एकता के प्रमुख सूत्रधार थे। आपके प्रयत्न से ही 1916 ई. को कांग्रेस-लीग पैक्ट सम्पन्न हुआ। खिलाफत कमेटी, लीग तथा कांग्रेस तीनों संस्थाओं में आपका बराबर सम्मान था। 1918 ई. में आपने दिल्ली में मुस्लिम-लीग के अध्यक्ष के रूप में खिलाफत कमेटी तथा कांग्रेस का बिना शर्त समर्थन देने की घोषणा की। 1920 ई. को नागपुर में लीग, खिलाफत कमेटी तथा कांग्रेस का अधिवेशन एक ही तारीखों में हुआ। आपके प्रयत्न से अन्त में तीनों का संयुक्त अधिवेशन हुआ। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि कांग्रेस में आपका बहुत ही सम्मान जनक स्थान था। आप जीवन पर्यन्त कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य रहे। आप 1927 के मद्रास में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष बने। 'साइमन कमीशन' असेम्बली बहिष्कार की नीति में गाँधीजी के साथ रहे। यद्यपि दीनबन्धु दास तथा मोतीलालजी उनके गहरे मित्र थे, तथापि आप अपने चरित्र तथा व्यक्तित्व के इतने धनी थे कि विरोध होने पर भी व्यक्तिगत स्नेह में कोई अन्तर नहीं आने दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में जामिया मिल्लिया इस्लामिया व काशी विद्यापीठ को आपका बराबर सहयोग व स्नेह मिलता रहा। अजमल खाँ के बाद जामिया के

कुलपति (अमीर-इ-जमीह) बने जो जीवन पर्यन्त (1928-1936) बने रहे। राजनीति तथा समाज सेवा में व्यस्त रहने पर भी आप चिकित्सा के कार्य को भी बड़ी मुस्तैदी से करते रहे। आप अच्छे वक्ता एवं लेखक भी थे। अपने विचारों को बहुत प्रभावपूर्ण एवं स्पष्ट रूप से रखते थे। कला में आपकी विशेष रुचि थी।

अनवरत परिश्रम से आप हृदय रोग से ग्रसित हो गए। 10 मई, 1936 ई. की रात्रि जब आप मसूरी रामपुर के नवाब को देखकर लौट रहे थे तब रेल के डिब्बे में प्रात: दो बजे हृदय गति रुक जाने से आपका स्वर्गवास हो गया। आप जामिया मिल्लिया इस्लामिया में हमेशा के लिए शांति की शरण में चले गए, परन्तु भारत माता के सच्चे सपूत के रूप में आपको कभी भुलाया नहीं जा सकता। विशेषकर भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में तो आप सदा अमर रहेंगे।

हसरत मोहानी (1878-1951 ई.) :

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में मौलाना हसरत मोहानी के योगदान के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। उन्नाव जिले के मोहन कस्बे में आपका जन्म 1878 ई. में हुआ। अलीगढ़ कॉलेज से बी. ए. किया, परन्तु कॉलेज के प्रिन्सिपल थ्योडोर मोरिसन से झगड़ा होने के कारण कॉलेज से निकाल दिए गए। इस तरह से आप इस कॉलेज में भारत की मान मर्यादा की रक्षा करने वाले पहले विद्रोही छात्र थे।



हसरत मोहानी

अपने राजनीतिक विचारों में तिलक एवं अरविन्द घोष की गरम नीति के आप अनुयायी थे। 1904 से ही आप कांग्रेस के जुलूसों में भाग लेने लगे। 1907 के सूरत अधिवेशन में जब गरम दल वाले कांग्रेस से अलग हुए तो आप भी तिलक के साथ कांग्रेस से निकल गए। आपने एक उर्दू पत्रिका निकालना शुरू किया जिसमें ब्रिटिश-शासन की खूब खिल्लियाँ उड़ाई जाती थीं। इस पर आपको दो वर्ष का कठोर कारावास एवं 500 रुपये जुर्माने की सजा दी गई। जेल में आपसे चक्की भी पिसवाई जाती थी। इस सम्बन्ध में आपने एक शेर लिखा है :

**"मश्क-ए-सुखन जरी चक्की की मश्कत भी।
एक तरफा तमाशा है हसरत की तबीयत-भी।।"**

तिलक के बाद अखबारों की स्वतन्त्रता के लिए जेल जाने वाले पहले व्यक्ति थे। देशभक्ति व स्वतन्त्रता की भावना से आपका मन हिलोरें लेता रहता था। यही कारण है कि आपने अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन, 1921 में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव रखा, परन्तु महात्मा गाँधी के विरोध के कारण प्रस्ताव गिर गया। इस सम्बन्ध में गाँधीजी ने कहा—'हसरत साहब हमें इतने गहरे पानी में ले जाना चाहते हैं जिसकी गहराई का हमें पता नहीं।' खिलाफत कमेटी के माध्यम से भी आपने विदेशी शासन की खूब धज्जियाँ उड़ाईं। साम्प्रदायिकता के आप घोर विरोधी थे। इसी कारण जिन्ना साहब से आपकी कभी नहीं पटी।

आपकी धर्म पत्नी निशात बेगम भी कांग्रेस अधिवेशनों में बड़े उत्साह से भाग लेती थी। वह पहली मुस्लिम महिला थी जिसने बुरका उतार कर सभा सोसायटी में भाग लेना शुरू किया। मौलाना साहब अपने उग्र व स्पष्ट विचारों के कारण किसी भी दल में अधिक प्रिय न बन सके। 1928 ई. में कलकत्ता अधिवेशन में जब सर्व दलीय सम्मेलन असफल हो गया तो आप भी कांग्रेस से निकल गए, परन्तु मुस्लिम लीग के विभाजन के प्रस्ताव का भी आपने कड़ा विरोध किया। संविधान सभा के भी आप सदस्य चुने गए, परन्तु वहाँ भी आपने वही अड़ियल नीति अपनाई और संविधान दस्तावेज पर देश के विभाजन एवं राष्ट्र मण्डल के सदस्य बने रहने के लिए हस्ताक्षर नहीं किए। इस तरह के आप पहले राष्ट्रीय व्यक्ति थे।

इतना सब कुछ होने पर भी विदेशी शासन के विरुद्ध आजादी की लड़ाई में आपके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। आपके हृदय में देशप्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। सन् 1951 में आपका स्वर्गवास हो गया।

अली बन्धु : रामपुर निवासी अली बन्धुओं का भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आप दो भाई थे। बड़े का नाम शौकत अली तथा छोटे का नाम मोहम्मद अली था। आपके पिता अब्दुल अली खाँ रामपुर दरबार के दरबारी थे, परन्तु 1880 ई. में केवल 31 वर्ष की अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया। अत: दोनों पुत्रों की शिक्षा दीक्षा का भार आपकी माता पर आ पड़ा। आपकी माता अब्दीबानो बेगम बहुत ही उदार विचारों की थी। अत: समाज का विरोध होने पर भी आपने दोनों लड़कों को अपने गहने बेच कर भी उच्च शिक्षा दिलवाई। दोनों भाई गाँधीजी के बहुत ही विश्वास पात्र थे और आप दोनों उनके नेतृत्व में सत्याग्रह संग्राम में बराबर भाग लेते रहे।

शौकत अली (1873-1938 ई.) :

अलीगढ़ कॉलेज के स्नातक बन कर आपने अफ्रीम विभाग में सरकारी नौकरी कर ली, परन्तु 17 वर्ष की सेवा के बाद अलीगढ़ कॉलेज के लिए धन

एकत्रित करने चल पड़े। कुछ दिनों आप धार्मिक संगठनों में लगे रहे, परन्तु प्रथम महायुद्ध के दौरान ब्रिटिश राज के कटु आलोचक हो गए। अत: 1915 में बन्दी बना लिए गए जो युद्ध के बाद 1919 ई. में छूटे। जेल से छूटते ही आप कांग्रेस में शामिल हो गए और असहयोग आन्दोलन में भाग लेने लगे। खिलाफत आन्दोलन में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। आपके प्रभाव से अनेक मुस्लिम युवकों ने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया। 1923 में खिलाफत कमेटी के आप अध्यक्ष बने। आपने 'हिन्दुस्तानी सेवा दल' नामक संस्था की स्थापना की, जिसके 1924 ई. में बेलगाँव में इसके अध्यक्ष बने। महात्मा गाँधी भी इस जलसे में शामिल हुए थे। स्वभाव के उग्र होने के कारण कांग्रेसी नेताओं से आपकी अधिक दिनों तक नहीं पटी और कांग्रेस छोड़कर बम्बई में रहने लगे। बम्बई में ही 26 नवम्बर, 1938 को आपका देहान्त हो गया। राष्ट्रीय एकता तथा जन-जागरण में आपका योगदान कभी भुलाया नहीं जा सकता।

मोहम्मद अली मौलाना (1878-1931 ई.) :



मो. अली मौलाना

आपने इलाहाबाद से 1896 ई. में बी.ए. किया और सारे प्रान्त में प्रथम रहे। आपके भाई शौकत अली की सलाह पर आप उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड गए, परन्तु आई.सी.एस. की परीक्षा में सफल न हो सके और बी. ए. ऑनर्स करके भारत लौटे। 1902 ई. में रामपुर में मुख्य शिक्षा अधिकारी नियुक्त हुए, परन्तु दरबारी षड्यंत्रों के कारण आपका जी वहाँ से ऊब गया और बड़ौदा चले गए, परन्तु वहाँ भी आपकी नहीं पटी। अत: पत्रकारिता करने लगे। कलकत्ता से कॉमरेड तथा दिल्ली से हमदर्द निकाला, परन्तु दोनों को सरकार ने जब्त कर लिया और आपको बन्दी बना लिया और 1919 में जेल से छूटे।

जेल से छूटते ही आप असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। गाँधीजी के अनुयायी बन गए और मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। थोड़े ही दिनों में आप कांग्रेस के गणमान्य नेता बन गए और कांग्रेस के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। खिलाफत कमेटी की ओर से विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष करने के कारण ब्रिटिश शासन ने आपको बन्दी बना लिया। इससे देश में गहरा असंतोष फैल गया। महात्मा गाँधी ने भी आपकी गिरफ्तारी की कड़े शब्दों में निन्दा की। आपके जीवन का अधिकांश समय या तो जेलों में बीता या सभा व जुलूसों में। प्रथम गोलमेज सम्मेलन में आप इंग्लैण्ड गए। वहीं आपने प्रतिज्ञा की कि जब तक देश स्वतंत्र न हो जाए भारत नहीं लौटूँगा। अन्त में 4 जनवरी, 1931 ई. को ही आपका

देहान्त हो गया आप जेरुसलम में दफनाए गए। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में अली-बन्धुओं के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

मौलाना अब्दुल कलाम आजाद (1888-1959 ई.) :



मौलाना आजाद

राष्ट्रीय एकता एवं स्वतन्त्रता संग्राम में मौलाना का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। आपका जन्म 1888 ई. में कलकत्ता में हुआ। आपके पिता खेरुद्दीन मौलाना स्थानीय मुसलमानों के आध्यात्मिक गुरु थे। आजाद साहब का प्रारम्भिक नाम मुहयुद्दीन था। आपकी शिक्षा दीक्षा घर पर ही हुई, परन्तु गुप्त रूप से आप अंग्रेजी पढ़ने लगे। विभिन्न धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन से आपने यही निष्कर्ष निकाला कि गरीब दीन-दुखियों की सेवा करना ही सच्चा धर्म है।

प्रारम्भ में आपके राजनीतिक विचार भी स्पष्ट नहीं थे। यद्यपि विदेशी शासन से आपको बहुत नफरत थी, अतएव नरम नीति के कारण कांग्रेस में आपका विश्वास नहीं जमा। मुस्लिम लीग को भी ब्रिटिश भक्ति के कारण पसन्द नहीं करते थे। अत: आप बंगाल के आतंकवादी वीरों के साथ सहानुभूति रखने लगे, परन्तु वहाँ आपको संतोष नहीं हुआ। अब आपने मुसलमान भाइयों को विदेशी शासन के खतरों को स्पष्ट करने के लिए 1912 में 'अल हलाल' नामक उर्दू पत्र निकालना शुरू किया। कलकत्ता में यह पत्र खूब चमका। क्रान्तिकारी विचारों के कारण दकियानुसी मुसलमान भड़क गए, परन्तु अनेक नवयुवक मुसलमान आपके अनुयायी हो गए और आपके सहयोग से राष्ट्रवादी अहरार आन्दोलन को जन्म दिया। इन राष्ट्रवादियों ने लीग को खुली चुनौती दी कि वही एक मात्र मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था नहीं है।

संयोग से खिलाफत के प्रश्न को लेकर बहुत से राष्ट्रवादी मुसलमान खिलाफत कमेटी में शामिल हो गए। अब्दुल कलाम आजाद इसके कलकत्ता अधिवेशन के 1920 ई. में अध्यक्ष बने। इधर कांग्रेस भी खिलाफत आन्दोलन को पूरा समर्थन देने लगी। महात्मा गाँधी के सम्पर्क से मौलाना साहब कांग्रेस में आ गए, फिर तो वे इसके स्तम्भ बन गए। केवल 35 वर्ष की आयु में ही आप 1923 ई. में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। दूसरी बार 1940 ई. में कांग्रेस के अध्यक्ष बने जो 1946 ई. तक बने रहे। सत्ता हस्तान्तरण के लिए कैबिनेट मिशन से बातचीत आपकी अध्यक्षता में हुई। स्वतंत्र भारत में आप शिक्षा मंत्री बने। 22 फरवरी, 1958 ई. को राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं मानवता के क्षेत्र में अमिट छाप छोड़कर इस संसार से आप कूच कर गए।

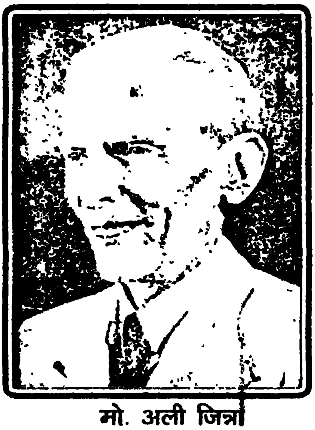
अजहर मजहर अली :

मुसलमानों में राष्ट्रीय विचारों को पनपाने में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आपका जन्म 1895 ई. में पंजाब के गुरुदासपुर जिले के बटाला गाँव में हुआ था। आपके पिता अब्दुला साहब शिया धर्म को मानने वाले थे। लाहौर कॉलेज से एल-एल.बी. करके आपने वकालात शुरू कर दी।

1919-1920 के खिलाफत आन्दोलन में आपने भाग लिया और गिरफ्तार हुए। 18 माह जेल में रहे। इसके बाद आपने अन्य राष्ट्रवादी संगठन 'अहरार' दल की स्थापना में सहायता दी और इसके महासचिव बने और बाद में अध्यक्ष भी रहे। अपने अन्य राष्ट्रवादी मुस्लिम बन्धुओं के साथ आप कांग्रेस में शामिल हो गए और लम्बे समय तक कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य रहे और पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस के महासचिव भी रहे। 1946 ई. में आप कांग्रेस छोड़कर फारवर्ड ब्लाक में शामिल हो गए। विभाजन के बाद पाकिस्तान चले गए, परन्तु इससे पहले राष्ट्रीयता के क्षेत्र में तथा देश की आजादी के लिए कार्य किया वह सदा स्मरणीय रहेगा।

मोहम्मद अली जिन्ना (1875-1948 ई.) :

आपका जन्म 25 दिसम्बर, 1875 ई. रविवार को कराँची में हुआ। आपके पिता जिन्ना पूजा एक साधारण व्यापारी थे। आप इस्लाम के खोजा सम्प्रदाय के थे जो कि मूल रूप से काठियावाड़ी थे। मोहम्मद अली जिन्ना की प्राथमिक शिक्षा कराँची में हुई, फिर बम्बई के तेजपाल गोकुलदास हाई स्कूल में दाखिल हुए। 1892 ई. में उच्च शिक्षा के लिए लन्दन चले गए जहाँ लिन्कन्स कॉलेज से बैरिस्टर होकर लौटे।


मो. अली जिन्ना

लंदन प्रवास के चार वर्षों में आप पर दादा भाई नौरोजी का प्रभाव पड़ा और उनके प्रभाव से ही आप में राष्ट्र प्रेम का विकास हुआ। 1906 ई. में कलकत्ता अधिवेशन में जब दादा भाई नौरोजी अध्यक्ष बने तो आपने उनके निजी सचिव का कार्य किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से भी आप बहुत अधिक प्रभावित थे। आपने स्वयं ने लिखा है कि—"मैंने राजनीति का पहला पाठ सुरेन्द्रनाथ जी के चरणों में बैठकर सीखा। गोपालकृष्ण गोखले जी की प्रशंसा करते तो आप थकते भी नहीं थे। आप 'उन्हें मुस्लिम गोखले' तक कह देते थे। फिरोजशाह मेहता का भी आप पर अच्छा प्रभाव था। कुल मिलाकर आप कांग्रेस के नरमदल के नेताओं के प्रभाव में थे। तिलक की जुझारू राजनीति आपको पसन्द नहीं थी। यही कारण था कि आप

आगे चलकर कांग्रेस से कुछ कटने लगे और तीस वर्ष की आयु होते-होते तो आप सर सैयद अहमद के साम्प्रदायिक जाल में फंस गए। फिर भी धर्म निरपेक्षता व राष्ट्रीय विचारों के पक्षधर बने रहे।

आप बम्बई कांग्रेस प्रान्तीय संगठन के सदस्य थे। उस समय आपने लॉर्ड मिन्टो की साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का डटकर विरोध किया था। 1910 ई. में बम्बई मुस्लिम सीट से केन्द्रीय विधान मण्डल के सदस्य चुने गए, तभी से आपका शानदार संसदीय जीवन प्रारम्भ हो गया। आपकी विलक्षण बुद्धि तथा तर्क शैली की धाक चारों तरफ जम गई। आपकी विद्वता को देखकर ही मुस्लिम लीग ने 1912 के अधिवेशन में आपको निमंत्रित किया। आप बिना सदस्य बने ही उसमें शामिल हुए और 1913 के लीग के संविधान निर्माण में आपका पूरा हाथ था जिसमें कांग्रेस के समान ही औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की गई थी।

सन् 1914 ई. में आप कांग्रेस प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रूप में सुधारों के प्रारूप पर विचार करने के लिए लंदन गए। भारत लौटने पर लीग तथा कांग्रेस-प्रतिनिधि मण्डल को निकट लाने में आपका महत्त्वपूर्ण हाथ था। इसी कारण 1916 ई. में लखनऊ समझौता सम्पन्न हुआ। 1917 ई. में होमरूल आन्दोलन बम्बई शाखा के आप अध्यक्ष बने। 'रोलेट एक्ट' को आपने काला कानून बताया और जलियाँवाले बाग हत्याकाण्ड के विरोध में केन्द्रीय विधान मण्डल से त्याग-पत्र दे दिया। यहाँ तक तो आप पूरे राष्ट्रवादी बने रहे।

1920 ई. में कांग्रेस की आन्दोलनात्मक नीति पसन्द न आने के कारण कांग्रेस तथा होमरूल लीग से आपने त्याग-पत्र दे दिया, लेकिन मुख्य कारण अली बन्धु तथा महात्मा गाँधी के प्रभाव को आप सहन न कर सके, क्योंकि आप बहुत महत्त्वाकाँक्षी व्यक्ति थे। आपकी नेतागिरी पर तुषारापात के कारण ही आप कांग्रेस से अलग हुए। फिर भी 1927 ई. तक यत्किंचित राष्ट्रवादी बने रहे। कलकत्ता में सर्वदलीय सम्मेलन के असफल हो जाने के बाद तो आप मुसलमानों के लिए अलग राष्ट्र की माँग करने लगे। इस माँग में ब्रिटिश शासन का हाथ तो था ही, क्योंकि इसी बहाने विदेशी थोड़े वर्षों तक भारत में और जमे रहना चाहते थे। अन्त में पाकिस्तान बना। इसके बाद भी आप पाकिस्तान को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे, परन्तु अपनी इच्छा को मूर्तरूप देने का अवसर आपको नहीं मिला। 11 सितम्बर, 1948 को अपनी विद्वता, दृढ़ संकल्प की छाप को छोड़कर आप इस दुनियाँ से कूच कर गए। राष्ट्रीय आन्दोलन में आपके जीवन के प्रारम्भिक वर्षों (1906-1920) की भूमिका को भुलाया नहीं जा सकता। विधिवेत्ता के रूप में आप सदा स्मरणीय रहेंगे।

☐☐

ग्ह.

इकाई 11

सशस्त्र रोमांचकारी आन्दोलन

पिछली इकाई में हमने देखा कि महात्मा गाँधी द्वारा चौरी चौरा काण्ड के कारण असहयोग आन्दोलन को एकदम स्थगित कर दिया गया था। इससे नवयुवक देशभक्तों को बड़ी वेदना हुई थी। वे इसलिए अब तक चुप बैठे थे कि चलो विदेशी शासन के खिलाफ कुछ तो हो रहा है ? परन्तु जब उनको विदित हुआ कि कांग्रेस ने फिलहाल अंग्रेजों से अपनी लड़ाई बंद कर दी है तो वे अपने शस्त्र संचालन के लिए मजबूर हो गए।

इधर विदेशी शासन भी भारतीयों की साधारण माँगें भी मानने के लिए तैयार नहीं था। बल्कि उसने दमन चक्र शुरू कर दिया था। उस समय युवा शक्ति अपनी अंगड़ाई भर रही थी। मजदूर संघ, किसान संगठन अपने पैरों पर खड़े हो चुके थे। महिलाएँ भी आजादी के लिए सचेष्ट हो रही थीं, परन्तु इनका उपयोग असहयोग आन्दोलन के अधर-झूल में लटक जाने के कारण समुचित रूप से न हो पा रहा था। अत: क्रान्तिकारी युवकों ने अपने स्तर पर विदेशी शासन को नष्ट करने की कमर कस ली।

असहयोग आन्दोलन बिना किसी उपलब्धि के समाप्त हो जाने से युवकों का विश्वास अहिंसात्मक आन्दोलन से हिलने लगा। अत: युवकों ने जगह-जगह अपने क्रान्तिकारी संगठन बना लिए। कहीं-कहीं इक्के-दुक्के शूरवीरों ने ब्रिटिश ठिकानों पर धावा बोलना शुरू कर दिया। कलकत्ता के शंकरी टोला डाकघर को लूटते समय वीरेन्द्र घोष पकड़े गए, उन्हें आजीवन कारावास की सजा हुई। चौरंगी में पुलिस कमिश्नर टेगार्ट की हत्या के प्रयास में मि. डे. की हत्या हो गई। इस प्रसंग में गोपीनाथ शाह को फाँसी हुई, परन्तु दमनकारी कदम स्वाधीनता के कदम को नहीं रोक सके। आगे चलकर क्रान्तिकारी आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया और उसने सशस्त्र क्रान्ति का लघु रूप धारण कर लिया। पेशावर, शोलापुर, चटगाँव में सशस्त्र क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। भारत राष्ट्र व भारतीय नेताओं का अपमान करने वाले विदेशी शासकों की चुन-चुनकर खबर ली गई।

चारों तरफ युवकों ने अपने शौर्य से ब्रिटिश शासन को आतंकित कर दिया। अनेक क्रान्तिकारी संगठन बने और उनको मजबूत किया गया।

क्रान्तिकारी संगठनों में 'नौजवान भारत सभा' तथा 'हिन्दुस्तानी प्रजातंत्र संघ' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, चन्द्रशेखर आजाद, अशफाक उल्ला जैसे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी इन्हीं संगठनों के सक्रिय सदस्य थे। कानपुर में गणेशशंकर विद्यार्थी क्रान्तिकारियों का उत्साह बढ़ा रहे थे तो दूसरी ओर शचीन्द्र सान्याल व गेंदालाल दीक्षित ने भी उत्तर प्रदेश में अपने क्रान्तिकारी प्रशिक्षण केन्द्र खोल रखे थे। क्रान्तिकारी अपने संगठनों के प्रति पूरी तरह से समर्पित भाव से काम करते थे। काशी में योगेश चन्द्र चटर्जी व सान्याल ने 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' के माध्यम से अनेक क्रान्तिकारी युवक तैयार किए। इन युवकों का एक ही उद्देश्य था— 'देश की आजादी' और प्राप्त करने के लिए अपने प्राणों की आहूति दे देना। इनका एक ही आदर्श वाक्य (मोटो) था :

"क्या हुआ गर मिट गए अपने वतन के वास्ते,
बुलबुलें कुरबान होती हैं - चमन के वास्ते॥"

नवयुवक क्रान्तिकारियों को अपने संगठन के लिए शस्त्र तथा धन की आवश्यकता हमेशा बनी रहती थी। अत: इसके लिए ब्रिटिश खजानों पर हमले करने पड़ते थे। डाके डालने पड़ते थे। इन डाकों में 'काकोरी ट्रेन डकैती' बहुत प्रसिद्ध है। 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' के सदस्यों ने यह साहसपूर्ण कार्य किया था।

काकोरी ट्रेन डकैती :

काकोरी लखनऊ के पास एक स्टेशन है। 1925 ई. की नौ अगस्त का दिन था। संध्या के लगभग आठ बज रहे थे। ट्रेन लखनऊ से हरदोई जा रही थी। उसमें सरकारी खजाना जा रहा था। रामप्रसाद बिस्मिल ने अपने साथियों से मिलकर सरकारी खजाने को लूटने का निश्चय किया। ट्रेन जब काकोरी और आलमपुर के बीच जंगल में पहुँची तो सहसा जंजीर खींच कर उसे रोक लिया गया। गार्ड ने इधर-उधर देखा तो 10 पिस्तोलधारी युवक ट्रेन के नजदीक खड़े हैं। बिस्मिलजी के आदेश से गार्ड चुपचाप जमीन पर लेट गया। ट्रेन में डाक के डिब्बे की तलाशी हुई। डाक के थैले नीचे फेंक दिए गए। उनमें से सारा धन निकाल कर क्रान्तिकारी भागने में सफल हो गए। यह सारा खेल केवल 10 मिनट में खेल लिया गया।

यद्यपि यह सारा काम बड़ी चतुराई से किया गया था, परन्तु सरकारी जासूसी विभाग क्रान्तिकारियों का पता लगाने में सफल हो गया। एक-एक करके सभी

क्रान्तिकारी पकड़े गए। बिस्मिलजी 25 दिसम्बर, 1925 को बन्दी बना लिए गए। उन पर तथा उनके साथियों पर मुकदमा चलाया गया जो इतिहास में काकोरी षड्यंत्र अभियोग के नाम से प्रसिद्ध है। लगभग 18 माह तक मुकदमा चला। अन्त में इस षड्यंत्र के नेता रामप्रसाद बिस्मिल तथा उसके साथियों को विभिन्न प्रकार की सजाएँ हुई। रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी और रोशनसिंह को फाँसी की सजा हुई। शचीन्द्रनाथ सान्याल को आजीवन काले पानी की सजा हुई। मनमथनाथ गुप्त को 14 वर्ष का कठोर कारावास दिया गया। मुकुन्दीलाल, गोविन्दचरण काक, रामकुमार सिंह, एवं रामकृष्ण खत्री को दस-दस वर्ष की सजा हुई। इसके पूरक अभियोग में अशफाक उल्ला को भी फाँसी की सजा हुई। बाद में सरकारी अपील से कुछ क्रान्तिकारियों की सजा को और बढ़वा दिया, परन्तु आयु कम होने के कारण मनमथनाथ गुप्त की सजा नहीं बढ़ाई गई। काकोरी काण्ड के इन शहीदों की कुर्बानियों को याद कर हम उन्हें शत्-शत् नमन करते हैं—

"जब वतन को लहू की जरूरत पड़ी,
तो वीरों ने बढ़-चढ़ के कुर्बानी दी।
अब अहले वतन उनसे कहते हैं यूँ–
झूलेंगे हम तेरी शहादत नहीं॥"

इस अभियोग में शहीद लोगों के जीवन परिचय बिना तो हमारे स्वतत्रता संग्राम का इतिहास अधूरा ही रहेगा।

रामप्रसाद बिस्मिल :

रामप्रसाद एक शूरवीर क्रान्तिकारी व्यक्ति थे। आपका जन्म 1887 ई. को 'शाहजहाँपुर' में हुआ। पिता मुरलीधर साधारण स्थिति के थे। बड़ी कठिनाई से परिवार का गुजर हो पाता था। रामप्रसाद बचपन से ही बड़े नटखट व ऊधमी स्वभाव के थे। अत: पढ़ने लिखने में आपका मन नहीं लगता था। प्रारम्भ में हिन्दी व उर्दू में शिक्षा प्राप्त की। बाद में मिशन हाई स्कूल में भर्ती कराए गए, परन्तु वहाँ भी आपका मन पढ़ने लिखने में नहीं लगता था। आपमें अनेक बुराइयाँ घर कर गई थीं। पिता रामप्रसाद के आचरण से बहुत दु:खी थे।



रामप्रसाद बिस्मिल

परन्तु कुछ ही वर्षों बाद आपके जीवन में नया मोड़ आया। इसका श्रेय आर्य

समाज की शिक्षाओं को जाता है। उन दिनों आर्य समाज के उपदेशक सोमदेव जी आपके गाँव में आए हुए थे। आपके सम्पर्क से रामप्रसाद चरित्रवान देशभक्त बन गए। व्यायाम-प्राणायाम से आपका शरीर आकर्षक हो गया। स्वामी दयानन्द के साहित्य से ही आपमें देशभक्ति की भावना जाग्रत हुई। आप रात दिन देश के लिए कुछ कर गुजरने की सोचा करते थे। आपकी दृष्टि से भारतवासियों के दु:खों का कारण विदेशी शासन था। कांग्रेस उस समय स्वशासन का नारा दे चुकी थी। अत: रामप्रसाद बिस्मिल 1916 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में पहुँचे। वहाँ उन्हें निराशा ही हाथ लगी। उन्होंने सोचा केवल प्रस्तावों से काम चलने वाला नहीं है। अत: वे किसी क्रान्तिकारी संगठन की तलाश में निकल पड़े। पहले वे गेन्दालाल दीक्षित द्वारा संचालित क्रान्तिकारी संगठन में मैनपुरी काम करने लगे, परन्तु गेंदालाल दीक्षित की गिरफ्तारी से यह दल छिन्न-भिन्न हो गया। अब वे बनारस पहुँचे। उन दिनों वहाँ चन्द्रशेखर आजाद तथा शचीन्द्र सान्याल ने 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' नामक क्रान्तिकारी संगठन की स्थापना कर ली थी। रामप्रसाद बिस्मिल भी उसमें काम करने लगे। इस दल के लिए धन की कमी पूरी करने के लिए आपने अपने साथियों के साथ काकोरी स्टेशन के निकट ट्रेन का खजाना लूटा था। इस काकोरी षड्यंत्र अभियोग में ही आपको फाँसी की सजा दी गई। 19 दिसम्बर, 1927 ई. को आततायी ब्रिटिश शासन ने परम देशभक्त बिस्मिल को फाँसी पर चढ़ा दिया, परन्तु धीर वीर ताँत्या टोपे की भांति आपने हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन किया। अंतिम समय में आपके मुँह से ये शब्द निकले—"मैं ब्रिटिश साम्राज्य का पतन चाहता हूँ।" गोरखपुर की जनता ने आपका शव प्राप्त किया और बहुत ही धूमधाम से आपकी अन्त्येष्टि की। फाँसी के कुछ दिन पहले आपने अपने मित्र को पत्र में लिखा था—"19 तारीख को जो होने वाला है, उसके लिए मैं अच्छी तरह से तैयार हूँ। यह है ही क्या, केवल शरीर का बदलना मात्र है। मुझे विश्वास है कि मेरी आत्मा मातृभूमि तथा उसकी संतति के लिए नए उत्साह व ओज के साथ काम करने को फिर लौट आएगी। रामप्रसाद परम् देशभक्त के साथ उर्दू तथा हिन्दी के अच्छे कवि थे। बिस्मिल 'घायल' उपनाम से कविता लिखा करते थे। फाँसी पर चढ़ने के कुछ दिन पहले उन्होंने एक कविता सुनाकर सभी मित्रों का अभिवादन किया था। यह कविता उनके चरित्र का समुचित भाष्य है—

"यदि देश हित मरना पड़े मुझको सहस्त्रों बार भी।
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊँ कभी॥
हे ईश, भारतवर्ष में शतबार मेरा जनम हो।
कारण सदा ही मृत्यु का देशीय कारक कर्म हो।

मरते 'बिस्मिल' रोशन लहरी, अशफाक अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों उनकी रुधिर की धार से।
उनके प्रबल उद्योग से उद्धार होगा देश का।
तब नाश होगा सर्वथा दुःख शोक के लव लेश का॥"

परम् देशभक्त बिस्मिल देश के खातिर फाँसी पर तो चढ़े ही थे, परन्तु राष्ट्रीय एवं साम्प्रदायिक एकता के लिए भी जीवन भर कार्य करते रहे। मुसलमान भाइयों से उनका विशेष प्रेम था। अशफाक उल्ला साहब के साथ वे बिना किसी भेदभाव के खाते-पीते उठते-बैठते थे। देश के लिए उनका समर्पित जीवन एवं बलिदान युगों-युगों तक नव-युवक समाज के लिए अजस्र प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

अशफाक उल्ला (1900-1927 ई.) :

प्रसिद्ध पठान परिवार में अशफाक उल्ला का जन्म 1900 ई. में मध्य प्रदेश की भोपाल रियासत में हुआ। आपके बड़े भाई रियासत में उच्च पद पर काम करते थे। उन्हीं की बन्दूक से अशफाक ने बन्दूक चलाना सीखा। अपने प्रिय सखा रामप्रसाद की तरह आपका मन भी पढ़ने लिखने में नहीं लगा और आठवीं कक्षा के बाद ही स्कूल छोड़ दिया। उन्हीं दिनों वे रामप्रसाद के सम्पर्क में आएं। दोनों परम् मित्र बन गए, क्योंकि दोनों के हृदय में देश-प्रेम कूट-कूट कर समाया हुआ था। एक कट्टर आर्य समाजी से मुसलमान की मित्रता वास्तव में राष्ट्रीय चरित्र को निखारने वाली घटना थी।



अशफाक उल्ला खान

अशफाक उल्ला गोरे रंग के, लम्बे चौड़े कद के सुन्दर नौजवान थे। वे सदा मुस्कराते रहते थे। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क के तो वे प्रतिमूर्ति थे। अपने दोस्त की तरह वे उर्दू के अच्छे शायर एवं हिन्दी के अच्छे कवि थे। वे प्राय: अपनी यह कविता गुनगुनाया करते थे—

"हे मातृभूमि तेरी सेवा किया करूँगा।
फाँसी मिले मुझे या हो जन्म कैद।
मेरी बेड़ी बजा-बजाकर तेरा भजन किया करूँगा॥"

अपने मित्र के साथ काकोरी ट्रेन डकैती में आपने भाग लिया और खजाने का बक्स तोड़ने वाले आप ही थे। डकैती के बाद 26 सितम्बर, 1925 को देश भर में पकड़ा-धकड़ी हुई। उस दिन अशफाक उल्ला शाहजहाँपुर में ही थे, किन्तु वे पकड़े न जा सके, क्योंकि वे एक गन्ने के खेत में छिप गए थे। बाद में वे बनारस चले गए। वहाँ से वे बिहार चले गए। अपने आपको मथुरा जिले का कायस्थ बताकर डाल्टनगंज में काम करने लगे, परन्तु वहाँ भी आपका मन नहीं लगा और वे दिल्ली आए। दिल्ली में अपने एक जिगरी दोस्त के यहाँ ठहरे। वह भी पठान था और शाहजहाँपुर का ही रहने वाला था, परन्तु आपके मित्र ने आपके साथ धोखा किया और पुरस्कार के लालच में उसी प्रकार उसे गिरफ्तार करवा दिया जिस प्रकार ताँत्या टोपे को गिरफ्तार करवा दिया था। भारत का इतिहास ऐसी दु:खान्त घटनाओं से भरा पड़ा है।

बन्दी बनाने के बाद ब्रिटिश सरकार ने आपको अनेक यातनाएँ दी और आपको सरकारी गवाह बनाने का प्रयास किया, परन्तु वे टस से मस नहीं हुए। काकोरी डकैती से ही सम्बन्धित एक अन्य क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ बख्शी पर भी उन दिनों मुकदमा चल रहा था। अशफाक उल्ला का मुकदमा भी उसमें शामिल कर लिया गया। बख्शी को जन्म कैद हुई और अशफाक को फाँसी की सजा। फैजाबाद जेल में 19 दिसम्बर, 1927 ई. को वे फाँसी पर चढ़ कर शहीद हो गए। फैजाबाद में ही सगे सम्बन्धियों ने आपको ससम्मान दफना दिया।

अशफाक उल्ला जैसे निश्छल देशभक्त हमारे देश में बिरले ही हुए हैं। आप सच्चे भारतीय थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता के तो आप प्राण थे। आपके मित्र रामप्रसाद बिस्मिल का संस्मरण इस सन्दर्भ में यहाँ उल्लेखनीय है—"बहुधा मैंने तुमने एक थाली में भोजन किया, मेरे हृदय से यह विचार ही जाता रहा कि हिन्दू व मुसलमान में कोई भेद है। वे मुझ पर अटल विश्वास व अगाध प्रेम रखते थे। तुम मुझे सदैव 'राम' कहकर पुकारते थे। एक बार जब तुम दिल के दौरे से अचेत हो गए, तब तुम्हारे मुँह से बार-बार 'राम' शब्द निकल रहा था। पास खड़े आपके भाई बन्धुओं को आश्चर्य हुआ कि एक मुसलमान 'राम-राम' कहता है, परन्तु जब मैं वहाँ आया तो यह रहस्य खुल गया। 'राम' किसे कह रहे थे?"

"...मुझे यदि शांति है तो यही है कि तुमने संसार में मुझे उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना उल्लेखनीय है कि अशफाक उल्ला ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लिया। भाई बन्धु सगे सम्बन्धियों को समझाने पर भी तुमने कुछ न ध्यान दिया। गिरफ्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे। जैसे तुम शरीर से बलशाली थे, उसी तरह मन व आत्मा से भी बलशाली थे। तुम्हारा चरित्र बहुत ही उज्ज्वल था।"

वास्तव में अशफाक उल्ला की शहादत भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। आपका जीवन हमारे राष्ट्रीय चरित्र की अमूल्य धरोहर है।

राजेन्द्र लाहिडी :

तन से सुन्दर व कोमल, परन्तु विचार व मन से दृढ़ राजेन्द्रनाथ का जन्म 1892 ई. में पूर्वी बंगाल में हुआ था। आपके पिता क्षितीशमोहन लाहिड़ी बड़े जमींदार थे। उन दिनों बनारस क्रान्तिकारियों का प्रमुख केन्द्र था और बंगाल से अनेक क्रान्तिकारी वहाँ जम गए थे। राजेन्द्रनाथ उन दिनों बनारस के हिन्दू कॉलेज में पढ़ते थे। वहाँ आपका सम्पर्क क्रान्तिकारियों से हुआ और पढ़ना लिखना छोड़ कर देश-सेवा में लग गए, क्योंकि आपके हृदय में देश-प्रेम की हिलोरें पहले से ही उठ रहीं थीं। आप 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' के सक्रिय सदस्य बन गए। जब इस दल के क्रान्तिकारियों ने काकोरी डकैती की योजना बनाई तो राजेन्द्रनाथ भी उत्साह से उसमें शामिल हो गए। इससे पहले भी दल के धन संग्रह के लिए कितनी ही डकैतियों में आप भाग ले चुके थे।

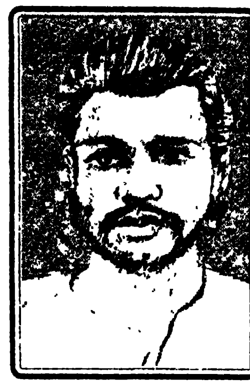
धन के साथ-साथ क्रान्तिकारियों को शस्त्रों तथा बमों की आवश्यकता थी। अत: राजेन्द्रनाथ को बम बनाने का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए कलकत्ता भेजा गया। प्रशिक्षण के दौरान दक्षिणेश्वर के मकान पर छापा मारा गया जिसमें राजेन्द्रनाथ बन्दी बना लिए गए। दक्षिणेश्वर बम काण्ड अभियोग में आपको दस वर्ष की सजा हुई। अब काकोरी षड्यंत्र अभियोग के लिए उन्हें लखनऊ लाया गया। लखनऊ में आपको अलग कमरे में रखा गया और आपके साथ कठोर व्यवहार किया गया! आपको बेड़ियों से जकड़ा गया।

6 अप्रेल, 1927 ई. को काकोरी डकैती के अभियुक्तों को सजा सुनायी गयी जिसमें रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला के साथ राजेन्द्रनाथ को भी फाँसी की सजा सुनाई गई। फाँसी की सजा सुनकर आपके चेहरे पर किसी प्रकार की चिन्ता व परेशानी की रेखाएँ नहीं देखी गईं। आप उसी प्रकार मुस्करा रहे थे, जैसे वीर लोग रणक्षेत्र में जाते हुए मुस्कराते हैं। फाँसी के तीन दिन पहले आपने अपने एक मित्र को पत्र लिखा था, जो आज आपके चरित्र का उचित भाष्य है—

"आप लोगों ने हम लोगों की प्राण रक्षा के लिए कुछ भी उठा कर नहीं रखा, परन्तु मालूम होता है कि देश की बलिदेवी को हमारे रक्त की आवश्यकता है। मृत्यु क्या है ? जीवन की दूसरी दिशा के अतिरिक्त कुछ नहीं। इसलिए मनुष्य मृत्यु को दु:ख व भय क्यों माने ? यदि यह सच है कि इतिहास पल्टा खाया करता है तो मैं समझता हूँ कि हमारी मृत्यु व्यर्थ नहीं जाएगी!" उनका यह विश्वास बिलकुल ही सच निकला। वास्तव में क्रान्ति की बलिवेदी पर हँसते-

हँसते फाँसी पर चढ़ जाने वाले ऐसे वीरों ने इस देश को स्वतंत्रता का स्वर्णिम प्रात:काल दिया है। राजेन्द्र को 17 दिसम्बर, 1927 ई. को ही गोंडा जेल में फाँसी दे दी गई जबकि अन्य अभियुक्तों को 19 दिसम्बर को फाँसी हुई। अत: कॉकोरी अभियोग में देश के लिए शहीद होने वालों में आप प्रथम रहे। राजेन्द्र का बलिदान देश के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। अपना सुन्दर सुडौल यौवन देश को समर्पित कर आपने युवकों के लिए एक नयी मिशाल कायम की।

मनमथनाथ गुप्त :



मनमथनाथ गुप्त

बनारस में 1908 ई. को सम्पन्न परिवार में आपका जन्म हुआ। बाल्यावस्था में ही आप पर देशभक्ति का रंग चढ़ गया था। चन्द्रशेखर आजाद ने बनारस में जब बहुत बहादुरी से महात्मा गाँधी की जय के साथ 15 बेंतें खाईं तब बनारस कॉलेज में उनका हार्दिक अभिनन्दन किया गया। बालक मनमथनाथ गुप्त ने भी उसमें उत्साह से भाग लिया। तभी से आप आजाद एवं उसके प्रजातंत्र संघ के प्रति अपूर्व श्रद्धा रखने लगे। इसी कारण 13 वर्ष की आयु में ही आपको तीन माह के कारावास की सजा भोगनी पड़ी। युवावस्था में तो हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ के सक्रिय सदस्य बन गए और काकोरी ट्रेन डकैती में भाग लिया। लम्बे मुकदमे के बाद आपके चार साथी रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला, रोशनसिंह व राजेन्द्र लाहिड़ी को फाँसी हुई। आयु कम होने के कारण आपको 14 वर्ष के आजीवन कारावास की सजा हुई। 12 वर्ष बाद 1937 में आप रिहा हुए, परन्तु इसी वर्ष दिल्ली में पुन: पकड़े गए और चार माह के कठोर कारावास की सजा हुई।

1939 ई. में क्रान्तिकारी कार्यों में भाग लेने के कारण पुन: बंदी बनाए गए और 7 वर्ष बाद 1946 ई. को जेल से बाहर आए। परम देशभक्त के साथ-साथ आप उच्च कोटि के लेखक भी रहे हैं। आपकी लगभग 100 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। लेखन के क्षेत्र में आपको अनेक इनाम मिल चुके हैं। आप आज नहीं हैं, परन्तु आपकी देशभक्ति सदैव स्मरणीय रहेगी।

बाबा पृथ्वीसिंह आजाद :

1892 ई. को अंबाला जिले के लहरू गाँव में आपका जन्म हुआ। पिता शादीरामजी बर्मा व्यापार के लिए चले गए। पृथ्वीसिंह आजाद भी बर्मा में ही शिक्षा प्राप्त करने लगे, परन्तु स्कूल की शिक्षा पूरी भी न कर पाये कि वे 1911 में अमेरिका

चले गए, वहाँ लाला हरदयाल की गदर पार्टी में काम करने लगे। भारत लौटने पर संभावित सशस्त्र क्रान्ति की योजना में शामिल होने के अपराध में पकड़े गए। पहले तो आपको फाँसी की सजा सुनाई गई, परन्तु बाद में इस सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया गया। 16 वर्ष अण्डमान रहकर भारत में पूना जेल में रखे गए। यहीं से आप जेल से निकल भागे और 16 वर्ष तक भूमिगत रहे। भगतसिंह के 'प्रजातंत्र संघ' में स्वामी राव के नाम से काम करने लगे।

1938 ई. में गाँधीजी के प्रभाव से आपने क्रान्तिकारी कार्यों से अपना नाता तोड़ लिया और 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। नवयुवकों में राष्ट्र प्रेम की भावना फैलाते हुए इस संसार से चल बसे।

पंडित सुन्दरलाल :

आपका जन्म 26 दिसम्बर, 1886 ई. को मुजफ्फरनगर जिले के खतौली नामक गाँव में हुआ। शुरू में आप क्रान्तिकारी विचारों के थे। बाद में महात्मा गाँधी के प्रभाव से असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। इसके लिए आपको अनेक बार जेल जाना पड़ा व यातनाएँ उठाई। प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी एवं प्रबुद्ध लेखक के रूप में आप सदा याद रहेंगे। आपकी रचित 'भारत में अंग्रेजी-राज' पुस्तक पठनीय है।

कानपुर षड्यंत्र :

काकोरी षड्यंत्र के साथ-साथ कानपुर में साम्यवादियों का एक षड्यंत्र पकड़ा गया। इस षड्यंत्र में अमृत डांगे, शौकत उस्मानी, मुजफ्फर अहमद, नलिनी बाबू आदि पकड़े गए। इस अभियोग में आप पर यह आरोप लगाया गया कि ये लोग ब्रिटिश सरकार को उलटने का षड्यंत्र कर रहे हैं। इनको चार-चार साल की सजा हुई।

मेरठ अभियोग :

यह हम पहले पढ़ चुके हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ मजदूरों में नव शक्ति एवं चेतना का संचार हो गया था। मजदूर आन्दोलन काफी जोर पकड़ने लगा। सरकार मजदूरों की बढ़ती हुई शक्ति को कैसे सहन कर सकती थी ? अतः मार्च 1929 ई. में ब्रिटिश सरकार ने मजदूर नेताओं पर यह अभियोग लगाया कि वे रूस की साम्यवादी सरकार के संकेत पर भारत में क्रान्ति पैदा कर ब्रिटिश सरकार का तख्ता पलट देना चाहते हैं। 20 मार्च, 1929 ई. को बम्बई, पंजाब और संयुक्त प्रान्त में ताजीराते हिन्द की धारा 121 के अन्तर्गत सैकड़ों मजदूर नेताओं के घरों की तलाशी ली गई और मजदूर आन्दोलन के खास-खास नेता बन्दी बनाए गए। इनमें कांग्रेस के भी आठ नेता गिरफ्तार हुए। इन पर यह आरोप

लगाया गया कि ये साम्यवादी विचारधारा फैला कर इसके माध्यम से सरकार का तख्ता पलटने का प्रयास कर रहे हैं। इन अभियुक्तों में लन्दन में यूस्पार्क के संपादक मि. एच.एल.हचिन्सन भी थे।

अभियुक्तों में ट्रेड यूनियन कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता तथा अन्य मजदूर संघों के पदाधिकारी थे, जिनमें श्रीपाद अमृत डांगे, किशोरीलाल घोष, डी.आर.बाड़ी, एस.बी.घाटे, केज जोगलेकर, एस.एच. झाबवाला (रेलवे मेन्स फैडरेशन के संगठन मंत्री), फिलिफ स्प्रेट, बेनब्रैडले, एस.एस. मिजकर, पूर्णचन्द्र जोशी, ए. ए.आल्वे, जी.आर. कसले, गोपाल बसक, डॉ. गंगाधर अधिकारी, एम.ए. मजीद (पंजाब नौजवान सभा के जन्मदाता), विश्वनाथ मुकर्जी, केदारनाथ सहगल, राधाकृष्ण मित्र, धरनी गोस्वामी, गौरीशंकर (यूपी.) किसान मजदूर पार्टी के सदस्य, शम्सुल हुदा, शिवनाथ बनर्जी, गोपेन्द्र चक्रवर्ती, सोहनसिंह जोशी, एम.जी. देसाई, अयोध्या प्रसाद आदि प्रमुख थे।


श्रीपाद अमृत डांगे

उपर्युक्त सभी व्यक्ति किसान मजदूर संघों के प्रभावकारी नेता थे। तीन अभियुक्त अंग्रेज थे, जो इंग्लैण्ड के मजदूर आन्दोलन के प्रतिनिधि थे। ये लोग भी भारतीय नेताओं के साथ-साथ अदालत के कटघरे में खड़े किए गए और बाद में उनके साथ जेल भी गए। देश-विदेश में इनकी गिरफ्तारी का कड़ा विरोध हुआ। देश-विदेश में एक ऐसा प्रचार तंत्र तैयार हुआ जिसके माध्यम से भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की खुलकर निन्दा की गई। अभियुक्तों के बचाव के लिए देश-विदेश में अनेक समितियाँ बनीं और कांग्रेस ने भी अभियुक्तों का समर्थन किया। इतना सब कुछ होने पर अभियोग चार साल तक चलता रहा और अभियुक्त जेलों में सड़ते रहे। इससे स्पष्ट विदित होता है कि विदेशी शासन कितना दुराग्रही एवं जन-भावनाओं की उपेक्षा करने वाला था।

सन् 1933 ई. के जनवरी मास में अचानक सजाएँ सुनायी गईं। मुजफ्फर अहमद को आजन्म काले पानी की व श्रीपाद अमृत डांगे, घाटे, जोगलेकर, निम्बकर और स्प्रेट को 13 साल के लिए काला पानी, वेडले, मिजकर और उसमानी को 10 साल के काला पानी की सजा सुनाई गयी। अन्य को तीन वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी गई, परन्तु अन्य देशों के मजदूर आन्दोलन एवं स्थायी संगठनों की अपील पर बाद में सभी की सजाओं में थोड़ा परिवर्तन किया गया। यह सम्पूर्ण मामला इतिहास में मेरठ षड्यंत्र केस के नाम से प्रसिद्ध है।

बब्बर अकाली आन्दोलन :

ब्रिटिश शासन के अत्याचारों से देश के नवयुवक परेशान थे। अतः उन्होंने ईंट का जवाब पत्थर से देने का निश्चय किया। जलियाँवाले बाग हत्याकाण्ड तथा इसके दो वर्ष बाद ननकाना के नरमेध से नवयुवकों का खून खौल रहा था। विशेष करके सिक्ख युवक खून का बदला खून से लेने के लिए आरूढ़ थे। गदर पार्टी के नेताओं को जिस बेरहमी से फाँसी दी गई थी, उसे वे कैसे भूल सकते थे। अतः सिक्ख सैनिक किशनसिंह गड़गज ने नवयुवकों से मिलकर बब्बर आन्दोलन की आधारशिला रखी। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य 'अंग्रेज तथा उन भारतीयों अधिकारियों का सफाया करना था, जिनका देशभक्तों को पकड़वाने या फाँसी दिलवाने में हाथ रहा है।

कुछ समय 'बब्बर लोग' गुप्त रूप से क्रान्ति की भावना जगाते रहे। थोड़े ही दिनों में इनकी संख्या बढ़ती गई और आन्दोलन लोकप्रिय हो गया। इस दल ने सन् 1914 से लेकर 1921 तक देश के साथ गद्दारी करने वालों की एक लम्बी चौड़ी सूची बना ली। एक-एक करके गद्दारों का सफाया किया जाने लगा, जिसे 'बब्बर' अपनी भाषा में 'सुधार' कार्य कहते हैं। इस 'सुधार' कार्यक्रम से अंग्रेज अधिकारी अत्यधिक भयभीत हुए। उनकी रक्षा के लिए सेना तैनात करनी पड़ी, परन्तु बब्बर पाँच अलग-अलग जत्थेदारों के नेतृत्व में अपना काम करते रहे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रुपया, पैसा, बारूद व शस्त्र एकत्रित किए गए। सैनिकों से सम्पर्क किया गया। इन सब कार्यों का उद्देश्य विदेशी शासन को भारत से समाप्त करना था। सरकार ने इस आन्दोलन को कुचलने में कुछ कसर उठाकर नहीं रखी। बब्बर आन्दोलन के मुख्य नेता किसनसिंह गड़गज पकड़े गए और उन्हें लाहौर सेन्ट्रल जेल में फाँसी दी गई। इस आन्दोलन के अन्य नेता जत्थेदार कर्मसिंह, उदयसिंह, बिशनसिंह और महेन्द्रसिंह ने भी ब्रिटिश शासन के नाक में दम कर दिया था। कर्मसिंह दौलपुर और उदयसिंह रामगढ़ झुग्गिया, विशनसिंह मंगत के और महेन्द्रसिंह पिंडोरी गंगासिंह के रहने वाले थे। कर्मसिंह अच्छे संगठनकर्त्ता एवं वक्ता थे। उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर प्रचार किया कि "हम चुपचाप अंग्रेजों का अत्याचार क्यों सहन करें?" कर्मसिंह बब्बर अकाली अखबार भी निकालते थे। कर्मसिंह तथा इनके साथियों ने कितने ही गद्दारों का सफाया किया। सरकार ने सेना बुलाकर इनको पकड़ने का निश्चय किया।

एक सितम्बर, 1923 ई. को चारों बब्बर नेता कपूरथला के बोमेली गाँव से गुजर रहे थे कि किसी देशद्रोही ने इसकी सूचना पुलिस अधीक्षक स्मिथ को दे दी। सेना तथा पुलिस टुकड़ी ने इन चारों को घेर लिया, परन्तु इन रणबांकुरों ने

हार नहीं मानी और अंतिम दम तक लड़ते-लड़ते शहीद हो गए। इसी तरह से बैबलपुर निवासी धन्नासिंह ने अंग्रेजों को खूब सबक सिखाया, परन्तु वे अपने मित्र ज्वालासिंह के धोखे के कारण पकड़े गए। पकड़े जाने पर भी उन्होंने कितने ही सरकारी सैनिकों का सफाया कर दिया। सैनिक टुकड़ी का नायक हार्टन भी दो सिपाहियों के साथ मारा गया।

इस तरह 'बब्बर आन्दोलन' के युवा सिक्ख सदस्यों ने ब्रिटिश शासन को उनके काले कारनामों के लिए अच्छा सबक सिखाया। इन बब्बर बलिदानी वीरों का हमारे स्वतंत्रता के इतिहास में विशेष स्थान रहेगा।

साण्डर्स की हत्या :

हमें यह विदित है कि भारत में साइमन कमीशन का व्यापक विरोध हुआ, क्योंकि इसमें एक भी सदस्य भारतीय नहीं था। यह भारतीयों के आत्मनिर्णय के अधिकार को स्पष्ट चुनौती थी। कमीशन जब लाहौर पहुँचा तो लाला लाजपतराय के नेतृत्व में इसका तगड़ा विरोध हुआ। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर बर्बर लाठी वर्षा की जिसके कारण लालाजी गंभीर रूप से घायल हो गए और पन्द्रह दिन बाद ही 17 नवम्बर, 1928 को लालाजी का स्वर्गवास हो गया। देश भर में अंग्रेजों के इस अत्याचार का घोर विरोध हुआ, परन्तु नौजवान भारत सभा के सदस्य सुखदेव तथा भगतसिंह ने इसका बदला लेने का निश्चय किया।

लालाजी की हत्या के लिए क्रान्तिकारी पंजाब के पुलिस अधीक्षक 'स्काट' और उप-अधीक्षक साण्डर्स को उत्तरदायी मानते थे। अतः चन्द्रशेखर आजाद, सुखदेव, भगतसिंह, राजगुरु ने साण्डर्स का काम तमाम करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। लालाजी की मृत्यु के ठीक एक माह बाद 17 दिसम्बर, 1928 ई. को सहायक उप-अधीक्षक को सरदार भगतसिंह व राजगुरु ने अपनी गोलियों का निशाना बना कर मौत के घाट उतार दिया और सिपाही चाननसिंह को जो क्रान्तिकारियों का पीछा कर रहा था आजाद ने माउजर पिस्तौल से मौत के घाट उतार दिया, क्योंकि चन्द्रशेखर आजाद इस शौर्यपूर्ण कार्य का पीछे से संचालन कर रहे थे।

साण्डर्स की मृत्यु से सरकार बोखला उठी और पुलिस की सरगर्मी तेज कर दी गई, परन्तु क्रान्तिकारी बड़ी चतुराई से लाहौर से बाहर जाने में सफल हो गए। भगतसिंह एक सरकारी अधिकारी के रूप में प्रथम श्रेणी के डिब्बे में श्रीमती दुर्गा (भाभी) देवी बोहरा व उसके तीन वर्षीय पुत्र के साथ बैठ गए। प्रसिद्ध निशानेबाज राजगुरु उनके अर्दली बने। इस तरह से भगतसिंह लाहौर से कलकत्ता पहुँचने में सफल हो गए। चन्द्रशेखर साधु के वेश में एक यात्री दल के साथ मथुरा की ओर चल पड़े। पुलिस अधिकारी हाथ मलते ही रह गए।

बहरों के लिए धमाका :

सरकार निर्दोष लोगों को साण्डर्स हत्याकाण्ड में पूछताछ के लिए पकड़ने लगी। क्रान्तिकारियों ने अपने कारण दूसरे निर्दोष लोगों को कष्ट पाने की बात को ठीक नहीं समझा। अतः उन्होंने प्रकट रूप में कुछ करने की योजना बनाई। उन दिनों सारे देश में पब्लिक सेफ्टी बिल की बड़ी चर्चा थी। बिल भारतीय जनता के लिए बड़ा अहितकारी था। भारत भर में इसका कड़ा विरोध हो रहा था, परन्तु सरकार इसे पारित करने पर तुली हुई थी। भगतसिंह तथा उनके साथियों ने केन्द्रीय असेम्बली में जाकर इस बिल का विरोध करने का निश्चय किया। 8 अप्रेल, 1929 ई. में ज्योंही असेम्बली में अध्यक्ष ने बिल पारित होने की घोषणा की, केन्द्रीय विधान मण्डल का सभा कक्ष एक जोर के धमाके से गूँज उठा। धमाके के साथ ही कुछ पर्चे भी दर्शक दीर्घा से फेंके गए, जिनमें लिखा था "यह धमाका बहरों को सुनाने के लिए किया गया है।" धमाका भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त के द्वारा फेंके गए हल्के विस्फोटक पदार्थ युक्त बमों से हुआ। दो तीन आदमी साधारण रूप से घायल हुए, क्योंकि क्रान्तिकारियों का निर्दोष देशबन्धुओं की जान से खेलने का इरादा बिलकुल नहीं था।

सभी कक्ष धुएँ के बादलों के साथ-साथ इन्कलाब जिन्दाबाद के नारों से गूँज उठा। यह नारा आगे चलकर हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य सूत्र बन गया। इस नारे के उद्घोषक भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त यूरोपियन सैनिकों की वेश भूषा में भरी हुई बन्दूकों के साथ शांत भाव से दर्शक दीर्घा में खड़े थे। बमके धमाके से सुरक्षा व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। दोनों क्रान्तिकारी चाहते तो आसानी से वहाँ से नौ दो ग्यारह हो सकते थे, परन्तु उन्हें अपनी गिरफ्तारी की चिन्ता नहीं थी। वे तो गिरफ्तार होकर देश में स्वतंत्रता के लिए जन जागृति लाना चाहते थे। दोनों क्रान्तिवीर पुलिस की निष्क्रियता पर हँसते-हँसते गिरफ्तार हो गए।

गिरफ्तार करके दोनों को अलग-अलग जेल कोठरियों में रखा गया। दिल्ली के सत्र न्यायालय में 4 जून को मुकदमा पेश हुआ। केवल आठ दिन में ही फैसला घोषित कर दिया गया, जिसके अनुसार बम व पर्चे फेंकने के अपराध में दोनों क्रान्तिकारियों को आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया। दूसरा मुकदमा साण्डर्स की हत्या के सम्बन्ध में चलाया जो इतिहास में 'लाहौर षड्यंत्र अभियोग' के नाम से जाना जाता है। इसके फैसले में भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को फाँसी हुई।

बटुकेश्वर दत्त (1908-1962 ई.) :



बटुकेश्वर दत्त

बटुकेश्वर दत्त अपने छात्र जीवन में ही हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ के सदस्य बन गए और क्रान्तिकारी कार्यों में भाग लेने लगे। दत्त का जन्म नवम्बर, 1908 को कानपुर में बंगाली कायस्थ परिवार में हुआ था। आपके पिता गोरथबिहारी दत्त कानपुर में एक दवा कारखाने के मैनेजर थे और बहुत ही सरल एवं साधु प्रकृति के थे। आपकी माता कमलाकामिनी भी एक साध्वी महिला थी। बटुकेश्वर दत्त की शिक्षा दीक्षा कानपुर में हुई।

बटुकेश्वर दत्त बहुत ही सुन्दर एवं खुशमिजाज व्यक्ति थे। 1926 ई. में ही इनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। अत: आप पढ़ाई लिखाई छोड़कर देश-सेवा के काम में लग गए और हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ में काम करने लगे। इनका कार्य क्षेत्र आगरा रखा गया। संघ के कार्यों के लिए आप पंजाब गए और वहीं उनका भगतसिंह तथा राजगुरु से सम्पर्क हुआ। कानपुर में भगतसिंह बटुकेश्वर दत्त के साथ ज्यादा रहते थे। दोनों में प्रगाढ़ मित्रता थी। दोनों हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ के मुख्य कार्यकर्त्ता थे। दल के निर्देशन के अनुसार जन जागरण एवं ब्रिटिश-शासन के अत्याचारों के विरोध के रूप में आपने दिल्ली के केन्द्रीय विधान परिषद कक्ष में भगतसिंह के साथ बम फेंकने का काम किया था। इस सम्बन्ध में आपको आजीवन कारावास हुआ और अण्डमान जेल भेजे गए। इन पर लाहौर षड्यंत्र केस भी लगाया गया, परन्तु साक्षी के अभाव एवं भगतसिंह के बयानों के आधार पर इनको लाहौर षड्यंत्र से मुक्त कर दिया गया।

बटुकेश्वर दत्त को (1930-37 ई.) अण्डमान जेल में अनेक यातनाएँ दी गईं। वहाँ भी आपने राजनैतिक कैदियों के साथ दुर्व्यवहार के कारण संघर्ष किया। अन्त में महात्मा गाँधी के प्रयासों से खराब स्वास्थ्य के कारण 1938 ई. में जेल से मुक्त कर दिए गए, परन्तु बंगाल, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में आपके प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अपने भाई के साथ पटना में रहने लगे। भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लिया, पकड़े गए। आपको मोतिहारा जेल में रखा गया। वहाँ से 1946 ई. में छूटे और पटना में रहने लगे, परन्तु एक दुर्घटना में आप घायल हो गए और 19 जुलाई, 1962 को आपका देहान्त हो गया। फिरोजपुर में आपका

दाह संस्कार हुआ। भगतसिंह की माता भी अंतिम संस्कार में शामिल हुई। आप दत्त को अपने पुत्र के समान ही समझती थीं।

इस तरह से बटुकेश्वर दत्त ने अपना सारा जीवन देश सेवा में लगा कर तथा अनेक साहसपूर्ण क्रान्तिकारी कार्यों में भाग लेकर नव-युवकों के सामने एक आदर्श रखा। आपका देश-प्रेम चिर-स्मरणीय रहेगा।

शहीदे आजम सरदार भगतसिंह (1907-1931 ई.) :

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में शहीद भगतसिंह का नाम सर्वोपरि है। आपके रोम-रोम में देश-भक्ति समायी हुई थी। इसी कारण आप नवयुवकों के हृदय सम्राट थे। डॉ. पट्टाभिसीतारमैया के अनुसार कम उम्र में ही आपका नाम महात्मा गाँधी की भांति घर-घर में लोकप्रिय हो गया था। देश-प्रेम के क्षेत्र में सुभाष बोस के अतिरिक्त कोई भी आपके सामने नहीं टिक सकता।



शहीदे आजम भगतसिंह

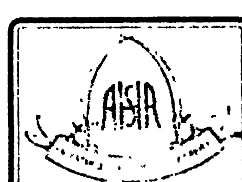
भारत माँ के इस लाड़ले का जन्म 23 सितम्बर, 1907 ई., को पंजाब के कल्याणपुर गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम किसनसिंह तथा माता का नाम विद्यावती देवी था। आपके परिवार के सभी सदस्यों के हृदय में देशभक्ति हिलोरें लेती रहती थीं। चाचा अजीतसिंह तथा स्वर्णसिंह देश के लिए कितनी बार जेल यात्रा कर चुके थे। भगतसिंह का जन्म जिस दिन हुआ उसी दिन अजीतसिंह जेल से छूट कर आए थे। अत: इसी खुशी में नवजात शिशु का नाम उसकी दादी ने भाग्यवाला-भगतसिंह रखा।

भगतसिंह की प्रारम्भिक शिक्षा बंगाल में हुई। इसके बाद लाहौर डी.ए.वी. कॉलेज में भर्ती हुए। उन्हीं दिनों महात्मा गाँधी के नेतृत्व में देश भर में असहयोग आन्दोलन चल पड़ा। हमारे चरित्र नायक भगतसिंह भी इस आन्दोलन में कूद पड़े, परन्तु चौरी-चौरा काण्ड के कारण जब आन्दोलन स्थगित कर दिया गया तो नवयुवकों का विश्वास अहिंसक आन्दोलन से उठ गया और वे देश की आजादी के लिए शस्त्र पकड़ने को मजबूर हुए। उन्ही दिनों बंगाल के अनेक

क्रान्तिकारी उत्तर भारत में क्रान्ति की अलख जगा रहे थे। इस सम्बन्ध में शचीन्द्र सान्याल लाहौर आए हुए थे। भगतसिंह की उनसे भेंट हुई। पहली भेंट में ही सान्याल आपसे अत्यधिक प्रभावित हुए। सान्याल ने भगतसिंह के अटूट देश-प्रेम को देखकर उन्हें क्रान्तिकारी कार्यों के प्रशिक्षण के लिए कानपुर भेज दिया। वहाँ वे गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप प्रेस' में काम करने लगे और 'बलवन्त' के नाम से क्रान्तिकारी लेख भी लिखने लगे। वहीं चन्द्रशेखर आजाद व रामप्रसाद बिस्मिल के प्रयत्न से हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ की स्थापना हुई थी। भगतसिंह भी इस दल में काम करने लगे।

इसी दल के तत्वावधान में चन्द्रशेखर आजाद की योजनानुसार काकोरी ट्रेन डकैती की गई थी। काकोरी षड्यंत्र अभियोग में हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ के मुख्य नेताओं को फाँसी दी गई। इनमें रामप्रसाद बिस्मिल भी थे। अत: यह दल छिन्न-भिन्न हो गया और क्रान्तिकारी स्वतंत्र रूप से छोटे-छोटे संगठनों में काम करने लगे। पंजाब में सुखदेव व भगतसिंह ने 'नव जवान भारत सभा' का निर्माण किया, परन्तु सरदार भगतसिंह ने विचार किया कि देश में विभिन्न अंचलों के क्रान्तिकारी संगठन के प्रतिनिधियों को एकत्रित कर एक 'केन्द्रीय समिति' का निर्माण किया जाए। इसके लिए विजयकुमार सिन्हा के साथ दौरा करके देश भर के क्रान्तिकारियों की सूची बनाई गई। इस सम्बन्ध में 8 दिसम्बर, 1928 ई. को दिल्ली के फिरोजशाह कोटला में एक महत्त्वपूर्ण बैठक की गई जो अपने आप में ऐतिहासिक बैठक थी।

सबसे पहले दल के नाम पर विचार हुआ। भगतसिंह के सुझाव पर दल का नाम 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' रखा गया। दूसरी बैठक में यह निश्चय हुआ कि 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना' के सैनिक अपने परिजनों से सभी सम्बन्ध तोड़ लें और अपनी सारी शक्ति दल को अर्पित कर दें। धर्म तथा सम्प्रदाय के आडम्बरों का दल में कोई स्थान नहीं है। अत: भगतसिंह ने अपने केश तथा दाढ़ी मुण्डवा लिए। क्रान्ति का मुख्य ध्येय शोषण विहीन समाज, धर्म निरपेक्ष प्रजातंत्र राज्य की स्थापना है।


हि.स.प.स. की मोहर

अब इस दल के राष्ट्रीय नेताओं को अपमानित करने वाले तथा उनको अपमानित करने वाले अंग्रेज अधिकारियों का काम तमाम करने का कार्य अपने हाथ में लिया। पंजाब पुलिस के उप-अधीक्षक साण्डर्स को क्रान्तिकारियों ने लाला लाजपतराय की मृत्यु के लिए उत्तरदायी ठहराया। अत: चन्द्रशेखर, भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव ने साण्डर्स को इस दुनियाँ से उठा लेने का

निश्चय किया। 17 दिसम्बर, 1928 को अपरान्ह चार बजकर तीन मिनट का समय हुआ होगा कि साण्डर्स अपनी मोटर साईकिल पर बैठ कर बाहर निकला। कुछ ही दूर गया होगा कि भगतसिंह तथा राजगुरु ने साण्डर्स को अपनी गोलियाँ का निशाना बना लिया। इस शौर्यपूर्ण कार्य का संचालन चन्द्रशेखर पीछे से कर रहे थे। अतः उन्होंने राजगुरु तथा भगतसिंह की ओर बढ़ने वाले सिपाही चाननसिंह को अपनी गोली का निशाना बनाकर रास्ता साफ कर दिया।

राजगुरु, भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आजाद पुलिस तथा गुप्तचरों की आँखों में धूल झोंक कर लाहौर से निकलने में सफल हो गए। इसी बीच दल ने केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकने की योजना बनाई। भगतसिंह कलकत्ता पहुँचे। वहाँ से अप्रेल, 1929 में पुनः दिल्ली आ गए। इस कार्य के लिए भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त को चुना गया। इस बम काण्ड का उद्देश्य बहरों को सुनाने के लिए धमाका कर जन-जागरण करना था। ब्रिटिश शासन को भारत पुत्रों के शौर्य का परिचय देकर अपने आपकी स्वतंत्रता यज्ञ में आहूति देकर नवयुवकों में देश के लिए बलिदान होने की प्रेरणा भी इस बम काण्ड का प्रमुख उद्देश्य था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 8 अप्रेल, 1929 ई. को दिल्ली के केन्द्रीय विधान मण्डल के सभा कक्ष में दो बम फेंके गए। कोई जन हानि न हुई और क्योंकि क्रान्तिकारियों का यह उद्देश्य बिलकुल नहीं था। दोनों युवक पकड़े गए, इन्हें इस केस में आजीवन कारावास की सजा हुई।



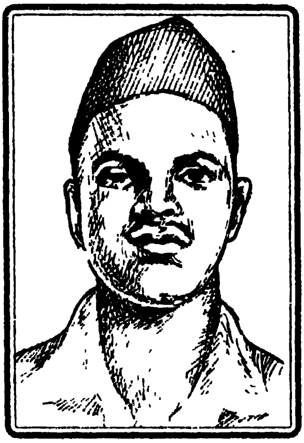
भगतसिंह फरारी की अवस्था में

उधर लाहौर षड्यंत्र अभियोग अलग से चल रहा था। 7 अक्टूबर, 1930 को इसका फैसला भी सुना दिया गया। जिसके अनुसार भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को फाँसी की सजा सुनायी गयी। तीनों क्रान्तिकारी वीरों को 23 मार्च, 1931 ई. को सायंकाल सात बजकर पैंतीस मिनट पर लाहौर के केन्द्रीय कारागार में आततायी ब्रिटिश-शासन ने फाँसी पर चढ़ा दिया। इस घटना से सारे देश में हा-हाकार मच गया। जगह-जगह शोक सभाएँ हुईं। प्रदर्शन हुए। नवयुवकों का खून तो इतना खौल उठा कि उन्होंने वायसराय लॉर्ड हर्विन की जान लेने तक की ठान ली। वायसराय की स्पेशल गाड़ी को उड़ाने का प्रयास किया गया, परन्तु वे बाल-बाल बच गए और उनके दो सेवक घायल हो गए।

भगतसिंह की शहादत ने नवयुवकों में अद्‌भुत जोश का संचार किया। उनका 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का उद्‌घोष स्वतंत्रता सेनानियों का प्रमुख नारा बन गया। वे पहले क्रान्तिकारी देशभक्त थे जिन्होंने धर्म निरपेक्ष समाजवादी गणतंत्र का रास्ता दिखाया। उनके महान् बलिदान से देश कभी उऋण नहीं हो सकता। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में उनका नाम व कार्य स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। जब तक मानव में स्वतंत्रता की भावना थोड़ी बहुत भी शेष रहेगी, वे सदा श्रद्धा व सम्मान से स्मरण किए जाते रहेंगे।

शहीद शिवरामहरि राजगुरु :

देश की आजादी के लिए हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ने वाले शहीद शिवराम हरि राजगुरु का जन्म पूना के निकट खेड़ा गाँव में शक सम्वत् 1630 श्रावण कृष्णा तेरस सोमवार को हुआ। राजगुरु का खिताब उनके पूर्वजों को छत्रपति शाहू महाराज ने दिया था। तब से उनका परिवार राजगुरु की उपाधि से पहचाना जाता रहा है।



शिवरामहरि राजगुरु

राजगुरु का परिवार मध्यम श्रेणी का था। प्राय: सभी नौकरी पेशा लोग थे। राजगुरु को घर में बापू कहा जाता था। प्राथमिक शिक्षा खेड़ा गाँव में हुई। जब वे छह वर्ष के थे तब ही उनके पिता हरिराज राजगुरु का देहान्त हो गया था। उनकी माता पार्वती बाई एक विदुषी तथा साहसी महिला थी। शिवरामहरि राजगुरु अंग्रेजी शिक्षा से घृणा करते थे। अत: संस्कृत शिक्षा के लिए वे चुपचाप घर से बनारस के लिए चल पड़े। वहाँ उन्होंने तर्क तीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण की।

काशी में ही उनका सम्पर्क क्रान्तिकारियों से हुआ। वीर सावरकर जब काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय में भाषण देने आए तब सावरकर का भाषण सुनने राजगुरु भी गए थे। वहीं उनकी भेंट भगतसिंह से हुई। इसके बाद वे क्रान्तिकारी कार्यों में रुचि लेने लगे। उनकी माता पार्वती बाई कहा करती थी कि "मेरा एक बेटा देश के लिए, दूसरा बेटा घर के लिए। उनकी यह भविष्यवाणी सही निकली। उनका बेटा शिवरामहरि राजगुरु स्वतंत्रता संग्राम का प्रमुख सेनानी बना तो दूसरा बेटा दिनकर राजगुरु आबकारी अधिकारी।

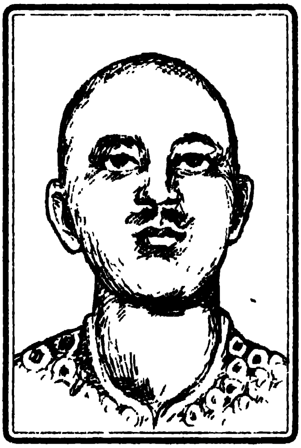
राजगुरु काशी से व्यायाम शिक्षक की ट्रेनिंग के लिए अमरावती गए और ट्रेनिंग के बाद बनारस लौट आए। बनारस उस समय क्रान्तिकारियों का मुख्य गढ़

था। अतः राजगुरु पर भी क्रान्ति का रंग पूरी तरह से चढ़ गया। भगतसिंह के साथ साण्डर्स की हत्या करने में राजगुरु ही थे। चन्द्रशेखर, भगतसिंह व राजगुरु बड़ी कुशलता से लाहौर से भागने में सफल हो गए।

राजगुरु साण्डर्स की हत्या के बाद नौ माह तक अज्ञातवास में रहे। उधर सरकार ने राजगुरु पर लाहौर षड्यंत्र अभियोग में मुकदमा चला रखा था। अन्त में वे पूना में महाराष्ट्र मण्डल के पास तिलक रोड़ पर गिरफ्तार कर लिए गए। लाहौर षड्यंत्र अभियोग में भगतसिंह, सुखदेव के साथ आपको फाँसी की सजा सुनाई गई। 23 मार्च, 1931 ई. को तीनों क्रान्ति वीरों ने हँसते-हँसते स्वतंत्रता की बलिवेदी पर चढ़ कर स्वातंत्र्य जगत में अमर पद प्राप्त कर लिया। इन बलिदानी वीरों के कारण ही आज देश स्वतंत्र है। जब तक भारत राष्ट्र-जीवित है। इन हुतात्माओं (शहीदों) का बराबर सम्मान होता रहेगा।

अमर शहीद सुखदेव (1907-1931 ई.) :

देश की स्वतंत्रता के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले वीरों में युवा क्रान्तिकारी सुखदेव का अपना विशेष स्थान है। सुखदेव का जन्म 15 मई, 1907 ई. को नौधरां मौहल्ला लुधियाना में हुआ। इनके पिता रामलाल का स्वर्गवास 1910 ई. में हो गया था। अतः सुखदेव के लालन पालन का भार उनके ताया (चाचा) चितराम थापर पर आ पड़ा जो स्वयं भी एक स्वतंत्रता सेनानी थे, परन्तु सुखेदव अपने चाचा से भी दो कदम आगे निकले और उन्होंने विदेशी शासन से सीधी टकराव की नीति अपनाई।



सुखदेव

सुखदेव को बचपन से ही देश के प्रति अनुराग था। दिवाली पर मिठाई के लिए मिले पैसों की मिठाई न खाकर उन पैसों से रानी झाँसी लक्ष्मीबाई का चित्र खरीदते थे। लक्ष्मीबाई का चित्र देखते ही उनकी छाती तन जाती थी। चेहरा एक अनजाने दर्प से चमकने लगता था। तस्वीर से उनको देशभक्ति की प्रेरणा मिलती। अपनी माँ को तस्वीर दिखाते हुए कहते "देख माँ यह लक्ष्मीबाई है, झाँसी की रानी। इसने अंग्रेजों से लोहा लिया था। मैं भी ऐसा ही करूँगा।"

सुखदेव तथा भगतसिंह एक दूसरे के सच्चे साथी थे। कॉलेज में साथ-साथ पढ़े और साथ-साथ खेले। भगतसिंह को क्रान्ति पथ पर लाने वाले सुखदेव ही थे।

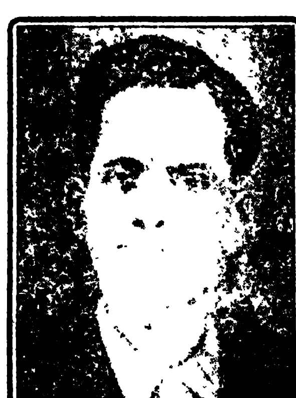
फिर दोनों बराबर साथ रहे और दोनों साथ-साथ फाँसी पर चढ़े। वास्तव में सुखदेव तथा भगतसिंह दो शरीरों में एक प्राण थे। सुखदेव चाणक्य थे, तो भगतसिंह चन्द्रगुप्त। अंतरंग साथी शिवराम के अनुसार "भगतसिंह दल के राजनीतिक नेता थे और सुखदेव संगठन कर्त्ता। एक-एक ईंट रखकर दल की इमारत उन्होंने ही खड़ी की। दोनों समाजवादी विचारों के थे। अत: दल का असेम्बली बमकाण्ड के सूत्रधार चन्द्रशेखर एवं सुखदेव ही थे।

15 अप्रेल, 1929 को लाहौर बम फैक्ट्री के कर्त्ता-धर्ता के रूप में सुखदेव पकड़े गए। फैक्ट्री में बने बम से लाहौर में पुलिस का सिपाही मारा गया था। 7 अक्टूबर, 1930 को लाहौर बम केस का फैसला हुआ। फैसले में उनकी तुलना भगतसिंह से करके दोनों को समान रूप से अपराधी माना गया। फैसले में कहा गया कि "भगतसिंह वह साधन था जिसके द्वारा सुखदेव ने अपनी योजना पूरी की।" अत: सुखदेव को भी गले में फंदा डालकर फाँसी की सजा सुनाई गई। सारे शहर में सजा के विरोध में आतंक छा गया। लाहौर में धारा 144 लगा दी गई। 23 मार्च, 1931 को तीनों क्रान्तिवीरों को फाँसी दी गई। उनके शव को रातों रात मिट्टी का तेल छिड़क कर जला दिया गया।

फाँसी के समय इन तीनों भारत माँ के लाड़लों का मुख मण्डल चमक रहा था। देश के लिए मरने में उनमें बड़ा उत्साह था। बीच में भगतसिंह, सुखदेव बायें और राजगुरु दायें फाँसी पर चढ़े थे। तीनों शहीदों ने एक स्वर में गाया—

"दिल से निकलेगी न मरकर,
भी वतन की उल्फत
मेरी मिट्टी में भी खुशबू ए....
वतन-आएगी।"

शहीद यतीन्द्रनाथ दास (1904-1929 ई.) :



यतीन्द्रनाथ दास

यतीन्द्रनाथ दास ऐसे युवा क्रान्तिकारी थे जिन्होंने अपना सारा जीवन देश सेवा में लगा दिया। विचारों के वे इतने दृढ़ थे कि उनके निर्णय को ब्रह्मा भी नहीं बदल सकता था। अपने जीवन में 'प्राण जाए पर वचन न जाए' नामक आदर्श वाक्य को उन्होंने चरितार्थ कर दिखाया।

भारत माँ के सच्चे सपूत यतीन्द्रनाथ दास का जन्म 27 अक्टूबर, 1904 ई. को कलकत्ता के श्याम बाजार में मध्यम श्रेणी के एक बंगाली

कायस्थ परिवार में हुआ। आपके पिता बंकिमबिहारी सुहासिनीदास बहुत ही भले आदमी थे। यतीन्द्रनाथ ने 1921 में मैट्रिक प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। छात्र जीवन से ही आपके मन में देश-प्रेम हिलोरें मार रहा था। सत्रह वर्ष की आयु में ही 1921 के असहयोग आन्दोलन में पिकेटिंग करते हुए पकड़े गए। छह माह की सजा हुई। कांग्रेस सेवा दल में आपका कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय था। इसी कारण आपको इस दल में मेजर पद मिला। कलकत्ता में 'तरुण समिति', 'दक्षिण कलकत्ता सेवा समिति' जैसी रचनात्मक संस्थाएँ आपकी ही देन थी।

राजनीतिक गतिविधि के कारण 25 नवम्बर, 1925 को आप बंगाल 'क्रिमिनल' लॉ के अन्तर्गत पकड़े गए और मैमनसिंह केन्द्रीय जेल में रखे गए। वहाँ जेल अधिकारियों के दुर्व्यवहार के विरोध में आपने 20 रोज का अनशन किया। अन्त में जेल अधीक्षक द्वारा दुःख प्रकट करने पर ही आपने अनशन तोड़ा।

कुछ दिनों बाद आप उत्तरी भारत के क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आए और उनके लिए कलकत्ता में बम बनाने का काम करने लगे। लाहौर षड्यंत्र केस में भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु बन्दी बनाए जा चुके थे। उसके पूरक अभियोग में 14 जून, 1929 को यतीन्द्रनाथ दास भी बन्दी बना लिए गए और लाहौर केन्द्रीय कारागार में डाल दिए गए। स्वतंत्रता सेनानियों को राजनीतिक कैदियों के समान सुविधा देने के लिए भगतसिंह आदि ने भूख हड़ताल शुरू कर दी। इस भूख हड़ताल के कारण देश के लोगों में सरकार के प्रति रोष काफी बढ़ गया। जगह-जगह प्रदर्शन हुए। कलकत्ता में कांग्रेस के तत्वावधान में भारी विरोध प्रदर्शन हुआ। अनेक कांग्रेसी नेता गिरफ्तार हुए, जिनमें सुभाषचन्द्र बोस भी थे। केन्द्रीय असेम्बली में भी भूख हड़ताल के प्रश्न को उठाया गया, परन्तु पत्थर दिल नौकरशाही पर कुछ भी असर नहीं हुआ। भूख हड़तालियों को तो सरकार सुविधा देने को तैयार हो गई, परन्तु क्रान्तिकारियों ने स्पष्ट कहा कि हम केवल हमारे लिए अनशन नहीं कर रहे हैं, वरन् सम्पूर्ण देश के क्रान्तिकारियों के लिए कर रहे हैं, जो वर्षों से जेलों में सड़ रहे हैं। सरकार ने थोड़ा बहुत आश्वासन दिया। इस पर कुछ क्रान्तिकारियों ने तो अनशन तोड़ दिया, परन्तु यतीन्द्रनाथ दास सरकारी प्रस्तावों से संतुष्ट नहीं हुए और अपनी बात पर अड़े रहे। अन्त में 62 दिन के निरन्तर उपवास के बाद 13 सितम्बर, 1929 को यतीन्द्रनाथ शहीद हो गए। इनकी शहादत फाँसी पर चढ़ने वालों से कम नहीं थी। आयरलैण्ड के महान् शहीद 'टेरेन्स मेकेस्वीनी' की भाँति अपने राष्ट्रीय सम्मान एवं गौरव की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी। सारे राष्ट्र ने इस वीरात्मा के बलिदान के सामने मस्तक झुकाया। सुभाषचन्द्र बोस ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'इण्डियन स्ट्रगल' में इसका वर्णन करते हुए लिखा है—

"यतीन्द्रनाथ शहीद की मौत मरे। उनकी मृत्यु के बाद भारत में उनका जैसा जय जयकार हुआ वैसा भारत के इतिहास में और किसी का नहीं हुआ। जब उनका शव अंतिम संस्कार के लिए लाहौर से कलकत्ता लाया जा रहा था, तब उनको श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए हर एक स्टेशन पर हजारों की संख्या में लोग आते थे। उनके बलिदान ने भारत के नवयुवकों में अद्‌भुत उत्साह का संचार हुआ। नवयुवक संगठनों की बाढ़ आने लगी। इस अवसर पर अनेक संदेश मिले। उनमें से एक संदेश ऐसा था जिसने प्रत्येक भारतवासी के हृदय को हिला दिया। वह संदेश आयरलैण्ड के प्रसिद्ध वीर 'टेरेन्स मेकेस्वीनी' परिवार की ओर से था। स्वर्गीय 'टेरेन्स मेकेस्वीनी' ने आयरलैण्ड में यतीन्द्र की भाँति भूख हड़ताल कर अपने प्राण त्याग दिए थे। टेरेन्स मेकेस्वीनी के कुटुम्ब ने यतीन्द्र की मृत्यु के समाचार को बड़े विषाद और अभिमान के साथ सुना है। स्वतन्त्रता आएगी।"

महान् क्रान्तिकारी अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद (1906-1931 ई.) :


चन्द्रशेखर आजाद

चन्द्रशेखर आजाद महान् देशभक्त एवं अपने युग के क्रान्तिकारी आन्दोलन के जन्मदाता थे। चन्द्रशेखर वास्तव में चन्द्रशेखर ही थे। वे चन्द्रशेखर भगवान् शिव की तरह ही तेजवान एवं प्रलयंकारी थे। उनका आजाद नाम भी सार्थक सिद्ध हुआ। लाख प्रयत्न करने पर भी वे ब्रिटिश-सरकार के कभी पकड़ में न आए। वे जीवन भर आजाद ही रहे। देश की भलाई के लिए हर विपत्ति में पड़ने के लिए तैयार रहते थे। दूसरे शब्दों में वे विपत्ति का कालकूट हमेशा पीते रहते थे। 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' के संस्थापक के रूप में उन्होंने अनेक शौर्यपूर्ण कार्यों का सम्पादन कर विदेशी शासन को यह दिखा दिया कि भारत का पौरुष अभी मरा नहीं है।

शरीर पुष्ट, गोल उभरा हुआ मुख मण्डल, उज्ज्वल, शुभ्र ललाट, रंग सांवला, चेहरे पर चेचक के दाग, आँखें बड़ी तेजवान, मूँछें चढ़ी और ऐंठी हुई। ऐसा था महान् क्रान्तिकारी का व्यक्तित्व जो विदेशी सत्ता को सदा ललकारता रहता था। इस परमवीर का जन्म 23 जुलाई, 1906 ई. को मध्य भारत की झाबुआ तहसील के 'भाँवरा' नामक गाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम सीताराम तिवारी और माता का नाम श्रीमती जगरानी देवी था। परिवार की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। गाँव में भी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं था। अत: आजाद का बचपन खेलकूद में ही बीता। आपका मन गाँव में न लगा। एक दिन आप

चुपचाप घर से भाग निकले और काशी जा पहुँचे। वहाँ संस्कृत विद्यालय में संस्कृत पढ़ने लगे।

उस समय देश में गाँधीजी के असहयोग की बड़ी धूम थी। विद्यार्थी, शिक्षक सभी अपना काम-धंधा छोड़कर आन्दोलन में कूद पड़े। आजाद भी असहयोग आन्दोलन से अछूते न रहे। वे भी 'धरने' (पिकेटिंग) में भाग लेने लगे। पकड़े गए और अदालत में मुकदमा चला। मजिस्ट्रेट ने चन्द्रशेखर को पूछा, 'तुम्हारा नाम' शेखर ने उत्तर दिया 'आजाद', पिता का नाम, आजाद का उत्तर था 'स्वतंत्रता', निवास स्थान उत्तर मिला 'कारागार' इस पर मजिस्ट्रेट खरेघाट चिढ़ गया और उसने 14 बेतों की सजा दी। बेंत पड़ने लगे। हर बेंत की चोट पर वे 'वन्देमातरम्' व 'महात्मा गाँधी की जय' बोलते जाते थे। बेंतों की मार से आजाद के शरीर की चमड़ी उधड़ गई। वे बेहोश तक हो गए।

इस घटना की खबर चारों तरफ फैल गई। उन्हें काशी विद्यापीठ बुलाया गया। नवयुवक विद्यार्थियों ने उनका स्वागत किया। इनमें प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त व प्रणवेशचन्द्र चटर्जी भी थे, जो उन दिनों वहीं पढ़ते थे। नगर कांग्रेस कमेटी की ओर से भी आपका अभिनन्दन किया गया। बेंत घटना के बाद से ही वे 'आजाद' नाम से पुकारे जाने लगे। क्रान्तिकारियों ने यह समझकर असहयोग आन्दोलन में भी सहयोग दिया कि आखिर में यह भी तो आजादी का जंग है, परन्तु गाँधीजी ने यकायक आन्दोलन स्थगित कर दिया तो नवयुवक बड़े निराश हुए, क्योंकि उनके मन में तो क्रान्ति की आग धधक रही थी।

अब युवा क्रान्तिकारियों ने मिलकर अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति के लिए विचार करना शुरू किया। इसके लिए 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ' की स्थापना हुई और 'हिन्दुस्तान प्रजातंत्र सेना' भी बनी। रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी, रोशनसिंह, भगतसिंह, **राजगुरु**, सुखदेव आदि अनेक प्रमुख क्रान्तिकारी इसके सदस्य बने। दल के लिए **धन प्राप्त करने** के लिए 'काकोरी ट्रेन डकैती' हुई। इसके मुख्य सूत्रधार हमारे **चरित्र नायक** आजाद ही थे। काकोरी षड्यंत्र अभियोग में अनेक क्रान्तिकारी पकड़े गए। इनमें चार को फाँसी हुई और शेष को आजीवन कारावास। इससे हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ की कमर टूट गई और आजाद भी अपने साथियों को खोकर दुःखी रहने लगे, परन्तु कुछ ही दिनों बाद 'हिन्दुस्तान समाजवादी गणतंत्र संघ' की पुनः स्थापना हुई और आजाद सहित अनेक क्रान्तिकारी इसमें काम करने लगे। इस दल के क्रान्ति वीरों ने लाला लाजपतराय की हत्या के लिए उत्तरदायी पुलिस अधिकारी साण्डर्स की हत्या की। दिल्ली 'केन्द्रीय असेम्बली हॉल' में बम फेंका गया। लाहौर षड्यंत्र केस में भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु को फाँसी दी गई। यद्यपि साण्डर्स की हत्या के

सूत्रधार आजाद ही थे, परन्तु वे अपनी चतुराई से ब्रिटिश शासन की आँखों में धूल झोंक कर बराबर बचते रहे।

फाँसी से पहले सुखदेव, राजगुरु तथा भगतसिंह को जेल से छुड़ाने का बराबर प्रयास आजाद करते रहे। इस योजना में भगवतीचरण व यशपाल भी शामिल थे, परन्तु अपने साथियों को छुड़ाने में उन्हें सफलता नहीं मिली। चन्द्रशेखर बड़े दु:खी रहने लगे, क्योंकि वे अकेले रह गए, परन्तु उन्होंने स्वातंत्र्य पथ को नहीं छोड़ा। इसी बीच 23 फरवरी, 1931 को इलाहाबाद में साथी क्रान्तिकारियों की बैठक होने वाली थी। आजाद भी इसमें शामिल होने के लिए इलाहाबाद जा पहुँचे। इलाहाबाद के कम्पनी बाग में वृक्ष के नीचे बैठे वे अपने साथी सुखदेव राज से बातचीत कर रहे थे। इसी बीच सड़क पर खड़े 'वीरभद्र' तिवारी ने उनको देख लिया और कम्पनी बाग में आजाद की उपस्थिति की सूचना पुलिस अधीक्षक नाट बावर को दे दी। नाट बावर शीघ्र ही पुलिस दल के साथ कम्पनी बाग पहुँच गया और उस वृक्ष को चारों ओर से घेर लिया जिसके नीचे 'आजाद' बैठे थे।

नाट बावर जब उनको बन्दी बनाने के लिए आजाद की ओर बढ़ा, तो आजाद ने गोली चला दी जो उसके हाथ में लगी और उसका रिवाल्वर छूट कर गिर पड़ा। नाट बावर पेड़ की ओट में छिप गया। पुलिस निरीक्षक विश्वेश्वरसिंह ने जब आजाद पर गोली चलाना शुरू किया तो आजाद भी वीर अभिमन्यु की भाँति चारों ओर से घिरे रहने पर भी गोलियों का जवाब देते रहे। उनकी गोली से विश्वेश्वरसिंह का जबाड़ा टूट गया, परन्तु आजाद अकेले थे। चारों ओर से शत्रु उन पर दनादन गोलियाँ चला रहे थे। ऐसी स्थिति में विजय की आशा न देख उस परमवीर ने अपने ही पास बची एक गोली को कनपटी पर मार कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली।

परन्तु आज भी साहस के धनी तथा परम देशभक्त चन्द्रशेखर आजाद की सीना तानकर मूँछों पर बट देती हुई ओजस्वी छवि युवा हृदयों को देश व समाज के लिए मर मिटने की प्रेरणा दे रही है। ऐसे वीर सेनानी अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद के कार्यों से कृतज्ञ राष्ट्र कभी उऋण नहीं हो सकता। वे सदा स्वाधीन भारत की आत्मा बने रहेंगे।

शहीद भगवतीचरण बोहरा (1903-1930 ई.) :

भगवती बाबू आजाद युग के प्रमुख क्रान्तिकारी थे। उनका जन्म 28 जुलाई 1903 को लाहौर में हुआ। उनके पिता शिवचरण लाहौर में उच्च अधिकारी थे। विद्यार्थी जीवन में ही वे असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गए। आन्दोलन मे

स्थगित होने पर वे भगतसिंह की क्रान्तिकारी टोली में शामिल हो गए और नौजवान भारत सभा में काम करने लगे। हिन्दुस्तान प्रजातंत्र सेना के प्रचार-प्रसार में भगवती बाबू का भी बहुत योगदान रहा।



भगवतीचरण बोहरा

सुखदेव, राजगुरु तथा भगतसिंह को लाहौर जेल से छुड़ाने के लिए भगवती बाबू ने अपने साथी यशपाल के साथ एक योजना बनाई और इसके लिए बम बनाए गए। एक दिन बम का परीक्षण करते समय बम जमीन पर गिरने से पहले ही फट गया। इससे भगवती बाबू बुरी तरह घायल हो गए। उनका एक हाथ बिलकुल उड़ गया। पेट फट गया। विस्फोट से चारों ओर अन्धेरा छा गया। रात्रि अलग थी। बड़ी कठिनाई से प्रातःकाल होने पर उनके साथी भगवती बाबू के शव को ढूँढ सके। भारी मन से उनके साथियों ने रावी के किनारे उनको अन्तिम विदा दी। इस तरह से भगवती बाबू ने देश की आजादी के लिए तथा अपने साथियों की मुक्ति के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी। केवल 27 वर्ष की आयु में ही आजादी के लिए उनकी बलि को राष्ट्र सदा श्रद्धा से स्मरण करता रहेगा।

क्रान्तिकारिणी दुर्गा भाभी :

भगतसिंह को सुरक्षित लाहौर से बाहर निकालने में दुर्गा भाभी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—



दुर्गा भाभी

क्रान्तिकारी आन्दोलन में दुर्गा भाभी की भूमिका अपने पति अमर शहीद भगवती चरण से किसी तरह कम नहीं रही। वह छाया की तरह क्रान्तिकारियों की चिरसंगिनी बनी रही। इस देशभक्त नारी का जन्म 7 अक्टूबर, 1907 ई. को हुआ। ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही उनका विवाह भगवती बाबू के साथ हो गया। फिर भी पढ़ाई का क्रम जारी रखा और प्रभाकर की परीक्षा उत्तीर्ण की।

साण्डर्स हत्या के बाद शहीदेआजम भगतसिंह को जब लाहौर से बाहर निकालने की समस्या पैदा हुई तो आप ही उनकी पत्नी बनकर अपने तीन वर्षीय पुत्र के साथ उनके साथ प्रथम श्रेणी में बैठीं। आपके अर्दली बने शहीद राजगुरु। कितना जोखिम भरा काम आपने किया। भगतसिंह व अन्य क्रान्तिकारियों को जेल से छुड़ाने की योजना बनी तो भगवती बाबू सबसे आगे रहे। इसी सन्दर्भ में एक बम का परीक्षण करते समय आप जंगल में ही शहीद हो गए। क्रान्तिकारियों पर मानो विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। इस घोर संकट में भी भाभी अविचलित रही और कहा कि भावी क्रान्तिकारी कार्यों में मेरे पति का अधिकार मुझे मिलना चाहिए।

इसके बाद राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के घर पर कितने ही दिनों तक वह रही। स्वतंत्रता प्राप्ति तक आप बराबर क्रान्तिकारी कार्यों में लगी रहीं। कितनी ही बार आप बमों की सामग्री व खोल जयपुर तथा ग्वालियर से लाकर क्रान्तिकारियों को देती रहीं। सुशीला दीदी के साथ आपने भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु की फाँसी की सजा निरस्त कराने के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी से भेंट की, परन्तु प्रयास व्यर्थ गया। उनके साहस व क्रान्तिकारी कार्यों की महिमा हमारे क्रान्तिकारी इतिहास में सदा अक्षुण्ण बनी रहेगी।

आजकल वह देश के प्रति किए अपने सभी उपकारों को भुलाकर बिना किसी फल की इच्छा के लखनऊ में अपनी शिक्षण संस्था से देशभक्तों की नई पौध तैयार कर रही हैं। देश की आजादी के लिए आपकी सेवाएँ सदा स्मरण रहेगी।

शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी (1890-1931 ई.)

विद्यार्थी का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा का धनी था। वे एक आदर्श मानव, समाज सेवी, वक्ता, नेता, साहित्यकार आदि सभी कुछ थे, परन्तु सबसे ऊपर थी उनकी देशभक्ति। विदेशी शासन से उन्होंने हर क्षेत्र में मोर्चा लिया। अपने प्रताप पत्र द्वारा विदेशी शासन की खाल उधेड़ते रहते थे। वाणी, लेखनी व कर्म से वे पूरी तरह क्रान्तिकारी थे। साम्प्रदायिक एकता के लिए तो उन्होंने अपने प्राण ही न्यौछावर कर दिए।



गणेशशंकर विद्यार्थी

विद्यार्थी का जन्म अपने ननिहाल इलाहाबाद में 26 अक्टूबर, 1890 ई. को हुआ था। आपके

पिता जयनारायण ग्वालियर रियासत में गूँगावली गाँव के निवासी थे और अध्यापक थे। साधारण शिक्षा के बाद विद्यार्थी कानपुर आ गए और वहाँ सुन्दरलाल के कर्मयोगी अखबार में काम करने लगे। हिन्दी की शिक्षा उन्होंने महान् आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्राप्त की थी। सुन्दरलाल के जेल चले जाने पर उनका कर्मयोगी अखबार बंद हो गया और वे अपना स्वयं का पत्र निकालने लगे। थोड़े ही दिनों में उनका प्रताप पत्र जन जन का प्रिय हो गया। शहीद भगतसिंह भी आपके पत्र में काम करने लगे।

विद्यार्थी प्रखर राष्ट्रवादी थे। जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय से राष्ट्र को सर्वोपरि मानते थे। जन आन्दोलन तथा क्रान्तिकारियों की शौर्यगाथा को तो उनके पत्र में विशेष स्थान मिलता था। अशांति फैलाने के आरोप में आपको सजा हुई। 17 मई, 1922 को जेल से छूटे। फतेहपुर में राजनीतिक सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में आपने विदेशी शासकों को आड़े हाथों लिया। आपको गिरफ्तार किया गया। जनवरी, 1924 में जेल से छूटे। 1925 ई. के कानपुर कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत समिति के आप अध्यक्ष थे। सन् 1930 में उत्तर प्रदेश कांग्रेस के आप अध्यक्ष चुने गए। इसी वर्ष सविनय अवज्ञा आन्दोलन में आप जेल गए।

राष्ट्रीय शक्तियों के वेग से विदेशी शासन काँपने लगा अतः आपने साम्प्रदायिक जहर फैलाना शुरू किया। विद्यार्थी के विरुद्ध शासन द्वारा मुसलमानों को भड़काया जाने लगा। इधर 23 मार्च, 1931 ई. को भगतसिंह, सुखदेव तथा राजगुरु को आततायी विदेशी शासन ने फाँसी दी। फाँसी की खबर बिजली की तरह सारे देश में फैल गई। सारे देश में हड़तालें हुई व जुलूस निकले। कानपुर भला कैसे अछूता रह सकता था। वह पहले से ही क्रान्तिकारियों का गढ़ था। 24 मार्च को कानपुर में हड़ताल हुई, जुलूस निकला। जुलूस का नेतृत्व विद्यार्थी कर रहे थे। समापन पर विद्यार्थी का भाषण हुआ। उसे तोड़-मरोड़ कर विदेशी शासन ने मुसलमानों के सामने पेश किया। फिर क्या था? सारा कानपुर साम्प्रदायिक आग में झुलसने लगा। विद्यार्थी ने 25 मार्च को शांति स्थापना के लिए मुसलमानों के मोहल्ले में प्रवेश किया। धर्मान्धता में पागल हुए कुछ युवकों ने विद्यार्थीजी पर हमला कर दिया। उनके प्राण पखेरू उड़ गए। 26 मार्च को सारे देश में उनकी शहादत की खबर फैल गई। जगह-जगह शोक सभाएँ हुईं। महात्मा गाँधी ने शोक प्रकट करते हुए कहा—"उनका खून मजहबों को जोड़ने में सीमेन्ट का काम करेगा।" पण्डित नेहरू ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा—"मर कर जो उन्होंने सबक सिखाया, वह वर्षों तक जिन्दा रह कर भी हम क्या सिखा पायेंगे?" लालबहादुर शास्त्री ने कहा—"विद्यार्थी जी ने जिस क्षेत्र में प्रवेश किया, वहाँ उनकी प्रतिभा खूब चमकी। वे महामानव थे।"

वास्तव में विद्यार्थी मर कर भी अमर हो गए। उनका जीवन वृत्तान्त हमारे इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ हैं। उनकी मृत्यु का तरीका उनके जीवन का दर्पण सिद्ध हुआ।

चटगाँव सशस्त्र क्रान्ति (18 अप्रेल, 1930 ई.) :

बंगाल सदा से ही क्रान्तिकारियों का गढ़ रहा है। क्रान्तिकारियों की भी अजीब फसल है। एक कट जाने के बाद दूसरी तैयार। उसका कभी अन्त नहीं होता। खुदीराम, प्रफुल्ल चाकी, कन्हाईलाल दत्त आदि शहीद हुए। अनुशीलन दल व युगान्तर दल क्रान्तिकारियों की पौधशाला थी। अनेक क्रान्तिकारी इन्हीं दलों की देन थी। अम्बिका दत्त चक्रवर्ती, अनन्तसिंह, गणेश घोष, निर्मल सेन, सूर्यसेन (मास्टर दा), प्रमोद चौधरी व राजेन्द्र लाहिड़ी, अनन्त हरि मिश्र आदि की क्रान्तिकारियों की नई पौध तैयार हुई। राजेन्द्र लाहिड़ी काकोरी अभियोग में शहीद हुए। प्रमोद चौधरी व अनन्त हरि मिश्र को भी राय बहादुर भूपेन्द्रनाथ चटर्जी को अलीपुर जेल में मशहरी के डंडों से मार देने के कारण फाँसी हुई, परन्तु क्रान्ति के पथ के राही हिम्मत हारने वाले नहीं थे। मास्टर दा व अनुरूप दा के प्रयास से चटगाँव जिले में क्रान्तिकारियों का एक नया दल सशक्त हो उठा। इस दल में मुख्य रूप से सूर्य सेन, नगेन सेन, अम्बिका दत्त चक्रवर्ती, चारू विकास, अशरफ उद्दीन, निर्मल सेन, प्रमोद रंजन चौधरी, नन्दलाल सिंह, अवनीश भट्टाचार्य, आनन्दसिंह आदि क्रान्तिकारी थे। उन सभी ने मिलकर 'चटगाँव प्रजातंत्र सेना' का गठन किया। जिसके मुख्य सेनापति बने सूर्य सेन (मास्टर दा)।

चटगाँव जिला छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरा होने से छापामार युद्ध के लिए यह बहुत ही उपयुक्त था। एक क्रान्तिकारी परिषद की स्थापना हुई जिसके अध्यक्ष सूर्यसेन (मास्टर दा) तथा निर्मल सेन, लोकनाथ बाल, अनन्तसिंह, गणेश घोष, अम्बिका दत्त चक्रवर्ती और उपेन्द्र भट्टाचार्य सदस्य थे। क्रान्तिकारी परिषद ने निम्नांकित कार्यक्रम तैयार किया—

1. अचानक चटगाँव शस्त्रागार पर अधिकार कर हथियार हथियाना।
2. रेलवे के सम्पर्क सूत्रों को नष्ट करना।
3. टेलीफोन एक्सचेंज को ध्वस्त करना।
4. टेलीग्राफ के तार काटना।
5. बन्दूकों की दूकान पर कब्जा करना।
6. देशद्रोहियों को पकड़ना और उन्हें सजा देना।
7. शहर पर अधिकार कर वहीं पर क्रान्तिकारी सरकार का गठन करना।
8. स्वतंत्र चटगाँव प्रजातंत्र सरकार द्वारा ब्रिटिश शासन के विरुद्ध व्यापक युद्ध छेड़ना।

इस कार्यक्रम को मूर्त रूप देने के लिए 18 अप्रेल, शुक्रवार, 1930 का दिन तय किया गया, क्योंकि आयरलैण्ड की आजादी की लड़ाई के इतिहास में ईस्टर विद्रोह का भी यही दिन था। गणेश घोष तथा अनन्तसिंह के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी चटगाँव शस्त्रागार पर कब्जा करने के लिए पहुँची। शस्त्रागार एक छोटी ऊँची पहाड़ी पर बहुत ही सुन्दर ढंग से बना हुआ था। देखते-देखते ही पहरेदारों को समाप्त कर शस्त्रागार पर अधिकार कर लिया।

दूसरी सैनिक टुकड़ी लोकनाथ के नेतृत्व में सहायक सेना (अक्सीलरी) के शस्त्र भण्डार पर कब्जा करने चल पड़ी। वहाँ भी पहरेदार तथा अंग्रेज अधिकारी को मारकर क्रान्तिकारी भारी मात्रा में शस्त्र लेकर भागने में सफल हो गए। इधर अम्बिका दत्त चक्रवर्ती भी टेलीफोन एक्सचेंज को नष्ट कर मुख्यालय पर लौट आये। चटगाँव प्रजातंत्र सेना की गणवाहिनी टुकड़ी ने कितने ही स्थानों पर रेल की पटरी उखाड़ दी। यह सभी निश्चित कार्यक्रम के अनुसार करके क्रान्तिकारी अपने मुख्य केन्द्र स्थल पर आ पहुँचे।

सैनिक मुख्यालय पर शानदार परेड हुई जिसमें तिरंगा झण्डा फहराया गया और इसके सम्मान में बन्दूकें दागी गईं। अस्थाई क्रान्तिकारी सरकार की घोषणा की गई। मास्टर दा इसके राष्ट्रपति चुने गए। इस तरह से 200 वर्ष की गुलामी के बाद भारत की यह पवित्र भूमि चाहे थोड़े दिनों के लिए ही क्यों न हो, स्वतंत्र हुई। अस्थाई सरकार के नेतृत्व में ब्रिटिश-शासन से व्यापक संघर्ष छेड़ने के लिए गणवाहिनी सेना में अधिक से अधिक युवकों को भर्ती होने के लिए कहा गया।

जलालाबाद का मोर्चा :

ब्रिटिश सेना का पीछा करने पर क्रान्तिकारी सैनिक चटगाँव के इधर-उधर पहाड़ियों की ओर चले गए और छापामार युद्ध प्रणाली से चटगाँव शहर पर चारों ओर से धावा बोलना शुरू कर दिया। चटगाँव के अंग्रेजों में इतना भय व्याप्त हो गया कि वे शहर छोड़कर बाल बच्चों सहित कर्णफूल नदी के तट पर पहुँच गए।

बाद में ब्रिटिश सेना को विदित हुआ कि क्रान्तिकारी सेना जलालाबाद की पहाड़ियों में छिपी हुई है तो सेना ने पहाड़ी को चारों ओर से घेर लिया। दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं। पहाड़ी पर लगभग 62 क्रान्तिकारी सैनिक थे। हरि गोपाल दुश्मन से लड़ते हुए सबसे पहले शहीद हुए। इसके बाद एक-एक करके नरेश राय, विधु भट्टाचार्य, त्रिपुर सेन, प्रभास बाल, पुलिन घोष, शशांक दत्त, निर्मल सेन, जितेन दास, मधु सदन दत्त, मोती कानूनगो शहीद हुए।

दिन भर घनघोर संघर्ष चलता रहा। निर्मल सेन राइफलें साफ कर गोलियाँ भरकर मास्टर दा को देते रहे। मास्टर दा रेंग-रेंग कर क्रान्तिकारियों के पास भरी

पिस्तौलें पहुँचाते रहे। इस तरह लोकनाथ बाल के नेतृत्व में चार घंटे तक लड़ाई होती रही। इतने में रात्रि हो गई। रात्रि का लाभ उठाकर क्रान्तिकारी इधर-उधर खिसक गए ताकि पुनः संगठित होकर शत्रु से पुनः मोर्चा लिया जा सके। मास्टर दा घायलों को लेकर चले और लोकनाथ बाल अन्य क्रान्तिकारियों का नेतृत्व करते हुए दोनों विजय सेन के घर पहुँचने में सफल हो गए। वहाँ दा ने अपने साथियों से कहा—"कोई बात नहीं आज हम पराजित हो गए, परन्तु जब तक हम जीवित हैं तब तक बराबर अंग्रेज सेना को गुरिल्ला युद्ध में परेशान करते रहेंगे।" यह कह सूर्यसेन निर्मल सेन के साथ 'घबराहट' नामक गाँव के एक घर में प्रीतिलता नामक क्रान्तिकारिणी के घर चले गए। यहाँ पर मास्टर दा ने विचार किया कि स्त्रियों को भी सशस्त्र संघर्ष में लाना चाहिए ताकि युवकों का उत्साह बढ़े।

पुलिस तथा फौज के क्रान्तिकारियों के निवास का पता चल गया। घर को घेर लिया गया। दोनों ओर से गोलियाँ चलीं। एक सैनिक मारा गया, अनेक घायल हुए। निर्मल सेन व अपूर्व सेन भी वहीं शहीद हो गए। मास्टर दा प्रीतिलता को साथ लेकर सैनिक व्यूह तोड़कर भागने में सफल हो गए। प्रीतिलता ने सात अन्य क्रान्तिकारियों का नेतृत्व कर गोरे लोगों की एक क्लब पर आक्रमण किया। कुछ गोरे घायल हुए और अनेक भाग खड़े हुए। प्रीतिलता भी वहीं 24 सितम्बर, 1932 को जहर खाकर शहीद हो गई।

इधर चटगाँव शस्त्रागार काण्ड का मुकदमा चल रहा था। ग्यारह रणबांकुरे तो लड़ते-लड़ते शहीद हो चुके थे। बारह को मुकदमे में आजन्म कारावास हुआ। अम्बिका चक्रवर्ती को पहले तो फाँसी की सजा हुई, परन्तु बाद में आजन्म कारावास में बदल गई। आगे चलकर चटगाँव क्रान्ति के मुख्य नायक सूर्यसेन (मास्टर दा) भी पकड़ लिए गए। कल्पनादत्त व तारकेश्वर भी पकड़े गए। मुकदमा चला। अन्त में चटगाँव जेल में ही 12 फरवरी, 1934 को सूर्यसेन तथा तारकेश्वर को फाँसी दी गई और कल्पनादत्त को काले पानी की सजा हुई।

क्रान्ति का मूल्याँकन : चटगाँव सशस्त्र क्रान्ति का हमारे इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह विदेशी शासन के विरुद्ध खुला संघर्ष था जिसमें जलालाबाद मोर्चे पर ही ग्यारह क्रान्तिकारी शहीद हुए!

तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने चटगाँव शस्त्र क्रान्ति का महत्त्व बताते हुए एक स्थान पर लिखा है—"हमारे राष्ट्रीय इतिहास में चटगाँव का एक विशेष स्थान है। यहाँ के जिन लोगों ने हमारी आजादी की लड़ाई में अपने जीवन का उत्सर्ग किया, वे राष्ट्रीय क्षितिज के चमकते हुए सितारे हैं। उनके बलिदान की कहानी युवा पीढ़ी के लिए स्थायी प्रेरणा का स्रोत है। इस क्रान्ति की मुख्य विशेषता यह है कि बहिनों ने भी इसमें भाग लिया।"

इस क्रान्ति का एक उद्देश्य यह भी था कि सत्याग्रह आन्दोलन के साथ-साथ देश की आजादी के लिए लोग गुरिल्ला युद्ध के महत्त्व को भी समझें। यह क्रान्ति भारत की युवा शक्ति के देश-प्रेम व पौरुष को प्रकट करती है। सच पूछा जाए तो इस क्रान्ति ने ही अगस्त, 1942 की महान् जन क्रान्ति के लिए ही उचित धरातल तैयार किया। इस क्रान्ति के जनक सूर्यसेन (मास्टर दा) का जीवन परिचय इस प्रकार है।

वीरवर सूर्यसेन (1894-1934 ई.) :

महान् क्रान्तिकारी सूर्य कुमार सेन का जन्म चटगाँव जिला (आजकल बाँग्ला देश) अन्तर्गत राड़जान थाने के निकट देहाती गाँव 'नोवापाड़ा' में हुआ। पाँच वर्ष की आयु में ही आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। आपने नोवापाड़ा में कक्षा आठ तक शिक्षा प्राप्त की, फिर मुर्शिदाबाद के ब्रह्मपुर कृष्णनाथ कॉलेज पहुँचे। वहीं पर आपका युगान्तर दल के क्रान्तिकारी सतीशचन्द से परिचय हुआ जो वहीं पर अध्यापक थे। वहीं पर एक क्रान्तिकारी दल भी चलता था। सूर्यसेन भी उसी दल में रुचि रखने लगे और प्रतिज्ञा की कि पढ़ाई के बाद भी क्रान्तिकारी संगठनों में पूर्ण मनोयोग से काम करते रहेंगे। युवाओं में क्रान्तिकारी भावना का संचार करने के लिए वे सन् 1917 में स्नातक होने के बाद 'उमातार उच्च मा. विद्यालय में गणित के अध्यापक बने और मास्टर दा के नाम से विख्यात हो गए।'



वीरवर सूर्यसेन

नहीं चाहने पर भी घरवालों के दबाव से नगेन्द्रनाथ दत्त की अत्यन्त सुन्दर कन्या पुष्प कुन्तला से उनका विवाह हो गया, परन्तु उनका मन घर में नहीं लगा। वे क्रान्तिकारी कार्यों में जुट गए। युवकों को क्रान्ति के लिए प्रेरित करने लगे। जब जलियाँवाला बाग के नरमेध की खबर उनके कॉलेज में पहुँची तो एक सभा का आयोजन हुआ। इस सभा में मास्टर दा ने छात्रों को ललकारते हुए कहा "केवल निन्दा प्रस्ताव से काम नहीं चलेगा। इस हत्याकाण्ड से जो हमारा राष्ट्रीय अपमान हुआ है, उसका हमें मुँह तोड़ जवाब देने की तैयारी करनी चाहिए।"

प्रारम्भ में वे असहयोग आन्दोलन की ओर भी आकर्षित हुए, परन्तु ऐसा करने में उनका एकमात्र उद्देश्य क्रान्तिकारी युवकों की तलाश करना मात्र था। इसी

संदर्भ में उनका परिचय गणेश घोष एवं अनन्तसिंह से हुआ जो मास्टर दा के परम अनुयायी बन गए। इन क्रान्तिकारियों ने 'साम्याश्रम' नामक क्रांतिकारी समिति स्थापित की। सरकार भी क्रान्तिकारियों की सरगर्मियों से चिन्तित थी। अत: उसने 'बंगाल क्रिमिनल एक्ट' के अन्तर्गत 25 अक्टूबर, 1924 ई. को अनेक क्रान्तिकारियों को पकड़ लिए, परन्तु मास्टर दा कलकत्ता के शोभा बाजार वाले घर में जहाँ बम बनाया करते थे, बच कर निकलने में सफल हो गए, परन्तु 1926 में वे राह चलते बंदी बना लिए गए। सबूत के अभाव में अभियोग तो नहीं चला, परन्तु नजरबंद रखे गए।

नजरबन्दी से छूट कर वे 1928 ई. के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में चटगाँव के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए। वहाँ सुभाष बाबू को सैनिक पोशाक में घोड़े पर बैठे हुए सात हजार स्वयं सेवकों का नेतृत्व करते देख मंत्र मुग्ध हो गए। ऐसे बंगाल कांग्रेस हमेशा से ही क्रान्तिकारी रही है, विशेष कर सुभाष बाबू तो क्रान्तिकारियों से गहराई से जुड़े हुए थे। उनका आशीर्वाद प्राप्त कर मई, 1929 में मास्टर दा ने एक क्रान्तिकारी सम्मेलन बुलाया जिसमें अंग्रेजों से सशस्त्र संघर्ष छेड़ने का निर्णय लिया। एक क्रान्तिकारी परिषद की स्थापना हुई और मास्टर दा उसके नेता चुने गए। चटगाँव में अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार की स्थापना हुई।

अनेक शौर्यपूर्ण प्रदर्शनों के बाद मास्टर दा बड़ी कठिनाई से शत्रुओं द्वारा पकड़े जा सके। मुकदमा चला। तदनन्तर 12 फरवरी, 1934 को उन्हें चटगाँव जेल में फाँसी दे दी गई। इस तरह सूर्यसेन मास्टर दा वीरवर ताँत्या टोपे की भाँति ब्रिटिश शासन का छापामार युद्ध प्रणाली से नाक में दम करते रहे। अन्त में उनके समान ही शांत धीर चित्त से फाँसी पर चढ़ गए। अंग्रेजों से सशस्त्र संघर्ष में सुभाष बाबू को छोड़कर उनका कोई साथी नहीं है। वे महान् स्वतंत्रता सेनानी के रूप में सदा स्मरणीय रहेंगे। उनका जीवन वृत्तान्त हमारे इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठों में अंकित करने योग्य हैं।

प्रीतिलता दावेदार (1911-1932 ई.) :

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की इस वीरांगना का जन्म चटगाँव में 1911 ई. में हुआ। पिता जयबन्धु दावेदार राष्ट्रीय विचारों के थे। अत: देशभक्ति उनको विरासत में मिली। सन् 1922 के मध्य में उनका सम्पर्क मास्टर दा से हुआ। मास्टर दा उसकी देशभक्ति की क्रान्तिकारी भावना से बहुत प्रभावित हुए और उन्हें क्रान्तिकारी संगठन में शामिल कर लिया।

चटगाँव में पहाड़तल्ला के निकट अंग्रेजों का एक बदनाम क्लब चलता था जिसमें भारतीयों की खुलकर निन्दा की जाती थी। अत: प्रीतिलता के नेतृत्व में



प्रीतिलता दावेदार

आठ क्रान्तिकारियों ने क्लब के तीनों फाटकों से अंग्रेजों पर गोलियाँ दागना शुरू किया। दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं। प्रीतिलता के अलावा किसी क्रान्तिकारी के चोट नहीं लगी। क्लब के करीब सभी गोरों का सफाया हो गया। इसी बीच सैनिक गाड़ियों की आहट सुनाई दी। प्रीतिलता ने जोर देकर सभी क्रान्तिकारियों को वहाँ से चले जाने का आदेश दिया। स्वयं वहीं रहीं। उनके सीने से खून बह रहा था। अपना अंतिम समय निकट जान उस वीरांगना ने अपने पास रखी जहर की पुड़िया फांक कर अपनी देहलीला समाप्त कर ली। मृत्यु के समय उनके पास एक व्यक्तव्य मिला—"यदि हमारे भाई मातृभूमि की स्वाधीनता के संघर्ष में शामिल हो सकते हैं तो हमारी बहिनें ऐसा क्यों नहीं कर सकतीं?"

इस तरह से अनेक शौर्यपूर्ण कार्य करके वीरांगना प्रीतिलता 23 दिसम्बर, 1932 को केवल 21 वर्ष की आयु में ही शहीद हो गई। इस वीरांगना के त्यागमय बलिदान को राष्ट्र सदा स्मरण करता रहेगा।

तारकेश्वर दस्तीदार (1911-1934 ई.) :

चटगाँव के साधारण कायस्थ परिवार में 1911 को आपका जन्म हुआ। पिता शरतचन्द्र बहुत ही भले आदमी थे। तारकेश्वर का छात्र जीवन बहुत उज्ज्वल रहा, जब वे बी.एस-सी. के प्रथम श्रेणी के छात्र थे, तब से ही वे क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये। मास्टर दा (सूर्यसेन) की चटगाँव प्रजातंत्र सेना में काम करने लगे। इससे पहले वे बम बनाते समय घायल हुए। प्रजातंत्र सेना के लिए धन व



बायें से : तारकेश्वर दस्तीदार, जिन्हें मास्टर दा के साथ फाँसी दी गई, कृष्ण चौधरी, जिन्हें मेदिनीपुर जेल में फांसी हुई, गणेश घोष।

शस्त्र जुटाने के लिए कितने ही डाके डाले गए। अन्त में आपने चटगाँव शस्त्रागार लूट में बड़े उत्साह से भाग लिया। जलालाबाद मोर्चे पर अंग्रेजों से जंग हुआ। कम से कम ग्यारह स्वातंत्र्य वीर शहीद हुए। तारेश्वर, मास्टर दा के साथ मोर्चे से बच निकलने में सफल हो गए। 19 मई, 1933 को पकड़े गए। आप पर सब इन्स्पेक्टर की हत्या व ब्रिटिश ताज के विरुद्ध जंग छेड़ने का आरोप लगाया गया। 14 अगस्त, 1933 को फाँसी की सजा हुई। 12 जनवरी, 1934 ई. को फाँसी हुई। इस तरह तारकेश्वर दस्तीदार हँसते-हँसते स्वतंत्रता की बलिवेदी पर चढ़कर अपना नाम अमर कर गए। नवयुवकों ने आपकी शहादत से बड़ी प्रेरणा ली।

लोकनाथ बाल (1908-1964 ई.) :

चटगाँव में ही 1908 को आपका जन्म हुआ और कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर स्नातक बने। कॉलेज जीवन में क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आए और मास्टर दा के सम्पर्क में काम करने लगे। इस समय आपकी आयु केवल 16 वर्ष की थी।

ए.एफ.आई. पर धावा आपके नेतृत्व में ही बोला गया। बिना विरोध के ही शस्त्रागार पर अधिकार हो गया, परन्तु कारतूस व बारूद आदि अधिक मात्रा में न मिल सकी। जब क्रान्तिकारी कार्य सुनियोजित ढंग से करके जलालाबाद पहाड़ियों में पहुँचे तो संगठित होकर लोकनाथ बाल के नेतृत्व में ही ब्रिटिश सेना से लोहा लिया गया। इस मुठभेड़ में 12 क्रान्तिकारी शहीद हुए, जिनमें आपके छोटे भाई हरिगोपाल बाल भी थे। इसी संघर्ष में आपके चचेरे भाई प्रहलाद बाल भी शहीद हुए। जलालाबाद पहाड़ी पर अंग्रेजों का कब्जा न हो सका। लोकनाथ भी वहाँ से बच निकलने में सफल हुए। अन्त में फ्रेंच उपनिवेश चन्द्रनगर में पकड़े गए। मुकदमा चला। आजीवन काले पानी की सजा मिली और अण्डमान भेज दिए गए। 1946 में छूटे। छूटने पर आप गाँधीवादी बन गए और कांग्रेस में शामिल हो गए। चार सितम्बर, 1964 को आप इस संसार को छोड़ चले, परन्तु स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अपनी कीर्ति छोड़ गए।

अम्बिका चक्रवर्ती (1892-1962 ई.) :

1892 ई. में एक ब्राह्मण परिवार में ब्रह्मा में आपका जन्म हुआ। बाद में आपका परिवार चटगाँव में आकर बस गया। पिता नन्दकुमार साधारण स्थिति के थे। अम्बिका चक्रवर्ती पहले कांग्रेस के प्रभाव में आये, परन्तु खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, कन्हाईलाल दत्त की शहादत ने आपको बहुत ही प्रेरित किया और क्रान्तिकारी बन गए। चटगाँव प्रजातंत्र सेना में काम करने लगे। विवाह नहीं किया और सारा जीवन देश सेवा में लगा दिया।

क्रान्तिकारी दलों के लिए धन जुटाने के लिए आपको कितने ही डाके डालने पड़े। इस प्रसंग में 1924 में बन्दी हुए। 1928 में छूटे। यों आपने स्वदेशी आन्दोलन में भी भाग लिया और सुभाष बाबू के समर्थक रहे, परन्तु कांग्रेस की सदस्यता आपके ढाल रूप में थी कि कहीं एक दम यह संदेह न कर लें कि वे क्रान्तिकारी हैं।

चटगाँव सशस्त्र क्रान्ति में आपने तार काटने वाली टुकड़ी का नेतृत्व किया। फिर जलालाबाद मोर्चे पर आपको गोली लगी, घायल हुए, परन्तु बचकर निकलने में सफल हो गए। सन् 1930 ई. में पकड़े गए और आजीवन कारावास के दण्ड में अण्डमान भेज दिए गए। जेल में साम्यवादी साहित्य खूब पढ़ा और जेल से छूटने के बाद साम्यवादी बन गए। सम्पूर्ण जीवन आपने देश सेवा में बिताया। सन् 1962 में देहान्त हो गया।

कल्पना दत्त व पारूल मुकर्जी :

कल्पनादत्त कर्मठ क्रान्तिकारिणी थीं। आप चटगाँव निवासी थी और चटगाँव के निकट गौशाला में क्रान्तिकारी संगठन की देख-रेख करती थी। क्रान्तिकारियों का यहाँ जमघट लगा रहता था। जब पुलिस व सेना को इस केन्द्र का पता चला तो यह केन्द्र चारों से घेर लिया गया। दोनों ओर से गोलियाँ चली। पुलिस तथा क्रान्तिकारियों के बीच घंटों संघर्ष चलता रहा। शांति चक्रवर्ती जख्मी हो गई। ब्रजेश सेन पकड़े गए, परन्तु कल्पना दत्त बच निकलने में सफल हो गई। तीन माह आजीवन काले पानी की सजा हुई।

पारूल मुखर्जी चटगाँव के क्रान्तिकारी संगठनों की जान थी। बहुत दिनों तक फरार रही। 20 फरवरी, 1936 ई. में टोटागढ़ के एक गुप्त केन्द्र में पकड़ी गईं। मुकदमा चला, पाँच वर्ष की सजा हुई।

वीणादास तथा सुहासिनी :

6 फरवरी, 1932 ई. को कलकत्ता विश्वविद्यालय में सत्र समाप्ति समारोह मनाया जा रहा था। समारोह के मुख्य अतिथि बंगाल के गवर्नर स्टेनले जैक्शन थे। सुश्री वीणादास गुप्ता भी उपाधि लेने वहाँ आई हुई थीं। उपाधि लेते समय उसने गवर्नर पर गोली चला दी, पकड़ी गईं। अदालत में साहसपूर्ण बयान दिया जिसे प्रकाशित नहीं किया गया। आजीवन कारावास हुआ।

इसी तरह सुहासिनी भी चटगाँव की रहने वाली थीं। वह क्रान्तिकारियों की स्नेहमय दीदी थी। उनका घर क्रान्तिकारियों का विश्राम स्थल था। 1 दिसम्बर, 1930 उनके घर को पुलिस ने घेर लिया और जीवन घोषाल वहीं शहीद हो गए। क्रान्तिकारियों को आश्रय देने के आरोप में सुहासिनी गांगुली भी पकड़ी गई।

उनको दो वर्ष की सजा हुई, परन्तु दो वर्ष बाद भी अनेक वर्षों तक नजरबन्द रही।

वीरांगनाओं की टोली :

सशस्त्र क्रान्ति में युवतियों का योगदान हमारे स्वातंत्र्य समर की अनुपम घटना है। उन सबका उल्लेख करने के लिए तो एक स्वतंत्र पुस्तक भी कम रहेगी। यहाँ उनके साधारण उल्लेख मात्र से हम रोमांचित हुए बिना नहीं रह सकते। केवल बंगाल की क्रान्तिकारियों की भी एक लम्बी सूची है जिनमें लीलावती नाग, सुशीला दास गुप्ता, लावण्य प्रभा, कमला दास गुप्ता, वीना दा, सुरमादास गुप्ता, उषा मुखर्जी, सुनीति देवी, प्रतिभा देवी, सरयू चौधरी, इन्द्र सुधा घोष, प्रफुल्ल नलिनी, हेलेना बाल, आशा दास, अरुणा सान्याल, सुषमा दास, प्रमिला गुप्ता, शान्ति करुणा सेन, शांति सुधा घोष का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये सभी देश की आजादी के लिए जेल यात्राएँ करती रहीं, परन्तु कभी हिम्मत नहीं हारी। आगे चलकर अनेक युवतियों ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया।

चटगाँव के अलावा पेशावर तथा शोलापुर में भी अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष में पकड़े गए नेताओं की गिरफ्तारी से पेशावर में व्यापक जन आक्रोश फैल गया और शीघ्र ही उसने सड़क मोर्चों तथा झड़पों का रूप ले लिया। निकटवर्ती गाँवों के पठान किसान पेशावर के लोगों की मदद के लिए आ गए। नगर में सभी कामकाज ठप्प हो गया और अंग्रेजों को छावनी में जाकर शरण लेनी पड़ी।

स्थिति उस समय और अधिक बिगड़ गई जब गढ़वाल रेजीमेन्ट के सैनिकों ने विद्रोहियों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने रेजीमेन्ट को निरस्त कर दिया तथा उसे शहर से दूर भेज दिया ताकि वह नागरिकों की मदद न कर सके, परन्तु अफरीदी तथा मौमंद कबीलों के पठान सशस्त्र नागरिकों की मदद के लिए आ पहुँचे। कांग्रेसी नेताओं के हस्तक्षेप से वे शांत रहे और हिंसा का मार्ग रोक दिया। चार मई को ब्रिटिश सेना पेशावर नगर में पुनः प्रवेश कर गई, परन्तु नगर पर पूर्ण नियंत्रण करने के लिए उसे एक माह लग गया। बाद में वहाँ पश्तो जिरगा का उदय हुआ। इस संगठन में खुदाई खिदमतगार या लाल कुरती आन्दोलन का संचालन अहिंसात्मक ढंग से किया गया।

इसी तरह से दक्षिण में शोलापुर नगर में भी अंग्रेजों से सशस्त्र संघर्ष हुआ। 8 मई को सशस्त्र पुलिस टुकड़ी के आगमन से नागरिक भड़क उठे और सड़क मोर्चा लगाने लगे। ये सड़क मोर्चे जल्दी ही जन विद्रोह में बदल गए। विद्रोहियों ने सरकारी इमारतों को जला दिया और रेलवे स्टेशन को घेर लिया, जहाँ ब्रिटिश अधिकारी शरण लिए हुए थे। सड़कों पर कई दिनों तक झड़पें चलती रहीं। शीघ्र

ही नगर क्रान्तिकारी परिषदों के हाथों में आ गया। 16 मई को विद्रोह के नेताओं को बन्दी बनाए जाने के बाद ही इसे कुचला जा सका।

इन संगठित सशस्त्र क्रान्ति के अलावा अनेक स्थानों पर नवयुवकों ने ब्रिटिश अधिकारियों की अच्छी मरम्मत की। चटगाँव नगर पर अत्यधिक अत्याचार करने वाला गुप्तचर विभाग का निरीक्षक आसानुल्ला पल्टन मैदान में पन्द्रह वर्षीय हरिपद भट्टाचार्य की गोली का शिकार हुआ। हरिपद पकड़ा गया, क्रिकेट के मैदान में अंग्रेजों पर कुछ बम फेंके। अंग्रेजों ने गोली चलाई। दो छात्र मारे गए। इस सम्बन्ध में कृष्ण चक्रवर्ती एवं हरेन्द्र चौधरी को फाँसी हुई। 8 अगस्त, 1930 को झाँसी के कमिश्नर को बम से उड़ाने का प्रयास किया, जिसके लिए लक्ष्मीकान्त शुक्ल पकड़ा गया। इसी तरह से कलकत्ता के खुफिया विभाग के इन्स्पेक्टर जनरल पर गोपीनाथ शाह ने आक्रमण किया। इस पर गोपीनाथ शाह को फाँसी हुई। 15 अगस्त, 1930 को अनुजसिंह गुप्ता व दिनेश ने मि. टेगर्ट की गाड़ी पर दो बम फेंके। 29 अगस्त, 1930 को ढाका के इन्स्पेक्टर जनरल लौमेन पर विनय कृष्ण बोस ने गोली चलाकर मार दिया। 8 सितम्बर, 1930 को कलकत्ता की राइटर्स बिल्डिंग में जेल के इन्स्पेक्टर जनरल पर कुछ क्रान्तिकारियों ने नौ गोलियाँ चलाकर उसका काम तमाम कर दिया।

इस तरह से उत्तर प्रदेश तथा बिहार में भी अनेक क्रान्तिकारी युवकों ने अंग्रेजों पर गोलियाँ चलाई। हाजीपुर गाँव में ट्रेन डकैती हुई। पटना में अनेक स्थानों पर बम फटे। 7 अप्रेल, 1931 को मिदनापुर के जेल मजिस्ट्रेट जैम्स पैडी पर प्रदर्शनी स्थल पर क्रान्तिकारियों ने गोलियाँ दाग दी जिससे वह कुछ दिनों बाद मर गया। 27 जुलाई को बंगाल के चौबीस परगने के सत्र न्यायाधीश मि. मार्लिक को उनकी ही अदालत में विमलदास नामक क्रान्तिकारी ने गोली मार दी। विमल दास भी वहीं मारा गया। इस तरह से क्रान्तिकारी युवकों की एक लम्बी श्रृंखला है, जिन्होंने अपनी जान की बाजी लगा कर विदेशी शासन को सबक सिखाने का प्रयास किया। इनमें पंजाब के युवा क्रान्तिकारी हरिकिशनलाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

शहीद हरकिशनलाल (1912-1931 ई.) :

इनका जन्म 1912 ई. में उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त के मरदान जिले के छोटे से गाँव में हुआ। आपके पिता गुरुदासमल धनी क्षत्रिय हिन्दू परिवार से थे। इनकी उपजाति 'तलवार' थी। गुरुदासमल ने हरकिशनलाल को विद्यार्थी जीवन में ही शस्त्र विद्या दिलवा दी थी, ताकि वे बड़े होकर क्रान्तिकारी बनकर देश व कुल का नाम रोशन करें। काकोरी ट्रेन डकैती नायक रामप्रसाद बिस्मिल व चन्द्रशेखर आजाद के प्रभाव से ही वे जुझारू राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर हुए।

उनका एक विश्वास था कि देश की आजादी युवकों के बलिदान से ही प्राप्त की जा सकती है। अतः उन्हें आगे होकर ब्रिटिश अधिकारियों व ठिकानों पर धावा बोलना चाहिए। इसी भावना से प्रेरित हो उन्होंने पंजाब के राज्यपाल पर उस समय दनादन गोलियाँ चलाई। राज्यपाल मरे तो नहीं, परन्तु उनका बायाँ हाथ बुरी तरह से जख्मी हो गया। हरकिशनलाल वहीं पकड़ लिए गए। लाहौर सत्र न्यायालय में मुकदमा चला। अदालत में उन्होंने निर्भीक होकर कहा—"मैं गवर्नर साहब को मारना चाहता था।" मुकदमे के फैसले में उनको मौत की सजा सुनाई गई। 9 जून, 1931 ई. को निमावली जेल में हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़कर शहीदों की शौर्यपूर्ण गाथाओं में अपना नाम जोड़ गए। वास्तव में इन युवा देशभक्तों के बलिदानों से देश कभी उऋण नहीं हो सकता।

कलकत्ता के मछुआ बाजार इलाके में बम बनाने का कारखाना पकड़ा गया। मछुआ बाजार बम केस काफी दिन चला। अन्त में निरंजन सेन, सतीश बोस आदि कई लोगों को कठोर कारावास हुआ। उन्हीं दिनों दक्षिण भारत में भी क्रान्तिकारियों का एक दल संगठित हुआ था जिसके नेता थे श्रीराम राजू। इस दल ने पुलिस थानों को लूटा। इस सम्बन्ध में पुलिस मुठभेड़ हुई। श्रीराम राजू लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुए।

□□

इकाई 12

सविनय अवज्ञा आन्दोलन, महान् स्वतन्त्रता संग्राम

(सन् 1930-1940)

पिछली इकाई में हम देख चुके हैं कि दिसम्बर, 1929 ई. के लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज्य' प्राप्त करने की घोषणा हो चुकी थी। इससे पहले मद्रास अधिवेशन (1927 ई.) में भी ऐसा ही प्रस्ताव पास हो चुका था, परन्तु अभी तक पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य को पूज्य महात्मा गाँधी का आशीर्वाद नहीं मिला था। लाहौर अधिवेशन में इस कमी की पूर्ति हुई और महात्मा गाँधी ने जवाहरलाल नेहरू के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए स्पष्ट रूप से कहा—"गत वर्ष कलकत्ता अधिवेशन में स्वीकृत निर्णय पर अमल करते हुए कांग्रेस घोषणा करती है कि अब स्वराज्य का मतलब 'पूर्ण स्वाधीनता' से होगा और कांग्रेस आशा करती है कि सभी कांग्रेस जन भारत को पूर्ण स्वाधीन बनाने का प्रयास करेंगे।"

महात्मा गाँधी एक महान् नेता के साथ-साथ उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिक भी थे। उन्होंने अच्छी तरह से अन्दाज लगा लिया था कि कांग्रेस का युवा वर्ग अब औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग से बिलकुल संतुष्ट नहीं है; देश के क्रान्तिकारी युवक भी विदेशी सत्ता को समूल नष्ट करने पर तुले हुए थे। ऐसी स्थिति में पूर्ण स्वाधीनता को कांग्रेस का लक्ष्य बनाकर यदि कारगर आन्दोलन नहीं छेड़ा जाता तो देश में सत्याग्रह के स्थान पर हिंसक क्रान्ति अपनी जड़ें जमा लेती। इन्हीं सभी बातों पर विचार करने के बाद महात्मा गाँधी ने पुरजोर शब्दों में 'पूर्ण स्वाधीनता' के लिए प्रयत्न करने पर जोर दिया। कांग्रेस कार्यकारिणी के पूर्ण स्वराज्य के प्रस्ताव पर महात्माजी का समर्थन मिल जाने से देश में नये जोश व नव चेतना का संचार हुआ, परन्तु पण्डित जी तथा सुभाष जी को अभी यह संदेह था कि "कहीं स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न पहले की तरह बीच में ही स्थगित न कर दिया जाए।" अत: बापू को यह भी आश्वासन देना पड़ा कि "छोटी मोटी घटनाओं से आजादी की लड़ाई रोकी नहीं जाएगी। एक भी स्वयं सेवक जीवित रहेगा तब तक संघर्ष जारी रहेगा।" महात्मा गाँधी के इन आश्वासनों से नेहरू जी

तथा सुभाष जी को बड़ी खुशी हुई, क्योंकि वे दोनों ही तो क्रान्ति रथ को आगे बढ़ाने का वर्षों से प्रयास कर रहे थे। अब महात्मा जी के नेतृत्व में प्रभावी स्वतंत्रता संग्राम शुरू करने के लिए वे उतावले हो रहे थे।

महात्मा गाँधी के निर्देश से अब 26 जनवरी को प्रतिवर्ष स्वतंत्रता दिवस मनाने का निर्णय लिया गया। इतना ही नहीं स्वाधीनता के लिए एक प्रतिज्ञा-पत्र भी तैयार किया गया जो गाँव-गाँव में पढ़ा जाने लगा—

''हम भारतवासी भी अन्य राष्ट्रों की भाँति अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्र हो कर रहें, अपने परिश्रम का फल हम स्वयं भोगें और हमें जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हों, जिससे हमें भी विकास का पूरा अवसर मिले। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार, ये अधिकार छीनती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार को हटाने या उसका अन्त करने का पूरा अधिकार है। भारत की अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों का शोषण ही नहीं किया, वरन् उसका आधार ही गरीबों के शोषण पर निर्भर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक एवं साँस्कृतिक दृष्टि से भारत का नाश कर दिया है। अत: हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेजों से अपना सम्बन्ध तोड़कर, पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए।''

इस घोषणा पत्र से देश में सर्वत्र स्वाधीनता का वातावरण बन गया। सुभाष बाबू ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन स्ट्रगल' में इसका उल्लेख करते हुए लिखा है, ''नये साल के प्रारम्भ होते ही सबके हृदय में आशा व विश्वास पैदा होने लगा। लोग उत्सुकता से कांग्रेस कार्यकारिणी के उन सुझावों की बड़ी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे थे, जिनमें शीघ्र ही स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किसी नई कार्य पद्धति का आदेश हो।'' पण्डित नेहरू ने भी अपने अंग्रेजी ग्रन्थ 'महात्मा गाँधी' में लिखा है कि ''ईस्वी सन् 1930 प्रेरणादायक घटनाओं से परिपूर्ण था। गाँधीजी के सुझाव से सभी के मन में प्रेरणा व उत्साह का समुद्र उमड़ पड़ा था। सभी यह अनुभव करने लगे कि 'स्वराज्य' बिलकुल करीब आ रहा है।''

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कौनसी रणनीति ठीक रहेगी? इसका निर्णय करने का अधिकार कार्यकारिणी ने गाँधीजी को दे दिया। वे स्वतंत्रता संग्राम के डिक्टेटर बना दिए गए। इसी बीच महात्मा गाँधी भी कितने ही दिनों तक विचार करते रहे कि हमें स्वतंत्रता संग्राम किस तरह छेड़ना है? अन्त में उन्होंने अपने निर्णय को बताते हुए कहा—''हमारी यह मान्यता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति का रास्ता हिंसा से होकर नहीं गुजरता। अत: जहाँ तक सम्भव होगा स्वैच्छिक ढंग से बर्तानिया सरकार से अपने सम्बन्धों को खत्म करने की तैयारी करेंगे। हम नागरिक अवज्ञा के लिए तैयार होंगे, जिसमें करों का भुगतान न करना भी शामिल है। हमारी

निश्चित धारणा है, भड़काए जाने की स्थिति में भी हम हिंसा का सहारा न लेकर स्वेच्छा से दी जाने वाली सहायता बंद कर दें और करों की अदायगी रोक दें, तो इस अमानवीय शासन का अन्त निश्चित है।"

महात्मा जी ने अपना मानस तो बना लिया था कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन ही इस समय उपयुक्त है, परन्तु इसे शुरू कैसे किया जाए? जैसा कि हम देखते आए हैं कि महात्मा गाँधी का सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ रूप से सत्य व अहिंसा पर आधारित था। वे सरकार को अपने आप में सुधार करने का पूरा अवसर देते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि वे शत्रु को सचेत करके ही उसके विरुद्ध लड़ाई छेड़ते थे। भारतीय संस्कृति में भी इसे धर्म युद्ध कहा जाता था। अतः उन्होंने तत्कालीन वायसराय लॉर्ड इरविन को एक पत्र लिखा जिसमें पहले से प्रेषित ग्यारह सूत्री माँग-पत्र को स्वीकार करने का आग्रह किया गया था। यदि उसे स्वीकार न किया गया तो उन्हें सरकार के कानून को ऐसे तरीकों से तोड़ना होगा जो किसानों को भी मंजूर होगा। उनकी मुख्य माँगें इस प्रकार थीं—

1. सम्पूर्ण मदिरा-निषेध।
2. विनिमय की दर घटाई जाए।
3. जमीन पर लगान आधा करके उस पर कौंसिलों (विधान सभाओं) का नियंत्रण रखा जाए।
4. नमक कर उठा लिया जाए।
5. लगान की कमी को देखते हुए बड़ी-बड़ी नौकरियों का वेतन कम से कम आधा कर दिए जाए।
6. सैनिक व्यय में 50% की कमी की जाए।
7. विदेशी कपड़े के आने पर रोक लगे।
8. भारतीय समुद्र तट भारतीय जहाजों के लिए ही सुरक्षित रहें, इसके लिए कानून बनाया जाए।
9. हत्या के अपराध में पकड़े गए लोगों के अलावा सभी राजनैतिक कैदी छोड़ दिए जाएँ।
10. खुफिया पुलिस हटा ली जाए या उस पर जनता का नियंत्रण हो।
11. आत्मरक्षार्थ हथियार रखने के आज्ञा-पत्र दिए जाएँ और इस पद्धति पर जनता का नियंत्रण हो।

महात्मा गाँधी ने उपर्युक्त माँग रखते हुए स्पष्ट कर दिया कि ये ही माँगें हमारी अंतिम माँगें नहीं हैं। देखना यह है कि हमारी न्यूनतम माँगों पर भी वायसराय का क्या दृष्टिकोण है? यदि ये माँगें नहीं मानी गईं तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन किया जाएगा।

जब महात्मा जी की उपर्युक्त माँगों को भी वायसराय ने स्वीकार नहीं किया तब गाँधीजी ने फिर से सत्याग्रह करने का संकल्प किया। इसके लिए उन्होंने सबसे पहले नमक कानून को तोड़ने का निश्चय किया क्योंकि नमक ही एक ऐसी वस्तु है, जो गरीब से गरीब के काम आता है। सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने से पहले महात्मा जी ने पुनः वायसराय लॉर्ड इरविन को 2 मार्च, 1930 को बहुत ही मार्मिक पत्र लिखा, उसका विस्तृत वर्णन डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमय्या ने 'कांग्रेस के इतिहास' में बड़ा सजीव वर्णन किया है। उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं—

"अहिंसा पर मेरा विश्वास सर्वथा स्पष्ट है। जान बूझकर मैं किसी भी प्राणी को दुःख नहीं पहुँचा सकता, परन्तु मैं ब्रिटिश राज को भारत के लिए अभिशाप मानता हूँ। मेरी अंग्रेज जाति से कोई शत्रुता नहीं है, परन्तु भारत में ब्रिटिश-शासन की नीति काफी दोषपूर्ण है। इस शासन ने भारत के करोड़ों लोगों का रक्त चूस कर उसे कंगाल बना दिया है। ब्रिटिश सरकार ने जनता की साधारण माँगों पर भी कभी सहानुभूति-पूर्वक विचार नहीं किया। वह औपनिवेशिक शासन देने को भी तैयार नहीं हुई। वायसराय महोदय ने महात्मा गाँधीजी के नम्रता-पूर्ण पत्र का उत्तर केवल इतना ही दिया कि "मुझे खेद है कि आप कानून तोड़ रहे हैं।"

अब महात्मा गाँधी के पास सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने के अलावा कोई चारा नहीं था। सारा राष्ट्र इस आन्दोलन में कूदने के लिए तैयार बैठा था। उत्तर प्रदेश में पण्डित नेहरू ने किसानों द्वारा सरकार को कर न देकर आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए तैयार कर लिया था। सभी प्रान्तों में सविनय आन्दोलन की पूरी तैयारी थी। इस आन्दोलन में महिलाओं का योगदान सबसे अधिक सराहनीय रहा।

नमक सत्याग्रह या दाण्डी मार्च :

सरकार के प्रतिकूल रुख के कारण महात्मा गाँधी 12 मार्च, 1930 को अपने चुने हुए 78 अनुयायियों के साथ दाण्डी की ओर चल पड़े। चार सौ किलोमीटर की लम्बी यात्रा के बाद अरब सागर के किनारे दाण्डी नामक स्थान पर अपने हाथ से नमक बनाकर ब्रिटिश सरकार के एकाधिकार नमक कानून तोड़ने का पूज्य बापू ने दृढ़-निश्चय कर लिया। इसके साथ ही सारे देश में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध देशव्यापी सरकारी कानूनों को तोड़ने का वातावरण बन गया।

गाँधीजी की दाण्डी-यात्रा के साथ ही सारे देश में राष्ट्रीय चेतना की बिजली सी दौड़ गई। रास्ते में झुण्ड के झुण्ड में लोग बापू के दर्शनों के लिए एकत्रित होते और अनेक स्वयं सेवक उनके साथ चल पड़ते। इस तरह से एक

शांति-पूर्ण स्वतंत्रता सेनानियों का कारवाँ दाण्डी की ओर बढ़ता जा रहा था। डॉ. पट्टाभि के शब्दों में—"यह एक ऐतिहासिक भव्य दृश्य था और प्राचीन काल के राम व पाण्डवों के वन गमन की घटनाओं को ताजा कर देता था।" सुभाषचन्द्र बोस ने इसका वर्णन करते हुए लिखा—"महात्मा जी का दाण्डी कूच एक ऐतिहासिक महत्त्व की घटना थी।"

महात्मा जी की इस कूच से देश के वातावरण में चहल-पहल उत्पन्न हो गई। देश भर के समाचार-पत्रों में दाण्डी मार्च की खबरें छपने लगीं। इससे सारे देश में नमक सत्याग्रह शुरू हो गया। छोटे-छोटे गाँवों में नमक बना-बना कर लोग नमक कानून तोड़ने लगे। कलकत्ता में तत्कालीन मेयर मि. जे. एम. सेन राज विद्रोह का कानून तोड़कर खुली सभाओं में सरकार विरोधी भाषण देने लगे। अहमदाबाद में नमक सत्याग्रह की कार्य नीति तय करने के लिए कांग्रेस के नेताओं की बैठक हुई। जवाहरलाल जी ने आग्रह किया कि सभी कानूनों, वायसराय की आज्ञाओं की अवहेलना कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन को आगे बढ़ाना जरूरी है। हमें नमक कानून तोड़ कर ही संतोष नहीं करना है, क्योंकि हमारा उद्देश्य पूर्ण स्वाधीनता है।"


दांडी में गांधीजी द्वारा नमक कानून भंग

महात्मा जी 5 अप्रेल, 1930 को अपने लक्ष्य स्थान दाण्डी पहुँचे। इस समय तक सत्याग्रहियों की संख्या हजारों तक पहुँच गई थी। 5 अप्रेल की रात को सभी ने सामूहिक प्रार्थना की और 6 अप्रेल को प्रातः, जिस दिन 1919 ई. के प्रथम सत्याग्रह की वर्षगाँठ थी, गाँधीजी ने अपने हाथ से नमक बनाकर नमक कानून को तोड़ा। इसके बाद में तो सारे देश में ब्रिटिश सरकार के कानूनों को तोड़ने की होड़ सी लग गई। मार्च व अप्रेल में नेहरू जी नींद व आराम को भूलकर देश के कोने-कोने का दौरा करके जन-व्यापी अवज्ञा अभियान का संगठन करते रहे। उन्होंने किसानों तथा छात्रों में राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम को तीव्रतर बनाने की भावना भरने में कोई कसर न रखी। सभाओं, जुलूस तथा प्रदर्शनों का ताँता सा लग गया।

वायसराय घबराने लगा व एक के बाद दूसरा हुक्म जारी करता जा रहा था, लेकिन सारी सरकारी पाबन्दियाँ भारतवासियों को उत्तेजित कर उनका उल्लंघन करने के लिए ही बढ़ावा दे रही थीं। सविनय अवज्ञा आन्दोलन दिनों दिन बढ़ता जा रहा था। सत्याग्रह में मानो जनता का शौर्य प्रस्फुटित हो रहा था। महिलाएँ भी आन्दोलन में कूद पड़ीं।

महिलाओं का योगदान :

30 अप्रेल के यंग इण्डिया अंक में महात्मा गाँधी ने भारतीय महिलाओं से घरों से बाहर निकल कर विदेशी वस्तुएँ और शराब बेचने वाली दूकानों तथा सरकारी संस्थानों पर धरना देने का आग्रह किया था। देखते-देखते हजारों महिलाएँ स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ीं। भारत कोकिला सरोजनी नायडू ने तो महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी के बाद तो धरसना के सरकारी नमक भण्डार पर धावा बोलने वाले सत्याग्रहियों का नेतृत्व किया था। उनकी बहिन ने घर-घर जाकर सत्याग्रह का प्रचार किया और अपनी गिरफ्तारी दी। यहाँ तक मालवीय जी की पत्नी भी आन्दोलन में पीछे नहीं रही और उन्होंने भी अपनी गिरफ्तारी दी। बड़े शहरों में कॉलेज की छात्राओं ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लिया। केवल दिल्ली जैसे पुरातन पंथी शहर में 1600 महिलाएँ सरकारी कानून तोड़ती हुई जेल गईं।

सत्याग्रह संग्राम में नेहरू जी की माता स्वरूप रानी जी, दोनों बहिनें तथा उनकी पत्नी भी पीछे नहीं रहीं। वे इलाहाबाद में सुबह से शाम तक गरमी की तेज धूप में खड़ी रहकर लोगों को सत्याग्रह का उद्देश्य समझाती रहीं। कमला जी की संगठनात्मक प्रतिभा ने तो सभी को आश्चर्य में डाल दिया। कमला जी की पुत्री बालिका इन्दिरा ने भी बानर सेना का गठन कर धरना देने तथा नारेबाजी में शानदार काम किया। पण्डित नेहरू ने अपनी आत्मकथा में महिलाओं के उत्साह का बड़ा सजीव वर्णन किया है—"मुझे नारियों की देशभक्ति ने सबसे अधिक चकित किया। स्त्रियाँ बड़ी तादाद में अपने घर के घेरों से बाहर निकल कर, स्वतंत्रता संग्राम में पूरी तरह से कूद पड़ीं। विदेशी कपड़े और शराब की दूकानों पर धरना देने का काम तो बिलकुल उन्होंने अपना ही बना लिया। सभी शहरों में स्त्रियों के भारी जुलूस निकलते थे। आमतौर पर स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक मजबूत सिद्ध हुईं। बहुधा प्रान्तों में या स्थानीय क्षेत्रों में डिक्टेटर तक बन जाती थी।"

इस प्रसंग में इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध मजदूर नेता मि. एच. एन. ब्रेल्स फोर्ड, मि. जार्ज स्लोक होम ने कहा था कि "नागरिक अवज्ञा आन्दोलन से और किसी उद्देश्य की पूर्ति हुई हो या नहीं, उसने बड़े पैमाने पर भारतीय स्त्रियों को सामाजिक मुक्ति दिलाने का महान् कार्य किया। आन्दोलन का यह सकारात्मक

महत्त्वपूर्ण पहलू था। महिलाओं के इस अपूर्व उत्साह और आत्म त्याग ने पुरुषों में अद्‌भुत उत्साह और स्फूर्ति का संचार किया और पुरुष लाखों की संख्या में स्वतंत्रता के इस महान् संग्राम में कूद पड़े।"

सरकार की बर्बर दमन नीति :

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आन्दोलन काफी व्यापक एवं शक्तिशाली बन गया। देश के अनेक नेता तो नमक सत्याग्रह के पहले ही पकड़ लिए गए। इनमें सरदार पटेल व बंगाल के सुप्रसिद्ध नेता सेन गुप्ता का नाम विशेष उल्लेखनीय है। पण्डित नेहरू को 14 अप्रेल, 1930 को पकड़ लिया गया और उन्हें छह माह की सजा दी गई। इस तरह से एक-एक करके देश के नेता जेल के सींकचों में बन्द हो गए। पुराने जेलखाने भर गए और नये जेल खाने बनाए गए, उनमें तिल रखने को भी जगह नहीं थी।

इतना दमन होने पर भी आन्दोलन रुकने का नाम तक नहीं ले रहा था। नेताओं की गिरफ्तारी ने आग में घी का काम किया। नमक सत्याग्रह के साथ कर बन्दी आन्दोलन भी तेजी से भड़क उठा। मध्य प्रदेश व बम्बई प्रान्त में जंगल कानून का विरोध हुआ। उत्तर प्रदेश में गोविन्द बल्लभ पन्त व सम्पूर्णानन्द ने कर बन्दी आन्दोलन का नेतृत्व किया।

सीमा प्रान्त में प्रबल आन्दोलन :

सीमा प्रान्त में पठानों ने अपने नेता बादशाह खान एवं उनके बड़े भाई डॉ. खान साहब के नेतृत्व में क्षेत्रीय स्वायत्तता तथा शिल्प उद्योग की रक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आवाज उठाई। गरीब किसान तथा शहरी हस्तशिल्पी कारीगर आन्दोलन में बड़े उत्साह से शरीक होने लगे। बादशाह खान ने खुदाई खिदमतगार स्वयं सेवा का एक विशाल संगठन खड़ा कर लिया। ये लोग लाल कमीज पहनते थे, इसलिए लाल कुर्ती दल के नाम से पुकारे जाने लगे। इनकी संख्या लगभग 80 हजार तक पहुँच गई। स्वयं सेवकों की यह विशाल फौज बकरीद के समय 20 अप्रेल, 1930 को पेशावर पहुँच गई, परन्तु अब तक आन्दोलन पूर्ण शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक चल रहा था। स्वभाव से लड़ाकू कौम होते हुए भी बादशाह खान के आदेश से सभी पठान पूर्ण अहिंसक बने रहे। ऐसा मालूम पड़ने लगा कि बापू की अहिंसक नीति यहाँ सजीव हो उठी। इसी उपलब्धि के कारण बादशाह खान सीमान्त गाँधी के नाम से पुकारे जाने लगे।

इसी बीच सरकार ने स्थानीय नेताओं को जेल में डाल दिया। भीड़ अपने नेताओं को छुड़ाने के लिए उमड़ पड़ी। जन आक्रोश इतना बढ़ा कि दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं। एक प्रकार से जन-विद्रोह का दृश्य उपस्थित हो गया। सरकार ने सैनिकों की बख्तर बन्द गाड़ियों को पेशावर भेज दिया। सैनिकों को

सत्याग्रहियों पर गोली चलाने का आदेश दिया गया, परन्तु गढ़वाल रेजीमेन्ट के सैनिकों ने अपने पठान भाइयों पर गोली चलाने से स्पष्ट मना कर दिया। राष्ट्रीयता का रंग लोगों पर चढ़ने लगा। सरकार की 'फूट डालो व राज करो' की नीति का मैदान साफ होने लगा। इससे सरकार और अधिक खीझ उठी और उसने गोरी पलटन बुला ली। 30 अप्रेल को गोरी पल्टन ने गोली वर्षा की। गोली काण्ड में कम से क्रम 100 सत्याग्रही शहीद हुए। इतने में पंजाब ने अकाली दल के युवा संगठन बबर खालसा ने भी सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। राष्ट्रीय एकता मानो सजीव हो उठी। सरकार की फूट डालो व राज करो की नीति जवाब देने लगी। क्या ही अच्छा होता कि प्रारम्भ से ही गरीब हिन्दू, सिक्ख व मुसलमान भाइयों को एकता के सूत्र में बाँधा जाता तो विदेशी शासन के लाख कोशिश करने पर साम्प्रदायिकता का जहर आगे नहीं बढ़ पाता।

अन्य स्थानों पर भी घोर दमन चक्र चलाया गया। बम्बई, कलकत्ता, रत्नागिरि, सिरोही, पटना में भयंकर लाठी चार्ज हुआ। दक्षिण में आन्ध्र में तो भीड़ पर इसलिए गोली चलाई गई कि सत्याग्रही गाँधी टोपी धारण किए हुए थे। 'एल्लोश' नामक स्थान पर इस गोली काण्ड से कई लोग मारे गए।

सरकार कांग्रेस पर तो मानो टूट पड़ी। उसे गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। नये-नये अध्यादेशों द्वारा दमन चक्र चला। प्रेस का गला तो बुरी तरह से घोंट दिया गया। सभी नेता जेलों में ठूँस दिए गए। सत्याग्रहियों की जमीन जायदाद जब्त कर ली गई। फिर भी आन्दोलन कहीं भी रुकने का नाम नहीं ले रहा था। महात्मा गाँधी ने इस दमन चक्र का उल्लेख करते हुए लिखा है—"भारत मानो विशाल जेल खाना बन गया है।"

महात्मा गाँधी अभी बन्दी नहीं बनाए गए थे। वे धरसना के सरकारी नमक भण्डारों पर कब्जा करने की तैयारी कर रहे थे। इसी बीच 5 मई, 1930 को महात्मा गाँधी को भी बन्दी बना लिया गया, परन्तु इससे धरसना के नमक भण्डार पर धावा बोलने का अभियान टला नहीं। सत्याग्रह का नेतृत्व बम्बई के सम्भ्रान्त कुल के राष्ट्रीय विचारों के व्यक्ति अब्बास तैयब ने सम्भाला। उन्हें भी 12 मई, 1930 को बन्दी बना लिया गया। इनके बाद भारत की राष्ट्रवादी कवयित्री सरोजनी नायडू ने नेतृत्व सम्भाला।

नमक भण्डार की ओर शांत भाव से सत्याग्रही बढ़ रहे थे कि उन पर घोड़े दौड़ाए गए। लोहे की मूठ जड़ी लाठियों की वर्षा होने लगी। देखते-देखते अनेक स्वयं सेवक धराशायी हो गए, परन्तु उन्होंने बचाव में अपने हाथ तक न उठाए। यहाँ तक कि आह तक नहीं की। अमेरिकन पत्रकार बेविन मिलर इस करुण दृश्य को देखकर द्रवीभूत हुए बिना न रहे। वे अपने आपको बेहोश व बीमार अनुभव करने लगे।

दोपहर तक इसी तरह का दमन चक्र चलता रहा। कम से कम 320 व्यक्ति बुरी तरह घायल हुए। 2 व्यक्ति घटना स्थल पर ही शहीद हो गए। इस तरह से स्वयं सेवकों ने अपने रक्त से नये इतिहास का निर्माण किया। लगभग 2500 स्वयं सेवक धरसना अभियान में शामिल थे। इसके अतिरिक्त 'वाड़ला' नमक भण्डार पर धावा बोला गया। "सन्निकटा" नमक भण्डार पर स्वयं सेवकों व नागरिकों ने मिल कर कब्जा कर लिया और सैकड़ों मन नमक उठाकर ले गए।

महात्मा गाँधी के बंदी बनाए जाने के बाद तो आन्दोलन सारे देश में फैल गया। उत्तर प्रदेश में यद्यपि सभी नेता जेल में थे, परन्तु महिलाएँ किसानों को कर बन्दी आन्दोलन के लिए काफी प्रेरित करती रहीं। पुलिस की गोली से अनेक लोग मारे गए। अनेक लाठी प्रहार से घायल हुए। पण्डित जवाहरलाल की माता स्वरूप रानीजी को भी चोटें आईं। पति व पुत्र दोनों जेल में थे। अपनी पिटाई के बारे में उन्होंने पण्डित जी को पत्र लिखते हुए बताया—"मुझे गर्व है कि मैंने यह मार अपनी मातृभूमि के लिए खायी है। जब यह घटना घट रही थी, तब मैं, तुम्हारे व तुम्हारे पिताजी के बारे में सोच रही थी। इसीलिए मुँह से आह तक न निकाली। बहादुर माँ को कुछ तो अपने बेटे जैसा होना चाहिए।"

इन आन्दोलन की गूँज भारत के सुदूर पूर्वी क्षेत्रों में जा पहुँची। मणिपुर के लोगों ने भी बहादुरी से इसमें भाग लिया। नागालैण्ड की एक वीर बाला रानी 'गैडिनल्यू' ने 13 वर्ष की अवस्था में ही गाँधीजी व कांग्रेस के आह्वान पर विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। इसके लिए उन्हें आजीवन कारावास में रहना पड़ा। पण्डित नेहरू ने रानी की बहादुरी का उल्लेख करते हुए 1937 में कहा था—"एक दिन ऐसा आएगा जब सारा भारत उन्हें स्नेहपूर्वक स्मरण करेगा।"

आन्दोलन का मूल्याँकन : भारत के स्वातंत्र्य समर में सविनय आन्दोलन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारी दमन के बाद भी यह पूरे एक वर्ष तक पूरी ताकत से चलता रहा। महात्मा गाँधी की अहिंसा को इसमें पूरी सफलता मिली। बिना किसी हिंसक प्रतिशोध के देशभक्त देश की आजादी के लिए अपनी बलि देते रहे। महिलाओं ने इसमें सक्रिय योग देकर उन्होंने विदेशी शासन को स्पष्ट चुनौती दे दी कि भारत की नारियों ने भी देश की आजादी के लिए लड़ने की कमर कस ली है। यह आन्दोलन मानवता की दानवता पर स्पष्ट विजय थी। सरकार जब दमन से भी आन्दोलन को न दबा सकी तो वह समझौता का रास्ता ढूँढ़ने लगी और अपने एजेन्ट महात्मा गाँधी के पास भेजना शुरू किया।

गाँधी-इरविन समझौता (मार्च, 1931 ई.) :

सरकार ने स्पष्ट रूप से देख लिया कि भारतीय राष्ट्रवाद को दमन चक्र से कुचला नहीं जा सकता। अत: उसने सर तेजबहादुर सप्रू व मुकुन्दराव जयकर को महात्मा गाँधी के पास जेल में बातचीत करने भेजा। मोतीलाल जी व पण्डित नेहरू भी वार्ता में शामिल होने के लिए गाँधीजी के पास यरवदा जेल पहुँचे, परन्तु कुछ भी नतीजा नहीं निकला। इससे पहले 1930 की प्रथम गोलमेज सम्मेलन का कांग्रेस ने बहिष्कार किया था। बिना कांग्रेस के सहयोग के साइमन कमीशन द्वारा सुझाये गए प्रस्तावों से भारत में शासन सुधार करना सम्भव नहीं था। अत: सरकार के लिए कांग्रेस से समझौता करना अनिवार्य हो गया था।

इसी संदर्भ में 25 जनवरी, 1931 को महात्मा गाँधी व कांग्रेस कार्यकारिणी के सभी सदस्य जेल से मुक्त कर दिए गए। श्रीनिवास शास्त्री के अनुरोध पर गाँधीजी वायसराय से बातचीत करने के लिए तैयार हो गए। वायसराय से वार्ता के लिए निमंत्रण मिलने पर महात्मा गाँधी ने इसे स्वीकार कर लिया।

सरकार ने आश्वासन दिया कि पुलिस की ज्यादतियों के शिकार लोगों को उचित क्षतिपूर्ति दी जाएगी। सभी राजनैतिक कैदी छोड़ दिए जाएँगे। सरकार दमनकारी अध्यादेश वापिस ले लेगी। इसके बदले में कांग्रेस को अपना सविनय आन्दोलन वापिस लेना होगा। अन्त में मार्च, 1931 में गाँधीजी ने गाँधी-इरविन पैक्ट (समझौता) पर हस्ताक्षर कर दिए। इसके अनुसार कांग्रेस ने दूसरी गोलमेज सभा में भाग लेना स्वीकार कर लिया।

प्रस्ताव का मूल्याँकन :

दक्षिण पंथी कांग्रेस के लोगों ने तो प्रस्ताव पर संतोष प्रकट किया, परन्तु युवा पंथी वर्ग ने समझौते को निराशाजनक बताया। सुभाष बाबू व पण्डित नेहरू इस समझौते से बिलकुल संतुष्ट नहीं थे। पण्डित जी ने 'मेरी कहानी' में लिखा है—''क्या इसीलिए हमारे लोगों ने साल भर नक अपनी बहादुरी दिखाई थी? क्या हमारी जोरदार बड़ी-बड़ी बातों का खात्मा इसी प्रकार होना था? क्या कांग्रेस के स्वाधीनता प्रस्ताव व 26 जनवरी की प्रतिज्ञा इसीलिए ली गई थी?''

बातचीत में देशभक्त क्रान्तिकारी सुखदेव, भगतसिंह व राजगुरु की फाँसी का मामला भी गाँधीजी ने उठाया था, परन्तु वायसराय फाँसी को स्थगित करने को तैयार नहीं हुए। इस तरह से समझौते से कोई विशेष उपलब्धि नहीं हुई। इसमें स्वाधीनता के सम्बन्ध में कुछ भी उल्लेख नहीं था, परन्तु पण्डित जी ने कांग्रेस की एकता व भारत के लिए भावी संवैधानिक सुधारों का मार्ग प्रशस्त करने के लिए समझौते को स्वीकार कर लिया।

डॉ. पट्टाभिसीतारमैया ने कांग्रेस के इतिहास में इस समझौते का उल्लेख करते हुए कहा है—"संसार के सारे बड़े साम्राज्य के प्रतिनिधि के साथ एक भारतीय नेता का बराबरी के नाते से समझौता करना, आधुनिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। कुछ अंशों में यह भारतीय राष्ट्रवाद की विजय है। 'इण्डिया टूडे' के लेखक रजनी पामदत्त ने इस समझौते की उचित व्याख्या की है—"ब्रिटिश सरकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को, जिसे उसने पहले गैर कानूनी संगठन करार कर दिया था, उसे नष्ट करने का प्रयास किया गया था, उसी के नेता के साथ एक सार्वजनिक समझौता करने को बाध्य हुई। निःसन्देह यह बात राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति का अत्यन्त शक्तिशाली प्रदर्शन था। इस समझौते ने सर्वप्रथम विजय तथा हर्ष की व्यापक भावना को जन्म दिया, परन्तु बाद में लोग मानने लगे कि इस समझौते से सारा संघर्ष व बलिदान समझौते की बहस में ही विलीन हो गया।"

पण्डित नेहरू ने इस समझौते को स्वतंत्रता संग्राम का युद्ध विराम ही माना और वे यह देखना चाहते थे कि सरकार भारत के लिए क्या करती है? स्वतंत्रता संग्राम हमेशा के लिए इस समझौते से समाप्त नहीं हो सकता।

कराँची कांग्रेस अधिवेशन (29 मार्च, 1931 ई.) :

सरदार पटेल की अध्यक्षता में 29 मार्च, 1931 को बहुत ही तनावपूर्ण वातावरण में खुले पाण्डाल में कांग्रेस अधिवेशन शुरू हुआ। इसमें गाँधी-इरविन समझौते का समर्थन होना था। समर्थन के लिए प्रस्ताव नेहरू जी ने रखा। राष्ट्रीय एकता कायम रखने के लिए प्रस्ताव पास कर दिया गया। महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व की यह महान् विजय थी।

अधिवेशन में देशभक्त भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव की शहादत की प्रशंसा के लिए भी प्रस्ताव आया, परन्तु इस प्रकार का प्रशंसा प्रस्ताव कांग्रेस की अहिंसा नीति के अनुरूप नहीं हो सकता था। अतः मूल प्रस्ताव में महात्मा गाँधी के सुझाव पर संशोधन कर इसे पारित किया गया—"किसी भी प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने आपको दूर रखते हुए और उसे अमान्य करते हुए, कांग्रेस उनकी वीरता और बलिदान के प्रति अपनी प्रशंसा लिखित रूप में प्रकट करती है।" सुभाष बाबू ने मूल प्रस्ताव के संशोधन का विरोध किया, परन्तु बहुत कम मतों से वे पराजित हो गए।

कराँची कांग्रेस ने दूसरी गोलमेज सभा में भाग लेने की स्वीकृति दे दी और महात्मा गाँधी को उसमें जाने का अनुरोध किया गया, परन्तु इन सब बातों के अतिरिक्त करांची कांग्रेस का महत्त्व इस बात से अधिक है कि इसमें मौलिक अधिकारों एवं आर्थिक नीति पर प्रस्ताव पास किए गए। प्रस्ताव में जनता को

बुनियादी नागरिक स्वतंत्रता प्रदान करने का पूरा आश्वासन दिया गया। आर्थिक नीति में परिवहन मार्गों का राष्ट्रीयकरण, उद्योगों का सामाजीकरण की बात कही गई। अल्पसंख्यकों को विभिन्न भाषायी क्षेत्रों की संस्कृति व लिपि को संरक्षण देने की बात भी प्रस्ताव में कही गई। इस तरह से कराँची कांग्रेस में भारत के भावी संविधान की रूपरेखा प्रस्तुत की गई।

दूसरा गोलमेज सम्मेलन :

इससे पहले ही इरविन के स्थान पर लॉर्ड विलिग्टन भारत के वायसराय बनकर आ गए थे। वे इरविन से अधिक कठोर एवं दमनकारी थे। वे महात्मा गाँधी की न्यायोचित माँगों पर भी विचार करने को भी तैयार नहीं थे। ऐसे निराशामय वातावरण में गाँधीजी लंदन पहुँचे। ब्रिटिश प्रधान मंत्री मैक्डानल्ड ने साम्प्रदायिक दलों से साँठ-गाँठ कर भारत के स्वराज्य को अधर झूल में लटकाने का षड्यंत्र पहले ही रच लिया था। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस को सम्पूर्ण भारत की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था मानने से भी इन्कार कर दिया। मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचक मण्डल एवं अछूत हिन्दुओं के लिए भी अलग निर्वाचक मण्डल की बातें चलने लगी। महात्मा गाँधी सभी वर्गों को मिलाकर सरकार के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा सम्मेलन में खड़ा करना चाहते थे, परन्तु सभी साम्प्रदायिक दल अपनी-अपनी ढपली व अपना-अपना राग अलापते रहे। साम्प्रदायिक दल विदेशी सरकार के हाथों में खेल रहे थे। महात्मा गाँधी ने सरकार को बताया कि विभिन्न वर्गों का मामला हमारा घरेलू मामला है। स्वराज्य के बाद वे उसी प्रकार सुलझ जाएँगे जिस प्रकार सूरज की गर्मी से हिमशैल पिघल जाते हैं। स्वराज्य मिलने पर सब ठीक हो जाएगा, परन्तु सरकार साम्प्रदायिक मसलों को हल करने पर जोर देती रही, क्योंकि वह जानती थी कि ये सभी दल एक होंगे नहीं और हमारी सत्ता बराबर बनी रहेगी।

सम्मेलन में भारत के लिए प्रस्तावित विधेयक के मुख्य-मुख्य बिन्दुओं की जानकारी दी गई थी। जिसमें पृथक् निर्वाचन मण्डल के आधार पर संघीय परिषद एवं प्रान्तीय स्वायत्तता का प्रावधान भी था। वित्त, विदेशी व्यापार पर सुरक्षा के मसले ब्रिटिश सरकार के हाथों में रहने लगे। यह व्यवस्था औपनिवेशिक स्वराज्य से कोसों दूर थी। अत: गाँधीजी ने इसे स्वीकार नहीं किया और निराश हो भारत लौट आए।

सरकारी दमन चक्र :

गाँधीजी के लौटने के पहले ही विलिग्टन सरकार ने 'गाँधी-इरविन समझौते' का तिरस्कार करना शुरू कर दिया था। पण्डित नेहरू, पुरुषोत्तम दास टण्डन, पन्त जी आदि नेता बन्दी बना लिए गए। नेहरू जी की पत्नी कमला जी

को भी गिरफ्तार कर लिया गया। कांग्रेस को पुनः गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया। स्वतंत्रता सेनानियों, विशेषकर चटगाँव को बुरी तरह कुचल दिया गया। महात्मा गाँधी व सरदार पटेल भी बंदी बना लिए गए। महामना मालवीय जी जैसे उदारवादी नेताओं को भी सरकार ने नहीं बक्शा। उन्हें भी पकड़ लिया गया। राष्ट्रवादी समाचार पत्रों का गला घोंट दिया गया। हजारों लोगों की जमीन जायदाद जब्त कर ली गई। विलिंग्टन सरकार के दमन चक्र के सामने 1930 का दमन चक्र भी फीका लगने लगा।

साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध :

अंग्रेजों ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को तो बढ़ावा दिया ही था, अब वे अछूतों के लिए अलग निर्वाचक मण्डल की स्थापना कर भारत की राष्ट्रीय भावना को समूल नष्ट करने पर तुल गए। प्रधानमंत्री रेमजे मैक्डानल्ड ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि केन्द्रीय (संघीय) विधान परिषद में हिन्दुओं, मुसलमानों व अछूतों के लिए अलग-अलग विधान मण्डल होंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दुओं व हरिजनों को पृथक् राजनैतिक इकाई माना गया। गाँधीजी ने इसका कड़ा विरोध किया और सरकारी निर्णय के विरोध में यरवदा जेल में ही अपना अनशन शुरू कर दिया। गाँधीजी के आमरण अनशन से भारत में ही नहीं इंग्लैण्ड में भी तहलका मच गया। देश-विदेश के नेता गाँधीजी के प्राण बचाने के लिए दौड़ धूप करने लगे।

महात्मा गाँधी ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि जब तक ब्रिटिश सरकार अपने साम्प्रदायिक निर्णय को वापिस नहीं लेगी मैं अनशन नहीं तोडूँगा। गाँधीजी की इस चुनौती से मालवीय जी व सी.एफ. एन्ड्रूज, रवीन्द्रनाथ टैगोर सभी बड़े नेता चिन्तित हुए और उनके प्राण बचाने की फिकर करने लगे। अन्त में डॉ. भीमराव अम्बेडकर और एम. राजा जैसे हरिजन नेताओं ने गाँधीजी के प्राण बचाने में गहरी रुचि ली। गाँधीजी की बात मानकर पूना समझौता किया गया। इस पूना समझौते के अनुसार हरिजनों के लिए अलग सदन की व्यवस्था समाप्त कर दी गई। उनके लिए अलग स्थान सुरक्षित कर दिए गए। इसके बाद तो गाँधीजी हरिजनोद्धार में पूरी तरह जुट गए। काका कालेलकर तथा ठक्कर बापा 'हरिजन सेवक समाज' का संचालन करने लगे। 8 जनवरी, 1933 को मन्दिर प्रवेश-दिवस के रूप में मनाया गया। इस जन जागृति से राष्ट्रीय एकता को बड़ा बढ़ावा मिला। हरिजन समाज जो अब तक तिरस्कृत था राष्ट्रीय एकता की धारा में जुड़ गया। कांग्रेस संगठन भी पिछड़े वर्ग में अधिक लोकप्रिय बन गया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह :

सरकारी दमन चक्र से निरन्तर हिंसा को प्रोत्साहन मिल रहा था। गाँधीजी के लिए सत्याग्रह आन्दोलन से भी अधिक हरिजनोद्धार का प्रश्न महत्त्वपूर्ण बन गया था।

अत: उन्होंने सन् 1934 को आते-आते सविनय आन्दोलन को वापिस ले लिया। इसके स्थन पर व्यक्तिगत सत्याग्रह संग्राम छेड़ने की सिफारिश की। इसके पीछे बापू का तर्क था कि सरकारी जुल्म का सामना करने के लिए व्यक्ति में स्वयं में भी साहस होना चाहिए। व्यक्तिगत सत्याग्रह का शुभारम्भ करने वाले उनके प्रिय शिष्य विनोबा भावे थे। बाद में पण्डित नेहरू व कांग्रेस के अन्य नेता भी इसमें कूद पड़े और सरकार द्वारा बन्दी बनाए गए। यह आन्दोलन 1940 तक बराबर चलता रहा।

सन् 1935 का भारत विधेयक :

सरकार ऊपर से तो राष्ट्रीय आन्दोलन को कड़ाई से दबाती रही, परन्तु अन्दर ही अन्दर उसने भारत की लोक शक्ति को स्वीकार कर लिया था। अत: उसने भारत की समस्या के समाधान के लिए तीसरा गोलमेज सम्मेलन 1932 में आयोजित किया। कांग्रेस ने इसे निरर्थक मानकर इसका बहिष्कार किया, परन्तु सरकार ने इस सम्मेलन में कुछ शासन सुधार करने की घोषणा की। 1935 ई. का 'भारत विधेयक' पारित हुआ। इस विधेयक के अनुसार केन्द्र में एक संघीय सरकार व प्रान्तों में स्वायत्तता के आधार पर एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना होनी थी। इस सुधार में एक व्यवस्था यह भी थी कि प्रान्तों के साथ ही रियासतों को भी केन्द्रीय विधान मण्डल में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

इस व्यवस्था से अनजाने में ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को एक राष्ट्र मानने की पुष्टि हो गई। यद्यपि सरकार का इरादा अपने पिछलग्गू राजाओं को बढ़ावा देकर जन प्रतिनिधियों की ताकत को कमजोर करना था, क्योंकि रियासतों के प्रतिनिधि राजाओं द्वारा मनोनीत होने थे। ब्रिटिश प्रान्तों के प्रतिनिधि बालिग मताधिकार प्राप्त निर्वाचन से आने थे, परन्तु निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार 14% से अधिक लोगों को नहीं था। कार्यपालिका के अध्यक्ष गवर्नर जनरल व गवर्नर व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। वे सीधे इंग्लैण्ड की सरकार के नियंत्रण में थे और उसी के प्रति उत्तरदायी थे। उन्हें अपरिमित अधिकार प्राप्त थे, जिनके आधार पर इंग्लैण्ड की सरकार जब चाहे तब चुनी हुई सरकार का गला घोंट सकती थी। विधेयक में पहले प्रान्तीय भाग को लागू करना था। संघीय योजना को बाद में लागू होना था।

विधेयक को कांग्रेस ने 'निराशाजनक' बताकर इसकी निन्दा की, क्योंकि सरकार ने भारत की जनता पर शासन करने के राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकार छोड़े नहीं थे। केवल सरकार के ढाँचे में हल्का-सा परिवर्तन कर जनमत से निर्वाचित मंत्रियों को प्रान्तीय शासन में शामिल कर विदेशी हुकूमत को बदस्तूर चलते रहना था। पण्डित नेहरू व सुभाष बाबू ने इसे अर्थहीन विधेयक बताया। विधेयक का प्रान्तीय भाग पहले लागू होना था। सिद्धान्त रूप से विधेयक को

अस्वीकार करने पर भी कांग्रेस का बहुमत इस पक्ष में था कि हमें प्रान्तीय धारा सभा के चुनावों में अवश्य भाग लेना चाहिए, ताकि सरकार को कांग्रेस की लोकप्रियता का पता लग सके। सुभाष बाबू ने स्पष्ट चेतावनी दे दी थी कि सत्ता में जाने से हमारा पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य नष्ट हो जाएगा और सत्ता के जाल में फँस जाएँगे। नेहरू जी भी विधेयक के विरोधी थे, परन्तु राष्ट्रीय एकता और कांग्रेस के अनुशासित सिपाही होने के नाते वे कांग्रेस को विजयी बनाने के लिए धुँआधार प्रचार अभियान में उतर पड़े। फलस्वरूप कांग्रेस को 7 राज्यों में पूर्ण बहुमत मिला और दो में वह मिला-जुला मंत्रिमण्डल बना सकी। गैर-कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल तो केवल दो राज्य पंजाब तथा बंगाल में ही बन सके।

कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने किसान तथा मजदूरों की स्थिति को सुधारने के लिए अनेक कानून बनाए। थोड़े से समय में ही यह सिद्ध कर दिया गया कि भारत के लोग अपना शासन चलाने में पूरी तरह सक्षम हैं, परन्तु गवर्नर जनरल व गवर्नर की तानाशाही उनके सिर पर हमेशा लटकी रहती थी। इसी बीच ब्रिटिश सरकार द्वारा जन प्रतिनिधि सरकार से सलाह लिए बिना ही भारत को युद्ध की आग में झोंक दिया। अतः विरोध स्वरूप कांग्रेस सरकारों ने अपने त्याग-पत्र दे दिए।

कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन (1936 ई.) :

जब-जब भी कांग्रेस थोड़ी कमजोर होकर निस्तेज होने लगती थी तब कोई न कोई ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाती थी, जिससे कांग्रेस में नव चेतना का संचार होकर ताकतवर संस्था बन जाती थी। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन तथा विदेशी सरकार की विघटनकारी नीति से देश में निराशा के बादल छा गए थे। ऐसी परिस्थिति में लखनऊ कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में पण्डित नेहरू ने कांग्रेस का लक्ष्य समाजवाद की ओर बढ़ना बताकर, सर्वत्र खुशी एवं उल्लास का वातावरण पैदा कर दिया। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा—

"मुझे पक्का यकीन है आज दुनियाँ व भारत की समस्याओं का एक मात्र हल समाजवाद है। समाजवाद केवल आर्थिक सिद्धान्त नहीं, वह उससे भी बड़ा है। वह जीवन का एक दर्शन है और इसीलिए वह मुझे खींचता है। मुझे भारत के लोगों की गरीबी, बेरोजगारी, गिरावट और गुलामी का खात्मा करने का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। इसके लिए हमारी राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना बहुत जरूरी है। हिन्दुस्तान के रजवाड़ों (देशी रियासतों) के सामन्ती निजाम को उखाड़ फेंकना बहुत जरूरी है।"

आगे चलकर इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमारा स्वतंत्रता संग्राम द्रुतगति से चल पड़ा। समाजवाद के नारे को किसान व मजदूरों का अटूट समर्थन मिला। आम जनता स्वतंत्रता संग्राम में जी जान से जुट गई। उसी का परिणाम था—अगस्त,

1942 की महान् जन-क्रान्ति जिसका विस्तृत वर्णन हम अगली इकाई में करेंगे। इससे पहले अमर शहीद सरदार उधमसिंह व सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।

शहीद उधमसिंह (1899–1940 ई.) :


उधमसिंह

चन्द्रशेखर आजाद की शहादत व चटगाँव सैनिक क्रान्ति के बाद ब्रिटिश शासन ने चैन की साँस ली, परन्तु उसे पता नहीं था कि भारत का युवा पौरुष अभी मरा नहीं है। यह हम देख चुके हैं कि भारतीय युवकों ने ब्रिटिश शासन की दमन नीति को समाप्त करने के लिए हथियार उठाए थे। जनरल डायर ने जलियाँवाले बाग में जिस निर्ममता से नरमेध किया, उसे उधमसिंह ने आँखों से देखा था। उन्होंने उसी समय दाँत पीसकर प्रतिज्ञा कर ली थी कि भारत के सपूतों के खून से होली खेलने वाले डायर को उसके किए की सजा अवश्य दूँगा। अन्त में उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके दिखा ही दी। उसका कच्चा चिट्ठा इस प्रकार है।

उधमसिंह का जन्म 26 दिसम्बर, 1899 ई. को पटियाला जिले के सुनाम गाँव में माता नारायणी देवी की कोख से हुआ था। पिता चोहड़राम का निधन हो जाने से उधमसिंह को एक अनाथालय में शरण लेनी पड़ी। वहीं वे क्रान्तिकारियों से सम्पर्क कायम करने लगे। इसी कारण उन्हें 1928-1932 ई. तक सुल्तानपुर व रावलपिण्डी जेल में रहना पड़ा।

जेल से छूटने पर उधम पटियाला से अमृतसर आ गए और वहाँ एक लकड़ी का कारखाना लगा लिया। उन्होंने अपना नाम भी राम मुहम्मद सिंह आजाद रखा जो हिन्दू, मुसलमान व सिक्ख एकता का प्रतीक था। इसी नाम से वे शहीदे आजम भगतसिंह से पत्र व्यवहार करते थे। इसके बाद उधम विद्याध्ययन के बहाने लंदन पहुँच गए। लंदन में ही उन्होंने जनरल डायर का काम तमाम करने की योजना बनाई और वीरवर सावरकर जी का भी उन्हें आशीर्वाद मिल गया।

13 मार्च, 1940 जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के ठीक 21 वर्ष बाद लंदन के सैक्स्टन हॉल में एक सभा का आयोजन था। जनरल डायर उसमें भाषण देने आए हुए थे। कुछ समय पहले उधम भी अपनी जेब में पिस्तोल रखकर सभा भवन में चुपचाप जा बैठे। ज्योंही जनरल डायर भाषण देने लगे। उधम के कानों

में जलियाँवाले बाग के शहीदों का करुण क्रन्दन गूँजने लगा। अतः उन्होंने अपनी जेब से पिस्तोल निकालकर डायर को अपनी गोली का निशाना बना लिया। डायर वहीं ढेर हो गया। चारों ओर भगदड़ मच गई। वे चाहते तो आसानी से भाग सकते थे, परन्तु बटुकेश्वरदत्त व भगतसिंह की भाँति बड़े साहस से उन्होंने अपने आपको गिरफ्तार कराया।

उन पर मुकदमा चला। अदालत में उन्होंने बयान दिया कि "एक भारतीय के नाते मेरे देश पर किए गए अत्याचारों व अपमान का बदला लेना मेरा कर्त्तव्य था, जो मैंने पूरा किया। अब आप अपना काम करो।" 31 जुलाई, 1940 को उधम को लंदन में ही फाँसी दे दी गई, परन्तु उनका बलिदान आगे आने वाले देशभक्तों के लिए एक ज्योतिपुंज सिद्ध हुआ। उनके देश-भक्ति व शहादत के लिए हम सभी श्रद्धावनत हैं।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रमुख सेनानी :

यों तो इस आन्दोलन के प्रेरणा स्रोत राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी ही थे, परन्तु आन्दोलन को व्यापक व अपनी ऊँचाई तक पहुँचाने का श्रेय पण्डित नेहरू को है। उनके परिवार के सभी सदस्यों ने इस आन्दोलन में प्रमुखता से भाग लिया। सीमान्त गाँधी अब्दुल गफ्फार खाँ, श्रीमती सरोजनी नायडू, व गिदवानी चोहटराम, गोविन्द बल्लभ पंत, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य आदि नेताओं ने इसमें प्रमुखता से भाग लिया, परन्तु आन्दोलन को गति देने में पण्डित नेहरू का योगदान सबसे अधिक था। अतः 1930-1940 तक के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय को नेहरू युग कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

चिर-तरुण-तपस्वी पण्डित नेहरू (1889-1964 ई.) :

पण्डित जी का जन्म 14 नवम्बर, 1989 ई. को इलाहाबाद में हुआ था। आपके पिता मोतीलाल नेहरू उच्च कोटि के विधिवेत्ता एवं परम देशभक्त थे। स्वतंत्रता संग्राम में उनके अमूल्य योगदान की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। अतः जवाहरलाल को देशभक्ति विरासत में मिली, परन्तु जिस प्रकार एक सपूत बेटा विरासत में मिली सम्पत्ति को दिन दूनी व रात चौगुनी कर लेता है, उसी प्रकार नेहरू जी ने भी विरासत में मिली देशभक्ति का काफी विस्तार कर लिया। आपके पिताजी व अन्य राष्ट्रीय नेताओं के प्रति पूर्ण सम्मान रखते हुए यह स्वीकार करना पड़ेगा कि देश तथा पद दलित मानव जाति के प्रति जितना प्रेम नेहरू जी के हृदय में था उतना महात्मा गाँधी को छोड़कर किसी के दिल में नहीं था।

सन् 1905 में लंदन विद्याध्ययन के लिए गए और शिक्षा प्राप्त कर 1912 में 22 वर्ष की आयु में भारत लौटे। विदेशी वातावरण में रहते हुए भी उनका मन



पं. जवाहरलाल नेहरू

भारत से जुड़ा रहा। लंदन में बहिष्कार व बंग-भंग आन्दोलन की खबरों से उनको बड़ी खुशी होती थी।

भारत आने पर सर्वप्रथम 1912 में बाँकीपुर कांग्रेस अधिवेशन में अपने पिता के साथ शामिल हुए, परन्तु यह अधिवेशन उनको उच्च श्रेणी के लोगों के उत्सव के अतिरिक्त कुछ नहीं लगा। आगे वे श्रीमती एनीबेसेन्ट व लोकमान्य तिलक के होमरूल आन्दोलन में अपने पिताजी के साथ भाग लेने लगे। महात्मा गाँधी से उनकी प्रथम भेंट दिसम्बर, 1916 में लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में हुई। कांग्रेस के इस इकत्तीसवें अधिवेशन में गरम दल, नरम दल की एकता व मुस्लिम लीग के सहयोगात्मक रुख से उन्हें बहुत खुशी हुई।

महात्मा गाँधी द्वारा सत्याग्रह करके चम्पारन व बारदोली में किसानों की तकलीफों को दूर करने में अच्छी सफलता प्राप्त कर ली थी। इसका नेहरू जी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। अब वे उत्तर प्रदेश के किसान आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। इसी बीच 1920 के नागपुर अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने विदेशी शासन के विरुद्ध अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन करने के लिए देशवासियों को ललकारा तो नेहरूजी अपने पिता के साथ आन्दोलन में कूद पड़े। सारे उत्तर प्रदेश में उनके कारण इस आन्दोलन को व्यापक समर्थन मिला। पिता-पुत्र दोनों इस आन्दोलन में जेल गए। पण्डित नेहरू को छह माह की सजा तथा 100 रुपये जुर्माने की सजा हुई। नेहरू कांग्रेस में इतने लोकप्रिय हो गए थे कि कांग्रेस कार्यकारिणी में शामिल किए गए।

बम्बई तथा चौरी चौरा की हिंसक घटनाओं के कारण महात्मा गाँधी ने जब आन्दोलन को स्थगित कर दिया तो नेहरू जी सहित अनेक नवयुवकों को बड़ी निराशा हुई और कांग्रेस की साख में भी कुछ फरक आने लगा तो पण्डित जी ने व सुभाष बाबू ने नवयुवकों को जाग्रत कर, पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य निर्धारित कर कांग्रेस को पुन: नवजीवन प्रदान किया। इसके बाद सविनय अवज्ञा आन्दोलन में सबसे बड़ी भूमिका नेहरू परिवार की रही। पण्डित जी को अनेक बार जेल यात्रा

करनी पड़ी। जेल में भी वे निष्क्रिय नहीं बैठे रहे। 'मेरी कहानी' 'भारत की खोज' नामक अनुपम ग्रन्थों की रचना की। जेल से उन्होंने पुत्री प्रियदर्शनी इन्दिरा जी को 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' से अनेक पत्र लिखे, जो आगे चलकर विश्व-इतिहास की झलक के रूप में प्रकाशित हुए।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन के बाद जब देश में पुनः निराशा का वातावरण छा गया तो 1936 ई. में कांग्रेस अधिवेशन में समाजवाद की ओर बढ़ने की घोषणा करके पण्डित जी ने कांग्रेस को पुनः शक्तिशाली बनाया। इसके बाद भारत-छोड़ो आन्दोलन प्रस्ताव पारित कराने में आपका अमूल्य योगदान रहा। 1945 ई. में आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों पर चल रहे मुकदमे में बचाव पक्ष की ओर से आप प्रमुख व्यक्ति थे। आपके प्रयास से मुकदमा उठा लिया गया। इससे विदित होता है कि मातृभूमि के लिए लड़ने वाले लोगों के प्रति उनके हृदय में असीम स्नेह था। बहुत कोशिश करने पर भी जब विभाजन टल न सका तो इसे अनिवार्य बुराई समझकर भारत की स्वतंत्रता के खातिर भारी मन से इसे स्वीकार कर लिया।

यह देश का सौभाग्य ही था कि संकट की घड़ी में भी सत्यपथ से न डिगने वाला पं. नेहरू जैसा प्रधानमंत्री हमें मिला। भारत को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित करके नेहरू जी ने भारत का भाल ऊँचा किया और अंग्रेजों की साम्प्रदायिक विष फैलाने की नीति का मुँह तोड़ जवाब दिया। इसीलिए तो बापू ने कहा था कि 'मेरे बाद जवाहरलाल मेरी भाषा बोलेगा'। देशभक्ति में तो वे बेजोड़ थे। महात्मा गाँधी कहा करते थे कि ''जवाहरलाल के लिए मातृभूमि से बढ़कर ज्यादा प्रिय कुछ भी नहीं है और जब भी मातृभूमि के प्रति अपने कर्त्तव्य पालन का सवाल आता है, वे किसी अन्य बात को मानने को तैयार नहीं होते।''

छोटे से आलेख में उनके विशाल व्यक्तित्व को बाँधना संभव नहीं है। भारत राष्ट्र के निर्माता के रूप में वे सदा स्मरणीय रहेंगे। किसी भी गुट में शामिल न होकर सभी के साथ मित्रता की भावना रखकर विश्व राजनीति में भारत का नाम अमर कर दिया। यह भारत भूषण मई, 1964 में हमें बिलखता छोड़ स्वर्ग सिधार गया, परन्तु उनका देश-प्रेम, गरीबों के प्रति उत्कट स्नेह कभी आँखों से ओझल नहीं हो सकता। भारत राष्ट्र के निर्माता भारत रत्न पण्डित नेहरू को कृतज्ञ राष्ट्र कभी नहीं भूल पाएगा।

श्रीमती कमला नेहरू (1899-1935 ई.) :

1 अगस्त, 1899 को दिल्ली के एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में आपका जन्म हुआ। आपका जीवन बड़ा सादा था। अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थी, परन्तु समझ किसी से कम नहीं थी। सन् 1916 ई. में पण्डित जवाहरलाल जी के साथ प्रणय सूत्र में बँध गई। जल्दी ही कमला जी ने नेहरू-परिवार के राष्ट्रीय जीवन से अपने



कमला नेहरू

आपको आत्मसात कर लिया। वे हमेशा इस बात का ख्याल रखती थीं कि "मेरे कारण मेरे पति कहीं स्वतंत्रता संग्राम में किसी से पिछड़ न जाएँ।" मध्यकालीन राजपूत वीरांगनाओं की भाँति उन्हें भी अपने पति को स्वातंत्र्य समर में भेजने में बेहद खुशी होती थी।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन में स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी बड़े उत्साह से भाग लिया और 1931 ई. में जेल यात्रा की। जेल जाते समय उन्होंने कहा था— "आज मुझे असीम प्रसन्नता है और इस बात का गर्व है कि मैं मेरे पति के पद चिह्नों पर चल सकी।" जेल से छूटने के बाद वे गम्भीर रूप से बीमार हो गई। उन्हें क्षय रोग था। इलाज के लिए स्विट्जरलैण्ड जाना पड़ा। पण्डित जी उस समय जेल में ही थे। अत: सरकार ने उनको विदेश जाने की अनुमति दे दी। काफी प्रयास करने पर भी इस साधवी देशभक्त भारतीय नारी के प्राण न बच सके, परन्तु देश सेवा का एक आदर्श रखकर उन्होंने थोड़ी आयु में ही अपने जीवन की पूर्णता प्राप्त कर ली और प्रियदर्शिनी इन्दिरा के रूप में देश को एक अमूल्य धरोहर दे गई।

प्रिय दर्शिनी इन्दिरा जी (1917-1984 ई.) :

आपका जन्म 19 नवम्बर, 1917 को इलाहाबाद में देशभक्त नेहरू परिवार में हुआ। कन्या जन्म की खबर जब दादी स्वरूपरानी जी को हुई तो थोड़ी उदास होने लगी तो मोतीलाल जी ने जो शब्द कहे, वह आगे चलकर अक्षरस: सत्य निकले। उन्होंने कहा था—"यह लड़की हजार पोतों के बराबर बनेगी।"

घर देशभक्ति के वातावरण से परिपूर्ण था। अत: बचपन से ही इन्दिरा जी देशभक्ति के साँचे में ढलने लगी। बचपन में वह जॉन ऑफ आर्क की कहानियाँ पढ़ा करती थीं और खुद को हाथ में तलवार लिए हुए ऐसे घुड़सवार के रूप में देखती थी, जो अंग्रेजों को देश से बाहर निकालना चाहती थी। बचपन से ही गाँधीजी के आदेश से उन्होंने 'बाल चरखा संघ' की स्थापना की। सन् 1930 के सविनय अवज्ञा स्वतंत्रता संग्राम की सहायता के लिए केवल 13 वर्ष की आयु में ही इन्दिरा जी ने वानर सेना का गठन किया। इलाहाबाद में उनकी बानर सेना के स्वयं सेवकों की संख्या 6 हजार तक पहुँच गई थी। इस वानर सेना ने स्वतंत्रता आन्दोलन के दिनों में बम्बई तथा कई नगरों में संदेश पहुँचाने, खाना बनाने,

प्राथमिक सहायता उपलब्ध कराने, सिलाई करने, झण्डे फहराने जैसे काम किए।

अगस्त जन क्रान्ति के समय आपने इलाहाबाद 'कान्वेन्ट स्कूल' पर तिरंगा फहराने के कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और पुलिस की लाठी खाई। यहीं फिरोज गाँधी से आपका परिचय हुआ और 23 मार्च, 1943 को उनके साथ प्रणय सूत्र में बँध गई। अत: इन्दिरा जी का बचपन पूरी तरह से देश-सेवा से गुजरा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के जन जागरण में आपने प्रमुखता से भाग लिया। प्रधान मंत्री के रूप में आपके कार्यों की न केवल भारत वरन् सारे विश्व में धाक जम गई। अन्त में देश की एकता और सुदृढ़ता के उद्देश्य के लिए 31 अक्टूबर, 1984 को आप शहीद हो गईं और महात्मा गाँधी की अनुगामी बन गई। आपकी देश-सेवा, विशेषकर पद दलित लोगों के उद्धार के लिए आपके प्रयत्न चिरस्मरणीय रहेंगे। विश्व-इतिहास में आप शान्ति व सहयोग के लिए विख्यात रहेंगी। हर क्षेत्र में आपने भारत का नाम रोशन किया। कृतज्ञ राष्ट्र आपकी सेवाओं से कभी उऋण नहीं हो सकता।



इन्दिरा गाँधी

श्रीमती सरोजनी नायडू (1879-1949 ई.) :

आपका जन्म 13 फरवरी, 1879 ई. को हैदराबाद के एक संभ्रान्त परिवार में हुआ था। बचपन से आप उत्तम कविताएँ लिखने लग गई थीं। कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में आपके जोशीले भाषण से सभी प्रभावित हुए। महात्मा गाँधी ने आपको 'भारत कोकिला' की उपाधि दी। होमरूल आन्दोलन में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सन् 1925 में कानपुर कांग्रेस अधिवेशन की आप अध्यक्ष रहीं। आप प्रत्येक



सरोजिनी नायडू

परिस्थिति में प्रसन्न रहती थीं। इसीलिए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने आपको 'सदाबहार गुलाब' की उपाधि दी।

स्वतंत्रता संग्राम में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान सविनय अवज्ञा आन्दोलन में रहा, जब आपने नमक कानून तोड़ने के लिए धरसना के सरकारी भण्डार पर धावा बोलने वाले दल का नेतृत्व किया था। आप गिरफ्तार हुईं। अगस्त क्रान्ति में बड़े उत्साह से भाग लिया। बन्दी बनी। इस तरह से सरोजनी नायडू ने स्वतंत्रता संग्राम में हर बार प्रमुखता व उत्साह से भाग लिया। आजादी के बाद आप उत्तर प्रदेश की राज्यपाल बनीं। इस पद पर रहते हुए 2 मार्च, 1949 को आप स्वर्ग सिधारीं। स्वतंत्रता संग्राम व नारी जागरण के क्षेत्र में आप सदा स्मरणीय रहेंगी। 3 फरवरी को महिला-दिवस आपके जन्मदिन के उपलक्ष्य में ही मनाया जाता है।

श्रीमती कस्तूरबा गाँधी (1869-1944 ई.) :

आपका जन्म 1869 ई. में पोरबन्दर में हुआ। तेरह वर्ष की आयु में ही गाँधीजी की जीवन संगिनी बन गई। बापू के साथ दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में भाग लिया। साबरमती आश्रम की व्यवस्था आपके ही हाथ में थी। विदेशी कपड़ों व शराब की दूकानों पर धरना देने वाले दल का आपने अनेक बार नेतृत्व किया। राजकोट रियासत की जनता के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। बंदी बनाई गई। आपके साथ मणि बहिन व मृदुला सारा भाई ने भी आन्दोलन में भाग लिया। सन् 1942 की क्रान्ति में भाग लिया। पूना में आगा खाँ महल में बापू के साथ नजरबन्द रहीं। वहीं 24 फरवरी, 1944 को आपका देहान्त हुआ। प्रत्येक विपत्ति में बापू के साथ रहकर आपने गोस्वामी तुलसीदास की इस चौपाई को सार्थक सिद्ध कर दिया—

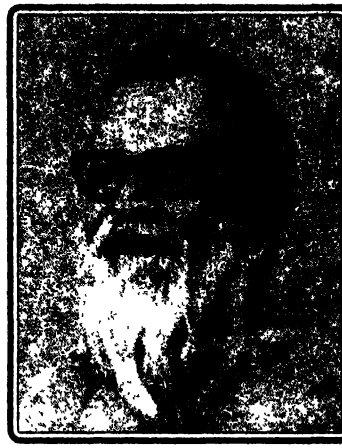


कस्तूरबा गाँधी

धीरज धर्म मित्र अरू नारी, आपत्ति काल परिखिये चारी।

"बा" के प्रेरणादायक देशभक्ति-पूर्ण कार्य से उड़ीसा में रमाबाई ने राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। नमक सत्याग्रह व उसके बाद तो महिलाओं में देश-भक्ति की होड़-सी लग गई।

आचार्य विनोबा भावे :


विनोबा भावे

गाँधीजी के प्रियतम शिष्य विनोबा भावे स्वतंत्रता संग्राम में सर्वोत्कृष्ट सत्याग्रहियों में माने जाते हैं। आप बड़ौदा के रहने वाले थे। इंटरमिडियेट कक्षा में पढ़ाई छोड़कर हिमालय की तराई में तपस्या के लिए चले गए। असहयोग आन्दोलन से ही आप सत्याग्रह आन्दोलन के मुख्य सिपाही बन गए। डॉ. पट्टाभिसीतारमैया ने अपने ग्रन्थ 'गाँधी व गाँधीवाद' में लिखा है कि 'गाँधीजी ने 1940 ई. के व्यक्तिगत सत्याग्रह करने के लिए आपको इसलिए चुना कि आप 32 वर्ष के प्रतिष्ठित सत्याग्रही व आत्मसंयमी थे। भारत को दूसरे महायुद्ध में घसीटने की ब्रिटिश-नीति का आपने खुलकर विरोध किया। आप व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेने वाले प्रथम व्यक्ति थे। अपनी मातृभूमि के लिए सर्वस्व त्याग करने के कारण आप हमेशा श्रद्धा के पात्र बने रहेंगे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सर्वोदय, भू-दान जैसी जनकल्याणकारी योजना में आप लगे रहे। आपके इस कार्य में शंकरराव देव ने अच्छा हाथ बँटाया। विनोबा जी भारत में ही नहीं सारे विश्व समाज में सत्य, न्याय एवं समता का राज्य देखना चाहते थे। उनका 'जय-जगत' का नारा इसी प्रसंग में उल्लेखनीय है।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ :


खान अब्दुल गफ्फार खान

आपका जन्म 1890 ई. को सीमा प्रान्त के 'उत्तमजई' गाँव में हुआ। सादा जीवन उच्च विचार आपके जीवन का मूल मंत्र था। आप सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य मानते थे। केवल जलवायु व परिस्थिति के कारण उनके आचरण के नियमों में अंतर रहता है। इस्लाम का अर्थ उन्होंने 'अमल (सदाचार)', 'यकीन', (विश्वास) मोहब्बत (प्रेम) बताया।

रोलेट एक्ट विरोध के साथ आप राजनीति में आये। 1920 ई. के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में आप उपस्थित थे।

आन्दोलन में गिरफ्तार किए, जो 1924 ई. में छूटे। सन् 1930 ई. में सविनय आन्दोलन में उत्साह से भाग लेने के कारण आप सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गए। खुदाई खिदमतगार संगठन बनाया, जिसके स्वयं सेवकों की संख्या 80 हजार थी। इस दल ने गाँधीजी की अहिंसा नीति का अक्षरश: पालन किया। इसका श्रेय खान साहब को है। इसीलिए ये 'सीमान्त गाँधी' के नाम से पुकारे जाने लगे। पठानों के अग्रणी नेता होने के कारण आप 'बादशाह खान' कहलाने लगे। स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के कारण आपको 14 वर्ष जेलों में रहना पड़ा।

निष्काम सेवा आपके जीवन का मुख्य सिद्धान्त था। जब 1934 ई. में कांग्रेस अध्यक्ष बनने का प्रस्ताव आपके सामने आया तो आपने कहा "मैं जन्मजात सिपाही हूँ तथा आजीवन कांग्रेस के सिपाही के रूप में ही काम करता रहूँगा। 'देश-विभाजन से आपको बहुत पीड़ा हुई। आपका प्रान्त पाकिस्तान में चला गया, परन्तु आपका मन भारत से जुड़ा रहा। भारत स्वतंत्रता संग्राम में आपके योगदान को कभी नहीं भूलेगा।

आसफ अली (1888-1953 ई.) :

आपका जन्म 11 नवम्बर, 1888 को दिल्ली में हुआ। बैरिस्टर बनकर दिल्ली में वकालात करने लगे। आप क्रान्तिकारियों के मुकदमे में बिना फीस के लड़ते थे। असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण आप 18 माह जेल में रहे। आप 1927 में कांग्रेस के महासचिव बने। हिन्दू-मुस्लिम एकता का आप सदा प्रयास करते रहे। आप दोनों समाजों द्वारा आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। यही कारण था कि आपने सन् 1935 के दिल्ली नगर परिषद के चुनाव में हिन्दू-महासभा व मुस्लिम लीग के उम्मीदवारों को हराकर साम्प्रदायिकता पर राष्ट्रीयता की विजय का झण्डा फहराया। आजाद हिन्द फौज के बचाव समिति के सचिव के रूप में भी आपने खूब नाम कमाया। आपकी पत्नी अरुणा जी व आपका नाम सदा स्वतंत्रता संग्राम में उल्लेखनीय रहेगा।

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (1878-1972 ई.) :

आपका जन्म 8 दिसम्बर, 1878 ई. को तमिलनाडू के सेलम जिले के 'तोरपल्ली' नामक गाँव में ब्राह्मण परिवार में हुआ। शारीरिक रूप से आप दुर्बल थे, परन्तु आपका मनोबल बहुत ऊँचा था। पहले आप गरम दल के नेताओं के प्रभाव में थे, परन्तु 1918 में गाँधीजी से भेंट के बाद आपने यह अनुभव कर लिया कि देश को स्वतंत्र सत्याग्रह संग्राम द्वारा ही कराया जा सकता है। अत: पूर्ण मनोयोग से गाँधीजी के साथ हो गए। रोलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह संग्राम की योजना आपने ही तैयार की थी। आपने स्वाधीनता आन्दोलन में उत्साह से भाग लिया।


चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

दक्षिण भारत में सविनय अवज्ञा आन्दोलन को व्यापक एवं सफल बनाने का श्रेय आपको ही है। आप कांग्रेस के महासचिव पद पर रहे। सन् 1937-39 तक आपके मुख्यमंत्रित्व काल में मद्रास राज्य में अनेक समाज सुधार के कार्य हुए। हिन्दी भाषा के विकास के लिए भी इस युग में अच्छा काम हुआ। कांग्रेस व लीग के बीच समझौता कराने में काफी प्रयास किया, परन्तु आपके फार्मूले को कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आप महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे। स्वाधीन भारत के प्रथम भारतीद गवर्नर जनरल बनने का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ। अपनी सिद्धान्तवादिता के कारण बाद में आप कांग्रेस से अलग हो गए। एक चरित्रवान राष्ट्रीय नेता के रूप में आप सदा स्मरणीय रहेंगे।

आचार्य जे. बी. कृपलानी :

गाँधीवादी विचारों से आप महान् देशभक्त थे। आपका जन्म सिंध हैदराबाद में हिन्दू क्षत्रिय परिवार में हुआ था। बम्बई के विल्सन कॉलेज में आपने शिक्षा प्राप्त की, परन्तु बंग-भंग विरोधी आन्दोलन में भाग लेने के कारण कॉलेज से निकाल दिए गए। चम्पारन सत्याग्रही के रूप में गाँधीजी के सम्पर्क में आए। इसके बाद बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ाने का काम करने लगे। वहीं सुचेता जी से आपकी भेंट हुई और दोनों की शादी हो गई। नेहरू परिवार से आपके घनिष्ठ सम्बन्ध थे। सन् 1921 से 1945 तक के प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन में आपने भाग लिया। सन् 1934 से 45 तक लगातार कांग्रेस के महासचिव रहे। अगस्त क्रान्ति में जेल गए। सन् 1945 में छूटे। इसी वर्ष आप कांग्रेस के अध्यक्ष बने, परन्तु सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण आपने यह पद छोड़ दिया, परन्तु आपकी पत्नी बराबर कांग्रेस में बनी रही। आपने कभी भी उन पर राजनीतिक दबाव न लाकर सह अस्तित्व का सुन्दर उदाहरण पेश किया। काफी लम्बी आयु की देश-सेवा के बाद आप स्वर्ग सिधारे। आपकी निष्काम राष्ट्र सेवा को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

डॉ. जाकिर हुसैन :

आपका जन्म 8 फरवरी, 1897 ई. में हैदराबाद में हुआ था। आपके जीवन पर आपकी माताजी का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। जब गाँधीजी 1920 ई. में अलीगढ़ गए, तो आपने उनके आदेश से कॉलेज का बहिष्कार कर दिया और


डॉ. जाकिर हुसैन

स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। इसके बाद आपने 'जामिया मिल्लिया' में पढ़ाने का काम शुरू किया। अलीगढ़ से जामिया मिल्लिया दिल्ली लाया गया। आप इसके उप कुलपति बने।

स्वतंत्रता के बाद आप अनेक उच्च पदों पर रहे। सन् 1967 में आप राष्ट्रपति बनाए गए। इससे पहले 1963 ई. में भारत रत्न की उपाधि से विभूषित किए जा चुके थे। जाकिर हुसैन साहब महान् देशभक्त के साथ उच्च कोटि के मानव भी थे। पूज्य बापू की शिक्षाओं का आपने जीवन भर पालन किया।

बाबा खडगसिंह (1867-1963 ई.) :

भारत का स्वाधीनता संग्राम एक राष्ट्रीय जन संग्राम था। इसमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। बाबा खड़गसिंह ने स्वाधीन संग्राम में बड़ी बहादुरी से भाग लिया। आपका जन्म सियालकोट में 1867 ई. को हुआ। पंजाब विश्वविद्यालय के आप प्रथम स्नातक थे। इतना ही नहीं सिक्खों में आधुनिक शिक्षा व राष्ट्रीय भावना का प्रसार करने का श्रेय आपको ही है। 1919 ई. के अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में गाँधीजी के सम्पर्क में आये। सन् 1920 ई. में लाहौर में सिक्ख लीग की अध्यक्षता आपने ही की। इसमें महात्मा गाँधी ने भी भाग लिया। इसी सभा में बाबा खड़गसिंह ने सिक्खों को कांग्रेस में शामिल होने का अनुरोध किया। सरदार स्वर्णसिंह, जोगेन्द्रसिंह, हुक्मसिंह, गुरुदयालसिंह ढिल्लो आदि सिक्ख राष्ट्रीय नेता आपकी ही देन हैं।

असहयोग आन्दोलन से एक ओर तो खिलाफत आन्दोलन जुड़ा हुआ था तो दूसरी ओर गुरुद्वारा आन्दोलन भी जुड़ गया। इसमें ब्रिटिश-सरकार की गुरुद्वारों में हस्तक्षेप करने की नीति का कड़ा विरोध किया गया था। बाबा खड़गसिंह ने इस आन्दोलन में प्रमुखता से भाग लिया। वे बन्दी बनाए गए, परन्तु इस आन्दोलन में उनकी विजय हुई और सिक्ख तोशेखाने की चाबियाँ सिक्खों को मिल गईं। इस पर गाँधीजी ने बधाई देते हुये तार दिया—"भारत के स्वाधीनता संग्राम की यह पहली निर्णायक विजय है।"

आपने प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रमुखता से भाग लिया। इसी कारण आपको अपने जीवन के 20 वर्ष जेलों में बिताने पड़े। इस महान् देशभक्त का

दिल्ली के नर्सिंग होम में देहान्त हो गया। पं. नेहरू ने आपको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था-"वे निर्भीक एवं अपने सिद्धान्तों के पक्के थे। राष्ट्रीय एकता के आपके प्रयास एवं देश-प्रेम सदा स्मरणीय रहेंगे।"

फखरुद्दीन अली अहमद :

आसाम के जन जागरण में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। असहयोग आन्दोलन व सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आपने नेतृत्व किया। अगस्त क्रान्ति में जब बम्बई से आसाम लौट रहे थे तब बीच में ही पकड़ लिए गए। आसाम में राष्ट्रीय भावना को फैलाने में आपका सहयोग कभी भुलाया नहीं जा सकता। यही कारण है कि अगस्त क्रान्ति में छात्रों की बहुत ही अच्छी भूमिका रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आप अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर देश-सेवा करते रहे। देश के सर्वोच्च पद 'राष्ट्रपति' पद को आपने सुशोभित किया। आपकी लम्बी राष्ट्र सेवा को देश कभी भूल नहीं सकता।


फखरुद्दीन अली अहमद

नीलम संजीव रेड्डी :

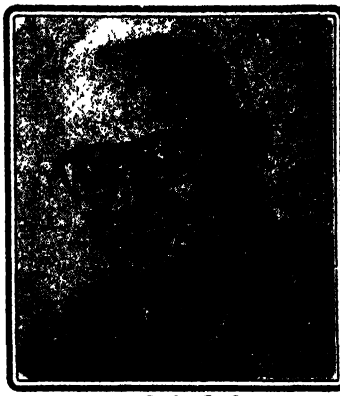
दक्षिण भारत विशेषकर आन्ध्र में गाँधीजी के विचारों का प्रसार करने में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। स्वाधीनता संग्राम में उत्साह से भाग लेने के साथ-साथ आपने हरिजनोद्धार जैसे रचनात्मक कार्यों में सराहनीय कार्य किया। नारी जागरण में भी आपकी सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकता। शुद्ध सरल चित्त देश सेवा में लगे रहे। यही कारण था कि आप 'राष्ट्रपति' के गौरवमय पद तक पहुँच सके।


नीलम संजीव रेड्डी

वी. वी. गिरि :

वराहगिरि वेंकटगिरि का जन्म 10 अगस्त, 1894 ई. को उस समय के मद्रास प्रान्त के गंजम जिले के बहरामपुर गाँव में हुआ जो आजकल उड़ीसा राज्य में है। आयरलैण्ड विद्याध्ययन के लिए गए। वहाँ आयरलैण्ड के स्वतंत्रता संग्राम के नेता

डीवेलेरा से आप बहुत प्रभावित हुए। भारत आने के बाद आपने मजदूरों के अधिकारों के लिए कार्य किया। 1937-39 ई. में राजाजी के मंत्रिमण्डल में श्रम मंत्री रहे। इससे पहले नमक सत्याग्रह में आपने प्रमुखता से भाग लेकर अपना नाम कमा चुके थे। 1946 ई. में के टी. प्रकाशम् के मंत्रिमण्डल में भी श्रम मंत्री रहे। स्वतंत्रता के बाद आप अनेक पदों पर रहकर राष्ट्र सेवा करते रहे। सन् 1969 ई. में राष्ट्रपति बने। मजदूर नेता व प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी के रूप में आप सदा स्मरणीय रहेंगे।


वी.वी. गिरी

कामराज नाडार :

आपका जन्म 15 जुलाई, 1903 को एक पिछड़ी जाति में जन्म हुआ, परन्तु अपनी सेवा भावना से आप उच्च वर्ग के लिए भी आदरणीय बन गए। अधिक पढ़े लिखे नहीं थे। अत: अपने चाचा के साथ नारियल की दूकान पर कार्य करते थे। रामनाद जिले के विरुद्धनगर में आपके पिताजी की किराने की दूकान थी। जलियाँवाले बाग हत्याकाण्ड की खबरें सुनकर आप में देश-प्रेम का संचार हुआ। उस समय आपकी आयु केवल 15 वर्ष की ही थी। 1921 ई. को मदुरई में गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गए। सत्यमूर्ति आपके राजनैतिक गुरु थे। सन् 1930 ई. के नमक सत्याग्रह में 'वेदारनायम्' में नमक कानून तोड़ा। स्वतंत्रता आन्दोलन में 6 बार जेल गए और तीन हजार दिन जेल में रहे। तमिलनाडू कांग्रेस के आप अध्यक्ष रहे। यहीं से आपका राजनैतिक भविष्य चमका। सन् 1947-1969 तक कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य रहे। सन् 1963 में आपने कांग्रेस अध्यक्ष के पद को सुशोभित किया। कामराज योजना के माध्यम से आपने सत्ता से अधिक जन सेवा को महत्त्व देने का प्रयास किया। 1954 में जब आप मद्रास के मुख्य मंत्री थे, तब आपने स्वच्छ शासन प्रदान दिया। आप मद्रास के पहले मुख्यमंत्री थे, जो अंग्रेजी बिलकुल नहीं जानते थे, परन्तु शिक्षा के प्रसार में आपका महत्त्वपूर्ण योग रहा। सच्चे जनसेवक व राष्ट्र भक्त के रूप में आप सदा स्मरणीय रहेंगे।

आन्ध्र केसरी टी. प्रकाशम् (1872-1957 ई.) :

आपका जन्म 23 अगस्त, 1872 ई. को हुआ। विदेश से शिक्षा प्राप्त कर वकालात करने लगे, परन्तु गाँधीजी के प्रभाव से वकालात छोड़कर असहयोग आन्दोलन

में कूद पड़े। साइमन कमीशन के विरोध प्रदर्शन में मद्रास में आपने अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया और संगीनों के सामने अपनी छाती खोलकर खड़े हो गए।

नमक सत्याग्रह तथा 1942 की क्रान्ति में बहुत ही उत्साह से भाग लिया। 1946 ई. में मद्रास प्रान्त के मुख्यमंत्री रहे। आन्ध्र राज्य के निर्माण में आपका अभूतपूर्व योगदान रहा और लम्बे समय तक आन्ध्र के मुख्य मंत्री रहे, परन्तु इन सबसे अधिक आपका महत्त्व एक निर्भीक पत्रकार एवं महान् स्वतंत्रता सेनानी के रूप में अधिक है। चालीस वर्ष तक देश की सेवा कर 1957 ई. को 85 वर्ष की आयु में आपका हैदराबाद में देहान्त हो गया।

लालबहादुर शास्त्री (1904-1964 ई.) :



लालबहादुर शास्त्री

भारत के इस महान् सपूत का जन्म 2 अक्टूबर, 1904 को अपने नाना हजारीलाल जी के घर मुगलसराय में हुआ। पिता शारदा प्रसाद जी इलाहाबाद की कायस्थ पाठशाला में साधारण अध्यापक थे। शास्त्री जी का जीवन बचपन से ही मुसीबतों की आग में तप कर शुद्ध कुन्दन की भाँति उभरा। सत्य निष्ठा व ईमानदारी आपके भावी जीवन की आधार शिलाएँ थीं। 1925 में काशी विद्यापीठ से शास्त्री की उपाधि लेकर लाजपतराय द्वारा स्थापित लोक सेवा मण्डल में बहुत कम वेतन पर काम करने लगे। इसी बीच आपने 'इलाहाबाद लोक सेवा मण्डल' का कार्य सम्भाल लिया! वहीं आप कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं के सम्पर्क में आये। वहीं 1927 ई. में ललिता जी से आपका विवाह हो गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन में आप जेल गए। 1937 ई. में जब कांग्रेस सरकार बनी तो गोविन्द वल्लभ पंत ने आपको संसदीय सचिव बनाया। भारत छोड़ो आन्दोलन में प्रमुखता से भाग लिया। आजादी के बाद तो आप अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे। नेहरू जी के निधन के बाद आपने बड़ी विकट परिस्थिति में भारत के प्रधानमंत्री का पद संभाला, परन्तु अदम्य साहस व चरित्र के धनी लाल बहादुर जी ने अपनी कुशलता से सारे भारत को मोहित कर लिया। शांति के दूत बनकर ताशकन्द समझौते के लिए रूस गए। वहीं इस महान् देशभक्त का 10 जनवरी, 1966 को देहान्त हो गया। राष्ट्र आपकी अमूल्य सेवाओं से कभी उऋण नहीं हो सकता।

गोविन्द बल्लभ पंत (1887-1961 ई.) :



गोविन्द वल्लभ पंत

पंत जी उद्भट्ट स्वतंत्रता सेनानी थे। आपका जन्म 10 सितम्बर, 1887 ई. को अल्मोड़ा के खाते पीते ब्राह्मण परिवार में हुआ। इलाहाबाद कॉलेज में पढ़ते समय गोखले जी के भाषण का आप पर अमिट प्रभाव पड़ा। देश सेवा का व्रत लेकर आपने प्रतिज्ञा की कि "पढ़ने लिखने के बाद वे सरकारी नौकरी नहीं करेंगे।" एल-एल.बी. करके काशीपुर में वकालात करने लगे। वहीं से बद्रीदत्त जी पाण्डे के साथ शक्ति पत्र निकालने लगे, जिसमें बेगार प्रथा व कुली प्रथा की खुलकर निन्दा की जाती थी।

मदनमोहन मालवीय जी के कदमों में बैठकर ही आपने देशभक्ति व राजनीति का पाठ पढ़ा। आप मालवीय जी की विचारों में दृढ़ता का प्रतिनिधित्व करते थे तो राजर्षि टंडन आपके सौम्य स्वभाव का। पिछड़ी जाति की सेवा अपना कर्त्तव्य मानकर आप कहा करते थे—"पिछड़े लोगों को आगे लाने का कार्य करके हम उन पर कोई एहसान नहीं कर रहे हैं, वरन् उनके पहले का ऋण चुका रहे हैं।" रोलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह से आपका राजनैतिक जीवन शुरू होता है। लखनऊ में साइमन कमीशन के विरोध प्रदर्शन करते समय पुलिस की लाठी से आप गम्भीर रूप से घायल हो गए। सविनय अवज्ञा आन्दोलन में कितनी ही बार नेहरू जी के साथ जेल में रहे। डॉ. पट्टाभिसीतारमैया ने कांग्रेस के इतिहास में लिखा है कि—"नेहरू जी व महात्मा गाँधी दोनों आपकी देशभक्ति से अत्यन्त प्रभावित थे।" प्रभावशाली वक्ता के साथ-साथ आप कुशल प्रशासक भी थे। सन् 1937 में 39 तक आप उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे। आपकी निष्ठा व कार्य क्षमता की अंग्रेज गवर्नर भी प्रशंसा किए बिना नहीं रहा। स्वतंत्रता के बाद आप उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री रहे। जमींदारी उन्मूलन कानून आपके समय में ही बना। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में भी गृह मंत्री के रूप में आपका कार्य सदा सराहनीय रहा। 7 मार्च, 1961 को आप हमारे बीच नहीं रहे। आपके निधन से सचमुच राष्ट्र ने एक महान् स्वतंत्रता सेनानी व उच्चकोटि के देशभक्त से हाथ धो लिया।

पुरुषोत्तमदास टण्डन (1882-1961 ई.) :

1 अगस्त, 1882 को इलाहाबाद में शालीगराम जी खत्री के यहाँ आपका जन्म हुआ। मालवीय जी तथा लालाजी के जीवन का आप पर अमिट प्रभाव पड़ा। 1906

से इलाहाबाद में वकालात करने लगे। पण्डित नेहरू व डॉ. राजेन्द्रप्रसाद आपके राजनीतिक जीवन के घनिष्ठ साथी थे अत: 1921 के असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। इसके बाद किसानों की जागृति में लग गए। सन् 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के साथ कर बन्दी किसान आन्दोलन में उत्साह से भाग लिया। कितनो ही बार जेल गए। अगस्त क्रान्ति में बन्दी बनाये गए। भारतीय संस्कृति व हिन्दी भाषा के आप प्रबल समर्थक थे। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का स्थान दिलवाने में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। 1950 में कांग्रेस अध्यक्ष बने, परन्तु मतभेदों के कारण 1951 में त्यागपत्र दे दिया। आप उस युग के नेता थे जब लोगों को सिद्धान्त प्रिय थे, पद व कुर्सी प्रिय नहीं थी। महात्मा गाँधी ने आपको राजर्षि की उपाधि दी। 1961 ई. में 'भारत रत्न' के गौरवमय पद से अलंकृत किए गए। महान् देशभक्त स्वतंत्रता सेनानी व गरीबों के मसीहा के रूप में आप सदा याद किए जाते रहेंगे।

डॉ. पट्टाभिसीतारमैया (1880-1959 ई.) :

कांग्रेस का इतिहास लिखने का महत्त्वपूर्ण कार्य आपके ही कर कमलों से सम्पादित हुआ। यह एक प्रकार से स्वतंत्रता संग्राम का विशद वर्णन है। आपका जन्म 24 दिसम्बर, 1880 को पश्चिमी गोदावरी जिले के एक गाँव में हुआ। चार वर्ष की आयु में ही पिताश्री का देहान्त हो गया, परन्तु आपने अपने अदम्य साहस से पढ़ाई चालू रखी और मद्रास से चिकित्सा की एम.बी.बी.एस. तथा सी.एम. की उपाधि प्राप्त की।

1898 ई. में जब कांग्रेस अधिवेशन मद्रास में हुआ तभी से आप पर देशभक्ति का रंग कॉलेज जीवन से ही चढ़ गया। बंगभंग विरोधी आन्दोलन को दक्षिण में आपने ही व्यापक बनाया। युवा अवस्था में आप गरम दल की नीतियों से प्रभावित थे, परन्तु 1920 में महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन की धारा में बहने से अपने आपको न रोक सके। फिर तो आप गाँधीजी के प्रिय भक्त बन गए।

मछलीपट्टम को मुख्यालय बनाकर आप देशभक्ति का प्रचार करने लगे। नमक कानून को तोड़ने के लिए आपने समुद्र तट पर जाकर अपने हाथों से नमक बनाया। छोटे-छोटे नमक के पैकेट भी 15 रुपये में बिकने लगे। मछलीपट्टम में स्वतंत्रता संग्राम का अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। 1913 में अलग आन्ध्र राज्य बनाने के लिए आन्दोलन किया। पूर्ण स्वराज्य की माँग पर आप नेहरू जी के साथ थे। साइमन कमीशन के विरोध में आप मद्रास में बंदी बनाए गए। लम्बे समय तक कांग्रेस के महासचिव रहे। 1938 ई. में कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए आप सुभाष बाबू से पराजित हुए। इस पर महात्मा गाँधी ने कहा था कि—"पट्टाभि की हार मेरी हार है।" इससे विदित होता है कि गाँधीजी का आप पर कितना विश्वास है। व्यक्तिगत सत्याग्रह में भी आप जेल गए। 1948 में आप जयपुर कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष बने। सन् 1952-57 तक मध्य प्रदेश के राज्यपाल रहे। 17 दिसम्बर,

1959 को आप हमारे बीच न रहे, परन्तु उत्कृष्ट देश-सेवा के लिए हम सभी सदा ही आपके ऋणी रहेंगे।

मोरारजी देसाई :


मोरारजी देसाई

गाँधीवादी, सिद्धान्तवादी नेता मोरारजी देसाई ने सब कुछ देश व समाज की सेवा में समर्पित कर दिया। बम्बई प्रान्तीय सेवा के राजस्व अधिकारी के महत्त्वपूर्ण पद को त्यागकर आप असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। इसके बाद प्रत्येक प्रकार के राष्ट्रीय आन्दोलन में आपने सक्रिय रूप से भाग लिया। खादी ग्रामोद्योग के उत्थान, हरिजनोद्धार तथा शराबबन्दी जैसे समाज सुधार के कार्यों को आपने आगे बढ़ाया। गुजरात विद्यापीठ से विशेष लगाव कर नैतिकता के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योग दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आप अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में आपके निष्ठापूर्वक कार्य को कभी भुलाया नहीं जा सकता। देश के प्रधान मंत्री के रूप में भी आपको कार्य का अवसर मिला। आप भी उन त्यागी नेताओं में से रहे हैं, जिन्हें कुर्सी से अधिक सिद्धान्त प्यारे थे। 85 वर्ष की आयु में भी आप रचनात्मक कार्यों के माध्यम से राष्ट्र की निष्काम सेवा करते हुए स्वर्ग सिधारे।

यशवन्त राव चव्हाण (1913-1984 ई.) :


यशवन्तराव चव्हाण

आपका जन्म 12 मार्च, 1913 को सतारा जिले के देवराष्ट्र गाँव के एक गरीब किसान परिवार में हुआ। चार वर्ष की आयु में ही आपके पिताश्री चल बसे, परन्तु बचपन में ही आपमें अदम्य उत्साह था। अत: परिस्थितियों से कभी निराश नहीं हुए। आपने अपना राजनैतिक जीवन एक भूमिगत स्वतंत्रता सेनानी के रूप में शुरू किया। सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में आपके नेतृत्व का पहला परीक्षण हुआ जिसमें आप पूरी तरह से सफल

हुए। आपने सतारा में कुछ समय के लिए क्रान्तिकारी स्वतंत्र सरकार बनाई थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तो देश के कई महत्त्वपूर्ण पदों पर आप रहे। सभी पदों पर आपकी योग्यता की छाप पड़े बिना नहीं रही। आपको महान् देशभक्त कुशल प्रशासक के रूप में सदा याद किया जाता रहेगा। सचमुच आप देश की पहली पंक्ति के नेताओं में से थे।

बाबू जगजीवन राम :

बिहार में जनजागृति में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा 1942 की जन-क्रान्ति में भाग लेने के कारण आप बन्दी बनाए गए। आप में कुशल नेतृत्व के गुण सदा विद्यमान रहे। स्वतंत्रता संग्राम में आपने अनेक कठिनाइयों का सामना किया और उच्च जाति के लोगों से लोहा लेकर आगे बढ़े। पिछड़ी जाति के तो आप मसीहा सिद्ध हुए।



बाबू जगजीवनराम

उत्तर प्रदेश तो देशभक्तों का घर रहा है। यहाँ के अनेक राष्ट्र सेवकों का थोड़ा बहुत यथा स्थान हमने उल्लेख किया है, परन्तु सूची इतनी लम्बी है कि सभी का समावेश इस संक्षिप्त आलेख में नहीं किया जा सकता। वयोवृद्ध नेता कमलापति त्रिपाठी व विद्वान देशभक्त संपूर्णानन्दजी की विभिन्न सेवाओं को आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। दोनों नेता स्वतंत्रता संग्राम के सत्याग्रह आन्दोलन में अग्रणी रहे हैं। अनेक कष्ट उठाकर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। किसान नेता चौधरी चरणसिंह की भी भारत-छोड़ो आन्दोलन में महती भूमिका रही है।

□□

इकाई 13

अगस्त, 1942 की महान् जन क्रान्ति

पिछली इकाइयों में हमने पढ़ा कि क्रान्तिकारियों के बलिदान तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन से देशवासियों में नव-चेतना का संचार हुआ। क्रान्तिकारी आन्दोलनों में तो युवा लोगों ने अपना जौहर दिखाया ही था, परन्तु कांग्रेस में भी युवा शक्ति ने नई करवट ली। पं. जवाहरलाल नेहरू व सुभाषचन्द्र बोस ने युवकों में स्वाधीनता की भावना भरने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। किसान तथा मजदूर आन्दोलन ने स्वतंत्रता संग्राम को नई फिजा (हवा) प्रदान की। कुल मिलाकर सम्पूर्ण राष्ट्र स्वाधीनता के लिए मतवाला बन चुका था।

इधर दूसरे महायुद्ध का श्रीगणेश हो चुका था। जर्मनी, जापान तथा इटली ने मित्र राष्ट्रों को करारी मात देना शुरू कर दिया था। यह हम देख चुके हैं कि सन् 1935 के शासन सुधारों के अनुसार प्रान्तों में जन प्रतिनिधि सरकारें काम कर रही थी, परन्तु उन सरकारों को पूछे व विश्वास में लिए बिना ही भारत को भी मित्र राष्ट्रों ने युद्ध में घसीट लिया। इस अपमान को इतना बड़ा देश कैसे सहन कर सकता था। अत: कांग्रेस कार्यसमिति के निर्णयानुसार कांग्रेस की प्रान्तीय सरकारों ने ब्रिटिश शासन की मनमानी के विरोध में त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेस में वामपक्ष का दबाव बराबर बढ़ता जा रहा था। वे अब विदेशी शासन की चकमेबाजी एवं दक्षिणपंथी कांग्रेस नेताओं की ढुल-मुल नीति को कतई सहन करने को तैयार नहीं थे। सुभाष बाबू ने त्रिपुरा कांग्रेस में स्पष्ट रूप से कहा था कि "समझौते की चेष्टा छोड़कर, विदेशी शासन से लड़ाई अनिवार्य समझ कर हमें स्पष्ट रूप से ब्रिटिश-सरकार को चुनौती दे डालना चाहिए कि यदि छह माह के भीतर भारत को स्वतंत्र नहीं किया गया तो स्वतंत्रता संग्राम पूरी ताकत से छेड़ दिया जाएगा।"

इधर कांग्रेस के दक्षिणी पंथी नेता भी ब्रिटिश शासन के फासिस्टवाद व नाजीवाद के विरुद्ध पूरी मदद करना चाहते थे, परन्तु उनके साथ शर्त थी, भारत की आजादी। यदि भारत स्वतंत्र कर दिया जाए तो भारत भी स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में मित्र राष्ट्रों की तरफ ही रहेगा और नाजीवाद व फासिस्टवाद से पूरी टक्कर

लेगा, परन्तु ब्रिटिश सरकार का रुख नकारात्मक रहा। भारत की स्वतंत्रता के बारे में उसने मुँह तक न खोला। इसी निष्क्रिय वातावरण में रामगढ़ कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसमें इस बात पर चर्चा हुई कि सरकार ने जो नीति अपनाई है, उसे देखते हुए संग्राम के अलावा कोई चारा नहीं है। सन् 1940 ई. का व्यक्तिगत सत्याग्रह इसी प्रसंग में हुआ, परन्तु यह बहुत ही कमजोर कदम था। इससे पहले पंजाब में अहरारों ने संयुक्त प्रान्त में यूथ लीग तथा बंगाल में फ़ारवर्ड ब्लाक ने क्रान्ति का बिगुल बजा दिया। इन संगठनों ने युद्ध विरोधी प्रचार कार्य से अपना काम शुरू किया। ब्रिटिश शासन द्वारा अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए भारतीय साधनों का उपयोग करने पर कड़ी आपत्ति प्रकट की और इस सम्बन्ध में ब्रिटेन की साम्राज्यवादी नीति की खुलकर निन्दा की जाने लगी। इसी संदर्भ में अनेक वामपंथी नेता गिरफ्तार हुए।

इस समय तक सुभाष बाबू कांग्रेस से अलग हो चुके थे। उन्होंने कांग्रेस की घुटना टेक नीति का विरोध किया और रामगढ़ में ही इस सम्बन्ध में नवयुवकों का एक सम्मेलन आयोजित किया। इसमें तय किया गया कि 6 अप्रेल से स्वतंत्रता संग्राम छेड़ दिया जाए। उत्तर भारत विशेषकर इलाहाबाद में 6 अप्रेल, 1941 को युद्ध विरोधी आन्दोलन चल पड़ा। इसमें यहाँ की यूथ लीग ने पूरी ताकत लगा दी। इस युद्ध विरोधी आन्दोलन के मुख्य नेता थे सर्वश्री केदार मालवीय, बसन्त बनर्जी, रूपनारायण पाण्डे, डॉक्टर रामभजन, अबरार अहमद, नलिनीकुमार मुकर्जी। बनारस में भी यह आन्दोलन चल पड़ा। अन्य स्थानों पर भी छुट-पुट प्रदर्शन हुए, परन्तु इलाहाबाद की यूथ लीग ने इस सम्बन्ध में कमाल कर दिखाया। कोतवाली, जेल, हाई कोर्ट पर स्वतंत्र भारत का तिरंगा झण्डा फहराया गया। क्रान्तिकारी लाल पर्चे बाँटे गए जिसमें स्पष्ट कर दिया कि "अब सत्याग्रह से काम नहीं चलेगा। सरकारी इमारतों पर कब्जा करो।" इलाहाबाद की यूथ लीग ने ही रेल की पटरी उखाड़ने तथा तार काटने का नारा दिया।

ब्रिटिश सरकार की असमझौतावादी नीति, वामपंथियों एवं प्रगतिशील दक्षिण पंथियों का दबाव इतना बढ़ता जा रहा था कि कांग्रेस को कुछ न कुछ करने के लिए विवश होना पड़ा। उधर युद्ध की स्थिति में भी काफी बिगाड़ आ चुका था। जापान ने 7 दिसम्बर, 1941 को मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और उसने देखते-देखते प्रशान्त महासागर पर अपना अधिकार कर लिया। दक्षिणी पूर्वी एशिया से उसने यूरोपीय साम्राज्यवाद को लगभग समाप्त कर 8 मार्च, 1942 को रंगून पर भी कब्जा कर लिया। अब ब्रिटिश शासन घबराने लगा कि यदि भारत में क्रान्ति हो गई तो दोहरी मार से उसकी पराजय निश्चित है। अत: उसने अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए एक नाटक रचा। इधर कांग्रेस के नेता भी नहीं

चाहते थे कि भारत फासिस्टवादी शक्तियों का शिकार बने। अतः कांग्रेस ने पुनः समझौते के लिए हाथ बढ़ाया और स्पष्ट कहा कि स्वतंत्र भारत फासिस्टवाद से उसी प्रकार मोर्चा लेगा, जिस प्रकार मित्र राष्ट्र ले रहे हैं। इसी पृष्ठभूमि में इंग्लैण्ड की सरकार ने समझौता वार्ता के लिए 11 मार्च, 1942 को क्रिप्स मिशन की घोषणा की।

क्रिप्स मिशन :

क्रिप्स इंग्लैण्ड के उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे। रूस को जर्मनी के विरुद्ध करने में इनका प्रमुख हाथ था। समाजवादी विचारों के कारण वे भारतीय नेताओं के भी अधिक निकट थे। विशेष कर पंडित जवाहरलाल नेहरू से उनके अच्छे सम्बन्ध थे। यही समझ कर भारतीय नेताओं से बातचीत करने इंग्लैण्ड की सरकार ने कैबिनेट मंत्री सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। 23 मार्च, 1942 को वे दिल्ली पहुँचे और भारतीय नेताओं से संपर्क किया। कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद व मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना साहब से लंबी वार्ताएँ कीं। दोनों को अपने प्रस्ताव की प्रतियाँ दीं।"

"युद्ध की समाप्ति के बाद भारत को औपनिवेशिक दर्जा दिया जाएगा। इतना ही नहीं भारत चाहे तो वह ब्रिटेन से सम्बन्ध विच्छेद कर स्वतंत्र भी रह सकता है, परन्तु इसके साथ ही प्रान्तों को भी यह पूर्ण अधिकार होगा कि वे यदि भारतीय संघ से अलग रहना चाहें तो अलग रह सकते हैं और वे ब्रिटेन से सीधी बातचीत कर उससे अपने सम्बन्धों का निर्धारण कर सकेंगे। युद्ध समाप्ति के बाद संविधान सभा गठित की जाएगी जिसमें प्रान्तीय धारा सभा के सदस्य अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजेंगे, परन्तु रियासतों के प्रतिनिधि सरकार नामजद करेगी। युद्धकाल में किसी प्रकार का संवैधानिक परिवर्तन नहीं होगा, लेकिन इस बीच मध्यवर्ती (इन्टरिम) सरकार अवश्य बनायी जा सकती है, जिसमें सुरक्षा मंत्री तो भारतीय होगा, परन्तु सेना पर ब्रिटिश सेनापति का प्रभुत्व रहेगा।"

प्रस्ताव का मूल्यांकन :

इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री विन्स्टन चर्चिल से स्वप्न में भी यह आशा नहीं की जा सकती कि वे भारत को स्वतंत्र करेंगे। क्रिप्स मिशन भेजने का एक मात्र उद्देश्य जापान के विरुद्ध भारतीय जनता की सहायता प्राप्त करना था। भारतीय नेताओं को भुलावे में डालना था ताकि वे जन आन्दोलन की घोषणा न कर सकें, क्योंकि ऐसा होने से इंग्लैण्ड दोहरे संकट में पड़े बिना नहीं रह सकता था। प्रस्ताव में जो स्वतंत्रता की बात कही गई थी, वह युद्ध के बाद की बात थी। अतः महात्मा गाँधी ने इस प्रस्ताव को "दिवालिया बैंक पर बाद की तारीख का चैक" कहकर

अस्वीकार कर दिया। इस अगली मिती की हुण्डी के सिकरने का कौन विश्वास कर सकता था। यों ब्रिटिश राजनीतिज्ञ चकमा व धोखा देने में माहिर हैं। वे कितनी ही बार अपने वचनों से मुकर चुके थे।

भारतीय शक्तियाँ तुरन्त स्वतंत्रता चाहती थी। इसे ब्रिटेन की सरकार कभी स्वीकार नहीं कर सकती थी। ऊपर से तो प्रस्ताव बड़ा आकर्षक लग रहा था, परन्तु भारतीय राष्ट्र को खण्ड-खण्ड करने के बीज इसमें बोये गए थे। इतने पर भी प्रस्ताव स्वीकृति के करीब पहुँच गया था, परन्तु मंत्रिमण्डल के गठन व देश की सुरक्षा के उत्तरदायित्व के प्रश्न पर बातचीत टूट गई। क्रिप्स साहब ने भी समझौते से अपने हाथ खींच लिए थे। वास्तव में ब्रिटिश सरकार का इरादा समझौता करने का नहीं था। प्रस्ताव का एक मात्र उद्देश्य भारत की राजनैतिक शक्ति की टोह लेना मात्र है कि जनता किस हद तक आन्दोलन के लिए तैयार है। इसका दूसरा उद्देश्य अल्पसंख्यकों का शुभचिन्तक बनकर उनमें साम्प्रदायिकता पैदा कर, उन्हें स्वतंत्रता संग्राम से अलग करना मात्र था।

9 अगस्त, 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन :

क्रिप्स मिशन की असफलता से भारतीय नेताओं को बड़ी वेदना हुई। ऐसी स्थिति में कांग्रेस का हाथ पर हाथ रखे बैठना कैसे संभव था ? उसके लिए कुछ न कुछ करना जरूरी हो गया, क्योंकि जन आकाँक्षाएँ काफी बढ़ चुकी थीं। कांग्रेस के नेता बड़े धर्म-संकट में पड़ गए। यह भी विचार किया जाने लगा कि क्या ब्रिटेन के शत्रुओं से हाथ मिलाकर भारत से विदेशी शासन को समाप्त किया जाए? परन्तु इसके खतरों से भी वे भलीभाँति परिचित थे। भारत भूमि पर युद्ध की विभीषिका को वे पसन्द नहीं करते थे। अत: ऐसी विकट परिस्थिति में महात्माजी को गम्भीर चिन्तन करना पड़ा। वे भी इस नतीजे पर तो पहुँच गए थे कि "सीधी अंगुली से घी नहीं निकल सकता" अब अहिंसात्मक आन्दोलन क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाने पर विचार करने लगे। ऐसा उनके हरिजन नवजीवन आदि पत्रों से स्पष्ट विदित होने लगा था। उनके निकट सहयोगी व शिष्य महादेव देसाई व मशरूवाला ने भी अहिंसा के क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाने पर जोर दिया। उनके अनुसार, "अब सरकारी नौकरियों के बहिष्कार व कर बन्दी आन्दोलन से ही काम नहीं चलेगा। हमें शत्रुओं के सभी कार्य क्षेत्र व संस्थानों को भंग करने को कार्य भी अहिंसा के दायरे में लाना पड़ेगा।"

स्वयं महात्मा गाँधी ने 19 जुलाई, 1942 को लिखा—"इस बार मैं माँगकर जेल जाने वाला नहीं हूँ। माँग कर जेल जाना बहुत नरम चीज होगी। अवश्य हमने अब तक माँगकर जेल जाने का ही व्यापार किया था। अब मेरा विचार आन्दोलन को जहाँ तक हो सके, अपनी चरम सीमा पर ले जाना है।" राजेन्द्र बाबू ने अपने अंग्रेजी

ग्रंथ 'महात्मा गाँधी तथा बिहार' में स्पष्ट लिखा है कि "उन दिनों गाँधीजी के लेख आग बरसा रहे थे, और सारा देश महान् घटनाओं की प्रतीक्षा कर रहा था।" डॉ. पट्टाभिसीतारमैया के अनुसार गाँधीजी अप्रेल, 1942 से निरन्तर इस बात पर जोर देने लगे थे कि "अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाएँ। इसी में भारत तथा इंग्लैण्ड का भला है। जहाँ तक वह अल्पसंख्यकों का मामला लेकर भारत की स्वतंत्रता के लिए रोड़ा अटका रहा है, यह ठीक नहीं है। यह हमारा घरेलू मामला है।" इन्हीं विचारों को मूर्त रूप देने के लिए 6 जुलाई, 1942 को वर्धा में कार्य समिति की बैठक बुलाई गई जो 14 जुलाई तक चली। इसमें 14 जुलाई को बारह सौ शब्दों का एक विस्तृत प्रस्ताव पारित किया गया, जिसका सारांश इस प्रकार है—

कार्य समिति का प्रस्ताव (14 जुलाई, 1942 ई.) :

"दिन पर दिन घटने वाली घटनाओं से तथा भारत की आम जनता जिस परिस्थिति से गुजर रही है, उसका अनुभव कांग्रेस जनों की इस राय को मजबूत बनाता है कि भारत में अंग्रेजी राज्य का शीघ्र अन्त हो जाना चाहिए। ......विश्वयुद्ध के प्रारम्भ से कांग्रेस ने अपने सहयोग का हाथ बढ़ाया और संगठन की कीमत पर भी युद्ध में बाधा न डालने का बराबर प्रयास करती रही, परन्तु ब्रिटेन की नीति से हमारी सहयोग की भावना चूर-चूर हो गई। क्रिप्स प्रस्ताव की असफलता से स्पष्ट हो गया कि भारत पर अंग्रेजी दासता का पंजा हटने वाला नहीं है। इस समय भी कांग्रेस ने राष्ट्रीय माँग के अनुकूल कम से कम अधिकार माँगे पेश की, पर यह सब व्यर्थ गया। क्रिप्स प्रस्ताव की असफलता से इंग्लैण्ड के प्रति विश्वास व सहानुभूति घटने लगी और जापानियों की विजय पर लोग संतोष की सांस लेने लगे, परन्तु अब भी समय है, यदि इंग्लैण्ड की सरकार भारत को स्वतंत्र करने की घोषणा कर दे, तो कांग्रेस जनता की ब्रिटिश विरोधी भावना को सद्भावना में बदल देगी। भारत की आजादी के बाद कांग्रेस को इस बात में कोई आपत्ति नहीं होगी कि मित्र राष्ट्र चीन की रक्षा के लिए जापान के विरुद्ध अपने सैनिक अड्डे भारत में रख सकते हैं। स्वतंत्र भारत भी लोकतंत्र की रक्षा के लिए हमेशा अग्रसर रहेगा, परन्तु कांग्रेस की स्वतंत्रता की माँग न मानी गई तो कांग्रेस ने जो 1920 से लेकर अब तक जितनी अहिंसात्मक शक्ति का संचय किया है, वह अनिच्छापूर्वक उसका उपयोग करने को बाध्य होगा।"

इस प्रस्ताव के साथ यह भी तय किया गया कि आजादी की लड़ाई छेड़ने का निर्णय बहुत महत्त्वपूर्ण है। अतः इस विषय पर अंतिम निर्णय लेने के लिए 7 अगस्त, 1942 को अखिल भारतीय महासमिति की एक बैठक बम्बई में आयोजित की जाए। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि राजाजी कार्य समिति के प्रस्ताव के समर्थक नहीं थे। उनकी इच्छा थी कि मुस्लिम लीग की माँगों को मंजूर करके

विदेशी शासन के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाया जाए जिसके बल पर अंग्रेजों को भारत को स्वतंत्र करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। राजाजी के सुझाव को नहीं माना गया। गाँधीजी की सलाह पर उन्होंने कार्य समिति से त्याग-पत्र दे दिया। अभी महा समिति का अधिवेशन होने में तीन सप्ताह शेष थे। इस बीच जनता क्या करे? यह प्रश्न भी स्वाभाविक रूप से उठा। गाँधीजी ने इस बीच रचनात्मक कार्य तथा चर्खे के उपयोग की सलाह दी।

अगस्त प्रस्ताव :

भारत की आजादी के लिए ब्रिटिश शासन को अंतिम चेतावनी देने के लिए 4 व 5 अगस्त को बम्बई में कांग्रेस कार्य समिति की बैठक हुई। इसमें 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' नामक ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित हुआ और इसे संपुष्टि के लिए 7 व 8 अगस्त, 1942 को बंबई के 'गोवालिया टैंक' मैदान में एक विशाल सुसज्जित भवन में दिन के दो बजकर 45 मिनट पर स्वतंत्रता के महान् प्रश्न पर अंतिम विचार करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इसमें महासमिति के 250 सदस्य और लगभग 10 हजार दर्शक थे। महात्मा गाँधी सभा भवन में पधारे और उपस्थित विशाल जन समूह ने तुमुल जयध्वनि से उनका स्वागत किया। सारा राष्ट्र इस समय नवजीवन से अनुप्राणित हो रहा था और वह बहुत ही उत्साह से बम्बई निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा था। वह इतिहास प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव इस प्रकार था—

"रूसी तथा चीनी मोर्चों पर बिगड़ती स्थिति को देखकर कांग्रेस कार्य समिति बड़ी दु:खी है। कमेटी रूसियों तथा चीनियों की उस वीरता की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकती जो अपनी आजादी की रक्षा के लिए प्रदर्शित कर रहे हैं। भारत में अंग्रेजी राज्य के समाप्त होने पर ही युद्ध का भविष्य निर्भर है। खतरे को देखते हुए भारत को स्वतंत्र कर देने और ब्रिटिश आधिपत्य को समाप्त कर देने की आवश्यकता है। स्थिति में सुधार तभी हो सकता है जब भविष्य के लिए गारन्टियाँ न देकर तुरन्त भारत छोड़ा जाए।"

भारत की स्वतंत्रता की घोषणा होने पर एक अस्थायी सरकार बना दी जाएगी और स्वतंत्र भारत मित्र राष्ट्रों का मित्र बन जाएगा। अस्थायी सरकार देश के मुख्य वर्गों तथा दलों के सहयोग से बनाई जाएगी। इस प्रकार यह एक मिली जुली सरकार बनेगी, जिसमें भारतीयों के समस्त महत्त्वपूर्ण दलों का प्रतिनिधित्व होगा। अस्थायी सरकार का मुख्य कर्त्तव्य होगा कि अपनी सशस्त्र शक्तियों द्वारा मित्र राष्ट्रों का सहयोग कर, भारत की रक्षा करना, आक्रमण का विरोध करना, खेतों, कारखानों तथा अन्य स्थानों पर काम करने वाले श्रमजीवियों का कल्याण

तथा उन्नति करना होगा जो निश्चय ही समस्त शक्ति व अधिकार के वास्तविक पात्र हैं।"

"अस्थायी सरकार एक विधान सम्मेलन की योजना बनाएगी और यह सम्मेलन एक ऐसा संविधान तैयार करेगा जो जनता के समस्त वर्गों को स्वीकार होगा। यह विधान संघात्मक होगा जिसके अन्तर्गत संघ में शामिल होने वाले प्रान्त को शासन के अधिकतर अधिकार प्राप्त होंगे। अवशिष्ट अधिकार भी इन प्रान्तों को प्राप्त होंगे।"

"स्वतंत्र भारत को अपनी जनता की सम्मिलित इच्छा और शक्ति के बल पर आक्रमण का कारगर ढंग से विरोध करने में समर्थ बना देगी। भारत की स्वतंत्रता विदेशी आधिपत्य के अन्य एशियाई राष्ट्रों की मुक्ति का प्रतीक एवं प्रारम्भ होगी। इस संकट काल में यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को प्रधानत: भारत की स्वाधीनता व रक्षा तक ही सीमित रहना चाहिए तथापि कमेटी का मत है कि संसार की भावी शांति, सुरक्षा एवं व्यवस्थित उन्नति के लिए स्वतंत्र राष्ट्रों का एक विश्व संघ बनाने क्री आवश्यकता है। विश्व संघ स्थापित हो जाने पर समस्त देशों में नि:शस्त्रीकरण हो सकेगा, राष्ट्रीय सेना, नौ सेना एवं वायु सेना की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी और विश्व सेना सभी जगह शांति रखेगी।"

"चीन तथा रूस स्वतंत्रता की वहुत ही मूल्यवान निधि है, परन्तु भारत का भी खतरा दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। विदेशी शासन प्रणाली के सामने सिर झुकाने से भारत का पतन होता जा रहा है और आत्मरक्षा तथा आक्रमण का विरोध करने की उसकी शक्ति घटती जा रही है। कार्य समिति ने मित्र राष्ट्रों से जो सच्ची अपील की थी उसका कोई उत्तर नहीं मिला। विदेशी क्षेत्रों में भारत के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार अनर्गल झूँठा प्रचार करने से बाज नहीं आ रही है। इस अंतिम क्षण में भी कमेटी फिर मित्र राष्ट्रों से अपील करना चाहती है कि वे भारत को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में स्वीकार करें।"

"इसलिए कमेटी भारत की स्वतंत्रता और स्वाधीनता के अविच्छेद अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक प्रणाली और अधिक से अधिक एक विस्तृत परिणाम पर एक विशाल संग्राम चालू करने की स्वीकृति देने का निश्चय करती है, जिससे देश गत 22 वर्षों के शांतिपूर्ण संग्राम में की गयी समस्त अहिंसात्मक शक्ति का प्रयोग कर सके।"

"यह संग्राम निश्चय ही गाँधीजी के नेतृत्व में होगा और कमेटी उनसे नेतृत्व करने और प्रस्तावित कार्यवाहियों में राष्ट्र का पथ प्रदर्शन करने का निवेदन करती है। लोगों को यह अवश्य याद रखना चाहिए कि इस आन्दोलन का आधार अहिंसा है। ऐसा समय आ सकता है कि जब हिदायत देना व हिदायतों को जनता

तक पहुँचाना सम्भव न होगा और जब कांग्रेस कमेटियाँ काम न कर सकेंगी। ऐसा होने पर आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रत्येक नर नारी को सामान्य हिदायतों की सीमा में रहते हुए अपने आप काम करना चाहिए।"

"स्वतंत्रता की कामना और उसके लिए प्रयत्न करने वाले प्रत्येक भारतीय को स्वयं अपना पथ प्रदर्शक बनकर अनेक रूप से अग्रसर हो जाना चाहिए। यह कार्य भारत की स्वतंत्रता व मुक्ति पर जाकर समाप्त होगा। अन्त में यह बताना है कि यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने स्वतंत्र भारत की भावी सरकार की रूपरेखा पर अपना विचार प्रकट कर दिया है तथापि कमेटी समस्त सम्बद्ध लोगों के लिए स्पष्ट कर देना चाहती है कि संग्राम का उद्देश्य कांग्रेस के लिए ही सत्ता प्राप्त करना नहीं है, वरन् जब सत्ता मिलेगी तो उस पर सारे भारतीयों का अधिकार होगा।"

महासमिति के इस प्रस्ताव के समर्थन में सबसे पहले मौलाना आजाद बोले। उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा कि 'भारत छोड़ो' के नारे का मतलब पूर्ण स्वतंत्रता से है। इसी माँग को वे ब्रिटेन व संयुक्त राष्ट्रों के सामने अंतिम रूप से पेश कर रहे हैं। यदि उनकी आँखें अंधी नहीं है और कान बहरे नहीं हैं तो वे इस माँग को स्वीकार करें।' मौलाना साहब के बाद पं. नेहरू ने इस ऐतिहासिक प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा—"जो कदम उठा रहे हैं, उससे पीछे हटने का कोई प्रश्न ही नहीं है। यदि हमारे विपक्षियों में सद्भावना हो तो सब मामला शांति से सुलझ जाएगा। कांग्रेस तूफ़ानी महासागर में कूद रही है, या तो वह भारत की स्वतंत्रता लेकर ही निकल आएगी या रसातल में चली जाएगी। यह लड़ाई आखिर दम तक ही लड़ी जाएगी।"

पं. नेहरू के वाद सरदार पटेल बोले और उन्होंने ब्रिटिश सरकार की भारतीय नीति पर कड़े आक्षेप करते हुए उन्हें भारत छोड़ देने के लिए ललकारा। पटेल के बाद महात्मा गाँधी शांत धीर मुद्रा में उठे और तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उन्होंने लोगों को 'करो या मरो' का मंत्र दिया।

करो या मरो मन्त्र :

महात्मा गाँधी ने लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—"यहाँ एक छोटा-सा मंत्र है जो आपको देता हूँ। इसे आप अपने हृदय पटल पर अंकित कर लें। इसे आप अपने प्रत्येक श्वास-प्रश्वास द्वारा प्रकट करिए। वह मंत्र यह है "हम करेंगे या मरेंगे" या तो हम भारत को स्वतंत्र करेंगे या इसके प्रयत्न में अपने जीवन की बलि दे देंगे। हम गुलामी को देखने के लिए जिन्दा नहीं रहेंगे। हर एक स्त्री-पुरुष को अपने जीवन की इस भावना के साथ जीना चाहिये कि वह स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जीता है और समय आने पर इस महान् उद्देश्य के लिए मरने को

तैयार है। अपनी अन्तारात्मा को साक्षी रख कर, ईश्वर के सामने यह प्रतिज्ञा ले लें कि आप तब तक चैन न लेंगे जब तक कि स्वतंत्रता की प्राप्ति न हो जाए और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए अपने प्राण-न्यौछावर करने को तैयार रहेंगे। जो मरना जानते हैं उन्होंने जीने की कला सीखी है। आज से तय करें कि आजादी लेनी है, नहीं लेनी है तो मरेंगे। आजादी कायरों के लिए नहीं है।"

प्रस्ताव का मूल्याँकन :

प्रस्ताव को गहराई से पढ़ने से विदित होता है कि इसमें विद्रोही भावना बिलकुल नहीं थी जैसा कि पण्डित नेहरू ने इस सम्बन्ध में कहा—"प्रस्ताव कोई काम का नहीं है, यह तो नियंत्रण है। हमने सहयोग का हाथ आगे बढ़ाया है। यह स्वतंत्र भारत के सहयोग का दावतनामा है, परन्तु यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के अतिरिक्त किसी शर्त पर हमारा सहयोग संभव नहीं है।" अत: यदि ब्रिटिश सरकार सूझ-बूझ व सद्भावना से काम लेती तो प्रस्ताव के अनुसार जन-विद्रोह कभी संभव नहीं था, परन्तु सरकार ने सहयोग के स्थान पर दमन का रास्ता अपनाया जिसके कारण ही जनता ने आततायी विदेशी को उसकी दमन नीति का मुँह तोड़ जवाब दिया। यदि महात्मा गाँधी भी गिरफ्तार न किए जाते तो इस प्रस्ताव के अनुसार कभी जन विद्रोह नहीं भड़क सकता था।

प्रस्ताव में जनता के लिए स्पष्ट कार्यक्रम नहीं था कि उसे आजादी की लड़ाई किस तरीके से लड़नी है? इसमें करो या मरो का नारा जरूर दिया गया था। इसको जनता ने अपने ढंग से अपनाया। ऐसे भी महात्मा गाँधी ने बार-बार यह कह दिया था कि इस बार हमें माँग कर जेल नहीं जाना है। अत: जनता ने इसका अर्थ अपनी शक्ति प्रदर्शन से ले लिया। महात्मा गाँधी के निकट सहयोगी महादेव देसाई, मशरूवाला एवं स्वयं डॉ. पट्टाभिसीतारमैया के वक्तव्यों से भी जनता ने समझ लिया था कि इस बार हमें सरकार को पंगु बनाने के लिए उनके साधनों पर प्रहार करना है। इसका परिणाम यह निकला कि यह आन्दोलन 1920 से लेकर 1941 तक के आन्दोलनों से भिन्न निकला। गाँधीजी सहित सभी गाँधीवादी नेता जेलों में थे, अत: स्वयं जनता ने ही जो समय व परिस्थिति के अनुसार ठीक जँचा वही कर डाला।

सरकार का दमन चक्र :

सरकार ने नेताओं से बातचीत करने के स्थान पर दमन नीति का सहारा लिया। आठ अगस्त को तो 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का प्रस्ताव पास हुआ था। नौ अगस्त की सुबह होते-होते सभी नेता पकड़ लिए गए। महात्मा गाँधी, महादेव देसाई व मीरा बहिन को बन्दी बनाकर आगा खाँ जेल भेजा गया। इसी दिन पंण्डित नेहरू, मौलाना आजाद सहित कांग्रेस कार्यकारिणी के सभी सदस्य पकड़ लिए गए थे। उन्हें अहमदनगर के किले में बन्द कर दिए गए। देश भर में

गिरफ्तारियों का ताँता लग गया। इतना ही नहीं कांग्रेस को भी गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। नेताओं के बंगलों के टेलीफोन काट दिए गए। अश्रुगैस, गोलियाँ, जेल में अमानुषिक यातनाएँ देने की नीति अपनाते हुए सरकार ने घोर दमन नीति का सहारा लिया।

जन क्रान्ति की ज्वालाएँ :

नौ अगस्त को ज्योंही नेताओं को बन्दी बनाने के समाचार फैले सारे देश में जबरदस्त क्रान्ति की आग भड़क उठी। यह आग बम्बई से शुरू होकर धाय-धाय करती हुई मद्रास, मध्य प्रान्त, बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल, आन्ध्र, आसाम व केरल तक पहुँच गई। शहरों के साथ देहातों में भी क्रान्ति का शंखनाद होने लगा। नेता जेल में थे अत: जनता ने स्वस्फूर्त उत्साह से ब्रिटिश राज के विनाश के लिए कमर कस ली। इस क्रान्ति में युवा शक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। ब्रिटिश सरकार को पंगु बनाने के लिए युवकों ने हर संभव उपाय काम में लिए। पुलिस थानों पर हमले, सरकारी इमारतों पर तिरंगा झण्डा फहराना, रेल, तार, टेलीफोन की व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट करना आम बात हो गई। प्रारम्भ में इन वीरात्मा देशभक्तों को इतना जोश था कि इन्होंने अपने पराक्रम से कितने ही स्थानों पर भारत देश की सरकारें कायम कर लीं। युवकों में अपने पूर्वजों चन्द्रशेखर, भगतसिंह, सूर्यसेन का जयघोष काम कर रहा था। इंकलाब जिन्दाबाद से समस्त वायु मण्डल गूँज उठा।

यदि युवा शक्ति का उपयोग योजनाबद्ध तरीके से सबल नेतृत्व में किया जाता तो आज भारत का इतिहास कुछ और ही होता। फिर अपने ढंग से उत्कट प्रेम की भावना से जो कुछ उन्होंने किया, वह भारतीय इतिहास में चिर-स्मरणीय रहेगा। संक्षेप में इन क्रान्तिकारियों की शौर्य गाथाओं का वर्णन इस प्रकार है।

बम्बई में तहलका :

अगस्त क्रान्ति का बिगुल बम्बई से बजा था। अत: ज्योंही अपने प्रिय नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार यहाँ पहुँचा, सारा शहर आग बबूला हो उठा। नौ अगस्त को 8 बजे प्रात: गवालिया मैदान में अपार भीड़ विरोध प्रदर्शन के लिए एकत्रित थी। पुलिस ने जनता को तितर-बितर करने के लिए अश्रुगैस का प्रयोग किया, परन्तु आजादी के दीवाने डटे रहे। लाठीचार्ज हुआ। इससे काम न चला तो आततायी शासन ने बर्बरता का परिचय दिया और नौ अगस्त को ही 15 स्थानों पर पुलिस ने गोलियाँ चलाई, परन्तु मतवाले क्रान्तिकारी यों हार मानने वाले नहीं थे, क्योंकि स्थान-स्थान पर यहाँ तक कि पेड़ों पर भी 'करो या मरो' का नारा लिखा हुआ था।

अब युवा शक्ति आगे बढ़ी। मोटर, ट्रामों पर हमले हुए। वे जलाये जाने लगे। अनेक गुप्त क्रांतिकारी संगठन बने। गश्ती पत्र निकलने लगे। गुप्त रेडियो स्टेशन बने। वहाँ से प्रसारण होने लगा। 8 दिन तक मजदूरों ने हड़ताल रखी। स्कूल कॉलेज महीनों तक बन्द रहे। सितम्बर तक तो क्रान्तिकारी बमों से सुसज्जित होने लगे। अक्टूबर, 1942 में अनेक स्थानों पर धमाके हुए। टाइम्स ऑफ इण्डिया का दफ्तर जलाया गया, क्योंकि यह अधगोरा अखबार भारत के खिलाफ लिखा करता था। अनेक सरकारी भवन नष्ट किए गए, स्टेशन चौकियाँ, पुलिसवालों के खड़े होने की गुमटियाँ नष्ट की गईं। कितने ही सरकारी अधिकारी मारे गए। अनेक घायल हुए। आन्दोलन 1943 के फरवरी मास तक बड़े जोश से बराबर चलता रहा।

संयुक्त प्रान्त में क्रान्ति :

नेताओं की गिरफ्तारी की खबर से यू.पी. का जन आक्रोश उबल पड़ा। अतः विद्यार्थी, मजदूर, किसान विदेशी-शासन को समाप्त करने के लिए घर से निकल पड़े। संयुक्त प्रान्त में क्रान्ति का सबसे उग्र रूप बलिया में देखने को मिला। वहाँ तो जनता ने विदेशी शासन को समाप्त कर अपना प्रजातंत्र ही कायम कर लिया।

बलिया का प्रजातंत्र :

श्री खेमचन्द 'सुमन' ने अपने 'कांग्रेस के इतिहास' नामक ग्रंथ में लिखा है— 'अगस्त आन्दोलन में बलिया का प्रमुख स्थान है। नौ अगस्त को यहाँ के सभी कार्यकर्त्ता बन्दी बना लिए गए। सरकारी दमन के बाद भी 10 से 12 अगस्त बलिया में पूर्ण हड़ताल रही। 12 अगम्त को सारे जिले में तार काटने व यातायात के सभी साधन नष्ट करने का काम शुरू हुआ। 14 अगस्त तक तो सारे बलिया जिले का सम्बन्ध पूरे प्रान्त से तोड़ डाला गया। 15 अगस्त को जिला कांग्रेस के दफ्तर पर कांग्रेस का फिर से अधिकार हो गया। यहाँ के मजिस्ट्रेट ने जनता के सामने आत्मसमर्पण कर दिया।

सोलह अगस्त को कांग्रेस कमेटी की आज्ञा से समस्त बाजार खुले। पुलिस ने सत्ता को जाते देख, गोली चला दी, परन्तु स्वातंत्र्य वीरों पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ। 19 अगस्त को बलिया में ब्रिटिश शासन समाप्त कर दिया गया। सभी कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को जेलों से छोड़ दिया गया। 20 अगस्त को चित्तू पाण्डे की अध्यक्षता में नवीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। इस सरकार के अधीन गाँवों में ग्राम पंचायतें स्वतंत्र रूप से काम करने लगीं। 22 अगस्त तक बलिया में जनता की सरकार चलती रही। 23 अगस्त की रात को गोरी पल्टन ने

बलिया में प्रवेश किया, लूट खसोट व मारपीट का ताण्डव नृत्य होने लगा। सेना से मुठभेड़ करते हुए 46 स्वातंत्र्य वीर काम आए। एक सौ पाँच मकान फूँक दिए गए। लगभग 38 लाख रुपये की हानि समस्त जिले को उठानी पड़ी।''

मनमथनाथ गुप्त ने बलिया की क्रान्ति पर अपनी पुस्तक 'भारत में सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा भाग दो' में विशद प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—''बलिया प्रजातंत्र बना और कांग्रेस कमेटी का दफ्तर उसका केन्द्र बना। पण्डित चीतू पाण्डे पहले जिलाधीश कहलाये। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस समय तक जिले के दस थानों में से सात पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया था। शहर में ढिंढोरा पीट कर यह बता दिया गया कि अब बलिया में कांग्रेसी राज्य है।''

सरकारी दमन : सेना ने बलिया में प्रवेश करते हुए घोर दमन चक्र चलाया। सबसे पहले नौजवानों को पकड़ा गया। इन्हें ठोकरों से मारा गया, जेलों में अनेक कष्ट दिए गए। उमाशंकर दीक्षित, सूरजप्रसाद, हीरा पन्सारी, विश्वनाथ, बच्चालाल व राजेन्द्रलाल बेरहमी से पीटे गए। बलिया के बाद अन्य गाँवों में भी सेना ने कहर ढा दिया। सुखपुरा गाँव के महन्त को इसलिए पीटा गया कि उसने बलिया प्रजातंत्र सरकार को 10 हजार रुपये चन्दा दिया था। बासडी में जहाँ सरकारी खजाना लूटा गया था, वहाँ पर अंग्रेज सेनापति नेदरशील ने अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलवाई। रामकृष्णसिंह व बागेश्वरसिंह को इतना पीटा गया कि वे शहीद हो गए। बलिया के तीस गाँवों में आग लगाई गई। रेवती गाँव का सारा बाजार लूट लिया गया। जेल में बन्द क्रान्तिकारियों पर अत्याचारों का वर्णन यहाँ लिखते भी नहीं बनता है। थोड़े में गोरी सरकार के काले कारनामों की यह पराकाष्ठा थी।

देवनाथ उपाध्याय ने 64 ऐसे व्यक्तियों की सूची तैयार की है जो बलिया क्रांति में शहीद हुए। वास्तव में इनका बलिदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अमिट रहेगा।

गाजीपुर में क्रान्ति :

यहाँ भी बलिया की भाँति 19, 20, 21 अगस्त को प्रजातंत्र शासन स्थापित हुआ। नेताओं की गिरफ्तारी की खबर यहाँ पहुँचते ही रेल की लाइन काटने व खेमे उखाड़ने का काम शुरू हो गया। स्टेशन फूँके जाने लगे, डाकखाने लूटे गए, रेल के इंजिन चूर चूर किए गए। नन्दगंज स्टेशन पर गोली चली। 80 आदमी शहीद हुए। अन्य स्थानों पर भी गोलियाँ चलीं। गाजीपुर क्रान्ति में विद्यार्थियों का योगदान सबसे अधिक रहा। विद्यार्थियों ने सादात थाने पर कब्जा कर वहाँ तिरंगा झण्डा फहराया। शेरपुर गाँव में भी झण्डा फहराने का प्रयास करते हुए एक डॉक्टर शहीद हुए। सरकारी दमन के कम से कम 75 गाँव शिकार हुए। 167 व्यक्ति शहीद हुए। घायलों की तो कोई गिनती ही नहीं।

बनारस में क्रान्ति :

यहाँ क्रान्ति का श्रीगणेश विद्यार्थियों ने किया। हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों ने एक जुलूस निकाला और कड़े विरोध के बाद भी फौजदारी व दीवानी अदालत पर तिरंगा झण्डा फहरा दिया। यहाँ भी टेलीफोन व तार काटे गए और उखाड़े गए। डाकखाने, रेल गोदाम, पुलिस चौकियाँ लूटी गई और इन पर तिरंगा झण्डा फहरा दिया गया। सैयद बाजार में भी क्रान्तिकारियों का पलड़ा भारी रहा।

इस प्रकार बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों, छात्राओं तथा अध्यापकों का बहुत बड़ा योगदान रहा। अत: विश्वविद्यालय पर सेना ने अधिकार कर लिया और छात्रावास खाली करवा लिए। फिर यहाँ के विद्यार्थी व अध्यापक प्रान्त भर में फैल कर क्रान्ति के शोले बरसाने लगे।

इलाहाबाद में क्रान्ति :

इलाहाबाद में 10 अगस्त को पुरुषोत्तमदास तथा मोहम्मद अली ने पार्क में नागरिकों ने सभा की। 11 अगस्त को छात्रों ने एक विशाल जुलूस का आयोजन किया। पुलिस ने लाठी चार्ज किया। दूसरे दिन 12 अगस्त को जुलूस निकला। इसका नेतृत्व लड़कियाँ कर रही थीं। गोलियाँ चलती रही, परन्तु जुलूस आगे बढ़ता ही गया। लड़कियों ने भारी हिम्मत से काम लिया। उन्होंने घुड़सवारों के घोड़ों की लगाम तक पकड़ने का साहस किया।

सरकार ने अपने दमन चक्र में कोई कमी नहीं रखी। खूब गोलियाँ चलीं। बैजन नामक व्यक्ति को इसलिए गोली मारी कि वे जनता को जोश दिला रहे थे। दौलतराम उर्फ बंगाली सोनार गोली से मारा गया। अहियापुर के राजा पंडित को गोली लगी। कट्टू अहीर तथा यासीन को गोली लगी। लाल पथधारसिंह नामक विद्यार्थी 12 अगस्त को गोली के शिकार हुए। गोली खाने वालों में 14 वर्षीय छात्र रमेश मालवीय का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बलूची सैनिकों के हाथों वे शहीद हुए।

सरकार के इस नृशंस अत्याचार से क्षुब्ध हो इलाहाबाद के पुराने डिप्टी कलेक्टर अमीर रजा ने त्यागपत्र दे दिया और कांग्रेस में शामिल हो गए। क्रान्तिकारियों ने हवाई अड्डे तथा रेलवे स्टेशनों पर भी हमले किए। आन्दोलन इतना तेज चला कि वहाँ विदेशी शासन कुछ दिनों के लिए लुप्त ही हो गया, परन्तु बाद में सेना ने भारी अत्याचार किए। कितने ही कांग्रेस जनों के मकानों को मिट्टी में मिला दिया गया। गाँधी टोपी विशेष कोप की भाजन बनी।

आजमगढ़ में क्रान्ति :

आजमगढ़ शहर तथा देहात में आन्दोलन बहुत ही क्रान्तिकारी ढंग से हुआ। लगभग 70 हजार का भारी जन समूह 'मधुवन थाने' के सामने पहुँचा। क्रान्ति के नेताओं ने अधिकारियों को समझाया कि वे आत्मसमर्पण कर दें और थाने पर झण्डा फहराने दें। अधिकारियों ने ऐसा करने के लिए मना कर दिया। फिर क्या था? भीड़ आगे बढ़ी और उस पर मशीनगनों से गोलियाँ बरसने लगी। 34 क्रान्ति वीर देखते-देखते शहीद हो गए। बाद में घायलों में से भी अनेक वीर गति को प्राप्त किए। प्रमुख क्रान्तिकारी मनमथनाथ गुप्त के अनुसार 'कम से कम 75 व्यक्ति शहीद हुए।'

महाराजागंज थाने पर तिरंगा झण्डा चढ़ा। तरवा थाने पर कब्जा हुआ और वहाँ भी तिरंगा फहराया गया। डाकखानों पर हमले हुए। एक अंग्रेज जमींदार श्रीमती स्टारमर के बंगले में आग लगा दी गई, क्योंकि श्रीमती स्टारमर की जमींदारी उसके पूर्वजों को 1857 की क्रान्ति को कुचलने के योगदान में मिली थी, परन्तु बाद में सेना ने क्रान्तिकारियों तथा उनके स्त्रियों पर भीषण अत्याचार किए। कांग्रेसी कार्यकर्त्ता महादेवसिंह के मकान को नष्ट कर दिया गया। उन्हें पेड़ पर लटकाया गया।

गोरखपुर क्रान्ति तथा गोरखपुर षड्यंत्र अभियोग :

यद्यपि यहाँ पर अगस्त क्रान्ति देर से हुई, परन्तु बाद में अनेक थानों पर कब्जा हुआ और उन पर तिरंगे झण्डे फहराए गए। गोरखपुर की महत्त्वपूर्ण घटना गोरखपुर षड्यंत्र है। सहजनवा ट्रेन डकैती के सम्बन्ध में शिब्बनलाल सक्सेना पर संदेह किया गया। यद्यपि वे जेल में थे, परन्तु उन पर यह अभियोग चलाया गया कि वे जेल से भाग कर क्रान्ति को बल देना चाहते हैं। पुलिस ने इस सम्बन्ध में राणा प्रतापसिंह नामक व्यक्ति को पकड़ा। प्रतापसिंह ने गोरखुपर के बाहर धरमपुर गाँव के बारे में पुलिस को जानकारी दी। वहाँ छापा मारा गया। एक मकान में 13 क्रान्तिकारी पकड़े गए। अन्य स्थानों पर भी तलाशी हुई अनेक विस्फोटक पदार्थ पकड़े गए। कुल मिलाकर 20 लोगों पर गोरखपुर षड्यंत्र अभियोग लगाया गया। सत्र न्यायाधीश मिस्टर आर.बी.जेम्स ने शिब्बनलाल सक्सेना को 10 वर्ष की, सूर्यनाथ पाण्डे तथा रामजी वर्मा को सात-सात साल की, कैलाशपति गुप्त व अन्य पाँच को पाँच-पाँच साल की सजा दी। इस सम्बन्ध में मिस्टर जेम्स की टिप्पणी उल्लेखनीय है। उसने अपने फैसले में लिखा है कि "अभियुक्तों द्वारा अहिंसा की आड़ लिए जाने पर भी कांग्रेस के नेताओं ने जो खुला विद्रोह करो या मरो का नारा दिया, उसी में तोड़फोड़ तथा हिंसा अंतर्निहित थी।"

जौनपुर में क्रान्ति व क्रान्तिकारी नेता राजदेव सिंह :

आजादी की लड़ाई में जौनपुर का सर्वदा से ही विशेष स्थान रहा है। यहाँ पर वामपंथी कांग्रेस विचारधारा का जोर था। इस विचारधारा को शक्ति प्रदान करने वाले कॉमरेड राजदेव सिंह, सूर्यनाथ उपाध्याय तथा राजनारायण थे। जब देश में 'करो या मरो' के नारे के साथ अगस्त क्रन्ति का दौरदौरा शुरू हुआ तो जौनपुर के युवकों को यह क्रान्ति बहुत ही मन भाई और बहुत ही उत्साह से इसमें कूद पड़े। किसान हाई स्कूल प्रतापगंज समस्त जिले की क्रान्ति का केन्द्र बन गया। इस स्कूल में क्रान्ति का कार्यक्रम बना और क्रान्तिकारी सेना का गठन हुआ। सूर्यनाथ उपाध्याय इस क्रान्तिकारी सेना के सेनापति बनाए गए। उनके नेतृत्व व निर्देश से समस्त जिले में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। 10 अगस्त को विद्यार्थियों ने शहर में पूरी तरह हड़ताल रखी। कचहरी तथा सरकारी इमारतों पर गोलियाँ का मुकाबला करके भी बहुत ही शान से तिरंगा फहरा दिया गया। सरकारी गल्ले के गोदाम लूट लिए गए। थानों पर हमले हुए। मछली शहर बदलापुर तथा बख्शा के थानों पर तिरंगा झण्डा फहराया गया। सबसे महत्त्वपूर्ण हमला सुजानगढ़ थाने पर राजनारायण मिश्र तथा शिरोमणी दुबे के नेतृत्व में हुआ। वहाँ पर थाने की तमाम राइफलें छीन ली गई और थाने पर अधिकार कर लिया गया।

लगभग एक सप्ताह तक जौनपुर क्रान्तिकारियों के अधिकार में रहा। पुलिस तथा सेना बिलकुल स्तब्ध थी। इसके बाद बाहर से और सेना आ जाने से जिले में दमन शुरू हुआ। गिरफ्तारियों का ताँता लग गया। मकान जलाये गए। 18 अगस्त को 'किसान हाई स्कूल' को जला कर राख कर दिया गया, परन्तु अनेक क्रान्तिकारी पकड़ में नहीं आए और वे फरार हो गए। फरार क्रान्तिकारी जनता को दमन का सामना करने के लिए तैयार करने के साथ-साथ गद्दारों को भी अच्छा सबक सिखाने लगे। बँधवा के स्थान पर कांग्रेस के एक जत्थे से पुलिस की मुठभेड़ हो गई इसमें एक सी.आई.डी. इन्स्पैक्टर तथा एक सिपाही मारा गया। अनेक गद्दारों की अच्छी मरम्मत की गई। कुल्हाना मऊ नामक स्थान पर सरकारी डाक लूटी गई। जनता के सहयोग से अनेक नेता बन्दी बनाए गए। इनमें राम शिरोमणी दुबे, रामनारायण मिश्र तथा नन्द किशोर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जेल में क्रान्तिकारियों को घोर यातनाएँ दी गईं। बँधवा की डाक लूट काण्ड में राजनारायण मिश्र, राम शिरोमणी दुबे, गौरीशंकर व गिरजाशंकर सिंह तथा अन्य सात व्यक्तियों को फाँसी हुई।

जौनपुर क्रान्ति की विशेषता यह रही कि यह अन्य जिलों से अधिक दिन तक टिकी रही। अन्य स्थानों पर क्रान्ति का ज्वार दो सप्ताह रहा, परन्तु यहाँ के

फरार क्रान्तिकारी वर्षों तक क्रान्ति की मशाल जलाते रहे और पकड़ में नहीं आये। मास्टर जगन्नाथसिंह तो 1946 तक पकड़ में नहीं आये थे।

कानपुर तथा आगरा में क्रान्ति :

संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी जिलों में क्रान्ति का जोर अपेक्षाकृत कम रहा। कानपुर तथा आगरा में विद्यार्थियों ने लगभग 45 दिन तक हड़ताल रखी। विद्यार्थियों ने ही रेल की पटरियाँ उखाड़ी व डाकघर लूटे। कांग्रेस के नेता तो पहले ही बन्दी बनाए जा चुके थे। अतः जो कुछ हुआ वह विद्यार्थियों ने ही किया।

आगरा में कुछ थाने भी जलाये गए। इस आगरा काण्ड में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीराम शर्मा का हाथ रहा। इनके नेतृत्व में कुछ उच्च शिक्षित नवयुवकों ने अच्छा काम किया। इन सब पर मुकदमा भी चला, परन्तु सबूत के अभाव में सब छोड़ दिए गए, परन्तु बाद में इन्हें नजरबन्द रखा गया। चन्दौला स्टेशन पर आक्रमण के समय पाँच क्रान्तिकारी शहीद हुए और 34 घायल हुए।

मथुरा, वृन्दावन, अलीगढ़, बिजनौर :

इन सभी स्थानों पर जुलूस निकाले। नेता गिरफ्तार हुए, तार, टेलीफोन काटे गए। रेल की पटरियाँ उखाड़ी गईं। वृन्दावन में जुलूस पर गोली चली जिसमें कई लोग घायल हुए। अलीगढ़ तथा अतरौली में गिरफ्तारियाँ हुईं। यहाँ पर भी अनेक गोलियाँ चली और अनेक घायल हुए। बिजनौर में तोड़फोड़ के कार्य अधिक हुए। 6 व्यक्ति पुलिस की गोली से शहीद हुए। सरकारी इमारतों पर झण्डा फहराया गया।

लखनऊ, गढ़वाल, अल्मोडा :

जहाँ प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में लखनऊ का कार्य सर्वोपरि रहा, वहाँ अगस्त क्रान्ति में इसका कार्य बहुत ही धीमा रहा। यहाँ पर कान्य कुब्ज विद्यालय का अच्छा सहयोग रहा। यहाँ पर अन्य स्थानों की तरह समानान्तर सरकार तो कायम नहीं की जा सकी, परन्तु तोड़-फोड़ के कार्य में यह शहर पीछे नहीं रहा। शिव कुमार द्विवेदी तथा मुलीश के नेतृत्व में छात्रों ने आलम बाग पर धावा बोला। द्विवेदी परिवार के योगदान की पण्डित नेहरू ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

गढ़वाल स्वराज्य अदालतें तो अवश्य खुलीं, परन्तु समानान्तर सरकार कायम नहीं हो सकी। यहाँ पर एक क्रान्तिकारी सेना का संगठन भी हुआ जिसमें अधिकतर बालक ही थे। यहाँ के अधिकांश कांग्रेसी नेता फरार रहे। सरकार ने इनके घरों में लूट मचा दी।

अल्मोड़ा जिले में पं. मदन मोहन उपाध्याय के नेतृत्व में आन्दोलन संगठित रूप से चला। उपाध्याय यद्यपि 11 अगस्त को बन्दी बनाए गए, परन्तु वे फरार हो गए। देहात में सरकारी अधिकारियों के साथ असहयोग इस क्रान्ति की महत्त्वपूर्ण घटना है। किसी भी सरकारी अफसर को खाने पीने की कोई चांज नहीं दी जाती थी। सरयू तट पर बागेश्वर कस्बे में तो कई माह तक ब्रिटिश सरकार का कोई चिह्न ही दिखाई नहीं दिया।

अन्य जिलों में हड़तालें, जुलूस आदि के कार्यक्रम तो हुए, परन्तु तोड़-फोड़ विशेष नहीं हुई। यह आश्चर्य ही है कि मेरठ, बरेली में जहाँ प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का जन्म हुआ वहाँ अगस्त क्रान्ति साधारण रही।

संयुक्त प्रान्त में क्रान्ति की ज्वाला भड़काने में सबसे सराहनीय योगदान राजनारायण मिश्र का रहा। उन्होंने मास्टर दा चटगाँव क्रान्ति के संचालक की भाँति समस्त जौनपुर जिले में सशस्त्र क्रान्ति का बिगुल बजा दिया। उनके परिचय बिना तो हमारा स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास अधूरा ही रहेगा।

शहीद राजनारायण मिश्र :

आपका जन्म लखीमपुर में अपने पिता बलदेव मिश्र के घर हुआ। आपकी माता जब आप दो वर्ष के थे तब ही चल बसी। आपका लालन-पालन बहिन रमा देवी के हाथों हुआ। रामप्रसाद बिस्मिल की भाँति आपका मन पढ़ने में कम लगता था और अपना अधिकांश समय मारपीट में बिताते थे। इनके जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव भगतसिंह के बलिदान का पड़ा। तब से आपने भी इसी तरह से मरने का निश्चय कर लिया जिसे आपने पूरा कर बताया।

छात्र जीवन से आपके हृदय में क्रान्तिकारी भावना घर कर गई थी। आपने अपने अध्यापकों के आदेश पर सरकार की प्रशंसा के गीत गाने से मना कर दिया। फलस्वरूप आपको यह विद्यालय छोड़ना पड़ा। इसके बाद तो आप पूरी तरह से क्रान्तिकारी कार्यों में जुट गए और एक नवयुवक संघ की स्थापना की। इस संघ का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकना था। आपके बड़े भाई बाबूराम मिश्र भी अपने जिले के प्रमुख नेता थे। अतः उनकी देश-प्रेम की भावना ने भी आपको क्रान्ति के क्षेत्र में सुदृढ़ बनाया। राजद्रोहात्मक भाषण देने का आरोप लगाकर आपको एक वर्ष की सजा हुई। सजा काटकर आते ही एक ओर तो आपके पिताश्री का स्वर्गवास हो गया, दूसरी ओर अगस्त क्रान्ति चल पड़ी। राज नारायणजी तो क्रान्ति के भूखे थे ही, अतः आपने क्रान्ति में भाग लेने की पूरी तैयारी करना शुरू कर दिया। आपने अपने जोशीले भाषणों से नवयुवकों में उत्साह का संचार किया। युवकों ने प्रतिज्ञा की कि अपने जिले से विदेशी शासन का अन्त

करके रहेंगे। लगभग तीन सौ युवकों ने मार्च पास्ट किया। पहले गद्दार जमींदारों से बन्दूकें छीन कर तहसील पर अधिकार करने की योजना बनी। बात की बात में पास पड़ौस के जमींदारों की बन्दूकें छीन ली गईं। एक जमींदार के अड़ जाने पर उसे गोली से उड़ा दिया गया।

जिलेदार की मृत्यु से ब्रिटिश सरकार बौखला उठी और तीन दिन बाद गाँव पर धावा बोल दिया। क्रान्तिकारियों पर भीषण अत्याचार हुए। अनेक लोग गाँव छोड़कर भाग गए। राजनारायण भी फरार हो गए, परन्तु कुछ ही महीने बाद लखनऊ में पकड़ लिए गए। फिर क्या था? आततायियों की बन आई। मुकदमा चला और 22 जून को फाँसी की सजा सुना दी गई।

नौ दिसम्बर, 1944 को भारत माता का यह सच्चा सपूत मातृभूमि की बन्धन मुक्ति हेतु हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़कर अपना नाम अमर कर गया। अपने परिवार के लोगों को विदा करते हुए जो वाक्य उन्होंने कहे वे स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं। उन्होंने कहा—"हम देश के लिए मर रहे हैं, फिर पैदा होंगे व मरेंगे।" 24 वर्षीय इस वीर के मुख मण्डल पर फाँसी से पूर्व अपूर्व प्रभा दमक रही थी। ऐसे नर केसरियों के बलिदान से ही हमें आजादी मिली है।

बिहार में क्रान्ति :

अगस्त क्रान्ति में बिहार आगे की कतार में रहा है इसका श्रेय बिहार के ही नहीं समस्त भारत के पूज्य महान् नेता राजेन्द्रप्रसाद के संगठन कौशल को दिया जाना चाहिए। यहाँ हिन्दू मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर 'करो या मरो' के नारे के साथ क्रान्ति में कूद पड़े। यहाँ के मजदूरों ने भी इस क्रान्ति में कमाल कर दिखाया। यहाँ का आन्दोलन मूलरूप से कांग्रेस ने नहीं, वरन् जनता ने स्वयं चलाया। जिस प्रकार अहिंसात्मक क्रान्ति में बिहार सदा अग्रणी रहा, उसी प्रकार अगस्त क्रान्ति में भी बिहार किसी से पीछे नहीं रहा। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ 'महात्मा गाँधी व बिहार' में इस क्रान्ति का वर्णन इस प्रकार किया है—"यातायात के साधनों को नष्ट करना इस आन्दोलन का खास लक्षण था। कई महिनों तक बिहार में गाड़ियों का आना जाना बन्द रहा। तार घर व डाकखाने तो प्राय: समाप्त ही हो गए। ब्रिटिश राज केवल जिला मुख्यालयों व नगरों तक ही सीमित रहा। देहातों में जनता का राज चलने लगा, अनेक पुलिस थानों पर जनता का अधिकार था।"

पटना में क्रान्ति :

नेताओं के बन्दी बनाए जाने के समाचार पटना पहुँचते ही विद्यार्थियों ने गुलामी के रस्से तोड़ने शुरू कर दिए। 10 अगस्त को सभी शिक्षण संस्थाओं में

हड़ताल हो गई। एक विशाल जुलूस निकाला गया। सरकार ने जुलूस को भंग करने के लिए घोड़े दौड़ाए, परन्तु जनता का जोश ठण्डा नहीं हुआ। 11 अगस्त को नवयुवकों का जुलूस पटना सचिवालय पहुँचा। असेम्बली भवन पर तिरंगा झण्डा चढ़ा दिया गया। सरकारी अधिकारियों की मानो नीचे से धरती खिसक गई। उन्होंने आवेश में आकर गोली चलाने का आदेश दे दिया। देखते ही देखते आधे दर्जन से अधिक लोग शहीद हो गए। एक बालक भी शहीद हुआ। घायलों की तो कोई गिनती ही नहीं थी, न उनकी चिकित्सा का कोई प्रबन्ध था। दुःख की बात तो यह रही कि इस गोली काण्ड में विषैली गोलियाँ का प्रयोग किया गया।

ग्यारह अगस्त के इस गोली काण्ड ने क्रान्ति भड़काने में आग में घी का काम किया। जनता ने भी ईंट का जवाब पत्थर से देने की ठान ली। पटना स्टेशन पर धावा बोला गया। तार टेलीफोन सभी काट दिए गए। सारे पटना शहर पर 11, 12 व 13 अगस्त को जनता का राज्य हो गया। देहातों में क्रान्ति की आग फैल गई। हिसा व बिहार शरीफ की सरकारी इमारतों पर तिरंगे झण्डे फहराने लगे। सरकार ने गोली चलाई। इसमें सत्रह वीर शहीद हुए।

चम्पारन व शाहाबाद :

चम्पारन जिले में क्रान्ति 10 व 11 अगस्त को जुलूस से शुरू हुई और तुरन्त ही तोड़-फोड़ का काम शुरू हो गया। देहातों के थाने के कर्मचारी थाने छोड़कर भाग गए और जान बचाकर मुख्यालय पहुँचे। गोविन्दगंज थाने में ऋषिजी, सहदेव प्रसाद, जगन्नाथ प्रसाद, ब्रह्मानन्द तिवारी ने जन सहयोग से एक समानान्तर सरकार बना ली थी। बेतिया में भी आन्दोलन जोर से भड़का। वहाँ गोली चली। आठ वीर शहीद हुए।

शाहाबाद में 10 अगस्त की सायंकाल को रमना मैदान में एक विशाल सभा हुई। पुलिस दल के हस्तक्षेप करने पर उसे बुरी तरह से पीटा गया। सरकारी इमारतों पर 11 अगस्त को बड़ी शान से तिरंगे झण्डे फहराए गए। तार टेलीफोन काटे गए। इस जिले की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना 'डुमरॉव' की है। 16 अगस्त को लगभग पाँच हजार की भीड़ झण्डा फहराने के लिए आगे बढ़ी। कपिल मुनि नामक नौजवान जन समूह का नेतृत्व कर रहे थे। थानेदार के चेतावनी देने पर भी कपिल मुनि आगे बढ़ते ही गए। इस पर गोलियाँ चलने लगी। कपिल मुनि शहीद हो गए। इसके बाद रामदास लौहार आगे बढ़ा तो वह शहीद हो गया। इसके बाद 60 वर्षीय एक युवक आगे बढ़ा, उसे भी गोली मार दी गई। फिर गोपालराम 19 वर्षीय युवक आगे बढ़ा, वह भी गोली का शिकार हुआ। इस प्रकार के सतत् बलिदान अगस्त क्रान्ति की विशेष घटना के रूप में सदा स्मरणीय रहेंगे।

गया, भागलपुर, पूर्णिया व सार जिला :

गया में क्रान्ति अपेक्षाकृत देर से शुरू हुई, लेकिन 13 अगस्त से तो क्रान्ति ने अपना भीषण रूप धारण कर लिया। कई डाकघर फूँक दिए गए थानों पर कब्जे हुए। कुरक्षा थाने पर अधिकार करते समय श्याम बिहारीलाल नामक कांग्रेसी शहीद हुए। मुसलमानों ने क्रान्ति में खुलकर भाग लिया।

इसी तरह भागलपुर में 10 अगस्त को ही कचहरी, कलेक्टरी तथा हैड पोस्ट ऑफिस पर धावा बोला गया और झण्डा फहराया गया। देहातों में 13 अगस्त से क्रान्ति की लपटें जोरों से फैली। सौदाबाद पुलिस थाने पर जनता ने धावा बोला। सेना आ जाने पर अनेक क्रान्तिकारियों के शस्त्र छीन लिए गए। भागलपुर जिले में क्रान्ति का शंख फूंकने में परशुराम बाबू के दल की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। यह दल पुलिस वालों पर हमला कर उनके हथियार छीनता था। पुलिस वाले परशुराम बाबू के दल के नाम से थर-थर काँपते थे। बाद में इस दल के मुख्य कार्यकर्त्ता महेन्द्र गोप पकड़े गए और राजेन्द्र बाबू के खूब विरोध के बाद भी महेन्द्र गोप को फाँसी दी गई।

मुजफ्फर जिले में करीब-करीब सभी सरकारी इमारतों पर तिरंगे झण्डे लगा दिए गए। 24 अगस्त को आन्दोलन ने भीषण रूप धारण कर लिया। एकत्रित जनता ने बाजपट्टी में एस.डी.ओ. हरदीपसिंह, एक थानेदार व दो सिपाहियों को मार डाला। इस पर सेना ने गाँव को घेर लिया। भीषण अत्याचार हुए। आसपास के गाँवों को भी खूब लूटा गया। बाजपट्टी के सेठ के लड़के को मार दिया गया। उसके घर को लूटा गया।

इसके बाद मीनापुर के थाने पर हमला हुआ। इस पर थानेदार ने गोली चलाई। एक क्रान्ति वीर शहीद हुआ। अनेक घायल हुए। इस पर जनता आपे से बाहर हो गई और थानेदार को पकड़ कर वहीं थाने के फर्नीचर से चिता बना कर जला दिया।

पूर्णिया जिले में 13 अगस्त को कटिहार थाने पर झण्डारोहण के लिए धावा बोला। गोलियाँ चलीं, आठ मारे गए व कई घायल हुए। ध्रुव नामक तेरह वर्षीय बालक शहीद हुआ। इस गोली काण्ड से जन आक्रोश बढ़ गया और आमतौर पर कई थानों व डाकखानों पर हमले शुरू हुए। एक थानेदार व तीन सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया गया। सरकार ने अपना दमन चक्र शुरू किया और गोलियाँ मे 50 क्रान्तिवीर शहीद हुए। सैकड़ों परिवारों को लूटा गया। दो खादी भण्डार भी पुलिस ने जला दिए। इस आन्दोलन में मुसलमान भाइयों का भी सक्रिय सहयोग रहा।

अन्य जिलों की तरह झण्डारोहण अभियान मार जिले में काफी तेज रहा। सेवान में गोली चली। तीन वीर शहीद हुए। सोनपुर जंक्शन पर धावा बोलकर वहाँ रेल के तीन इंजिन नष्ट किए गए। सरकार ने सारे जिले में मारकाट मचा दी। नादिरशाही की हद हो गई।

शहीद फुलेना प्रसाद :

सेवान थाने पर झण्डारोहण करने में शहीद फुलेना प्रसाद अग्रणी थे। जब वे आगे बढ़े तो उन पर गोलियाँ दागी गईं, परन्तु धन्य है, उस वीर ने अपने पाँव पीछे न रखे और नवीं गोली जब उसके सिर पर लगी तो उनका सिर फट गया और वे नीचे गिर पड़े। पास में ही उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती तारा देवी खड़ी थी। वह तनिक भी विचलित नहीं हुई और अपने पति के सिर को अपनी साड़ी में बाँध कर वीरांगना की भांति अपने पति के कार्य को पूरा करने के लिए आगे बढ़ी। झण्डा लगा कर ही उसने संतोष की सांस ली। जब वह लौटी तब तक उनके पति शहीद हो चुके थे। उनके साथ तीन अन्य व्यक्ति भी वीरगति को प्राप्त हुए। शहीद फुलेना प्रसाद व उनकी पत्नी श्रीमती तारावती हमारे स्वातंत्र्य आकाश मण्डल के चमकते हुए सितारे बने रहेंगे।

दरभंगा, मानभूमि, सिंहभूमि, राँची व पालामाऊ में क्रान्ति :

दरभंगा में 17 अगस्त को भारी जन समूह ने स्टेशन पर धावा बोल दिया। गोली चली, एक मरा व अनेक घायल हुए। जानकी मिश्र को पुलिस ने पीट-पीट कर मार डाला। श्रीमती जानकी देवी के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने 19 अगस्त को बेहरा थाने पर अधिकार कर लिया। 22 अगस्त तक गोरी पल्टन के आने तक इधर सभी थानों पर जनता का राज रहा। सेना तथा पुलिस ने इस जिले में भीषण अत्याचार किए।

मानभूमि जिले में पहले तो कांग्रेसी नेताओं की अहिंसावादी नीति से बहुत दिनों तक जोश दबा रहा, परन्तु अन्य जिलों के दमन व तोड़-फोड़ के समाचार वहाँ पहुँचे तो जनता का धैर्य टूट गया और वहाँ के वीर संथालों ने तीर कमान चढ़ा लिए। बड़ा बाजार व बाँधवान थाने में आग लगा दी गई। जिले भर के तार काटना व पटरी उखाड़ने का काम जारी रहा, परन्तु बाद में यहाँ भी जनता को सरकारी दमन चक्र का सामना करना पड़ा।

सिंहभूमि जिले में जमशेदपुर के मजदूरों ने बड़ा उत्साह दिखाया। अनेक मजदूर नेता जेल के सींकचों में बन्द कर दिए गए। इनमें चैतासिंह तो जेल में ही भूख हड़ताल कर शहीद हो गए। मजदूरों की हड़ताल पक्की रही। इसका प्रभाव सिपाहियों पर भी पड़ा। 28 लोगों ने त्याग-पत्र दे दिया। 6 सितम्बर को विशाल

भीड़ जेल के फाटक पर पहुँची और जेल अधिकारियों से अपने नेताओं के दर्शन कराने का आग्रह किया। अधिकारियों ने बुद्धिमानी से काम लिया और नेताओं को बाहर ला कर जनता को दर्शन करा दिए। इस पर जनता ने माला पहना कर ही संतोष कर खुशी-खुशी लौट चली। यदि कोई अच्छी योजना होती तो सिंहभूमि की इस वास्टाइल (फ्रांस की जेल) को तोड़ कर फ्रांस राज क्रान्ति की याद ताजा करा देती।

राँची में सरकार ने जनता द्वारा सरकारी इमारतों पर झंडा फहराने का कोई विरोध नहीं किया। इससे यहाँ अधिक तोड़-फोड़ नहीं हुई। फिर हीनू के हवाई अड्डे, लोहरदगा के फौजी कैम्पों में तोड़-फोड़ करने की चेष्टा हुई। यहाँ भी जनता जेल तक पहुँची और नेताओं से मिलकर लौट आई।

पालामाऊ जिले में क्रान्ति की रफ्तार तेज रही। यहाँ पर विद्यार्थियों ने नेतृत्व सम्भाला। डाल्टनगंज, हुसैनाबाद, लेन्सीलीगंज और लतिहार थानों पर झण्डा फहराया गया। डाल्टनगंज की जेल के सभी कैदी छुड़ा लिए गए। यहाँ का थाना व शराब के गोदाम जला दिए गए। संक्षेप में डाल्टनगंज ही इस जिले की क्रान्ति का मुख्य केन्द्र रहा।

हजारीबाग, मुंगेर व आगरा में क्रान्ति :

हजारीबाग में क्रान्ति की कोई विशेष घटना नहीं हुई। केवल श्रीमती सरस्वती देवी के नेतृत्व में एक जुलूस अवश्य निकला। इसका कारण यह है कि हजारीबाग में मुख्यत: व्यापारियों व वकीलों की आबादी अधिक थी। इसके अतिरिक्त यहाँ के कांग्रेसी नेता पहले ही जेलों में ठूँस दिए गए थे, परन्तु मजदूर क्षेत्रों में क्रान्ति का जोर अवश्य रहा। कोडरमा व डोमचांच में गोली काण्ड हुए, जिनमें दो क्रान्तिवीर शहीद हुए।

परन्तु हजारीबाग जेल में क्रान्तिकारियों के पलायन से ब्रिटिश-शासन को एक करारी चोट दी गई। हजारीबाग जेल में प्रान्त भर के समाजवादी विचारधारा के कांग्रेसी नेता पहले ही जेल में ठूँस दिए गए थे। अगस्त क्रान्ति शुरू होते ही ये लोग जेल से निकल कर क्रान्ति का नेतृत्व करने पर विचार करने लगे। जेल में उच्च शिक्षा प्राप्त उच्च श्रेणी के नेता रात को खुले ही रहते थे। वे केवल नजरबन्द थे।

जेल से बाहर जाने के लिए 11 नवम्बर दिवाली की रात को ही इन्होंने ठीक समझा, क्योंकि उस दिन जेल कैदी खेल तमाशा करने वाले थे। अत: उसी रात को समाजवादी नेता जयप्रकाश बाबू, सुप्रसिद्ध भूतपूर्व आतंकवादी नेता योगेश शुक्ल, रामानन्द मिश्र, सूर्यनारायण सिंह, गुलाबचन्द्र गुप्ता, शालीग्राम सिंह जेल की दीवार फांद कर बाहर निकलने में सफल हो गए और एक मोटर से राँची जा

पहुँचे। पहले से गुप्त रूप से काम कर रहे संगठनों से सम्पर्क कर क्रान्ति को प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया। इस सम्बन्ध में अरुणा आशफ अली तथा सुचेता कृपलानी का कार्य सदा उल्लेखनीय रहेगा।

मुंगेर तथा आरा में भी क्रान्ति का ज्वार कम नहीं रहा। मुंगेर में तो 14 अगस्त को ही तोड़फोड़ शुरू हो गई। 20 में से 10 थानों पर क्रान्तिकारियों का कब्जा हो गया। तारापुर में क्रान्तिकारी सरकार की स्थापना हुई जिसकी गाँवों तक पहुँच हो गई, परन्तु ब्रिटिश शासन ने हवाई हमलों द्वारा सरकार को नष्ट कर दिया। चार स्वातंत्र्य वीर शहीद हुए और सैकड़ों घायल हुए।

आरा में रेलवे लाइनें काटी गईं। यहाँ क्रान्ति के नेता मास्टर जग्गूलाल थे। देहात की क्रान्तिकारी जनता भी आरा पहुँची और इसने सरकारी इमारतों पर कब्जा कर लिया। सरकार ने दमन चक्र शुरू किया। अनेक गोलियाँ चली। लगभग बारह क्रान्तिवीर शहीद हुये। उनके नाम इस प्रकार हैं—वासुदेवसिंह, शीतलसिंह, केशवसिह, जगन्नाथसिंह, सभापतिसिंह, गिरवरसिंह, महादेवसिंह, रामानुज पाण्डे, शीतल मिस्त्री, केशवप्रसाद सिंह, अकली देवी और द्वारिकाप्रसाद। मास्टर जग्गूलाल पर अनेक अत्याचार हुए। इन सब बातों से स्पष्ट है कि अगस्त क्रान्ति में बिहार का स्थान सर्वोच्च था। प्रकरण को समाप्त करने के पहले समाजवादी क्रान्तिकारियों के बारे में जान लेना आवश्यक है।

जयप्रकाश बाबू (1902-1980 ई.) :

स्वाधीनता संग्राम के इस साहसी सैनिक का जन्म 11 अक्टूबर, 1902 को बिहार के एक छोटे से गाँव में हुआ। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। पिता सिंचाई विभाग में साधारण अधिकारी थे। गरीबी की अनुभूति उन्हें बचपन में ही हो चुकी थी।



जयप्रकाश नारायण

अठारह वर्ष की आयु में ही आप गाँधीजी के सम्पर्क में आए और उनके बहिष्कार आन्दोलन में कूद पड़े। स्कूल का बहिष्कार कर पढ़ाई छोड़ दी। बाद में अध्ययन के लिए अमेरिका चले गए। वहाँ पढ़ने के

साथ-साथ काम करने लगे। लगभग सात वर्ष अमेरिका रहे। वहीं पर "एवराय लैडी" नामक युवक के सम्पर्क से उन पर मार्क्सवाद का रंग चढ़ गया और समाजवादी विचारों से ओत-प्रोत हो सन् 1929 में भारत लौटे। जनवरी, 1930 में कांग्रेस में शामिल हो गए। उस समय कांग्रेस में पण्डित नेहरू कांग्रेस अध्यक्ष थे और समाजवादी विचारधारा के प्रतीक माने जाते थे। अत: दोनों में घनिष्ठता होते देर न लगी। नेहरू जी ने इनको कांग्रेस के अन्तर्गत श्रम विभाग का कार्य देखने का काम सौंपा। बाद में कांग्रेस के मंत्री भी बने।

1932 ई. में देश की आजादी के लिए पहली बार गिरफ्तार हुए और नासिक जेल में रखे गए। वहाँ पर आपने युवकों को समाजवाद की ओर आकर्षित किया। इसी का नतीजा था कि सन् 1934 में कांग्रेस समाजवादी फोरम का गठन हुआ। इस फोरम के सूत्रधार जयप्रकाश जी ही थे। इसी बीच आपका साम्यवादियों से बिलकुल नाता टूट गया, क्योंकि साम्यवादी रूस की इंग्लैण्ड से मित्रता हो जाने के कारण वे इंग्लैण्ड के समर्थक व अगस्त क्रान्ति के विरोधी बन गए थे। परम देशभक्त देश के प्रति साम्यवादियों की गद्दारी को कैसे सहन कर सकते?

उग्रवादी गतिविधि के कारण अगस्त क्रान्ति के पहले ही सन् 1942 के प्रारम्भ में ब्रिटिश सरकार द्वारा बन्दी बनाकर हजारीबाग जेल में ठूँस दिए गए। जयप्रकाश जी व उनके समाजवादी साथी क्रान्ति में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए तड़पने लगे, परन्तु जेल से बाहर निकलने पर ही तो यह सब हो सकता था। अत: नवम्बर, 1942 को जब जेल अधिकारी दीवाली मनाने में लगे थे, जयप्रकाश जी अपने पाँच साथियों सहित जेल की 22 फुट ऊँची दीवार को अपनी धोतियों का रस्सा बना कर फाँदने में सफल हो गए। अमावस्या की काली रात में वे बीहड़ जंगलों को पार कर नेपाल पहुँच कर वहाँ एक आजाद दस्ते की स्थापना करना चाहते थे, परन्तु वहाँ की राणा शाही के असहयोग के कारण उन्हें यह विचार छोड़ना पड़ा। अब सीमा प्रान्त की ओर अग्रसर हुए, परन्तु अमृतसर में ही ब्रिटिश पुलिस द्वारा बन्दी बना लिए गए। पहले लाहौर जेल में डाला गया। वहाँ उन्हें अनेक कष्ट दिए गए। फिर आगरा जेल में रखा गया। वहाँ से वे 1946 में रिहा हुए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीतिक मतभेदों के कारण उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी और एक नये दल प्रजा समाजवादी दल का गठन किया। इनकी मान्यता थी कि केवल सरकार बदलने से काम नहीं चलेगा। अत: समाजवादी समाज संरचना के लिए विचारों में बदलाव लाना जरूरी है। अत: वे विनोबा भावे के शिष्य बन गए और सर्वोदय तथा भूदान यज्ञ के माध्यम से समग्र क्रान्ति के लिए काम करने लगे।

स्वतंत्रता संग्राम में उनके निष्काम योगदान को राष्ट्र सदा स्मरण रखेगा। युवा शक्ति में देश-प्रेम एवं नागरिक चेतना उत्पन्न करने में आपके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

डॉ. राम मनोहर लोहिया :

आप युवावस्था में देश-प्रेम से ओत-प्रोत थे। सन् 1930 से लेकर 1942 ई. तक असहयोग क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेते रहे। समानता, स्वतंत्रता तथा भारतीयता की स्थापना के लिए आपने जीवन भर संघर्ष किया। अपने उग्रवादी विचारों के कारण किसी भी दल से सामंजस्य स्थापित न हो सका, परन्तु चरित्र व साहस के धनी लोहिया जी की देश सेवा को कभी भुलाया नहीं जा सकता।



डॉ. राममनोहर लोहिया

आचार्य नरेन्द्र देव :

सन् 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन से ही स्वतंत्रता संग्राम में रुचि लेने लगे। गाँधीवाद तथा पूँजी के विकेन्द्रीकरण में आपका अटूट विश्वास था। कांग्रेस में समाजवादी गुट के आप मुख्य स्तम्भ रहे। बाद में कांग्रेस से अलग होकर समाजवादी दल में काम करने लगे। युवा लोगों में देश-प्रेम जाग्रत करने तथा सन् 1942 की क्रान्ति को व्यापक बनाने में आपके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

अच्युत पटवर्धन :

आप भी कांग्रेस में वामपंथी विचारधारा के पोषक थे। जब कांग्रेस समाजवाद से हटने लगी तो अपने साथियों के साथ कांग्रेस से अलग हो गए और समाजवादी दल में काम करने लगे। सन् 1942 की अगस्त क्रान्ति में आपका योगदान बड़ा ही उत्साहवर्धक रहा।

आसाम क्रान्ति की आग में :

नेताओं की गिरफ्तारी से यहाँ क्रान्ति भड़क उठी। असम कांग्रेस के नेता फखरुद्दीन अली अहमद, तय्यबुल्ला, विष्णुराम मोदी, डॉ. शर्मा भूतपूर्व मुख्यमंत्री गोपीनाथ बारदोलाई सभी बम्बई से लौटते समय रास्ते में ही बन्दी बना लिए गए। अत: जनता ने ही आन्दोलन की कमान सम्भाली। पूर्व में जापान अंग्रेजों पर निरन्तर

विजय प्राप्त करता जा रहा था। इससे भी जनता में उत्साह था, परन्तु जापानी हमले का सामना करने के लिए यहाँ अंग्रेजों की फौज भी कम नहीं थी। अतः जनता व सरकार एक दूसरे पर वार करने के लिए पहले से ही तैयार बैठे थे।

15 अगस्त, 1942 ई. को खालापाड़ा के छात्रों ने जुलूस निकाला। पुलिस ने बर्बर दमन शुरू कर दिया। नौ व्यक्ति घायल हुए। इसी तरह से गौपपुर में पाँच हजार लोगों की भीड़ थाने पर झण्डा फहराने के लिए उमड़ पड़ी। एक चौदह वर्षीय छात्रा वीरांगना कनकलता झण्डा लिए जुलूस का नेतृत्व कर रही थी। पुलिस वालों ने रोकना चाहा, परन्तु वह रुकी नहीं, क्योंकि उसमें तो देशभक्ति के उत्कट भावना का संचार हो चुका था। निर्दयी थानेदार ने गोली दाग दी। वीरांगना कनकलता मातृभूमि के लिए शहीद हो गई।

झण्डा चढ़कर रहा :

कनकलता की शहादत से लोगों में अद्‌भुत जोश का संचार हुआ। मुकुन्दलाल कावता झण्डा ले आगे बढ़े। वे भी पुलिस की गोली से शहीद हुए। अनेक घायल हुए। जब पुलिस गोलियाँ दागने में लगी थी तब कुछ क्रान्तिकारी थाने की छत पर चढ़ गए और उस पर तिरंगा झण्डा फहरा दिया। पुलिस सूत्रों के अनुसार झण्डारोहरण अभियान में 15 व्यक्ति शहीद हुए, परन्तु जनता के मत से कम से कम 50 क्रान्तिवीर इस झण्डारोहण अभियान में शहीद हुए।

ढ़ोकाईजुली का नरमेध :

तेजपुर से 16 किलोमीटर दूर इस पहाड़ी क्षेत्र में अधिकतर चाय बागानों के मजदूर रहते थे। 20 सितम्बर को जनता के थाने पर झण्डा लगाने का निर्णय लिया। पुलिस ने अंधाधुंध गोलियाँ चलाई। 20 क्रान्तिवीर शहीद हुए। इनमें फूलेश्वरी नामक 12 वर्षीय कन्या का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, परन्तु झण्डा चढ़ कर रहा। इस प्रयास में 12 क्रान्तिवीर शहीद हुए और अनेक भीषण घायल हुए।

तेजपुर गोली काण्ड :

ढ़ोकाईजुली के नरमेध की खबर जब तेजपुर पहुँची तो इसके विरोध में एक विशाल सभा का आयोजन हुआ। सरकार सभा को भंग करने पर तुली हुई थी, क्योंकि उसकी मान्यता थी कि सभा भंग होने से आसाम में क्रान्ति का रंग फीका पड़ जाएगा। अंधाधुंध गोलियाँ चलीं। 100 आदमी घायल हुए।

नवगाँव जिले में क्रान्ति :

यहाँ क्रान्ति का वेग प्रबल रहा। यहाँ की जनता ने शान्ति सेना बना रखी थी जो तुरही बजाने पर क्रान्ति में भाग लेने दौड़ पड़ती थी। एक दिन कुछ छापामार सैनिकों ने शान्ति सेना के चौकीदार तिलक डोडा की हत्या कर दी। इस पर शान्ति सेना ने अंग्रेज सैनिकों को घेर लिया। फौज ने गोलियाँ चलाकर शान्ति सेना से पिण्ड छुड़वाया।

रोहा हाई स्कूल पर झण्डा फहराने में क्रान्तिकारी सफल हुए। इसी जिले में वे बहरपुर नामक गाँव में तो झण्डे की रक्षा के लिए अनेक भाई-बहिन मर मिटे। गाँव की सभा में सभी के हाथों में झण्डे थे। सेना तथा पुलिस ने लोगों से झण्डे छीनना शुरू कर दिया। रत्नमाला नामक बच्ची से झण्डा छीनकर उसे नीचे गिरा दिया। इस पर इसकी दादी ने उस गोरे सारजेन्ट की खूब पिटाई की। जवाब में गोलियाँ चलीं। लड़की की दादी फूफूँ देवी झण्डा हाथ में लिए वहीं शहीद हो गई। इस वीरांगना के साथ झण्डे की रक्षा के लिए लक्ष्मा हजारिका, थातूराम सूत व बालूराम सूत नामक तीन भाई शहीद हुए।

कामरूप में आन्दोलन :

यहाँ आन्दोलन प्रारम्भ में शांतिपूर्ण था, परन्तु सरकारी दमन से आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। 26 अगस्त को क्रान्तिकारियों ने सोरभाग नामक हवाई अड्डे पर धावा बोल दिया। तीन सामरिक गाड़ियों में भी आग लगा दी गई। सरकार को लाखों रुपयों की हानि हुई। तोड़-फोड़ में स्त्रियाँ भी पीछे नहीं रहीं।

स्वतंत्र राष्ट्र :

चारी गाँव, हाथीगढ़, सेवका आदि स्थानों पर स्वतंत्र सरकारें बनाई गई। इन स्वतंत्र सरकारों द्वारा आज्ञा प्रसारित की गई कि कोई भी ग्रामवासी सैनिकों को मुर्गियाँ, बकरे आदि न बेचें, परन्तु जब सैनिक जबरदस्ती इन चीजों के लिए गाँव में घुसने लगे तो सेवकों की वीर नारियों ने संगीनों की मार खा कर भी सैनिकों को गाँव में नहीं घुसने दिया।

इस तरह से बिहार की भाँति ही आसाम में भी क्रान्ति का काफी जोर रहा। क्रान्ति को कुचलने के लिए सरकार को पसीना आ गया और चार माह तक यहाँ सैनिक शासन रखना पड़ा। असम क्रान्ति के प्रकरण को समाप्त करने के साथ कुछ अमर शहीदों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

शहीद कौशल कौनवर :

आप जाति से 'अहोम' थे। क्रान्ति में उत्साह से भाग लिया। तोड़-फोड़ में अग्रणी थे। पकड़े गए। मुकदमा चला। 15 जून, 1943 को आपको फाँसी दी गई।

धीर वीर ताँत्या टोपे की भाँति आपने हँसते-हँसते फाँसी का आलिंगन किया। "पार करो दीनानाथ संसार सागर" के भजन के साथ आप शहीद हो गए। असम कांग्रेस के प्रमुख नेता वर दोलोई उन दिनों उसी जेल में थे। जब कौशल कौनवर से उनकी भेंट हुई तो शहीद ने उनको बताया कि "फाँसी क्या है? पैदा होते समय तो डेढ़ घण्टा कष्ट उठाया था। यह तो मिनिटों का काम है।" वर दोलोई जी लिखते हैं कि "शहीद का मुख मण्डल गौरव से दमक रहा था।" धन्य है, ऐसे वीरों को जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपने प्राण दे दिए।

फाँसी के अतिरिक्त जेल में कठोर यातनाओं से अनेक देशभक्तों के प्राण पखेरू उड़ गए। अनेक हमेशा के लिए अपंग हो गए। कमला गिरि घोर यातनाओं से जेल में शहीद हो गए।

क्रान्ति व बंगाल :

बंगाल शुरू से ही क्रान्तिकारी था। अत: सरकार की पहले से ही इस पर कड़ी निगाह थी। दो हजार कार्यकर्त्ता पहले से ही जेलों में डाल दिये गए थे, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि अगस्त जन क्रान्ति में यहाँ बिहार तथा आसाम की तरह जोर नहीं रहा। सुभाष बाबू के कांग्रेस से अलग हो जाने के कारण यहाँ की कांग्रेस कमजोर हो गई थी। साम्यवादी तो पहले ही क्रान्ति से किनारा काट चुके थे। पूर्वी बंगाल में मुस्लिम लीग का प्रभाव था जो अंग्रेजों की कठपुतली मात्र थी। फिर भी मेदिनीपुर की क्रान्ति ने बंगाल की नाक रख ली।

मेदिनीपुर में क्रान्ति :

यहाँ कांग्रेस पार्टी पहले से ही सु-संगठित थी। जापानी आक्रमण की खबर से सरकार भी चौकन्नी थी तथा इसे खतरनाक क्षेत्र घोषित कर दिया था। सरकार ने लोगों के आवागमन में बाधा डालने के लिए आदेश दिया कि 'कांथी' तथा तमलूक क्षेत्र की सभी नावें हटा ली जाए। आदेश को न मानने से सरकार ने नावें जलवा दी। इससे मच्छवारे घोर आर्थिक संकट में पड़ गए। इसके अतिरिक्त वहाँ दुर्भिक्ष की स्थिति होने पर भी सरकार चावल सैनिकों के लिए भेज रही थी।

जनता ने सरकार के इन कदमों का कड़ा विरोध किया और मेदिनीपुर की विद्युत वाहिनी सेना ने जिसकी संख्या पाँच हजार थी मेदिनीपुर की चावल मील को घेर लिया, जहाँ से चावल बाहर भेजा जाने वाला था। पुलिस ने गोली चला दी। तीन व्यक्ति घटना स्थल पर ही शहीद हो गए। पुलिस ने शवों को नदी में फेंक दिया, परन्तु जनता ने शवों को नदी से निकाल कर इन क्रान्ति वीरों का ससम्मान दाह संस्कार किया। सरकारी दमन चक्र चला। 200 क्रान्ति वीरों को पकड़ा गया। अनेकों को लम्बी सजाएँ दीं, परन्तु विजय जनता की रही और सरकार को चावल बाहर

भेजना बन्द करना पड़ा। विद्युत वाहिनी क्रान्ति सेना ने मिल मालिक पर 1500 रुपये दण्ड किए जिन्हें शहीदों के परिवार में बाँट दिया गया।

स्वतंत्र शासन :

महिषा दल थाने के सामने 20 हजार की भीड़ में मेदिनीपुर जिले की स्वतंत्रता की घोषणा की गई। शिक्षकों तथा छात्रों का इस क्रान्ति में सराहनीय योगदान रहा। सभी जिलों में क्रान्ति सेना ने अपनी डाक व्यवस्था चालू की। विप्लवी नामक पर्चे बाँटे गए, जिनके अनुसार 29 सितम्बर, 1942 को थानों तथा अदालतों पर एक साथ धावा बोलने की योजना थी। इससे पहले सरकार को पंगु बनाने के लिए 28 सितम्बर को ही 30 पुल उड़ा दिए गए। 27 मील टेलीफोन के तार काट दिए गए। 194 तार के खम्भे उखाड़ दिए गए। कोसी तथा हुगली नदी की सरकारी नावें डूबो दी गईं।

29 सितम्बर को चारों दिशाओं से चार बड़े जुलूस बनाकर शहर पर धावा बोला गया। बड़ा जुलूस पश्चिम से बढ़ा। इसमें आठ हजार लोग थे। पुलिस ने गोली चलाई। पाँच व्यक्ति शहीद हुए, परन्तु लोग आगे बढ़ते ही गए। रामचन्द्र बेरा तो घायल होने पर भी थाने के फाटक तक पहुँच गए और यह कहते हुए दम तोड़ दिया कि "मैंने थाने पर कब्जा कर लिया है।"

मातांगिनी हजारा की शहादत :

उत्तर की ओर से जो जुलूस बढ़ रहा था, उसका नेतृत्व मातांगिनी हजारा नामक 73 वर्षीय महिला कर रही थी। उसके हाथ में तिरंगा झण्डा था। फौज के रोकने पर भी वह नहीं रुकी और आगे बढ़ती गई। गोलियाँ चली। मातांगिनी हजारा वहीं शहीद हो गई। इसके बाद लक्ष्मीनारायण पुरी माधव, नगेन्द्रनाथ सामन्त व जीवन चंदुवंश भी झण्डे की रक्षार्थ शहीद हुए।

दक्षिण से बढ़ रहे जुलूस पर भी गोलियाँ चलीं। निरंजन जना तथा पूर्ण चन्द्र मायती शहीद हुए। अनेक घायल हुए। घायलों को अस्पताल पहुँचाने में महिलाओं की विशेष भूमिका रही, परन्तु अन्त में महिषासुर थाने पर अधिकार करने में क्रान्तिकारियों को सफलता मिल गई। इसी तरह सूताहाट व नन्द्री ग्राम थाने पर भी क्रान्तिकारियों ने अधिकार जमा लिया। इस विजय अभियान में सुभाष सामंत व खुदीराम बेरा घायल हो गए। इन थानों के अन्तर्गत क्षेत्रों में स्वतंत्र सरकारें कायम हुईं जो कितने ही माह तक काम करती रहीं।

सरकारी दमन चक्र :

मेदिनीपुर की क्रान्ति को दबाने के लिए सरकार ने जो अत्याचार किए वे इतिहास में बेमिसाल हैं। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने इस बर्बरता के विरोध में

बंगाल के अर्थ मंत्री पद से त्याग-पत्र दे दिया। उन्होंने तत्कालीन राज्यपाल को पत्र लिखते हुए बताया कि "मेदिनीपुर में जिस प्रकार दमन चक्र चल रहा है, उसकी तुलना नाजियों (जर्मनी) द्वारा अधिकृत प्रदेशों पर किए जा रहे अत्याचारों से की जा सकती है। पुलिस तथा सेना द्वारा हजारों घर जला दिए गए हैं। स्त्रियों पर अनेक अत्याचार हुए। साम्प्रदायिकता भड़काई जा रही है। दु:ख तो इस बात का है कि कानून व व्यवस्था के रक्षकों ने यह सब करवाया है।"

कलकत्ता में क्रान्ति :

कांग्रेस के नेता पहले ही जेल में ठूँस दिए गए थे। अत: प्रारम्भ में क्रान्ति का जोर नहीं रहा, परन्तु बाद में बंगाल के युवकों ने अनेक प्रदर्शन किए व ट्रामें जला डाली। श्रीमान बाजार के पास जनता तथा पुलिस के बीच संघर्ष हुआ जिसमें वैद्यनाथ सेन शहीद हुए एवं अनेक घायल हुए।

कलकत्ता के समान ही ढाका, फरीदपुर, मुर्शिदाबाद, हावड़ा, हुगली, मैमन सिंह, बर्दवान आदि स्थानों पर डाकघर व रेलवे स्टेशन जलाये गए। बालूरघाट में तो 24 घंटे के लिए सरकारी शासन ही समाप्त कर दिया गया। सरकार साम्प्रदायिकता का जहर फैला कर बंगाल में क्रान्ति को निस्तेज करने का घृणित कार्य करने में पीछे नहीं रही।

उड़ीसा में क्रान्ति :

'करो या मरो' का नारा जब उड़ीसा पहुँचा तो यहाँ की जनता विदेशी शासन के साथ-साथ स्थानीय जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध भी उठ खड़ी हुई। क्रान्ति में सबसे अधिक योगदान किसानों तथा विद्यार्थियों का रहा। कटक कॉलेज की छात्राओं ने बहादुरी से काम लिया। पुरी में हड़ताल रही। नीमपाड़ा थाने पर हमला बोला गया। एक शहीद हुआ, दो घायल हुए। बालासोर में खूब तोड़-फोड़ हुई। ऐं राम के जमींदार के घर में आग लगा दी गई। पुलिस ने गोली चलाई। चालीस क्रान्तिवीर शहीद हुए। इसी प्रकार दामनगर में भी आठ व्यक्ति शहीद हुए।

मध्य प्रान्त में क्रान्ति :

नागपुर में इसका सबसे अधिक जोर रहा। अनेक थानों पर हमले हुए। नागपुर पर तीन दिन तक जनता का शासन रहा। रामटेक में तहसील पर धावा बोला गया। खजाने की लूट में ।। लाख रुपये मिले। इस जिले में 'हिन्दुस्तान लाल सेना' ने विशेष कार्य किया जिसकी तुलना हम चन्द्रशेखर आजाद की 'प्रजातंत्र संघ की सेना' से कर सकते हैं। इस लाल सेना के मुख्य संगठन कर्त्ता मगनलाल बागड़ी व श्यामलाल नायक थे। लाल सेना ने अनेक थानों से सिपाहियों

को मार कूट कर खदेड़ दिया। इस प्रसंग में बागड़ी तथा मालू काठी पकड़े गए, जिन्हें काले पानी की सजा हुई।

वर्धा में भी सेक्सरिया कॉलेज के छात्रों ने अच्छा कार्य किया। अष्टी नामक थाने पर धावा बोला गया जिसमें एक थानेदार व चार सिपाही मारे गए। अनेक लोग पकड़े गए। दो को फाँसी व चार को काले पानी की सजा दी गई।

चिमूर जिले में क्रान्ति का जोर अधिक रहा। शान्तिपूर्ण जुलूस पर पुलिस द्वारा गोली चलाने से जन समूह उत्तेजित हो उठा और पुलिस पर टूट पड़ा। पाँच पुलिस कर्मी मारे गए। इसके प्रतिशोध में सेना ने जनता पर अनेक अत्याचार किए। 30 व्यक्ति बन्दी बनाए गए। इनमें से कई लोगों को फाँसी की सजा दी गई।

जबलपुर में हाई स्कूल के छात्रों ने विशेष तोड़फोड़ की। गोली चली, जिसमें गुलाबसिंह नामक युवक शहीद हुआ। अमरावती में भी तार काटे गए। जिलाधीश कार्यालय पर तिरंगा झण्डा फहराया गया। इस सम्बन्ध में भीषण गोली काण्ड हुआ जिसमें 14 क्रान्तिवीर शहीद हुए और 40 घायल हुए। आकोला में तिलक राष्ट्रीय शाला व नेशनल स्कूल के छात्रों ने क्रान्ति में खुलकर भाग लिया।

गुजरात व सिंध :

गुजरात में अहमदाबाद क्रान्ति में सबसे आगे रहा। यहाँ पर मजदूरों व विद्यार्थियों ने कमाल कर दिखाया। क्रान्ति के संचालन के लिए एक समिति गठित हुई। 10 अगस्त को छात्रों का जुलूस निकला, जिस पर गोली चली और विनोद किनारी वाला नामक युवक शहीद हुआ। सेना पहुँचने पर जनता का आक्रोश बढ़ गया और सरकारी बंगलों पर हमले होने लगे।

खेड़ा जिला भी क्रान्ति में पीछे नहीं रहा। छात्रों तथा किसानों ने बड़ा उत्साह दिखाया। गोली चली। चार छात्र शहीद हुए। इसी तरह डाकोर में भी गोली चली। छोटा भाई नामक व्यक्ति शहीद हुआ।

सिंध आगे बढ़ा :

यद्यपि सिंध छोटा प्रान्त था, परन्तु अगस्त क्रान्ति में बड़ा सिद्ध हुआ। परशुराम ताहिलरमानी व चौहटराम गिरदवानी ने लोगों में जोश भरा। कराँची में सभा व जुलूस से क्रान्ति शुरू हुई। सिंधी युवकों ने राष्ट्र प्रेम के तरानों से वायु मण्डल गुँजा दिया। सक्खर में मंघाराम कालाणी ने 'स्वराज्य सेना मण्डल' का गठन किया। इस सेना का मुख्य कार्य यातायात के साधनों को नष्ट भ्रष्ट करना था ताकि ब्रिटिश सेना क्रान्ति के दमन के लिए आसानी से इधर-उधर न जा सके। इस सम्बन्ध में 19 वर्षीय युवा छात्र हेमू कालाणी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अगस्त क्रान्ति में फाँसी पर चढ़ने वाले वे प्रथम शहीद थे।

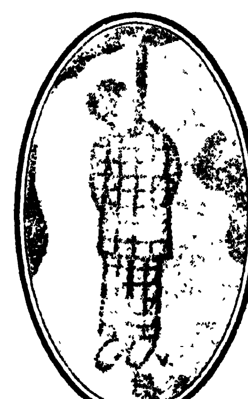
अमर शहीद हेमू कालाणी (1924-1943 ई.) :

11 मार्च, 1924 को आपका एक व्यापारी के घर जन्म हुआ। छात्र जीवन से ही आप देशभक्ति से ओतप्रोत थे। इसका श्रेय आपकी माता लक्ष्मीबाई तथा चाचा मंघाराम को है। एक दिन खबर पहुँची कि सैनिकों से भरी ट्रेन क्रांति को कुचलने के लिए सिंध को पार कर सीमा प्रान्त जाने वाली है। अतः युवकों ने इस ट्रेन को उड़ाने की योजना बनाई।



कालाणीं

23 अक्टूबर, 1943 को हेमू अपने दो साथियों के साथ चाँदनी रात में रेल की पटरी उखाड़ने चल पड़ा। काम शुरू किया ... चौकसी दल वहाँ आ पहुँच। हेमू के दो साथी तो बच निकले, परन्तु हेमू अविचल भाव से वहीं खड़ा रहा और भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त की भाँति अपने आपको गिरफ्तार करवाया। जेल में अपने दो साथियों का नाम बताने के लिए उसको अनेक यातनाएँ दी गई, परन्तु धन्य है, उस वीर को जिसने मृत्यु के भय पर भी अपने साथियों के नाम नहीं बताये। हेमू पर सैनिक अदालत में मुकदमा चला। पहले आजीवन कारावास की सजा हुई, परन्तु मुख्य मार्शल ला अधिकारी रिचर्डसन प्रतिशोध की आग का इतना शिकार हो गया कि उसने सजा को फाँसी की सजा में बदल दिया।



21 जनवरी, 1943 को हँसते-हँसते फाँसी के फंदे को अपने गले में डालकर हेमू ने हमेशा के लिए अमर पद प्राप्त किया और उसने खुदीराम बोस की शहादत की याद को ताजा कर दी। हेमू के अंतिम शब्द थे, 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'भारत माता की जय'।

महाराष्ट्र में क्रान्ति :

महाराष्ट्र तो सदैव की क्रान्ति की जन्मभूमि रही है। अतः अगस्त क्रान्ति में वह कैसे पीछे रह सकता था? दस अगस्त को पूना में दस हजार छात्रों का विशाल जुलूस निकला। पुलिस ने अकारण ही गोली चलाई। अनेक छात्र घायल हुए। पूना की सड़कें क्रान्तिकारियों के खून से तर-बतर हो गई। इससे जन

आक्रोश बढ़ गया। एक सिनेमा घर में बम फटा। पाँच गोरे मारे गए। बारूद के गोदाम में भी आग लगा दी गई। एक करोड़ की हानि हुई। धमाका ऐसा हुआ कि सारा शहर हिल उठा।

अहमदनगर किले में देश के चोटी के नेता नजरजन्द थे। अत: यहाँ सेना का पूरा इंतजाम था, परन्तु कितनी ही बार छात्रों ने किले की ओर बढ़ने का प्रयास किया। छात्रों ने जिला मजिस्ट्रेट के दफ्तर में आग लगा दी। कई स्थानों पर सिपाहियों की वर्दी उतरवा ली। अनेक जगह बम फटे।

सतारा जिले में क्रान्ति काफी तेज रही। 24 अगस्त से 10 सितम्बर तक थानों तथा कचहरियों पर झण्डा लगाने का कार्य चलता रहा। इस जिले में किसानों ने कमाल कर दिखाया। कसद कस्बे में 2500 किसान बाल कृष्ण पाटिल के नेतृत्व में कचहरी पहुँचे और उसे घेर लिया। पुलिस ने संगीनों से वार किया। पाण्डुराव देशमुख घायल हुए। तस ·ता।चु के में भी चार हजार किसानों ने प्रदर्शन में भाग लिया। परशुराम गार्गे के नेतृत्व में भीड़ तहसील कार्यालय पर झण्डा फहराने पहुँची। पुलिस ने गोली चलाई। गार्गे वहीं शहीद हो गए। इस्लामपुर में भी गोली चली। पाण्डु मास्टर शहीद हुए। नाना पाटिल के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने पुलिस की नाक में दम कर दिया। इस तरह सतारा जिला क्रान्ति में आगे रहा। खानदेश तथा नासिक में भी प्रदर्शन व जुलूस निकले। खान देश में पुलिस मुठभेड़ में चार छात्र शहीद हुए।

कर्नाटक में क्रान्ति :

डी. पी. कर्मकार के अनुसार कर्नाटक में क्रान्ति काफी व्यापक रही। यहाँ तोड़ फोड़ अधिक हुई। सरकार परेशान हो गई। हुबली में पुलिस द्वारा गोली दागी गई। एक बालक शहीद हुआ। बेलगाँव में गोली से सात मरे। निपानी में सरकारी इमारतें जलाई गई। सत्रह रेलवे स्टेशन खत्म कर दिए गए। सरकारी नौकरों ने भी क्रान्ति में भाग लिया। गाँधीजी के अनशन तक किसी न किसी रूप में आन्दोलन चलता रहा। सरकार का दमन चक्र भी कम न रहा। कर्नाटक पर साढ़े तीन लाख का जुर्माना हुआ। पाँच व्यक्तियों को फाँसी दी गई। पुलिस की गोली से तो अनेक घायल हुए।

आन्ध्र में क्रान्ति :

इस प्रान्त में सभी वर्गों ने क्रान्ति में बड़े उत्साह से भाग लिया। गुंटूर जिले में टेनाली गाँव ने बड़ी बहादुरी दिखाई। छात्रों ने रेलवे स्टेशन पर अधिकार कर लिया। पुलिस वालों की पगड़ी उतारी गई। तार टेलीफोन काटे गए। पुलिस ने गोली चलाई। अनेक लोग मारे गए। स्थिति इतनी विकट हो गई कि सरकार को

सेना बुलानी पड़ी। डॉ. पट्टाभिसीतारमैया की गश्ती चिट्ठी से यहाँ तोड़-फोड़ विशेष हुई। राजमुंदरी, कोकानाडा में तोड़-फोड़ अधिक हुई। भीमराव में रेवेन्यू डिविजनल कार्यालय पर तिरंगा झण्डा फहराया गया।

केरल :

यहाँ के कांग्रेसी नेता और राघव मेनन, के. कलपन, के माधव मेनन गोविन्द मेनन आदि 10 अगस्त को ही बन्दी बना लिए गए। गिरफ्तारी के विरोध में प्रदर्शन हुए तथा हड़ताल रही। जुलूस का नेतृत्व जनाब मोइडू मौलवी, एम.पी. नारायणन, करुणाकर मेनन तथा डॉ. चन्दू कर रहे थे। ये सभी बन्दी बना लिए गए। पिकेटिंग व सरकारी इमारतों पर झण्डे फहराने का कार्य बराबर जारी रहा। तेलाचरी बम काण्ड, तिरूलचर बम काण्ड के अभियोग चले जिनमें डॉ. के.पी.मेनन, एन.ए. कृष्ण नैयर, सी.पी. शंकरन् अदि बन्दी बनाए गए। जेल में इन पर भीषण अत्याचार हुए।

तमिलनाडु :

रेलवे कर्मचारियों की भूमिका क्रान्ति में अच्छी रही। इनकी हड़ताल से 'मद्रास-कलकत्ता' गाड़ी कई दिन बन्द रही। मद्रास में विद्यार्थियों ने नेतृत्व संभाला, परन्तु साम्यवादियों ने क्रान्ति को असफल करने का घृणित कार्य किया और रेलवे मजदूरों में फूट के बीज बोये। फिर भी लोग क्रान्ति पथ पर डटे रहे। रामनद जिले में तो जनता का इतना रौब पड़ा कि अनेक थानों को खाली कर पुलिस कर्मी भाग छूटे। जेल तोड़ कर बन्दियों को मुक्त कराया गया। कोयम्बटूर के चहरे हवाई अड्डे को नष्ट कर दिया गया। सरकार ने दमन में कोई कमी नहीं रखी, 20 गाँव उजाड़ दिए गए।

पंजाब तथा सीमा प्रान्त :

गदर पार्टी के रूप में पंजाब क्रान्ति की कर्म भूमि रही, परन्तु अगस्त क्रान्ति में पंजाब का पीछे रहना सचमुच आश्चर्य एवं विषाद का विषय है। साधारण तोड़ फोड़ के अतिरिक्त यहाँ कोई विशेष घटना नहीं हुई। इसके बनिस्पत सीमा प्रान्त में क्रान्ति की स्थिति अच्छी रही।

सीमा प्रान्त में आन्दोलन अधिकतर अहिंसक व गाँधीवादी रहा। बादशाह खान के नेतृत्व में शराब की दूकानों पर पिकेटिंग (घेराव) से क्रान्ति शुरू हुई। बाद में सरकारी इमारतों व फौजी कैम्पों का भी घेराव होने लगा। सरकार ने अंधाधुंध गिरफ्तारियाँ कीं। लगभग 2500 आदमी बन्दी बनाए गए। एक छोटे से प्रान्त में इतने लोगों को बन्दी बनाना सचमुच वहाँ की कांग्रेस के लिए गौरव की बात है।

दिल्ली में क्रान्ति :

दस अगस्त को दिल्ली में पूर्ण रूपेण हड़ताल रही। शाम को गाँधी मैदान पर एक विराट सभा हुई। 11 अगस्त को जुलूस खल्लीलूर्रहमान के नेतृत्व में कोतवाली की ओर बढ़ा। भयंकर लाठी चार्ज हुआ। नेता बन्दी बना लिए गए। इतने में भीड़ में से किसी ने डिप्टी कमिश्नर पर ईंट का टुकड़ा दे मारा। इस पर गोली चली, एक मरा व अनेक घायल हुए।

गोली काण्ड से भीड़ का उत्तेजित होना स्वाभाविक था। पीली कोठी व क्वीन्स रोड़ स्थित पैट्रोल पम्प में आग लगा दी गई। रेलवे का दफ्तर भी फूँक दिया गया। एक दारोगा जान से मारा गया। सैनिक कोठरियों पर हमले हुए। सैनिक भाग छूटे। पुलिस ने दमन चक्र शुरू किया। खूब गोलियाँ चली जिससे 150 लोग मरे। दिल्ली क्लाथ मिल तथा बिड़ला मिल के मजदूरों ने क्रान्ति में खूब भाग लिया। दिल्ली के आस-पास के देहाती क्षेत्रों में पिकेटिंग व प्रभात फेरियाँ भी चलती रहीं, परन्तु नई दिल्ली में कुछ नहीं हुआ, वह तो सरकारी नगरी ही बनी रही।

अरुणाजी व सुचेताजी का योगदान :

देश के कर्णधार नेता तो जेल में पहले ही ठूँस दिए गए थे। अतः जनता में स्वस्फूर्त स्वातंत्र्य चेतना प्रारम्भ हुई। उसे संबल प्रदान करने का काम एक अंतरंग (गुप्त) कमेटी ने किया, उसकी मुख्य सूत्रधार अरुणा आसफ अली तथा सुचेता कृपलानी थी। खेद है कि इनके महत्त्व को अभी तक इतिहास में स्वीकार नहीं किया गया। अरुणा जी तथा सुचेता जी ने समय-समय पर गुप्त पर्चे व संदेश भेज कर क्रान्तिकारियों का मनोबल सदा ऊँचा बनाए रखा। इन संगठन कुशल नेत्रियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

अरुणा आसफ अली :

आप बंगाल के ब्राह्मण परिवार से थी जो कलकत्ता में स्थायी रूप से बस गया था। इनका मूल नाम गांगुली था। इनके पिता नैनीताल में एक छात्रावास चलाते थे। आप भी उनके साथ ही रहती थी। 1928 ई. में आपका विवाह दिल्ली के प्रसिद्ध वकील आसफ अली के साथ हो गया, जो स्वयं एक अच्छे स्वतंत्रता सेनानी थे। पति का रंग उन पर भी चढ़े बिना न रहा और अरुणा जी स्वतंत्रता संग्राम में उतर पड़ी। महात्मा गाँधी व मौलाना आजाद का आप पर काफी प्रभाव था, परन्तु बाद में जयप्रकाश जी की प्रेरणा से कांग्रेस के समाजवादी गुट में शामिल हो गई।

राजनीति में वह लाल बाल पाल की भाँति गरम विचारों की थीं। वे अंग्रेजों के साथ वार्ता व समझौता नीति के विरुद्ध थीं। सन् 1930 में नमक सत्याग्रह व

1941 में व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया और जेल गईं। 1942 ई. में आप अपने समाजवादी साथियों के साथ भूमिगत हो गईं और पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर दिल्ली, बम्बई तथा कलकत्ता में 1943-1946 तक क्रान्ति रथ का संचालन करती रहीं। सरकारी वारंट होने पर भी वह बन्दी न बनाई जा सकी। 1946 में उनका वारन्ट रद्द हुआ। बाद में महात्मा गाँधी के आदेश से हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए काम करने लगी। कांग्रेस की ओर से दिल्ली नगर निगम की मेयर बनी। शायद वह पहली महिला मेयर थी। अगस्त क्रान्ति में उनके योगदान को सदा याद किया जाता रहेगा।

सुचेता कृपलानी :

आपका जन्म 25 जून, 1908 को एक बंगाली परिवार में हुआ। आपके पिता सुरेन्द्रनाथ मजूमदार पंजाब चिकित्सा सेवा में थे, परन्तु खादी पहनते थे और राष्ट्र प्रेम से ओत-प्रोत थे। सुचेता जी के जीवन पर पिता के राष्ट्रीय विचारों का प्रभाव पड़े बिना न रहा। एम.ए. करके आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में काम करने लगी। वहीं जे.बी. कृपलानी से आपका सम्पर्क हुआ और दोनों 1936 ई. में प्रणय सूत्र में बँध गए। दोनों का नेहरू परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

प्रारम्भ में सुचेता जी क्रान्तिकारी विचारों की थी। बाद में गाँधीजी के प्रभाव से वह गाँधीवादी बन गई, परन्तु क्रान्ति की मूल भावना उनके हृदय से विलग न हो सकी। इसी कारण अगस्त जन क्रान्ति के समय आप भूमिगत हो गई और अरुणा आसफ अली के साथ क्रान्तिकारियों का मार्गदर्शन करने लगीं, परन्तु सन् 1944 ई. में आप पटना में बन्दी बना ली गई। जेल से छूटने के बाद रचनात्मक कार्यों में लगी रहीं। स्वतंत्र भारत में 1963-1971 तक उत्तर प्रदेश की मुख्य मंत्री रही। आपके पति कृपलानी जी यद्यपि कांग्रेस छोड़ चुके थे, परन्तु आप बराबर कांग्रेस में बनी रहीं। राजनीतिक विचारों की भिन्नता होते हुए भी आपके सम्बन्ध मधुर बने रहे। सह अस्तित्व का ऐसा अनुपम उदाहरण ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल सकता। संक्षेप में स्वतंत्रता संग्राम में आपके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

महिलाओं का योगदान :

चटगाँव क्रान्ति से ही स्वतंत्रता संग्राम में हमारी मातायें तथा बहिनें रणचण्डी के रूप में काम करने लगीं। इन सभी का वर्णन हम यथा स्थान पढ़ चुके हैं।

आसाम तथा बंगाल की बहिनों की भूमिका अगस्त क्रान्ति में बहुत ही सराहनीय रही। कनकलता, फलेश्वरी एवं हजारा मातांगिनी जैसी वीरांगनाएँ तो

इस क्रान्ति में शहीद हो गई। इनका संक्षिप्त वर्णन हम पढ़ चुके हैं। इनके अतिरिक्त अनेक बहिनों ने विभिन्न प्रकार से परिस्थिति अनुसार क्रान्ति में अनुपम सहयोग दिया। इसके कारण उन्हें अनेक यातनाएँ उठानी पड़ीं। काशीबाई सिन्धुबाला, माहति, खुदीबाला, सुहासिनी, सुशीला मुखर्जी, रासमणि आदि बहिनों के साथ ब्रिटिश सेना तथा पुलिस ने जो जुल्म ढ़ाए, वह वर्णनातीत हैं, परन्तु हमारी बहिनें आजादी के लिए हर प्रकार का बलिदान करने के लिए सदा तत्पर रहीं। उनके त्याग व कष्ट सहन को कभी आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। हम सभी उनके त्याग तथा बलिदानों के ऋणी हैं।

अगस्त क्रान्ति का इतिहास में स्थान :

सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्र देव के शब्दों में—"अगस्त, 1942 का आन्दोलन भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का सबसे बड़ा जन संग्राम था।" वास्तव में इस कथन में बहुत कुछ सच्चाई है। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारतीय इतिहास में यह पहला अवसर है कि विदेशी शासन के विरुद्ध इतना व्यापक संघर्ष छेड़ा गया।

इस आन्दोलन को कुचलने में ब्रिटिश शासन को पसीना आ गया। लगभग दस हजार देशभक्तों ने आजादी के लिए इस आन्दोलन में अपनी बलि दी। तारिम सरकार ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया इन रिवोल्ट' में लिखा है—"अगस्त क्रान्ति में 25 हजार से ऊपर लोग घायल हुए और मरे।" इसी तरह से आर. दिवाकर ने अपने ग्रन्थ 'सत्याग्रह : इसकी कला एवं इतिहास' में बताया है— "लगभग दो हजार निहत्थे लोग मारे गए। छह हजार से ऊपर जख्मी हुए। लाखों लाठियों से घायल हुए। डेढ़ लाख लोग जेल में डाले गए।" इसी प्रकार डॉ. पट्टाभि सीतारमैया ने अपनी पुस्तक 'कांग्रेस के साठ वर्ष' में लिखा है—"आन्दोलन के बर्बर दमन से इसकी व्यापकता एवं शक्ति का पता चलता है।"

स्वयं होम मैम्बर ने आन्दोलन की व्यापकता को स्वीकार किया है। उसमें अपने वक्तव्य में कहा—"60 स्थानों पर सेना का उपयोग हुआ। 538 अवसरों पर गोलियाँ चली। पाँच स्थानों पर भीड़ को तितर बितर करने के लिए गोले बरसाए गए।" इन सब बातों से सिद्ध होता है कि 1942 की क्रान्ति ने देशव्यापी रूप धारण कर ब्रिटिश शासन को झकझोर दिया। इस क्रान्ति ने स्पष्ट कर दिया कि अब संगीनों से भारत में शासन नहीं चलाया जा सकता।

अगस्त क्रान्ति भारतीयों के स्वाधीनता प्रेम की सच्ची कहानी है। बिना नेतृत्व व कार्यक्रम के अभाव में भी जनता ने कमाल करके दिखाया। यदि संगठित नेतृत्व एवं योजनाबद्ध तरीके से क्रान्ति का संचालन होता तो देश का इतिहास कुछ

और ही होता। इस क्रान्ति में जनता ने निष्काम राष्ट्र-प्रेम से अभिभूत हो जो साहस दिखाया वह हमारे स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है।

पण्डित नेहरू ने अपनी पुस्तक 'मेरी कहानी' में अगस्त क्रान्ति के जनोल्लास का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है—"जनता की तरफ से अचानक असंगठित प्रदर्शन, जिनका अन्त हिंसात्मक झगड़ों व विनाश में हुआ, बहुत बड़ी हथियार बन्द फौजों का विरोध होते हुए भी चलते रहे। इससे जनता की भावनाओं की गहराई का पता चलता है। लोगों ने इस क्रान्ति में हिन्दुस्तान की आजादी के लिए अपना प्रेम जताया, साथ ही विदेशी सरकार के प्रति अपनी नफरत जाहिर की।"

नौ फरवरी, 1943 ई. को महात्मा गाँधी के 21 दिन के अनशन के बाद क्रान्ति में उतार आने लगा, परन्तु विद्रोह की भावना जो लोगों में घर कर गई थी, उसकी अंतिम परिणति स्वतंत्रता प्राप्ति में हुई। चाहे कांग्रेस कार्य समिति ने क्रान्ति के तोड़-फोड़ भाग की निन्दा ही क्यों न की हो, परन्तु इस बात में दो राय नहीं हो सकती कि इस क्रान्ति ने अंग्रेजों को भारत छोड़ने को मजबूर कर दिया। इस क्रान्ति के बाद तो हमारा स्वतंत्रता संग्राम ही समाप्त हो गया। बाद में तो केवल सत्ता हस्तान्तरण के विषयों पर ही विचार करना शेष रह गया। आजाद हिन्द फौज व अगस्त क्रान्ति ने स्पष्ट कर दिया कि न तो सेना और न ही जनता विदेशी शासन के साथ है। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश-शासन के लिए भारत छोड़ने के अलावा और कोई चारा ही नहीं था। क्रान्ति में जो थोड़ा बहुत हिंसक घटनाएँ व तोड़-फोड़ हुईं, उनके लिए ब्रिटिश-शासन की बर्बर दमन नीति ही एकमात्र उत्तरदायी है। प्रकरण की समाप्ति के साथ हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अगस्त, 1947 में जो हमें आजादी मिली, वह सन् 1942 की अगस्त क्रान्ति की ही चरम परिणति थी।

□□

इकाई 14

आजाद हिन्द फौज तथा स्वतन्त्रता की महान् उपलब्धि

यद्यपि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का मुख्य आधार अहिंसात्मक सत्याग्रह ही था, परन्तु ब्रिटिश शासन के दुराग्रह एवं बर्बर दमन नीति के कारण यत्र-तत्र सशस्त्र क्रान्ति के कदम भी उठाए गए, जिनका संक्षिप्त विवरण हम यथा स्थान पढ़ चुके हैं। प्रथम महायुद्ध के समय महान् क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस के प्रयास से 'गदर पार्टी' ने 21 फरवरी, 1915 को देश में एक व्यापक सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई थी, परन्तु समय के पहले ही भेद खुल जाने के कारण क्रान्ति न हो सकी। इसके साथ भी अनेक भारतीय वीरों ने राष्ट्र की मान मर्यादा की रक्षा के लिए हँसते-हँसते फाँसी के फंदे का वरण किया। इसी बीच प्रसिद्ध क्रान्तिकारी ब्रिटिश शासन की आँखों मे धूल झोंक कर जापान पहुँचने में सफल हो गए। यद्यपि उन्होंने वहाँ जापान की नागरिकता स्वीकार कर ली थी, परन्तु उनका हृदय भारत माँ की आजादी से जुड़ा हुआ था।

1 सितम्बर, 1939 ई. में दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया। कहने को तो मित्र राष्ट्रों ने इस युद्ध का उद्देश्य संसार में स्वाधीनता, समानता तथा स्वतंत्रता की रक्षा करना बताया, परन्तु यह सब ढकोसला था। सभी राष्ट्र साम्राज्यवादी लिप्सा धारण किए हुए थे। इसी बीच जैसा कि हमने विगत इकाई में पढ़ा कि कांग्रेस ने अगस्त प्रस्ताव के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता की शर्त के साथ मित्र राष्ट्रों की पूरी मदद की कामना की थी। सहयोग का हाथ भी बढ़ाया, परन्तु अभी इंग्लैण्ड का साम्राज्यवादी नशा उतरा नहीं था। अत: उसने हमारी स्वतंत्रता की माँग को ठुकरा दिया। शान्ति के सभी रास्ते उसने बन्द कर दिए।

इधर दूसरे युद्ध के प्रारम्भिक दौर में जर्मनी ने इंग्लैण्ड को चारों खाने-चित्त कर दिया। आठ दिसम्बर, 1941 को जापान ने भी मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। देखते-देखते दक्षिणी-पूर्वी एशिया से ब्रिटिश सत्ता का अन्त कर दिया। युद्ध के समय हजारों भारतीय सैनिक जो अंग्रेजों की ओर से लड़ रहे थे। जापान के अधिकार में आ गए। इसके अतिरिक्त दक्षिणी-पूर्वी एशिया के अधिकांश

निवासी भारतीय मूल के ही थे। अत: सबने मिलकर जापान की सहायता से भारत को स्वतंत्र कराने का दृढ़ निश्चय कर लिया। इसी संदर्भ में रासबिहारी बोस ने लोगों से सम्पर्क कर 'भारतीय स्वतंत्रता संघ' की स्थापना की। इस 'इन्डिपेन्डेन्स लीग' का मुख्य उद्देश्य इंग्लैण्ड की पराजय से लाभ उठाकर भारत को स्वतंत्र कराना था। इसके साथ ही थाईलैण्ड में सत्यानन्द पुरी के प्रयत्न से वहाँ राजधानी बैंकाक में 'इन्डिपेन्डेन्स लीग' की स्थापना हुई। फिर तो इसकी शाखाएँ दक्षिणी पूर्वी एशिया में सर्वत्र फैल गई। अब यह प्रयास किया जाने लगा कि जापान द्वारा बन्दी बनाए गए भारतीय सैनिकों से आजाद हिन्द सेना का गठन किया जाए। साथ ही अंग्रेजों की ओर से लड़ने वाले भारतीय सैनिकों को भी देश की आजादी के लिए आजाद हिन्द फौज में शामिल होने के लिए प्रेरित किया जाए। इसी उद्देश्य से सबसे पहले प्रीतमसिंह, मोहनसिंह से मिले, कैप्टन मोहनसिंह ने देशभक्ति से प्रेरित हो आत्म-समर्पण कर दिया और भारतीय स्वतंत्रता संघ में सम्मिलित हो गए। अब विधिवत आजाद हिन्द फौज का गठन हुआ, क्योंकि मोहनसिंह के आ जाने से इसकी संख्या तीस हजार तक पहुँच गई।

सन् 1942 ई. में टोकियो में इण्डियन इंडिपेंडेंस लीग की आवश्यक बैठक बुलाई गई, इसमें कैप्टन मोहनसिंह के अतिरिक्त कैप्टन मोहम्मद इकराम खाँ, कर्नल गिल, राघवन मेनन और गोहा शामिल हुए। सत्यानन्द पुरी तथा प्रीतमसिंह भी बैंकाक से इसमें शामिल होने वाले थे, परन्तु वायुयान दुर्घटना में वे बीच में ही शहीद हो गए। इस बैठक में कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय नहीं लिया जा सका। अत: आगामी बैठक बैंकाक में रखी गई।

बैंकाक सम्मेलन (जून, 1942 ई.) :

बैंकाक सम्मेलन बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें 'भारतीय स्वतन्त्रता संघ' के विधिवत पदाधिकारी चुने गए तथा भारतीय स्वतंत्रता की नीति स्पष्ट हो गई। रासबिहारी बोस को सर्व सम्मति से संघ का अध्यक्ष चुना गया। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—



रासबिहारी बोस

"रासबिहारी बोस, कैप्टन मोहन सिंह, राघवन मेनन और जिलानी सुदूर-पूर्व में स्वतंत्रता आन्दोलन के संचालक नियुक्त किए गए। यह भी निश्चय हुआ कि भारत एक अविभाज्य स्वतंत्र राष्ट्र है। जापानी

सरकार भारतीयों को स्वतंत्र नागरिक समझे, उनकी सम्पत्ति न लूटें। यह संघ भारत की स्वतंत्रता के लिए जो युद्ध सामग्री लेगा उसका मूल्य चुकायेगा। आजाद हिन्द फौज का गठन किया जाता है। कैप्टन मोहनसिंह इसके मुख्य सेनापति बनाए जाते हैं। धुरी राष्ट्र आजाद हिन्द फौज को स्वतंत्र राष्ट्र की सेना समझें। भारत माँ के महान् सपूत सुभाषचन्द्र बोस जो इस समय जर्मनी में हैं उनसे अनुरोध किया जाए कि वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की कमान संभालें।'

अपूर्व बलिदान :

स्वतंत्रता लीग ने यह भी निर्णय लिया कि भारत में क्रान्तिकारी साहित्य वितरित कर, वहाँ के क्रान्तिकारी कदमों को तेज किया जाए, ताकि समय आने पर आजाद हिन्द फौज व भारत के क्रान्तिकारी मिलकर ब्रिटिश शासन को एक ऐसा झटका दें कि वह हमेशा के लिए नष्ट हो जाए। इस कार्य के लिए संघ ने 14 क्रान्तिकारी चुने। इनमें से 6 क्रान्तिवीरों की प्रथम टुकड़ी भारत पहुँची। इनमें अब्दुल कादिर, एस.ए. आनन्द, फौजसिंह आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने अपना काम शुरू किया ही था कि पुलिस की गहरी छानबीन से ये पकड़ में आ गए। गिरफ्तार कर इन्हें मद्रास किले में रखा गया। इन पर सम्राट के विरुद्ध षड्यंत्र करने के आरोप लगाये गए। अप्रेल, 1943 ई. के फैसले में इनको फाँसी की सजा दी गई। अन्त में दिसम्बर, 1943 को क्रान्ति-वीर अब्दुल कादिर, सत्यसेन वरधान, एस. ए. आनन्द तथा फौजसिंह हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ गए। यह अपूर्व बलिदान इतिहास में सदा अमर रहेगा।

'भारतीय स्वतंत्रता संघ' महान् देशभक्त रासबिहारी बोस व कैप्टन मोहनसिंह के प्रयास से निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ रहा था। आजाद हिन्द फौज की संख्या भी निरन्तर बढ़ रही थी। नागरिकों के उत्साह का तो कहना ही क्या? वे भारत की आजादी के लिए छटपटा रहे थे और सुभाष बाबू के सबल नेतृत्व की कामना कर रहे थे। जर्मनी से सुभाष बाबू को जापान लाने की योजना बनने लगी। सुभाषजी के नेतृत्व में आजाद हिन्द सेना ने जो कमाल कर दिखाया उसका वर्णन करने के पहले स्वतंत्रता के अनन्य पुजारी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

देशभक्त शिरोमणि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस :

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में सुभाष बाबू का नाम सर्वोपरि है। देश-प्रेम उनके रोम-रोम में समाया हुआ था। मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए वे जीवन की आहुति देने के लिए सदा तत्पर रहते थे। यद्यपि महात्मा गाँधी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा व सम्मान रखते थे, परन्तु कांग्रेस की समझौतावादी, घुटने टेक नीति

से उनका विश्वास उठ गया था। उनके अनुसार निरन्तर संघर्ष व मातृ-अर्चना में अपना रक्त अर्पित करने से ही भारत-स्वतंत्र हो सकता है। कोरे प्रस्तावों से नहीं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे विदेश गए और अंग्रेजों को दिखा दिया कि भारत शांति के साथ-साथ ताकत का भी धनी है। उस महान् अपूर्व देश भक्त की जीवन लीला शक्ति शौर्य का अटूट स्रोत है।



नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

महान् देशभक्त सुभाष बाबू का जन्म 23 जनवरी, शुक्रवार 1897 ई. को कटक नगर में एक धनी कायस्थ परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम राय बहादुर जानकीनाथ बोस और माता का नाम प्रभावती बोस था। पिता एक प्रसिद्ध वकील थे। माता धार्मिक विचारों की एक आदर्श महिला थीं। माताजी की धार्मिक निष्ठा का सुभाष बाबू के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

प्रारम्भिक शिक्षा कटक में हुई। विद्यार्थी जीवन में ही आपको अंग्रेजों की भेदभावपूर्ण नीति से घोर घृणा हो गई थी। उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता प्रेसीडेन्सी कॉलेज में प्रवेश लिया। कॉलेज जीवन से ही आपमें नेतृत्व शक्ति उभरने लगी। आप अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध खड़े होने लगे। जब कॉलेज के अंग्रेज प्रोफेसर 'ओ' भारतीय छात्रों के साथ गाली गलौच से पेश आए तो सुभाषजी ने विद्यार्थियों का नेतृत्व कर 'ओ' के कार्यों का विरोध किया। दूसरी बार एक छात्र को धक्का देकर गिरा देने पर कॉलेज में जबरदस्त हड़ताल हुई। इसके लिए सुभाष बाबू को उत्तरदायी ठहराया और उन्हें कॉलेज से निष्कासित कर दिया गया।

कॉलेज से गाँव पहुँचे और रचनात्मक कार्यों तथा ईश्वर भक्ति में लग गए। कुछ समय बाद आपको स्काटिश चर्च कॉलेज में प्रवेश मिल गया और वहाँ से आपने प्रथम श्रेणी में एम. ए. किया। इसके बाद आपने सेना में भर्ती होने का भी दो बार प्रयास किया, परन्तु आँखों की रोशनी के कारण प्रवेश न मिल सका। इसी बीच आपके पिताजी ने 15 सितम्बर, 1919 को लन्दन में आई.सी.एस. की परीक्षा के लिए भेज दिया। हृदय से वे यह परीक्षा उत्तीर्ण कर ब्रिटिश सरकार की गुलामी नहीं करना चाहते थे, परन्तु पिता की आज्ञा से इस आशा से परीक्षा में बैठे कि वे पास तो होंगे ही नहीं, परन्तु परिणाम आने पर सुभाषजी ने सभी को आश्चर्य में डाल दिया कि वे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण ही नहीं हुए वरन् योग्यता सूची में भी चौथा स्थान प्राप्त किया। सभी ओर से बधाई के तार आने लगे, परन्तु सुभाषजी

कभी भी ब्रिटिश सरकार की गुलामी पसन्द करने वाले नहीं थे। अतः उन्होंने अपने पिताजी को भी सूचित कर दिया कि "मैं दो स्वामियों की एक साथ सेवा नहीं कर सकता। अपने कौटुम्बिक सुखों का विचार करके कभी भी उच्चादर्शों का निर्माण नहीं किया जा सकता।"

देश सेवा की इस प्रकार की लगन तथा निष्ठा का उदाहरण ढूँढ़ने को भी नहीं मिल सकता। अतः आई.सी.एस. से त्याग-पत्र देकर वे कलकत्ता आ गए और उस समय के महान् स्वतंत्रता पुजारी देशबन्धु चितरंजन दास के मार्गदर्शन में काम करने लगे। थोड़े ही दिनों में देश के कार्य में ऐसे जुटे कि वे युवकों के हृदय सम्राट बन गए। देशबन्धु द्वारा स्थापित राष्ट्रीय महाविद्यालय के आचार्य पद पर रहते आपने युवकों में राष्ट्र-प्रेम कूट-कूट कर भर दिया। यही कारण था कि 1921 में प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन का सबसे जबरदस्त विरोध बंगाल में हुआ। महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन को सफल बनाने के लिए प्राण-पण से जुट गए। श्वेत खादी के कपड़ों में उनका व्यक्तित्व इतना मोहक व आकर्षक बन गया कि वे सभी के हृदय में समा गए।

सुभाष की इस चतुर्दिक ख्याति को विदेशी शासन कब सहन करने वाला था। अतः उन्हें 10 दिसम्बर, 1921 को गिरफ्तार कर लिया गया। अपने राजनैतिक गुरु देशबन्धु चितरंजन दास के साथ छह माह तक जेल में रहे। मातृभूमि की स्वतंत्रता की वेदी पर यह उनका प्रथम पुण्य दान था। उस दिन से वे जीवन पर्यन्त मातृभूमि के लिए ही जीवित रहे। जेल से रिहा होने पर सर पी.सी. राय के निर्देशन में बाढ़ राहत कार्यों में जुट गए। आपकी सेवा से बंगाल का बच्चा-बच्चा प्रशंसक बन गया। चितरंजन दास व पं. मोतीलाल के स्वराज्य दल को भी आपका काफी सहयोग रहा। स्वराज्य दल के फारवर्ड पत्र का सम्पादन भार आपके कंधों पर ही था।

जब स्वराज्य दल का अधिकार कलकत्ता कारपोरेशन पर हो गया तो देशबन्धुजी ने अप्रेल, 1922 में सुभाष बाबू को इसका अधिशासी अधिकारी (एग्जिक्यूटिव) अधिकारी नियुक्त किया। इस पद पर आपने इतनी कुशलता से कार्य किया कि सभी दंग रह गए। तीन हजार के स्थान पर डेढ़ हजार रुपये ही वेतन लेने लगे। इनमें से भी एक हजार रुपये गरीब छात्रों की सहायता के लिए दे देते थे। सुभाष बाबू की कर्त्तव्य निष्ठा एवं त्यागमय जीवन ने एक ओर लोगों का हृदय जीत लिया तो दूसरी ओर उनकी लोकप्रियता विदेशी शासन की आँखों का काँटा बन गई। उनको 24 अक्टूबर, 1924 को गिरफ्तार कर बर्मा की माण्डले जेल भेज दिया गया, जहाँ देश के महान् नेता लोकमान्य तिलक व लाला लाजपतराय पहले जेल में रह चुके थे।

माण्डले जेल में उनका स्वास्थ्य काफी खराब हो गया था। सरकार उन्हें सशर्त छोड़ना चाहती थी, परन्तु स्वाभिमानी सुभाष इसे कब स्वीकार करने वाले थे। इसी बीच आपके स्वराज्य दल की ओर से उत्तरी कलकत्ता निर्वाचन क्षेत्र से बंगाल कौंसिल के लिए जेल में रहते हुए ही चुनाव लड़ा और भारी मतों में विजयी हुए। जेल में स्वास्थ्य दिनों-दिन बिगड़ने लगा। अतः घबराकर सरकार ने उन्हें बिना शर्त 1927 ई. में रिहा कर दिया।

इधर देशबन्धुजी के निधन के कारण बंगाल कांग्रेस का सारा भार उन पर आ पड़ा। उन्हीं दिनों कांग्रेस ने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने का निश्चय किया था। अतः बंगाल में बहिष्कार आन्दोलन का संचालन बड़ी सफलता से कर दिखाया। इतना ही नहीं युवा शक्ति को जाग्रत कर कांग्रेस को नव-जीवन प्रदान करने में सुभाष बाबू व पण्डित जवाहरलाल नेहरू का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कांग्रेस मंच से पूर्ण स्वतंत्रता की माँग इन दोनों युवा नेताओं के प्रयत्न से होने लगी। सुभाष बाबू तो इससे भी आगे बढ़ कर स्वतंत्र समानान्तर राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के पक्षधर थे, परन्तु कांग्रेस के नेताओं के यह बात गले नहीं उतरी। उन्होंने 27 मार्च, 1931 के अखिल भारतीय नौजवान सभा में स्पष्ट कर दिया था कि "समझौता परस्त राजनीति से काम नहीं चलेगा। हमें संगठित होकर सरकार के विरुद्ध जबरदस्त क्रान्ति का शंख फूँकना है।"

ऐसे जेल से छूटते समय भी उनका स्वास्थ्य बहुत खराब था। इसके बाद निरन्तर भाग दौड़ से उन्हें क्षय रोग हो गया। इलाज के लिए स्विट्जरलैण्ड गए। वहाँ भी उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के अग्रदूत के रूप में कार्य किया। वहीं पर उनको भारत में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन की सूचना मिली तो उनको बड़ा दुःख हुआ। यहीं से कांग्रेस की समझौता परस्त नीति से उनका विरोध शुरू हो गया। भारत की स्वतंत्रता के लिए अन्य उपायों पर वे गम्भीरता से विचार करने लगे।

भारत सरकार की अनुमति की प्रतीक्षा किए बिना ही वे 1936 में भारत लौट आये, परन्तु ब्रिटिश सरकार इस स्वातंत्र्य वीर को अपना प्रथम श्रेणी का शत्रु मानती थी। अतः भारत भूमि पर पैर रखते ही उन्हें पुनः बन्दी बना लिया गया। जेल में उनका स्वास्थ्य फिर बिगड़ने लगा। सरकार ने मजबूर होकर 1937 में पुनः रिहा कर दिया। इधर 1935 ई. के शासन सुधार के अन्तर्गत कांग्रेस प्रान्तों के लिए चुनाव लड़ने की तैयारी कर रही थी, परन्तु सुभाष पूर्ण स्वतंत्रता के बिना इस अध-कचरे स्वायत्त शासन को संभालने के पक्ष में नहीं थे। उनकी मान्यता थी कि प्रान्तों में सरकार बनाने के बाद कांग्रेस जन क्रान्ति पथ से हट कर पद लोलुप हो जाएगी। इतना ही नहीं इससे साम्प्रदायिक तनाव भी बढ़ेगा, परन्तु कांग्रेस दल ने

उनकी बात नहीं मानी। इससे कांग्रेस की जुझारू शक्ति क्षीण होने लगी और साम्प्रदायिकता का विष भी तीव्रतर होने लगा।

सुभाष बाबू कुछ समय के लिए इंग्लैण्ड चले गए। वहाँ भारतीय समाज में उनका भारी स्वागत हुआ। अपने यूरोप प्रवास काल में उन्होंने यूरोप की राजनीति का गम्भीर सर्वेक्षण किया। इसी बीच इनको हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन का अध्यक्ष चुना गया। वे भारत लौटे, परन्तु कांग्रेस के नेताओं तथा आपके विचारों में रात दिन का अन्तर था। सुभाष बाबू की मान्यता थी कि "जब इंग्लैण्ड संकट में हो तो भारत में जबरदस्त क्रान्ति करके उसे भारत छोड़ने के लिए मजबूर कर देना है, परन्तु महात्मा गाँधी सहित अन्य नेता इंग्लैण्ड को संकट के समय परेशान नहीं करना चाहते थे। वे लोग अंग्रेजी शासन के चक्कर में फँसते रहे और उनकी फूट डालो व राज करो की नीति को न समझ पाए और वे लोग समझौता परस्त नीति पर अड़े रहे।

ऐसी परिस्थिति में त्रिपुरा कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष के चुनाव का प्रश्न पैदा हुआ। अनेक प्रान्त के प्रतिनिधि सुभाषजी को पुनः अध्यक्ष बनाने के पक्ष में थे, परन्तु गाँधीवादी दक्षिण पंथी नेता सुभाषजी को अध्यक्ष के रूप में पसन्द नहीं करते थे। अतः महात्मा गाँधी ने डॉक्टर पट्टाभिसीतारमैया का समर्थन किया। उनके सभी अनुयायी सुभाषजी के विरुद्ध प्रचार में जुट गए, परन्तु सुभाष की लोकप्रियता को कुछ भी आँच न आई, वे भारी मतों से विजयी हुये, लेकिन दक्षिण पंथी नेता सुभाष बाबू के क्रान्तिकारी नेतृत्व में काम करने को तैयार नहीं थे। अतः वे सुभाषजी की कार्यकारिणी से अलग हो गए। इतना सब कुछ होने पर भी महात्मा गाँधी के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धा थी और उन्होंने महात्मा गाँधी द्वारा नामजद कार्यकारिणी को स्वीकार करना मान लिया। समझौते के सभी प्रयास विफल हो जाने पर वे कांग्रेस के अध्यक्ष पद से हट गए और एक अन्य दल 'फारवर्ड ब्लाक' की स्थापना की। यह भारत के इतिहास का दुर्दिन ही था कि सुभाष बाबू जैसे महान् क्रान्तिकारी देशभक्त कांग्रेस से अलग हो गए।

कांग्रेस से अलग होकर वे दत्तचित्त हो कर देश की आजादी की अलख जगाने लगे। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि समझौतावादी नीति राष्ट्र-घातक है। अतः हमें तत्काल विदेशी शासन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देना है। इस सिंहनाद पर ब्रिटिश सरकार ने भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत उन्हें 2 जुलाई, 1940 ई. को बन्दी बना लिया। अब जेल में भारत माता की दासता के बन्धनों को तोड़ने के उपायों पर गम्भीरता से विचार करने लगे। सुभाष बाबू ने सोचा कि इस समय इंग्लैण्ड दूसरे महायुद्ध में बुरी तरह फँसा हुआ है। अतः हमें उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देनी चाहिए, परन्तु इधर कांग्रेस के नेता विदेशी शासन के विरुद्ध

क्रान्ति की घोषणा करने में हिचक रहे थे। यद्यपि उनका प्रभाव हीन सिद्ध हो चुका था।

इन सब परिस्थितियों को देखकर सुभाष बाबू ने जेल से बाहर आकर देश की आजादी के लिए प्रबल संघर्ष करने का विचार किया। अतः उन्होंने सरकार को स्पष्ट चुनौती दी कि यदि "उन्हें जेल से रिहा नहीं किया तो वे आमरण अनशन शुरू कर देंगे। जेल में मेरा बलिदान देश की आजादी का प्रेरणा स्रोत बनेगा।" अनशन से सुभाष बाबू का स्वास्थ्य गिरने लगा। सरकार घबरा उठी। अतः 5 सितम्बर, 1940 ई. को वे रिहा तो कर दिए गए, परन्तु उनके निवास के आसपास जासूसों का जाल बिछा दिया ताकि उनकी प्रत्येक गतिविधि पर कड़ी नजर रखी जा सके।

विदेश जाने की तैयारी :

सुभाष बाबू की मान्यता थी कि इंग्लैण्ड के शत्रुओं से मिलकर एक राष्ट्रीय सेना का निर्माण कर इंग्लैण्ड के विरुद्ध सशस्त्र युद्ध लड़ा जाए, क्योंकि यूरोप में राष्ट्रों की स्वतंत्रता प्राप्ति में विदेशी सहायता का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अतः भारत को भी अपनी स्वतंत्रता के लिए विदेशी सहायता प्राप्त करने में पीछे नहीं रहना चाहिए। इसी योजना को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने एगिन रोड स्थित अपने निवास स्थान पर धार्मिक अनुष्ठान करना शुरू कर दिया और सबसे मिलना जुलना बन्द कर दिया। अपनी दाढ़ी बढ़ा ली। एक मौलवी का वेश बनाकर सरकारी जासूसों की आँखों में धूल झोंककर कलकत्ता से बाहर निकल कर पेशावर पहुँचने में सफल हो गए।

पेशावर में उन्होंने पठान का वेश बनाकर, अपने मित्र रहमत खाँ के साथ काबुल की ओर चल पड़े। वहाँ से वे रूस जाना चाहते थे, परन्तु हिटलर के आक्रमण के कारण रूस इंग्लैण्ड का मित्र बन चुका था। अतः सुभाष बाबू को जर्मनी जाने की योजना बनानी पड़ी। काबुल में वे कितने ही दिन उत्तमचन्द के यहाँ ठहरे। अन्त में इटली के दूतावास के माध्यम से वे 28 मार्च, 1941 को जर्मनी पहुँचने में सफल हुए। बर्लिन में नाजी नेता हिटलर की उनसे भेंट हुई। सुभाष बाबू ने बहुत ही कुशलता से जर्मन सरकार से निम्नलिखित सुविधाएँ प्राप्त कर ली—

1. भारत की स्वतंत्रता के प्रचार-प्रसार के लिए "स्वतंत्र भारत केन्द्र" "फ्री इण्डिया सेन्टर"।
2. भारतीयों के सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र।
3. इतना ही नहीं "स्वतंत्र भारत केन्द्र" को कूटनीतिक दूतावास का दर्जा मिल गया।

स्वतंत्र भारत केन्द्र की प्रथम बैठक एक नवम्बर, 1941 ई. में हुई। इसमें एकत्रित सभी भारतीयों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रतिज्ञा ली। इस बैठक में चार महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए।

1. परस्पर अभिवादन व युद्ध घोष के लिए "जय हिन्द" का नारा स्वीकृत किया गया।
2. राष्ट्रीय वीर स्वतंत्रता संग्राम के अग्र-दूत सुभाषजी को "नेताजी" कह कर पुकारने का निर्णय लिया गया।
3. राष्ट्र-गान के रूप में "जन गण मन अधिनायक।" रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीत को स्वीकार किया गया।"
4. राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्तानी होगी।

नवम्बर, 1941 को बर्लिन स्थित आजाद हिन्द रेडियो से नेताजी के भाषण का प्रसारण हुआ। भारत में अपने प्रिय नेता का भाषण सुन सभी भारतीय खुशी से नाच उठे। इसके बाद आजाद हिन्द मुस्लिम रेडियो भी चलने लगा। जर्मनी की पराजय तक ये केन्द्र काम करते रहे। जर्मनी में ही नेताजी ने 'अन्नावर्ग' युद्ध बन्दी शिविर में भारतीय सैनिकों से सम्पर्क किया और उनके सहयोग से आजाद हिन्द सेना के गठन का काम शुरू हुआ। प्रारम्भ में 600 युद्ध बन्दी इस सेना में शामिल हुए।

यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि नेताजी कभी भी जर्मन सरकार की कठपुतली नहीं बने। वे स्वाभिमानी भारतीय नेता के रूप में हिटलर को प्रभावित करने में सफल हुए। गनपुले ने अपनी पुस्तक 'नेताजी जर्मनी में' नामक पुस्तक में इसका विस्तृत वर्णन किया है।

जापान आगमन :

नेताजी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने जल्दी ही सोच लिया कि भारत की सीमा में लगे पूर्वी एशियाई देशों पर जापान का कब्जा हो गया है। अतः भारत की स्वतंत्रता के लिए वहाँ से सफलतापूर्वक कार्य किया जा सकता है। जर्मनी में जापान के राजदूत जनरल ओशिया नेताजी के व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित थे। अतः जर्मन पनडुब्बी में बैठकर एक भारतीय युवक आबिद हसन के साथ 8 फरवरी, 1943 को जापान के लिए चल पड़े। रास्ता काँटों से परिपूर्ण था, परन्तु आजादी के मतवाले सुभाष देश की आजादी के लिए मृत्यु का आलिंगन करने के लिए भी सदा तत्पर रहते थे। दक्षिणी अफ्रीका के तट से उन्होंने रबर की सुरंग द्वारा जापानी पनडुब्बी में प्रवेश किया। हिन्द महासागर में शत्रु ब्रिटिश के युद्धपोतों से आँख बचाती हुई जापान पनडुब्बी सुमात्रा पहुँची। वहाँ से वायुयान द्वारा जापान पहुँचे। अठारह सप्ताह की साहसिक यात्रा इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगी।

13 जून, 1943 ई. को स्वतंत्रता के महान् पुजारी ने टोकियो में जापान के प्रधानमंत्री से भेंट की। रासबिहारी तथा अन्य भारतीय इनकी बाट बड़ी उत्सुकता से जोह रहे थे। वे अब रासबिहारी के साथ सिंगापुर चल पड़े।

सिंगापुर सम्मेलन :

4 जुलाई, 1943 को सिंगापुर में सुदूरपूर्व में बसे भारतीयों का एक सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—"भारत के स्वतंत्रता प्रेमियो, मैं आपके लिए एक सुन्दर उपहार लाया हूँ। वह उपहार है, भारत की जीती जागती तस्वीर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जो भारत देश की महान् विभूति हैं।" अतः आज मैं इण्डियन इंडिपेंडेंस लीग (भारतीय स्वतंत्र संघ) का सारा भार सुभाष बाबू को बड़े स्नेह व उत्साह से अर्पित करता हूँ।"

सुभाष बाबू ने रासबिहारी बोस के प्रति आभार प्रकट करते हुए, उपस्थित जन समूह को उद्‌बोधन किया—"आज का समय भारत की स्वतंत्रता के सूर्योदय का क्षण है। हम इसका लाभ उठाने के लिए कृत संकल्प हैं। अंग्रेजी शासन में भारत का आर्थिक, सामाजिक, साँस्कृतिक व नैतिक पतन चरम सीमा पर पहुँच गया। इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए हम स्वतंत्रता के महान् संग्राम में कूद पड़ें और रक्त की अंतिम बूँद तक हम आजादी के लिए लड़ते रहें।" इसी अवसर पर नेताजी ने ऊँचे स्वर में कहा—"तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।"

नेताजी के उद्‌बोधन से लोगों के हृदय में राष्ट्र प्रेम हिलोरें मारने लगा देखते-देखते ही हजारों लोगों ने अपने रक्त से हस्ताक्षर करके नेताजी के चरणों पर प्रतिज्ञा पत्र रख दिया कि "भारत की स्वतंत्रता के लिए हम सहर्ष अपने प्राणों की बलि दे देंगे।"

भावात्मक एकता व त्याग का अद्‌भुत दृश्य :

नेताजी का चरित्र इतना विशाल एवं उज्ज्वल था कि हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख उनकी कमान के नीचे देश के लिए मर मिटने को तैयार हो गए। धन की आवश्यकता पड़ी तो नेताजी के जन्म दिवस पर उनको सोने से तोला गया। इसमें बंगाली, गुजराती, मद्रासी एवं महाराष्ट्रियन रमणियों ने अपने प्रियतम स्वर्ण आभूषण तुलादान में दे दिए। इस तुलादान में मुसलमानों का अधिक योगदान रहा।

रंगून के व्यापारी हबीब तो नेताजी से इतने प्रभावित थे कि नेताजी की पहनाई हुई माला को एक करोड़ रुपये में खरीदकर स्वयं को फकीर बना लिया। हबीब भाई हमारे स्वतंत्रता संग्राम के भामाशाह सिद्ध हुए। वर्मा के अनेक लोगों ने आजादी की लड़ाई को सफल बनाने के लिए अपना सब कुछ अर्पण कर दिया। इसमें चेट्टीयर लोगों का अधिक योगदान रहा। मुसलमान भाइयों ने भी नेताजी के साथ चेट्टीयर सम्प्रदाय के मन्दिर में प्रवेश किया।



आजाद हिन्द सेना के अधिकारियो के मध्य

आजाद हिन्द अस्थायी सरकार की ओर से बर्मा तथा रगून मे स्थान स्थान पर स्तम्भ लगाये गए जिन पर निम्नलिखित बातें अकित थी :—

प्रतिज्ञा स्तम्भ

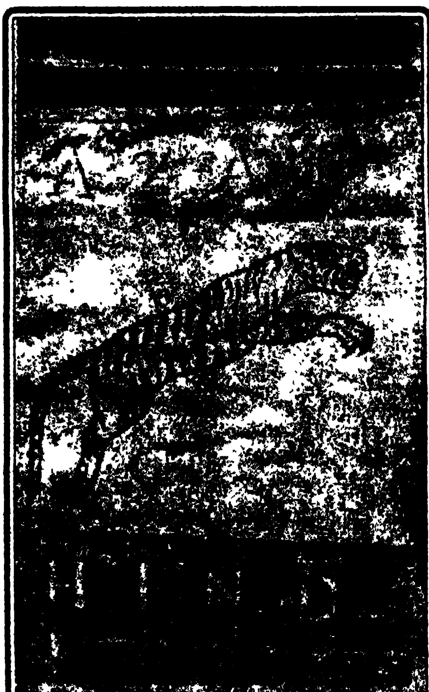
जय हिन्द	:	हमारा राष्ट्रीय अभिवादन
चर्खा अंकित तिरंगा झण्डा	:	हमारा राष्ट्र-ध्वज
गुरुदेव टैगोर का "जन मन गण" गीत	.	हमारा राष्ट्र गान
शेर अंकित ध्वज		हमारी सेना का निशान
चलो दिल्ली	:	हमारा युद्ध घोष
विश्वास एकता-बलिदान		हमारा मूल मन्त्र।

प्रयाण-गीत

कदम कदम बढ़ाये जा, खुशी के गीत गाए जा।
यह जिन्दगी है कौम की, तू कौम पर लुटाये जा।
तू शेरे हिन्द आगे बढ़, मरने से फिर तू न डर।
आसमान तक उठा के सर, जोशे वतन बढ़ाये जा।
हिम्मत तेरी बढती रहे, खुदा तेरी सुनता रहे,
जो सामने तेरे चढ़े तो खाक में मिलाये जा
चलो दिल्ली पुकार के कौमी निशान सम्भाल के।"

आजाद हिन्द सेना की रणभेरी :

आवश्यक साधन जुटाकर नेताजी ने जापान सरकार से यह वचन ले लिया कि "भारत भूमि पर जापानी झण्डा कभी नहीं फहराएगा। तिरंगा झण्डा ही फहराएगा। सबसे पहले भारत में आजाद हिन्द फौज ही प्रवेश करेगी। आजाद हिन्द सेना के चार रेजीमेन्ट बनाए गए— (1) गाँधी रेजीमेन्ट, (2) नेहरू रेजीमेन्ट, (3) सुभाष रेजीमेन्ट एवं (4) लक्ष्मी रेजीमेन्ट। कुल मिलाकर इन रेजीमेन्टों में 50 हजार भारतीय सैनिक थे। नवम्बर, 1943 को सुभाष रेजीमेन्ट तोपिंग से रेलमार्ग द्वारा रंगून के लिए चल पड़ी। भारतीय सैनिकों में इतना उत्साह था कि जो रास्ता जापानी सेना पाँच दिन में तय करती थी, उसे भारतीय सेना तीन दिन में ही तय कर लेती थी।



आजाद हिन्द सेना का निशान (राज्यचिह्न)

चार जनवरी को नेताजी भी रंगून पहुँचे और उन्होंने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के नेता बहादुरशाह जफर की मजार पर जाकर उन्हें भाव भीनी श्रद्धांजलि अर्पित की और स्वतंत्रता संग्राम में सब कुछ न्यौछावर करने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद नेताजी ने आजाद हिन्द के सैनिकों को स्वतंत्रता संग्राम में अपने प्राणों की आहूति देने के लिए ललकारा। चार जनवरी को ही बटालियन एक ट्रेन द्वारा रंगून से 'प्रोम' की ओर

चल पड़ी। बटालियन दो व तीन माण्डले की ओर चल पड़ी। उस बटालियन ने सातवीं ब्रिटिश-सेना को 'माऊंगदा' व 'भूतिवांग' क्षेत्र में घेर कर उसे समूल नष्ट कर दिया। इस सेना का नेतृत्व कर्नल मिश्रा व मेजर मेहरदास कर रहे थे। इस युद्ध में लैफ्टिनेंट हरिसिंह अकेले ने ही सात अंग्रेज सैनिकों को धराशायी कर 'शेरे हिन्द' का पदक प्राप्त किया। बिशनपुर क्षेत्र के कर्नल मलिक ने अद्भुत शौर्य का परिचय दिया और अपनी सेना के साथ इम्फाल के निकट पहुँच गए।

कर्नल मलिक ने मणिपुर राज्य के उस क्षेत्र का शासन सम्भाला जिसे भारतीय सेना ने जीता था। कोहिमा युद्ध में मेजर मगहरसिंह के नेतृत्व में विजय प्राप्त हुई। इस युद्ध में कैप्टन सोहनसिंह व गुरुवचनसिंह शहीद हुए। कैप्टन मुहम्मद हुसैन तथा लैफ्टिनेंट आसिफ ने इस युद्ध में अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन किया।

उधर बटालियन नं. एक मेजर 'रतूरी' के नेतृत्व में अनेक कठिनाइयों को पार करती हुई मार्च, 1944 को 'काकटा' तक पहुँच गई और वहीं से ब्रिटिश-भारत पर हमला करने की योजना बनाई गई। कलानदी के घाटी में शत्रु सेना से भयंकर युद्ध हुआ। 250 शत्रु सैनिक मारे गए और 14 भारतीय सैनिक वीर गति को प्राप्त हुए। शत्रुओं को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। इसी बीच जापानी सेना भी आ पहुँची और दोनों सेनाओं ने संयुक्त रूप से आगे बढ़ना शुरू किया। भयंकर युद्ध के बाद 'पालेटवा' और उसके बाद 'इलेटेम' स्थानों पर भारतीय सेना का अधिकार हो गया।



नेताजी आजाद हिंद सेना के सर्वोच्च सेनापति के वेश में

थोड़े विश्राम के बाद 'इलेटेम' से 40 मील पश्चिम की ओर भारतीय सीमा में प्रवेश करने के लिए सैनिक चल पड़े। मई, 1944 को मेजर रतूरी के नेतृत्व में मौदोक पर धावा बोल दिया गया। शत्रु सेना भाग खड़ी हुई। भारी मात्रा में भोजन सामग्री मिली जिसकी सेना को अत्यन्त आवश्यकता थी।

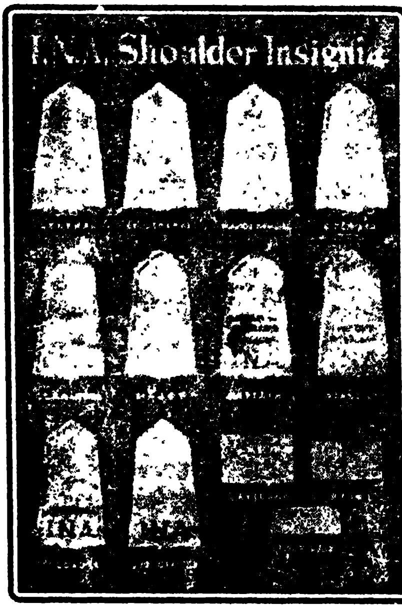
वह कितना स्वर्णिम अवसर था जब भारतीय रणबांकुरों ने अपने शौर्य से भारत-भूमि पर अधिकार किया। सैनिकों ने भारत भूमि की पवित्र रज को अपने

सिर पर लगाया और स-सम्मान तिरंगा झण्डा फहराया। आजाद हिन्द सेना के गीत से सारा वायुमण्डल गूँज उठा। सभी ने मिलकर भारत महिमा का यह गीत गाया—

"शुभ सुख चैन की बरखा बरसे भारत भाग है जागा।
पंजाब सिंध गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कल बंगा।
चंचल सागर, विंध्य, हिमालय, नीला जमुना गंगा।
तेरे नित गुण गायें, तुझ से जीवन पायें।
सब तन पाये आशा।
सूरज बनकर जग में चमके भारत भाग सुभागा।
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय हो।
भारत नाम सुभागा।
सुबह सवेरे, पंख पखेरू तेरे ही गुन गाएँ।
रस भरी भरपूर हवा में जीवन में ऋतु लाएँ।
सब मिलकर हिन्द पुकारे, जय आजाद हिन्द के नारे।
प्यारा देश हमारा।
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा।
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय हो,
भारत नाम सुभागा।
सबके दिल में प्रीत बसाये, तेरी मीठी वाणी।
हर सूबे के रहने वाले, हर मजहब के प्राणी।
सब भेद और फर्क मिटा के, सब गोद में तेरी आके,
गूँथे प्रेम की माला
सूरज बनकर जग में चमके भारत नाम सुभागा।
जय हो जय हो जय हो, जय जय जय जय हो,
भारत नाम सुभागा।

मौदांक पर अधिकार के बाद आस-पास के क्षेत्रों में सैनिक चौकियाँ बिठा दी, परन्तु भोजन सामग्री की कमी व ब्रिटिश सेना के प्रत्याक्रमण के कारण कैप्टन सूरजमल के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी 'मौदांक' की रक्षा के लिए छोड़ भारतीय सेना 'पटेलवा' पहुँची। वहाँ खाद्य सामग्री प्रचुर मात्रा में थी।

कैप्टन सूरजमल के नेतृत्व में मई, 1944 से सितम्बर, 1944 तक 250 सैनिकों की छोटी सी टुकड़ी प्राण-प्रण से मौदांक में हमारे राष्ट्रीय ध्वज की रक्षा के लिए डटी रही। [illegible] लैफ्टिनेंट अमरसिंह के नेतृत्व में इन [illegible] अद्भुत शौर्य का परिचय [illegible]



आजाद हिंद सेना के सैनिक अधिकारियों के अधिचिह्न

कैप्टन काबुलसिंह व कुछ सैनिक वीर गति को प्राप्त हुए, परन्तु भोजन सामग्री की कमी व वर्षा के कारण भारी दल-दल हो जाने के कारण इम्फाल मोर्चे से भारतीय सेना को रंगून लौटना पड़ा। उधर ब्रिटिश सेना ब्रह्मा को पुनः लेने के लिए पूरी तैयारी में जुटी थी। जापानी सेना पीछे हट रही थी, परन्तु आजाद हिन्द सेना ने 'हाका फालम' पर्वतीय क्षेत्रों में जापानो सेना से मोर्चा खुद ने सम्भाला। हाका फालम पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण वहाँ सर्दी काफी अधिक थी। भारतीय सेना के पास ऊनी कपड़ों का भारी अभाव था, परन्तु भारतीय वीर शत्रु से मोर्चा लेते रहे। मेजर जनरल शाहनवाज खाँ के निर्देश से लैफ्टिनेंट सिकन्दर खाँ ने शत्रु सेना से यहाँ मोर्चा लिया और उसे यहाँ से बुरी तरह से खदेड़ दिया गया।

हाथ मोर्चे पर मेजर महबूब अहमद, मेजर रामसिंह तथा कैप्टन अमरीकसिंह ने अद्भुत शौर्य का परिचय दिया और शत्रु शिविर पर टूट पड़े। ब्रिटिश सैनिक शिविर क्लांग पर तिरंगा झण्डा फहरा दिया। यहीं से ब्रह्मपुत्र नदी को पार कर बंगाल में घुसने की योजना बनी। जापानी सेना प्रशान्त क्षेत्र में फंस जाने के कारण इस क्षेत्र से हटती जा रही थी, परन्तु भारतीय सेना मोर्चे पर बराबर डटी रही और कोहिमा क्षेत्र तक पहुँच गई। भोजन व वस्त्रों की कमी के होते हुए भी महाराणा प्रताप की भाँति घास की रोटियाँ खाकर भी रणक्षेत्र में स्वाधीनता के लिए डटे रहे। जापानियों के इस आश्वासन के बाद कि 'उखरूल' से संगठित होकर पुनः इम्फाल पर आक्रमण किया जाएगा, पीछे हटे।

अद्भुत शौर्य :

अगस्त के मध्य में भोजन की कमी व वर्षा के प्रकोप के कारण लैफ्टिनेंट रणजोधसिंह को भी 'हाका' क्षेत्र से पीछे हटना पड़ा, परन्तु भारतीय वीरों ने अपने अद्भुत शौर्य की छाप वहाँ छोड़ी। मेजर जनरल कियानी के नेतृत्व में आजाद हिन्द सेना के करतब से जापानी सेनापति प्रभावित हुए बिना न रहा। मेजर

प्रीतमसिंह ने इम्पाल आक्रमण के समय गुरिल्ला युद्ध में जो रणकौशल दिखाया वह इतिहास में हमेशा अमिट रहेगा। शत्रु सेना से घिरे जाने पर भी लैफ्टिनेंट मनसुखलाल ने शत्रु सेना को पीछे धकेल कर 'गाँधी रेजीमेन्ट' को सर्वनाश से बचाया। लैफ्टिनेंट अजैबसिंह व लैफ्टिनेंट राव की सेना ने शत्रु सेना को भारी हानि पहुँचाई।


मेजर जनरल शाहनवाज़

इसी बीच आजाद हिन्द सेना के साथ बड़ा धोखा हुआ। मेजर वी. जे. यस गरेवाल जो गाँधी रेजीमेन्ट के उप-सेनापति के रूप में काम-कर रहे थे, शत्रु से जा मिले। हम हमेशा अपने ही लोगों की धोखाधड़ी से मात खाते रहे, परन्तु यहाँ उल्लेखनीय है कि मेजर आबिद हुसैन ने पीछे से शत्रु सेना पर आक्रमण कर गाँधी रेजीमेन्ट को शत्रु सेना से बचा लिया। इस युद्ध में लैफ्टिनेंट रामाराव तथा कैप्टन ताज मोहम्मद ने अद्‌भुत वीरता प्रदर्शित की।

जापान के बर्मा मोर्चे से निरन्तर हटते जाने पर भी आजाद हिन्द सेना मोर्चों पर सर्वदा डटी रही। भोजन व वस्त्र की कमी होने पर भी 150 मील तक भारतीय क्षेत्र में प्रवेश कर लेना कोई कम महत्त्व की बात नहीं थी। इम्फाल से तो हमारी सेना केवल दो मील दूर रह गई थी। कई बार तो ब्रिटिश-सेना को इम्फाल छोड़ने पर भी विचार करना पड़ा, परन्तु कोहिमा क्षेत्र की सड़कों को आजाद हिन्द सेना ने तोड़ दिया। अतः उनका हटना दुश्कर हो गया। नेताजी के आदेशानुसार इम्फाल पर आजाद हिन्द सेना को अधिकार करना था, परन्तु वहाँ बर्मा पर पुनः आक्रमण करने के लिए डेढ़ लाख सेना एकत्रित थी, परन्तु जापानी वायु सेना का संरक्षण न मिलने के कारण आजाद हिन्द सेना उस ओर न बढ़ सकी। शत्रु बराबर हवाई हमले कर रहे थे। अतः इम्फाल पर अधिकार करने का हमारा स्वप्न पूरा न हो सका। इम्फाल पर हमारा अधिकार हो जाता तो हमें प्रचुर मात्रा में शस्त्र व भोजन सामग्री उपलब्ध हो जाती।

जापान निरन्तर पीछे हटता जा रहा था। माण्डले पर शत्रुओं का अधिकार हो गया था। नेताजी अपनी सैनिक टुकड़ी सहित उस समय मेकतिला में ठहरे हुए थे। मेकतिला ब्रह्मा का प्रमुख यातायात केन्द्र था। इधर जब शत्रु सेना बढ़ने लगी तो जापानियों ने नेताजी से अनुरोध किया—"इस समय आपका यहाँ ठहरना उचित नहीं है," परन्तु नेताजी ने राजपूती शौर्य के अनुरूप उत्तर दिया—"चाहे जापान शस्त्र डाल दे, परन्तु हम मातृभूमि के लिए लड़ते हुए अपने प्राणों की

आहुति दे देंगे।" मेजर जनरल शाहनवाज साहब ने इस संकट की घड़ी में वही कार्य किया जो 'हल्दीघाटी' युद्ध में प्रताप की जीवन रक्षा के लिए सादड़ी के झाला सरदार मानसिंह ने किया था। शाहनवाज साहब ने आगे बढ़कर नेताजी से कहा—"आपका जीवन केवल आपका नहीं है, आप भारत की पवित्र धरोहर हैं, जो हमारे पास है, मैं उस मूल्यवान धरोहर को जोखिम में नहीं डाल सकता। अत: आप देश हित में रंगून चले जाने की कृपा करें।"

सभी के आग्रह पर नेताजी रंगून पहुँचे। वहीं पर दु:खद समाचार मिला कि दूसरी डिवीजन के अधिकारी अंग्रेजों से जा मिले, परन्तु शाहनवाज खान ने नेताजी को पूर्ण विश्वास दिलाया कि "चाहे कैसी भी परिस्थिति हो भारत की मान मर्यादा की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहूति देने में पीछे नहीं रहेंगे।" नेताजी से यह अनुरोध कर मेजर जनरल स्वयं 'पोपा' पहुँचे और मेजर ढिल्लन को आदेश दिया कि शत्रु को इरावदी नदी को पार करने से रोका जाए। मेजर 'ढिल्लन' की सैनिक टुकड़ी ने ब्रिटिश सेना पर धावा बोल दिया। घमासान युद्ध हुआ। 'दिल्ली चलो' व 'नेताजी के जय घोष' से वायुमण्डल गूँज उठा। कैप्टन 'खान मुहम्मद' ने इस संघर्ष में अपने अद्भुत शौर्य का परिचय दिया। कम से कम दो सौ अंग्रेज सैनिक मारे गए और चालीस आजाद हिन्द के सैनिक वीर गति को प्राप्त हुए। शत्रु का यह संशय हवा में उड़ गया कि आजाद हिन्द सेना समाप्त हो गई है।

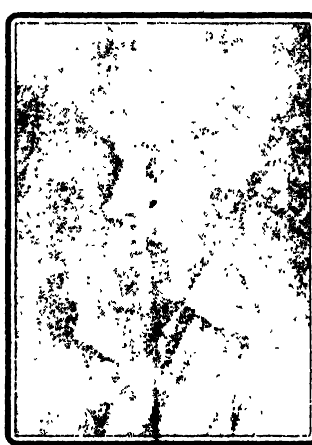
'काबयू' मोर्चे पर तैनात कैप्टन बागड़ी की सेना ने शत्रु से खूब लोहा लिया और जापान्यियों की रक्षा की। 'पोपा' की रक्षा के लिए कर्नल सहगल की पैदल सेना पहुँची। थोड़े ही दिन बाद सहगल व शाहनवाज खान भी वहाँ पहुँच गए, परन्तु उस समय तक बर्मा युद्ध की स्थिति काफी बदल चुकी थी। बर्मा सेना जिसे जापान ने ही तैयार किया था, बर्मा को स्वतंत्र घोषित कर जापानियों से भिड़ने लगी। ऐसी कठिन स्थिति में 'पोपा' की रक्षा के लिए आजाद हिन्द सेना ही डटी रही। शत्रु ने तीन ओर से हमारी सेना पर आक्रमण किया। युद्ध काफी लम्बे समय तक चला। शस्त्रों की कमी होते हुए भी शत्रुओं के छक्के छुड़ाते रहे।

अद्भुत शाका (बलिदान) :

बीस अप्रेल को जब कैप्टन बागड़ी बटालियन सहित एक गाँव में विश्राम कर रही थे तो शत्रु सेना के टैंकों ने उन्हें घेर लिया। बागड़ी के सैनिक दल के पास शस्त्रों की भारी कमी थी। अत: उस समय उनके सामने दो ही विकल्प थे—लड़ते-लड़ते वीर गति को प्राप्त हों या शत्रु के सामने आत्मसमर्पण कर दें, परन्तु भारतीय वीरों ने आत्मसमर्पण के स्थान पर लड़ते-लड़ते वीर गति को प्राप्त होना ही ठीक समझा। इसी दृढ़ निश्चय के साथ हथ गोले व पेट्रोल से भरी बोतलों को

लेकर भारतीय वीर शत्रु सेना पर टूट पड़े। बागड़ी सहित सभी सौ स्वातंत्र्य वीरों ने रण-क्षेत्र में शहीद होकर राजपूतों की शाका पद्धति को जीवित कर दिखाया। शाका उसे कहते हैं जब विजय की आशा नहीं रहती है तो जो भी साधन अपने पास हों, उसे लेकर पूरी ताकत से शत्रु पर टूट पड़ना। चाहे इसका परिणाम बलिदान ही क्यों न हो ?

ऐसी कठिन परिस्थिति में कर्नल सहगल तथा शाहनवाज खान पोपा से मागवे पहुँचे। मागवे पर भी शत्रु का धावा होने वाला था। इसी बीच जर्मनी ने हथियार डाल दिए। अत: आजाद हिन्द सेना के लोगों की हिम्मत टूटने लगी। कुछ ने तो अंग्रेजों की जीत निश्चित मान कर आत्म-समर्पण भी कर दिया। हिरोशिमा व नागासाकी पर परमाणु विस्फोट के बाद जापान का आत्मसमर्पण भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था। मेजर जनरल शाहनवाज खान ने इन सभी परिस्थितियों को अच्छी तरह से भाँप लिया था। उनके पास रसद भी बहुत कम थी। अत: उन्होंने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को एकत्रित कर बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहा— ''दो वर्ष से भी अधिक समय से जो आजादी की जंग हम लड़ रहे हैं, वह आगे भी जारी रहेगी, परन्तु फिलहाल युद्ध करने से कोई लाभ नहीं है। आप लोग आत्म-समर्पण कर भारत पहुँचें और हमें देश की रक्षा के लिए प्रयत्न करना चाहिए। आपने जो युद्ध में शौर्य प्रदर्शित किया और मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया वह इतिहास में अमिट रहेगा। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं पचास वीरों के साथ लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त होना चाहता हूँ। मेरे पास रसद की कमी से पचास से अधिक सैनिक साथ नहीं ले सकता।''


कैप्टन ढिल्लन

यह कहकर कर्नल ढिल्लन मेजर मेहरदास सहित 50 चुने हुए सैनिकों को लेकर 'पेगूजामा' पहाड़ के अन्दर भावी गुरिल्ला युद्ध के लिए शाहनवाज ने अपने प्रिय सैनिकों से विदा ली, परन्तु वहाँ भी शत्रु सेना ने उनको चारों ओर से घेर लिया। रसद खतम होती जा रही थी। ऐसी परिस्थिति में तीन विकल्पों पर विचार किया गया। एक के अनुसार परस्पर गोली मार कर अपने आपको मिटा दें। दूसरा विकल्प यह था कि शत्रु पर आक्रमण कर लड़ते-लड़ते वीर गति को प्राप्त करें, तीसरा विकल्प यह था कि आत्म-समर्पण कर युद्ध बन्दी बनें। यदि अंग्रेज कोर्ट मार्शल करके हमें गोली मार देंगे तो उससे हमारा बलिदान देश की आजादी के

लिए रंग जरूर लाएगा और भारत में अंग्रेजी राज के विरुद्ध घृणा फैल जाएगी। अत: सभी सैनिकों ने तीसरे विकल्प को ही ठीक समझ आत्म-समर्पण कर दिया। अत: सभी युद्ध बन्दी पेगू जेल में चले गए।

नेताजी का महाप्रयाण :

आजाद हिन्द सेना के लिए ये घोर विपत्ति का समय था। शत्रु सेना रंगून के लिए पहुँच गई थी। अत: नेताजी का रंगून रहना खतरे से खाली नहीं था। अत: जापानी सेनापति ने नेताजी से अनुरोध किया कि आप रंगून से बैंकाक चले चलें, परन्तु नेताजी ने स्पष्ट कर दिया—"जब तक झाँसी रेजीमेन्ट मोर्चे से नहीं लौट आती है, मैं रंगून नहीं छोड़ूँगा। जब झाँसी रेजीमेन्ट की सुरक्षा का पक्का प्रबन्ध हो गया तो नेताजी रंगून से चल पड़े। रास्ते में उनको कितने ही दिन पैदल चलना पड़ा। इस तरह से अनेक कठिनाइयों को पार करते हुए नेताजी जून के प्रथम सप्ताह में बैंकाक पहुँचे। इससे पहले उन्होंने सिंगापुर से रवाना होने के पहले— 'भारत के नेताओं' को स्पष्ट बता दिया था कि "विभाजन को कभी स्वीकार न करें। विजय के बाद भी हमारा शत्रु इंग्लैण्ड इस लायक न रहेगा कि वह हम पर राज कर सके। निरन्तर संघर्ष जारी रखें। बावेल के प्रस्ताव को स्वीकार न करें।"

इसी बीच कर्नल इनायत कियानी ने नेताजी को बताया कि रूस ने भी जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है। वह मंचूरिया में तेजी से बढ़ रहा है। जापान ने भी 15 अगस्त, 1945 को विधिवत् शस्त्र डाल दिए। अत: नेताजी को जापानी जहाज में रंगून से पुन: बैंकाक जाना पड़ा। बैंकाक में नेताजी के दर्शनों के लिए लोगों का ताँता लग गया। वहाँ से 17 अगस्त को नेताजी सैगाँव पहुँचे। सैगाँव से जापानी जहाज में वे तेहाकू (फारमोसा) पहुँचे। साथ में कर्नल हबीबुर रहमान थे। वहाँ से जहाज ने टोकियो के लिए उड़ान भरी थी कि भयंकर आवाज के साथ विमान नीचे गिर पड़ा। कर्नल हबीबुर रहमान के कथनानुसार नेताजी के सिर पर भारी चोट लगी। पेट्रोल बिखर गया। बाहर निकलते समय नेताजी के कपड़ों में आग लग गई। घायलावस्था में ही उन्हें टोकियो ले जाया गया, जहाँ उनकी अस्पताल में मृत्यु हो गई। इस तरह से भारत के महान् नेता व स्वतंत्रता संग्राम के उद्भट योद्धा ने देश के लिए अपने प्राण



कैप्टन लक्ष्मी

न्यौछावर कर दिये, परन्तु अभी नेताजी की मृत्यु एक रहस्य बनी हुई है और लोगों की मान्यता है कि जहाज के विस्फोट से नेताजी की मृत्यु नहीं हुई।

नेताजी का इतिहास में स्थान :

भारत की परतंत्रता के बाद देश की आजादी के लिये इतने बड़े पैमाने पर सशस्त्र युद्ध छेड़ने का श्रेय नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को ही है। उनके रोम-रोम में देश-प्रेम समाया हुआ था। आध्यात्मिकता, वीरता, शौर्य, साहस, दूरदर्शिता, राजनैतिक सूझबूझ व अद्‌भुत नेतृत्व शक्ति उनके चरित्र की मुख्य विशेषताएँ हैं। भारतीय राजनीति में वे ऐसे एक मात्र नेता थे, जिन्हें सभी सम्प्रदाय के लोग आदर की दृष्टि से देखते थे। आजाद हिन्द फौज के सैनिकों की व दानदाताओं की सूची देखने से स्पष्ट विदित होता है कि मुसलमान भाइयों का उनमें अटूट विश्वास था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए 23 जनवरी, 1948 को नेताजी के जन्म दिवस पर एक सभा में कहा था—"मुझे किसी की वर्षगाँठ मनाने में कोई यकीन नहीं, लेकिन यह वर्षगाँठ ऐसे व्यक्ति की है, जो राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रतीक है और जिसके काम के बारे में हमेशा लोग याद रखेंगे कि इस आदमी ने असलियत में दिखा दिया कि हिन्दू-मुसलमान व सिक्ख किस तरह से मिल जुलकर रह सकते हैं और किसी काम को पूरा करने के लिए अपनी जिन्दगी न्यौछावर कर सकते हैं तथा किस तरह अखण्ड भारतीयता की भावना को निर्मित कर सकते हैं।"

उनका किसी से कोई विरोध नहीं था। महात्मा गाँधी के प्रति तो उनकी अपार श्रद्धा थी। सिंगापुर में 2 अक्टूबर, 1943 को गाँधी जयन्ती के अवसर पर उन्होंने कहा था—"यदि गाँधीजी 1920 ई. के स्वतंत्रता संग्राम के नये तरीके को लेकर भारत न आते तो भारत अब भी ज्यों का त्यों पतित ही रहता। भारत में जन जागृति का श्रेय पूज्य बापू को ही है।"

जीवन भर वे सत्य व न्याय के लिए लड़ते रहे। अंग्रेजों की कुटिल व अन्यायपूर्ण नीति से उनको बहुत ही घृणा थी। हमारे अन्य राष्ट्रीय नेता अंग्रेजों की कुटिलता को न समझकर उनके साथ समझौता नीति अपनाते रहते थे। बस यही उनका कांग्रेस के नेताओं से मतभेद का कारण था। अत: अंग्रेजों की कुटिल नीति से ही भारत-विभाजन का शिकार हुआ।

अंग्रेजों को सेना के बल पर भारत पर राज करने का बड़ा घमण्ड था, परन्तु भारतीय सैनिकों को आजाद हिन्द फौज के रूप में उनके विरुद्ध खड़ी कर उनके इस अभियान को चकनाचूर कर दिया। बाद में तो यही प्रश्न रह गया था कि सत्ता का हस्तान्तरण कैसे हो? अत: भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नेताजी

सुभाषचन्द्र बोस का योगदान सर्वोपरि है। जब तक भारत राष्ट्र जीवित है, वे समूचे राष्ट्र के आराध्य देव बने रहेंगे। संक्षेप में नेताजी में स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिकता, महाराणा प्रताप की वीरता, कष्ट सहिष्णुता और स्वातंत्र्य प्रेम, छत्रपति शिवाजी की संगठन शक्ति तथा रण-कौशल एवं महान् सम्राट अकबर की दूरदर्शिता एवं धार्मिक उदारता का आश्चर्यजनक सम्मिश्रण मूर्तिमान हुआ था।'' देशभक्तों में तो वे शिरोमणि थे ही।

आजाद हिन्द फौज का महत्त्व :

भारत की स्वतंत्रता के लिए चार हजार सैनिक तो पहले ही अंग्रेजों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो गए थे। लगभग 25 हजार सैनिक युद्धबन्दी के रूप में भारत लाए गए। ये सैनिक स्वतंत्रता के महान् पुजारी के रूप में माने जाने लगे। भारत की जनता इनके देश-प्रेम पर मुग्ध थी। इनको बन्दी बनाए जाने के विरोध में देश भर में प्रदर्शन होने लगे। 21 नवम्बर, 1945 ई. में कलकत्ता में उग्र प्रदर्शन हुआ। ट्रामें जलाई गईं। अनेक पुलिसकर्मी मारे गए तथा छात्र नेता रामेश्वर बनर्जी पुलिस की गोली से शहीद हुए। सैनिकों की रिहाई के लिए ज़ो प्रदर्शन हुए, वे राष्ट्रीय एकता से परिपूर्ण थे। इसमें कांग्रेस, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग आदि सभी दल शामिल थे। प्रदर्शन में जो लोग घायल हुए उनके लिए रक्तदान की होड़ सी लग गई थी।

लाल किले में मुकदमा :

आजाद हिन्द फौज के प्रति जनता की असीम सहानुभूति देख कर ब्रिटिश शासन डगमगाने लगा। उसने देखा कि यदि सैनिक अनुशासन को लेकर कठोर नीति अपनाई तो देश में ऐसा विस्फोट होगा कि ब्रिटिश राज के चिथड़े बिखर जाएँगे। इतना ही नहीं भारत का विभाजन कर उसे छोड़ने की योजना भी मिट्टी में मिल जाएगी। अत: जन आक्रोश शान्त करने के लिए मेजर जनरल शाहनवाज, कैप्टन ढिल्लन तथा सहगल पर कोर्ट मार्शल अदालत में अभियोग शुरू किया। जनता देशभक्तों पर मुकदमे के नाटक से खुश नहीं थी। अत: अभियोग के विरोध में देश में व्यापक विरोध प्रदर्शन होने लगे। कांग्रेस की ओर से भी मुकदमे की पैरवी करने के लिए देश के चोटी के वकील भूलाभाई देसाई, तेज बहादुर सप्रू, आसफ अली तथा कैलाशनाथ काटजू की बचाव समिति का गठन किया गया। पण्डित नेहरू ने भी बाईस वर्ष बाद देशभक्तों पर चल रहे अभियोग की पैरवी के लिए अपनी बैरिस्टरी का चोला पहनकर अदालत में पदार्पण किया।

भूलाभाई देसाई ने अपने अकाट्य प्रमाणों से यह सिद्ध किया कि ''आजाद हिन्द सेना, स्वतंत्र अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की सेना थी। इसके सभी आदेश

भारतीय थे, वे ही उन्हें आज्ञा देते थे। सेना अपनी आत्मा की आवाज पर देश की स्वतंत्रता के लिए सम्राट की नेता से लड़ी थी। आजाद हिन्द सरकार ऐसी वास्तविक सरकार थी, जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून में निर्धारित सभी शर्तों को पूरा करती थी। उसका एक मात्र उद्देश्य अपनी मातृभूमि के लिए लड़ना था, अन्य देश के लिए नहीं। अत: अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अनुसार आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को विद्रोही सैनिक नहीं माना जा सकता। इनके साथ वे ही नियम लागू होते हैं, जो स्वतंत्र राष्ट्र के युद्ध बन्दियों के लिए बने हैं।''

इधर देश की सेना में देश-प्रेम हिलोरें मार रहा था। उसने भी स्पष्ट रूप से अपने प्रधान सेनापति आर्चिन लेक को बता दिया था कि सेना युद्ध बन्दियों की रिहाई के पक्ष में है। रॉयल एयर फोर्स व रॉयल नेवी का भी सरकार पर इस प्रकार का दबाव पड़ा। इन सब बातों से मजबूर होकर सरकार ने अभियोग उठा लिया और युद्ध बन्दियों को रिहा कर दिया। इससे सर्वत्र खुशी की लहर फैल गई। यह भारतीय राष्ट्रवाद की महान् विजय थी।

नौ सैनिक विद्रोह :

अगस्त क्रान्ति एवं आजाद हिन्द सेना की शौर्यपूर्ण गाथाओं ने भारतीय जन-मानस में अद्भुत राष्ट्रीयता का संचार कर दिया था। जब किसी कौम पर देशभक्ति व राष्ट्रीयता का रंग चढ़ जाता है, तब दुनियाँ की कोई ताकत उसे गुलाम बनाकर नहीं रख सकती। अब भारत के लोग भी स्वाधीन राष्ट्र के नागरिक के रूप में जीने की तमन्ना करने लगे। वे किसी भी क्षेत्र में किसी भी कीमत पर अपने आपको अपमानित नहीं देखना चाहते थे।

ऐसी स्थिति में 4 फरवरी, 1946 को बम्बई के 'तलवार' नामक जहाज के एक गोरे कमाण्डर ने भारतीय नौ-सैनिक को भद्दी गालियाँ दी। पहले नियमानुसार इस बात की उच्चाधिकारियों से शिकायत की गई, परन्तु कुछ भी नतीजा नहीं निकला। जब न्याय के दरवाजे बन्द हो जाते हैं तो क्रान्ति के कपाट खुल जाते हैं। गाली गलौच के अलावा भारतीय नौ-सैनिकों को नाश्ता भी खराब दिया जाता था। इसी प्रश्न को लेकर ग्यारह सौ सैनिकों ने हड़ताल कर दी और अपना निम्नांकित माँग पत्र प्रस्तुत कर दिया—

1. खाना व नाश्ता ठीक ढंग का मिले।
2. गाली गलौच करने वाले कमाण्डर के विरुद्ध कदम उठाए जाएँ।
3. गोरे व भारतीय सैनिकों का वेतन समान हो।
4. आजाद हिन्द सेना के सैनिक व अन्य राजनैतिक बन्दी तुरन्त छोड़ दिए जाएँ।

5. भारत की सेना को बाहर न भेजा जाए एवं हिन्देशिया से भारतीय सैनिकों को वापिस बुलाया जाए।

'तलवार' नामक जहाज के सैनिकों के साथ, फोर्ट बैंटक कैसल बैरक के सैनिकों ने भी विद्रोह कर दिया। 'अकबर' तथा 'चीता' जहाज के नौ-सैनिक भी हड़ताल में शामिल हो गए। बेतार के तार के कर्मचारी भी हड़ताल में कूद पड़े। नौ-सैनिकों ने अपने अधिकारियों से शस्त्र छीन कर जहाजों पर कब्जा कर लिया। कलकत्ता तथा कराँची के नौ-सैनिक कर्मचारी भी हड़ताल में शामिल हो गए।

पहले तो सरकार ने बातचीत से हड़ताल समाप्त करने का नाटक रचा, परन्तु अन्दर ही अन्दर राष्ट्र प्रेम की भावना को कुचलने के लिए वह तुली हुई थी। सरकार ने तीन सौ-हड़ताली कर्मचारियों को बन्दी बना लिया। कर्मचारियों ने सरकार की आक्रामक नीति का सामना करने के लिए 'केन्द्रीय हड़ताल कमेटी' का निर्माण कर लिया। इतना ही नहीं सरकारी दमन का सामना करने के लिए नौ सैनिक कर्मचारी कटिबद्ध थे। कराँची के 'चमक', 'बहादुर' व 'हिमालय' जहाज के नौ-सैनिकों ने अपने-अपने मोर्चे सम्भाल लिए। सामने गोरे सैनिकों की टुकड़ियाँ भी क्रान्ति को कुचलने के लिए तैयार बैठी थी जो कभी भी जहाजों पर धावा बोल सकती थीं।

गोरे भाग छूटे :

कुछ गोरे सैनिक ऊँचे स्थान पर खड़े होकर आक्रमण की योजना बना रहे थे। 'पंजाब' तथा 'आसाम' जहाज के सैनिकों ने इस स्थिति को भाँप लिया और उन्होंने तुरन्त ही गोरी-पलटन पर गोली चलाना शुरू कर दिया। एक नौ-सैनिक शहीद हुए तथा दो गोरे मारे गए। इसके बाद गोरे सैनिक वहाँ से भाग छूटे। इसी तरह कराँची में भी संघर्ष हुआ। यहाँ पर बलूची रेजीमेन्ट ने अपने ही भाइयों पर गोली चलाने से साफ मना कर दिया। बाद में गोरी पलटन बुलाई गई। उसने जहाजों पर गोले बरसाना शुरू कर दिया। छह नौ सैनिक शहीद हुए तथा 25 घायल हुए।

भारी जन-समर्थन :

बाद में सरदार पटेल और मौलाना आजाद ने बीच में पड़कर इस विवाद को समाप्त करवाया, परन्तु नौ-सैनिक विद्रोह को बम्बई की जनता का पूरा समर्थन प्राप्त था। बम्बई के लाखों मजदूरों ने नौ-सैनिकों के समर्थन में अपनी हड़ताल कर दी। रेलवे स्टेशन तथा डाक-घर जलाए गए। पुलिस मुठभेड़ में 130 लोग मरे व 200 घायल हुए। दो पुलिस अधिकारी भी मारे गए। 127 सिपाही घायल हुए। बम्बई के अतिरिक्त कराँची में भी अनेक सभाएँ की गई।

इस नौ-सैनिक क्रान्ति व उसके प्रति-समर्थन ने ब्रिटिश शासन की आँखें खोल दीं। अब उसने समझ लिया कि सेना के बल पर भारत पर शासन नहीं किया जा सकता। अब सेना ब्रिटिश साम्राज्य की न रहकर, भारत राष्ट्र की सेना हो गई है।

स्वतंत्रता की महान् उपलब्धि :

चारों ओर राष्ट्रीयता का ऐसा ज्वार उठ खड़ा हुआ था अतः अंग्रेजों का भारत छोड़ना प्रायः निश्चित हो गया, परन्तु हमारी राष्ट्रीय चेतना को शून्य करने के लिए वे साम्प्रदायिकता का विष फैलाते जा रहे थे।

विगत पृष्ठों में हमने देखा कि मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने का काम ब्रिटिश शासन ने ही किया था। इसके पीछे उनका यही स्वार्थ था कि साम्प्रदायिक झगड़े के बहाने वे अपने पैर अधिकाधिक दिन भारत में जमाए रखें। साम्प्रदायिकता का विषाद फैला कर ही वे 50 वर्ष तक भारत में अधिक टिके रहे। यदि ब्रिटिश सरकार, मुस्लिम साम्प्रदायिकता को अनावश्यक बढ़ावा न देती तो भारत कभी का स्वतंत्र हो जाता। मुसलमानों की समस्या का बहाना बनाकर ही वे भारत की आजादी में रोड़े अटकाते रहे।

इंग्लैण्ड एवं अमेरिका यह भली-भांति जानते थे कि स्वतंत्र भारत विश्व का एक सबल राष्ट्र होगा। विश्व रंगमंच पर हमारी गलत नीतियों का भारत कभी समर्थन नहीं करेगा और न ही अपने यहाँ पर सैनिक अड्डे बनाने देगा, क्योंकि उसका स्वतंत्रता संग्राम महात्मा गाँधी व पण्डित नेहरू की रहनुमाई में सत्य व न्याय पर आधारित था। यही सोचकर इंग्लैण्ड तथा अमेरिका भारत के एक भू-भाग से उसे काटकर स्वतंत्र राष्ट्र का रूप देना चाहते थे, जहाँ वे अपने सैनिक अड्डे बना सकें।

हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने मुस्लिम लीग के नेताओं को वास्तविकता से परिचित कराने का पूरा प्रयास किया। महात्मा गाँधी ने हम सबके हृदय परिवर्तन के लिए 21 दिन का उपवास भी किया, जिन्ना साहब से मुलाकात भी की। कभी-कभी तो दोनों समझौते के बहुत निकट भी पहुँच जाते थे, परन्तु ऐसे मौके पर ब्रिटिश कूटनीति हमारी बनी बनाई बात को बिगाड़ने में पीछे नहीं रहती थी, क्योंकि इंग्लैण्ड के तत्कालीन प्रधानमंत्री चर्चिल तथा उनके एजेन्ट भारत की स्वतंत्रता को स्वप्न में भी नहीं देखना चाहते थे।

युद्ध के बाद इंग्लैण्ड के आम चुनाव में चर्चिल अनुदार-दल बुरी तरह पराजित हुआ। मजदूर दल के नेता क्लीमेन्ट एटली ने सत्ता सम्भाली। सत्ता संभालते ही उन्होंने एक कैबिनेट मिशन भारत भेजा ताकि सत्ता हस्तान्तरण पर कोई समझौता हो सके। ब्रिटिश सरकार इस प्रश्न को जल्दी से जल्दी हल करना चाहती थी, क्योंकि उसे भय था कि देरी करने से इंग्लैण्ड के पास भारत को देने के लिए कुछ नहीं बचेगा और भारत एक ओर क्रान्ति के द्वारा अपनी आजादी स्वयं हासिल कर लेगा। इसी बीच मुस्लिम लीग ने सीधी कार्यवाही की धमकी

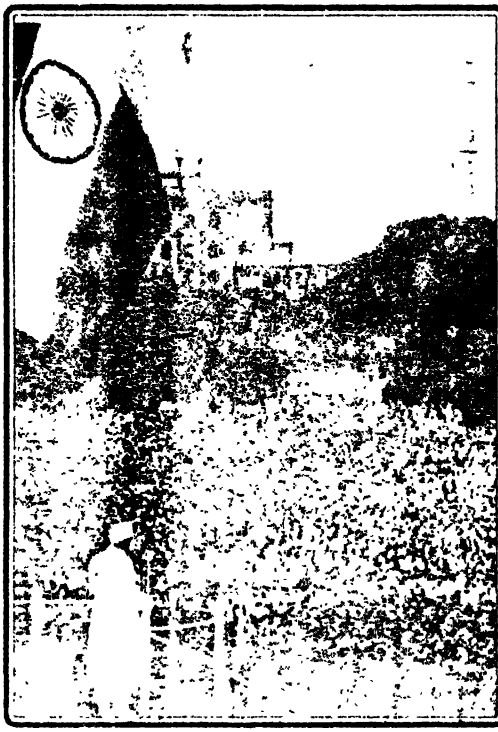
देकर पूर्वी बंगाल तथा अन्य स्थानों पर भीषण दंगे करवा दिए। विदेशी शासन तो ऐसा चाहता ही था। दंगे रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया गया।

लॉर्ड माउन्टबेटन साहब ने महात्मा गाँधी व अन्य कांग्रेसी नेताओं के मन में यह बात बिठा दी कि विभाजन स्वीकार न करने पर स्थिति बिगड़ती जाएगी और भीषण रक्तपात होगा, परन्तु मौलाना आजाद ऐसी स्थिति में भी विभाजन को पसन्द नहीं करते थे, परन्तु सरदार पटेल व अधिकांश नेताओं के विभाजन की बात गले उतर गई। अन्त में लॉर्ड माउन्टबेटन योजना के अन्तर्गत, पश्चिमी पंजाब, सिन्ध-मुल्तान, बलूचिस्तान, सीमा प्रान्त तथा पूर्वी बंगाल व आसाम से सिलहट जिले को मिलाकर मुसलमानों का भारत से अलग स्वतंत्र राष्ट्र बना दिया जाएगा, परन्तु सीमा प्रान्त व सिलहट में जनमत संग्रह कराया जाएगा, जिसके आधार पर अपनी इच्छानुसार भारत व पाकिस्तान दोनों में से किसी भी राज्य में मिल सकेंगे। इसके अतिरिक्त लॉर्ड माउन्टबेटन योजना के अनुसार देशी रियासतों को भी स्वतंत्र कर दिया कि वे चाहें तो स्वतंत्र रहें या अपनी इच्छानुसार दोनों में से किसी संघ में मिल सकते हैं। इस योजना को आधे मन से कांग्रेस के नेताओं ने स्वीकृति दे दी। मुस्लिम लीग ने खुशी से इसे स्वीकार कर लिया। इसी योजना के आधार पर इंग्लैण्ड की सरकार ने अपनी संसद में 18 जुलाई, 1947 ई. को भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम पारित करके पाकिस्तान व भारत दो अलग स्वतंत्र राष्ट्रों का निर्माण की घोषणा कर दी। इसके अनुसार 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया।

14 अगस्त, 1947 ई. को संविधान सभा को सम्बोधित करते हुए पण्डित नेहरू ने भारत की स्वतंत्रता पर अपने विचार को प्रकट करते हुए कहा था—"बरसों पहले हमने भाग्य वधू से एक प्रतिज्ञा की थी और अब वह समय आ रहा है, जब हम उस प्रतिज्ञा को समग्र रूप से या पूरी तौर पर न सही, तो काफी दूर तक पूरी करेंगे। रात के 12 बजे, जबकि दुनियाँ नींद की गोद में होगी, भारत नये जीवन और स्वतंत्रता में प्रवेश करेगा···· इस पावन क्षण में हमें शपथ लेनी है कि तन-मन-धन से भारत व उसकी जनता की सेवा करेंगे।"

15 अगस्त, 1947 को अपराह्न चार बजे दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किले के सामने के मैदान में एक विराट सभा हुई। आजादी की खुशी में लोगों का मानो सागर ही उमड़ पड़ा हो। किले के परकोटे पर स्वाधीनता संग्राम के नेतागण बैठे हुए थे। इसी समय इकतीस तोपों की सलामी दागी गई। इसी खुशी के वातावरण में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भारत के राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे झण्डे को बड़े शान से फहराया। सारे देश में खुशी की लहर दौड़ गई, परन्तु दंगा फसाद तथा साम्प्रदायिक तनाव से हमारे नेता अब भी चिन्तित थे और वे प्राण-पण से भारत में शांति एवं समृद्धि के लिए जुट गए। किसी भी राष्ट्र व व्यक्ति की परीक्षा विपत्ति काल में ही होती है। विभाजन

की वज्र विपत्ति के बाद भी हम हमारे स्वतंत्रता संग्राम में घोषित नीतियों से विलग नहीं हुए और भारत को सम्प्रभुता सम्पन्न धर्म निरपेक्ष लोकतंत्र घोषित किया गया, स्वतंत्रता, समानता व बन्धुत्व की भावना को साकार करने के लिए हम चल पड़े। धर्म, जाति, लिंग के भेद मिटा कर सभी को भारत के गौरवशाली नागरिक का दर्जा देकर हमने हमारी आजादी की लड़ाई के उद्देश्यों को पूरा कर दिखाया।



लाल किले के सामने मैदान में सार्वजनिक सभा

एक एक करके सभी समस्याओं का हल निकाल कर हमारे नेताओं ने दिखा दिया कि भारत राष्ट्र में आगे बढ़ने की असीम क्षमता है। अपने लोगों की समृद्धि के प्रयास के साथ विश्व शांति व जन कल्याण के क्षेत्र में योगदान को आज नहीं तो कल अवश्य ही विश्व इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान मिलेगा, क्योंकि हमारे नेताओं ने संकट की घड़ी में सत्य व न्याय पक्ष को नहीं छोड़ा। भारत राष्ट्र के गौरवमय स्वाधीन जीवन की उपलब्धि के पीछे हमारे स्वतंत्रता संग्राम के अमर सेनानियों का त्याग एवं बलिदान छिपा हुआ था। देश के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाले स्वातंत्र्य वीरों के त्याग एवं बलिदान का राष्ट्र सदा ऋणी रहेगा।

❑

इकाई 15

रियासतों में जन-जागरण

यह हम पढ़ चुके हैं कि भारत की राजनीतिक अराजकता एवं सुदृढ़ केन्द्रीय शासन के अभाव का ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पूरा लाभ उठाया। अपनी बन्दर बाँट नीति से एक-एक करके सारे भारत को अपने साम्राज्यवादी शिकंजे में कस लिया। अब कम्पनी भारत पर दो विभिन्न प्रकार से शासन संचालन करने लगी। 11 प्रान्त व कुछ केन्द्र शासित प्रदेशों पर कम्पनी का सीधा नियंत्रण था। दूसरी ओर 562 छोटी मोटी रियासतों का शासन वंशानुगत राजा निरंकुश ढंग से चलाते थे। भारत के होते हुए भी उनकी वफादारी भारतीय जनता के प्रति न होकर कम्पनी सरकार के प्रति थी। इतिहास की कैसी विडम्बना है कि जो शासक अपने स्वतंत्रता प्रेम के लिए विख्यात थे, वे ही शासक विदेशी शासन की गुलामी में अपना गौरव अनुभव करने लगे।

रियासती जनता तिहरी गुलामी में जकड़ी हुई थी। ब्रिटिश शासन, रियासत के महाराजा व स्थानीय सामन्त। सामन्त लोग अपनी प्रजा पर अनेक प्रकार के जुल्म ढ़ाते रहते थे। सामन्ती जुल्मों की सबसे अधिक मार आदिवासी व अन्य पिछड़ी जातियों पर थी। अत: रियासती सामन्तों के विरुद्ध भील तथा मीणा जाति को संगठित किया जाने लगा। गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश व राजपूताना के भील लोगों ने 1883 ई. में 'सम्प सभा' का निर्माण किया और मूलभूत अधिकारों की माँग करने लगे। इस सम्बन्ध में गुरु गोविन्द का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। गोविन्द का जन्म डूंगरपुर राज्य के बाँसियाँ गाँव में एक बनजारा परिवार में 1858 ई. को हुआ था। इनके प्रयत्न से 1888 ई. में गुजरात स्थित मानागढ़ पहाड़ी पर भीलों का एक विशाल सम्मेलन हुआ। पास पड़ौस के राजा इस सम्मेलन से बौखला उठे और अपने आका अंग्रेजों से भील जन-जागरण को कुचलने के लिए प्रार्थना की। ब्रिटिश सेना की सहायता से मानागढ़ की पहाड़ी को घेर लिया गया। गोलियों की बौछार से 1500 आदिवासी शहीद हुए। गुरु गोविन्द व उनकी पत्नी को जेल में डाल दिया गया। इस तरह से हम देखते हैं कि विदेशी शासन अपने पिछलग्गू राजाओं के हितों की रक्षा के लिए दमन चक्र में कभी पीछे नहीं रहा।

गुरु गोविन्द के बाद मोतीलाल तेजावत ने भीलों का नेतृत्व किया। उनके अधिकारों के लिए तेजावत ने अनेक वर्षों तक जेल में कष्ट उठाए। इसी तरह से जयपुर रियासत में मीणा जाति के अधिकारों के लिए लक्ष्मी नारायण झारवाल ने काफी कष्ट उठाए। इनके बाद माणिक्यलाल वर्मा, गोकुलभाई भट्ट ने आदिवासियों को संगठित करने तथा उनके लिए सत्याग्रह संग्राम चलाया। ठक्कर बापा, काका साहब कालेलकर हरिजनोद्धार के रूप में रियासतों में जन जागरण के लिए अच्छा वातावरण तैयार किया। किसान आन्दोलन भी जगह-जगह जोर पकड़ने लगे, परन्तु अभी तक ये आन्दोलन स्थानीय ही थे। कांग्रेस केवल ब्रिटिश-भारत में जन-आन्दोलन को संगठित कर रही थी। रियासतों में उसने हस्तक्षेप करना शुरू नहीं किया था। पहली बार 1920 ई. के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में रियासती जनता की समस्याओं पर कांग्रेस का ध्यान जाने लगा। रियासती जनता के दुख दर्द के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई, परन्तु गाँधीजी की राय थी कि अभी कांग्रेस को रियासती आन्दोलन में भाग नहीं लेना चाहिए। स्थानीय लोग संगठन बनाकर अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन करें। कांग्रेस ने पहले भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराना ही ठीक समझा। स्वतंत्रता के बाद राजा तो अपने आप रास्ते पर आ जाएँगे।

इधर ब्रिटिश सरकार ने 'नरेन्द्र मण्डल' नामक राजाओं की एक सभा की स्थापना करके उनसे निकट सम्पर्क बनाए रखा, परन्तु 'नरेन्द्र मण्डल' में राजाओं को अलग-अलग श्रेणियाँ देने के कारण विवाद बना रहता था। अत: सरकार ने 'हरकोर्ट कटलर भारतीय रियासती समिति' का गठन किया। इसकी सिफारिश पर 1935 के संघीय संविधान के अनुसार बनने वाले केन्द्रीय विधान मण्डल में रियासतों को भी अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार अनजाने में ही ब्रिटिश शासन ने भारत को एक राजनैतिक इकाई मान लिया, परन्तु रियासतों के प्रतिनिधि राजाओं द्वारा मनोनीत करने की व्यवस्था थी। अत: रियासती जनता ने इसके जवाब में काठियावाड़ के बलवन्तराय मेहता, मणिलाल कोठारी व दक्षिण भारत के जी. आर. अभयकर के प्रयत्न से दिसम्बर, 1927 में अखिल भारतीय रियासती सम्मेलन का आयोजन हुआ। धीरे-धीरे इस सम्मेलन ने अपना स्थायी रूप बना लिया। यों इसका उद्देश्य सामंतवाद का विरोध करना ही था, परन्तु इससे एक लाभ यह हुआ कि टुकड़ों में बँटी जनता अखिल भारतीय स्तर पर एक सूत्र में बँधने लगी।

इधर कांग्रेस भी यह अनुभव करने लगी कि रियासती जनता की माँगों का समर्थन करना चाहिए। अत: पण्डित नेहरू ने लाहौर कांग्रेस अधिवेशन, 1929 के अध्यक्ष पद से बोलते हुए स्पष्ट घोषणा कर दी कि—"भारतीय रियासतें शेष भारत से अलग होकर नहीं रह सकतीं।' रियासतों के भविष्य का निर्धारण करने का अधिकार वहाँ की जनता को है।" इससे रियासती जनता का मनोबल ऊँचा उठा। इसके बाद कराँची अधिवेशन, 1931 में डॉ. पट्टाभिसीतारमैया की अध्यक्षता में रियासती सम्मेलन हुआ। इसमें रियासती जनता के मूल अधिकारों की माँग का

समर्थन किया गया। लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन, 1935 में कांग्रेस रियासती मामलों के अधिक निकट आई। उसमें स्पष्ट घोषणा कर दी गई कि "उसका अन्तिम लक्ष्य भारत के सभी लोगों की स्वतंत्रता से है, उसमें रियासती जनता भी शामिल है।" सन् 1938 के त्रिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि "कांग्रेस को रियासती जनता से अपना निकट का सम्बन्ध रखना चाहिए।"

इधर अखिल भारतीय रियासती सम्मेलन ने 1939 ई. में पण्डित नेहरू को अपना अध्यक्ष चुनकर इसके अखिल भारतीय रूप को अधिक सुदृढ़ कर लिया और कांग्रेस की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त कर ली, परन्तु अभी तक राज्यों में कांग्रेस की शाखाएँ नहीं खोली गईं। वहाँ पर प्रजा-मण्डल व प्रजा-परिषद के नाम से अपने अलग-अलग संगठन बने और स्वतंत्रता संग्राम की तैयारी करने लगे। कुछ रियासतों में किसानों के अधिकारों की रक्षा के लिए अलग नाम से भी संगठन बने, परन्तु 1930 के महान् स्वतंत्रता संग्राम सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने रियासती जनता को बहुत प्रभावित किया। इसके बाद तो रियासतों में किसान आन्दोलनों की बाढ़ सी आ गई। सन् 1942 की अगस्त क्रान्ति में तो रियासती जनता कहीं-कहीं तो ब्रिटिश प्रान्तों से भी आगे बढ़ गई।

कश्मीर में उत्तरदायी शासन :

कश्मीर में जन-जागृति का श्रेय शेख अब्दुल्ला को है। कश्मीर पर डोगरे राजपूत राजा का शासन था। अत: जनता ने अपने अधिकारों के लिए राजशाही के विरुद्ध जंग छेड़ दिया। इस कार्य के लिए पहले वहाँ 'रीडर्स पार्टी' की स्थापना हुई। पार्टी ने राजा के निरंकुश शासन के विरुद्ध आवाज उठाई, परन्तु ब्रिटिश सेना की मदद से राजा ने पार्टी के आन्दोलन को कुचल दिया! इसके बाद शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में 'कश्मीर मुस्लिम सभा' का गठन हुआ, परन्तु पण्डित नेहरू की सलाह से इनका नाम 'नेशनल कान्फ्रेंस' रख दिया गया। अब नेशनल कॉन्फ्रेन्स का राष्ट्रीय रूप निखरने लगा और इसे देशी राज्य लोक परिषद से सम्बन्धित कर दिया गया, जिसके अध्यक्ष पण्डित नेहरू थे। बाद में शेख साहब भी इसके उपाध्यक्ष चुने गए। अब समस्त भारत में देश की एकता तथा राष्ट्रीयता का धुँआधार प्रचार करने लगे। सारे भारत में वे शेरे कश्मीर के नाम से पुकारे जाने लगे। जिन्ना साहब की भारत विभाजन नीति का वे जगह-जगह कड़ा विरोध करने लगे।

शेरे कश्मीर शेख अब्दुल्ला :

आपका जन्म 5 दिसम्बर, 1905 ई. को श्रीनगर के निकट सौरा गाँव में हुआ था। लाहौर से स्नातक बनने के बाद अलीगढ़ विश्व विद्यालय से एम.एस-सी. की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद वे शाल बनाने का अपना पैतृक धन्धा छोड़कर अध्यापन का कार्य करने लगे, परन्तु थोड़े ही दिन बाद राजनीति में उतर आये। राजा को हटाने के लिए उन्होंने कितने ही आन्दोलनों का संचालन किया। इसके लिए आपको कितनी

ही बार जेल जाना पड़ा। 1946 ई. में आपने राजा के लिए 'कश्मीर छोड़ो' का नारा दिया। कारागार में डाल दिए गए। इसी बीच 15 अगस्त, 1947 को भारत से ब्रिटिश सत्ता का अन्त हो गया, परन्तु जाते-जाते भी ब्रिटिश सत्ता ने विघटन के बीज बो दिए। रियासतों को भारत पाकिस्तान दोनों में से किसी संघ में मिलने या स्वतंत्र रहने का अधिकार दे दिया। अपनी भौगोलिक परिस्थिति से कश्मीर को भारत में मिलना था, परन्तु राजा अपनी स्वतंत्रता का मोह का विस्मरण न कर सका। वह किसी भी संघ में मिलने को तैयार नहीं हुआ। इसी बीच पाकिस्तानी सेना की सहायता से कबायलियों ने हमला बोल दिया। डोगरे सैनिकों ने डटकर शत्रु का सामना किया, परन्तु संख्या में कम होने से अधिक समय तक वे न टिक सके। अत: राजा ने भारत संघ में विलय पर हस्ताक्षर कर भारत सरकार से आक्रमणकारियों को कश्मीर से बाहर निकालने का अनुरोध किया। बहुत कम समय में ही भारतीय सेना हवाई जहाजों द्वारा श्रीनगर पहुँची और शत्रु को आगे बढ़ने से ही नहीं रोका वरन् उसे कश्मीर घाटी से भी निकाल बाहर किया।

स्वतंत्र भारत की सेना की यह प्रथम शौर्यपूर्ण विजय थी और उसने संसार को दिखा दिया कि स्वतंत्र भारत राष्ट्र अपनी रक्षा स्वयं करने में समर्थ है। युद्ध समाप्ति के बाद शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में कश्मीर में उत्तरदायी शासन की स्थापना हुई। कश्मीर की चुनी हुई विधान सभा ने राजा के भारत विलय के प्रस्ताव का समर्थन करके उसे वैधानिक रूप प्रदान किया।

हैदराबाद :

भारत की यह बहुत बड़ी रियासत थी। यहाँ के शासक निजाम कहलाते थे। यहाँ पर जन जागृति का प्रारम्भ हरिजनोद्धार से हुआ। इसका श्रेय नायक वामन राव को है। 1915 ई. में हैदराबाद समाज सुधारक की स्थापना हुई। सन् 1918 में हैदराबाद कांग्रेस की नींव पड़ी। नायक वामन राव इसके अध्यक्ष बने। अपने साथी कीरतराय कोरतकर के साथ रियासत आन्दोलन को खूब तेजी से चलाया। ब्रिटिश सरकार के दबाव से निजाम ने आन्दोलन पर प्रतिबन्ध लगा दिया, परन्तु खिलाफत आन्दोलन तेजी से चला। देश भर के अनेक नेता यहाँ पहुँचे।

नायक वामन राव ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए काफी काम किया। अन्त में निजाम को 1939 ई. में संवैधानिक सुधारों की घोषणा करनी पड़ी, परन्तु अपनी उपलब्धियों को देखने के लिए वामन राव अधिक दिन तक जीवित नहीं रहे और अपनी राष्ट्रीयता व रचनात्मक कार्यों की छाप छोड़कर चल बसे। उनके बाद उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन तीव्रतर होता गया। अन्त में 1942 की क्रान्ति ने काफी जोर पकड़ा और अनेक गिरफ्तारियाँ हुईं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निजाम ने साम्प्रदायिक रजाकारों की मण्डली के चक्कर में आकर स्वतंत्र रहने का निर्णय कर लिया और राज्य में दंगा-फसाद फैला दिए।

भारत के गृहमंत्री लौह पुरुष सरदार पटेल देश में अराजकता को कैसे सहन कर सकते थे। अतः उन्होंने रजाकारों के दमन के लिए मेजर जनरल राजेन्द्र चौधरी के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी भेजी। तीन दिन की हल्की सी झड़प के बाद रजाकारों व निजाम की सेना ने हथियार डाल दिए। इस तरह से स्वतंत्र भारत ने अपने शैशव काल में ही प्रशासनिक दृढ़ता का परिचय देकर संसार को दिखा दिया कि भारत अपना शासन चलाने में पूरी तरह सक्षम है।

जूनागढ़ :

जूनागढ़ में जन जागृति का श्रेय सामलदास गाँधी को है। उन्होंने प्रजा परिषद के माध्यम से उत्तरदायी शासन की माँग की। इसी बीच भारत स्वतंत्र हो गया। जूनागढ़ के नवाब को जनता की इच्छा एवं भौगोलिक परिस्थिति के कारण भारत में मिलना था। अतः उसने पाकिस्तान में मिलने की घोषणा कर दी, परन्तु जनता के भय से रियायत का शासन दीवान व पुलिस कमीश्नर को सौंपकर स्वयं पाकिस्तान भाग गए, परन्तु उनसे शासन नहीं संभला और भारत सरकार ने 9 नवम्बर, 1947 ई. को जूनागढ़ का शासन अपने हाथ में ले लिया। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि 12 फरवरी से 24 फरवरी, 1948 तक जनता की इच्छा जानने के लिए वहाँ जनमत संग्रह कराया, जिसमें केवल 91 मत पाकिस्तान में मिलने के लिए पड़े। अतः जनमत के महान् सिद्धान्त के अनुसार रियासत भारतीय संघ में मिला ली गई और वहाँ जन-प्रतिनिधि सरकार की स्थापना हुई।

राजस्थान में जन जागृति :

राजस्थान में छोटी-मोटी 22 रियासतें थीं, जहाँ का शासन निरंकुश पद्धति से चलाया जाता था। यहाँ के राजा जनता के प्रति उत्तरदायी न होकर ब्रिटिश शासन के प्रति उत्तरदायी थे। ब्रिटिश शासन की आज्ञा के बिना यहाँ पत्ता भी नहीं हिल सकता था। ब्रिटिश शासन के इस प्रकार के नियंत्रण के विरुद्ध यहाँ के तीन स्वाधीन चेता राजाओं ने आवाज उठाई। वे स्वतंत्रता ि· शासक थे, मेवाड़ के महाराणा फतहसिंह, अलवर के महाराजा जयसिंह तथा भरतपुर के महाराजा कृष्णसिंह। इनको अपनी निर्भीकता की कीमत बहुत चुकानी पड़ी और इनके प्रशासनिक अधिकार छीन लिए गए, परन्तु वे जनता के प्रिय बने रहे।

यह हम पहले पढ़ चुके हैं कि भारत की आजादी के लिए सशस्त्र रोमांचकारी आन्दोलन में राजस्थान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जयपुर के अर्जुनलालजी सेठी, केसरीसिंह बारहठ व उनके परिवार का सशस्त्र क्रान्ति में पूर्ण सहयोग रहा। खरवा ठाकुर गोपालसिंह व बारहठ परिवार का भारत में सशस्त्र क्रान्ति के मुख्य संचालक रासबिहारी बोस का निकट सम्पर्क था। अर्जुनलाल सेठी, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश में उतने ही लोकप्रिय थे जितने राजस्थान में थे।

महात्मा गाँधी की विचारधारा को राजस्थान में फैलाने का श्रेय सेठ जमनालाल बजाज को है। सेठजी के निर्देशन में हरिभाऊ उपाध्याय ने राजस्थान में रचनात्मक कार्यों का श्रीगणेश किया।

जमनालाल बजाज (1889-1942 ई.) :



जमनालाल बजाज

4 नवम्बर, 1889 ई. को जयपुर रियासत के 'काशी का बास' नामक गाँव में आपका जन्म हुआ, परन्तु चार वर्ष की आयु में ही वर्धा सेठ वच्छ राजाजी के यहाँ गोद चले गए। औपचारिक रूप से शिक्षा न ग्रहण करने पर भी वे हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी व गुजराती के अच्छे ज्ञाता थे। युवा अवस्था में ही वे कितने ही राष्ट्रीय नेताओं के सम्पर्क में आए, परन्तु उन पर सबसे अधिक प्रभाव महात्मा गाँधी का पड़ा और उन्होंने अपना सारा जीवन ही उनको समर्पित कर दिया।

नागपुर कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत समिति के आप अध्यक्ष रहे। इसी वर्ष कोषाध्यक्ष बने, जो आजीवन बने रहे। 1921 ई. में विनोबा के मार्ग दर्शन में वर्धा में सत्याग्रह आश्रम कायम किया, जो बाद में गाँधीजी को भेंट कर दिया गया और वह सेवा आश्रम के रूप में जाना जाने लगा।

राजस्थान में जन जागरण में आपने पहल की और 1936 ई. को जयपुर में प्रजामण्डल की स्थापना कर इसके अध्यक्ष बने। 1940-41 के व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया, परन्तु आप देश की सेवा करने के लिए अधिक दिन तक जीवित न रहे और पक्षाघात के कारण चल बसे। सरदार की उनको श्रद्धांजलि उनके चरित्र की उचित परिभाषा है। उन्होंने कहा—"बापू ने अपना सच्चा पुत्र खो दिया। कांग्रेस का मानो आज स्तम्भ गिर गया। अनेक संस्थाओं ने अपना संरक्षक खो दिया।"

हरिभाऊ उपाध्याय (1892-1972 ई.) :



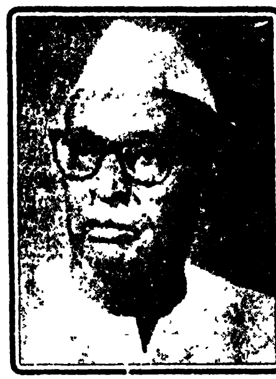
हरिभाऊ उपाध्याय

आपका जन्म मध्य प्रदेश के गाँव मोरसा में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। छात्र जीवन से ही आपकी रुचि पत्रकारिता में थी। पत्रकारिता की योग्यता देखकर ही महात्मा गाँधी ने आपको नवजीवन के सम्पादन का काम सौंपा। सन् 1927 ई. में गाँधीजी ने आपको राजस्थान खादी व ग्रामोद्योगों के प्रसार के लिए भेजा। अजमेर मेरवाड़ा की राजस्थान कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन पुष्कर में बुलाने का श्रेय भी आपको ही है। नमक सत्याग्रह में भाग लिया। जेल गए। जेल से छूटने

के बाद राजस्थान व मध्य प्रदेश के राजाओं के कुशासन से प्रजामण्डल संगठनों को मजबूत करने लगे।

महिला जागरण में राजस्थान में आपने पहल की और अजमेर के निकट उनकी शिक्षा के लिए प्रथम आवासीय विद्यालय खोला। अगस्त क्रान्ति में जेल गए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आप राजस्थान मंत्रिमण्डल के सदस्य भी रहे। 1972 ई. में समाज सेवा तथा देशभक्ति की अमिट छाप छोड़ दी आप हटून्डी आश्रम में ही चिरनिद्रा में सो गए।

माणिक्यलाल वर्मा :



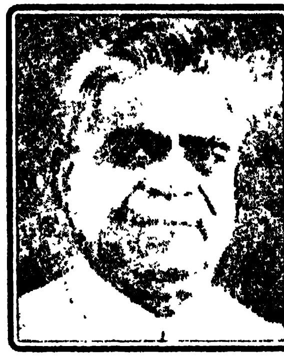
माणिक्यलाल वर्मा

उदयपुर रियासत में क्रान्ति का शंख फूँकने का श्रेय माणिक्यलाल वर्मा को है। पहले आपने किसान आन्दोलन व भीलों की दशा सुधारने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। डूँगरपुर में रचनात्मक कार्यों का भार भी भोगीलाल पाण्डया को सौंप आप उदयपुर आ गए और वहाँ 24 अप्रेल, 1938 ई. में बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में प्रजामण्डल की स्थापना की और आप इसके महामंत्री बने। प्रजामण्डल के प्रचार के कारण उदयपुर के महाराणा ने आपको मेवाड़ से निष्कासित कर दिया, परन्तु आपके उत्साह में किसी प्रकार की कमी नहीं आई और अजमेर से प्रजामण्डल के कार्यों का संचालन करने लगे। कुछ दिनों बाद आपको मेवाड़ की सीमा में घसीटकर बन्दी बना लिया और जेल में आप पर भयंकर अत्याचार किए गए। महात्मा गाँधी ने आप पर हुए अत्याचारों की अपने 'हरिजन अंक' में घोर निन्दा की। जेल से छूटने के बाद 1941 ई. को उदयपुर में मेवाड़ प्रजामण्डल का एक विशाल अधिवेशन आयोजित किया, जिसमें आचार्य जे.बी. कृपलानी एवं पं. विजय लक्ष्मी पण्डित भी शामिल हुए।

इसके बाद अगस्त, 1942 ई. की क्रान्ति में वर्माजी ने महाराणा जी को स्पष्ट चेतावनी दे दी कि वे ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध तोड़कर अपने यहाँ उत्तरदायी शासन कायम कर लें। आपके प्रयास से स्थान-स्थान पर उग्र प्रदर्शन हुए। अनेक जेल में गए। देश की स्वतंत्रता के बाद आप पूर्व राजस्थान के मुख्य मंत्री बने। प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी एवं निर्भीकता के कारण आप सदा स्मरणीय रहेंगे।

जयनारायण व्यास :

आपने अपना जीवन स्वतंत्र पत्रकारिता से शुरू किया। ब्यावर से तरुण पत्र निकालने लगे। उसमें राजस्थान के राजाओं विशेषकर जोधपुर के महाराजा के अत्याचारों की घोर निन्दा होती थी। जब आप जोधपुर आए तो आपको अपने


जयनारायण व्यास

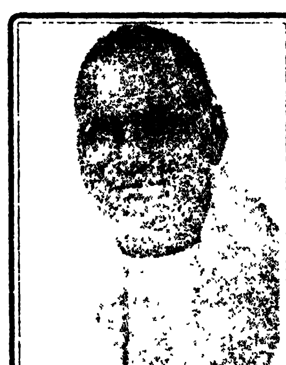
साथी भंवरलाल सर्राफ व आनन्द राज सुराणा के साथ बन्दी बना लिया।

16 मई, 1938 ई. को मारवाड़ लोक परिषद की स्थापना में आपका बहुत बड़ा हाथ रहा। इस तरह से आपने मारवाड़ में जन जागृति के कार्य को सुदृढ़ किया। कुछ दिनों बाद जोधपुर के महाराजा ने लोक परिषद को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। सभी बड़े-बड़े नेता जेल में डाल दिए गए।

अगस्त क्रान्ति में व्यासजी के नेतृत्व में जोधपुर राज्य में क्रान्ति काफी तेज रही। लगभग 400 व्यक्ति जेल गए। जेल में अत्याचारों के विरुद्ध दो सत्याग्रहियों ने भूख हड़ताल कर दी। बाल मुकुन्द तबस्सा की हालत बिगड़ गई और वे अस्पताल ले जाते समय 19 जून, 1942 को मातृभूमि के लिए शहीद हो गए।

इस तरह से व्यासजी का केवल जोधपुर में ही नहीं वरन् समस्त राजस्थान में जन क्रान्ति का शंख फूँकने में महत्त्वपूर्ण हाथ रहा। इसीलिए आप लोकनायक के नाम से पुकारे जाते थे। स्वतंत्रता के बाद आप राजस्थान के मुख्यमंत्री रहे। आप उच्च कोटि के देशभक्त व नि:स्वार्थ समाज सेवक तथा कुशल प्रशासक के रूप में सदा स्मरणीय रहेंगे।

हीरालाल शास्त्री :


हीरालाल शास्त्री

श्री जमनालाल बजाज के साथ आपने भी प्रजामण्डल द्वारा चलाये जा रहे आन्दोलन में उत्साह से भाग लिया। जयपुर में ही बंदी बना लिए गए। आपने प्रजामण्डल के माध्यम से जयपुर राज्य के सामन्तों के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। अनेक बार आन्दोलन करके जेल गए। आपकी पत्नी रत्ना बाई का भी सत्याग्रह आन्दोलन में बहुत बड़ा सहयोग रहा। अगस्त क्रान्ति में भी आपको बाद में कूदना पड़ा। पहले आप तटस्थ रह गए, परन्तु जब आपके अन्य साथी बाबा हरिश्चन्द्र, रामकरण जोशी तथा दौलतमल भण्डारी 16 अगस्त, 1942 ई. को ब्रिटिश सरकार तथा उनके एजेन्ट जयपुर रियासत के विरुद्ध जंग में कूद पड़े तो व्यासजी को भी इनका साथ देना पड़ा। फिर तो आप बड़े उत्साह से अगस्त क्रान्ति में कूद पड़े और महाराजा को ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध तोड़कर उत्तरदायी शासन स्थापित करने का नोटिस दे दिया। स्वतंत्रता के बाद आप राजस्थान के प्रथम मुख्यमंत्री बने। इससे भी अधिक वनस्थली में लड़कियों की उत्तम शिक्षा के लिए स्थापित वनस्थली विद्यापीठ के कारण आप सदा स्मरणीय रहेंगे।

गोकुल भाई भट्ट :

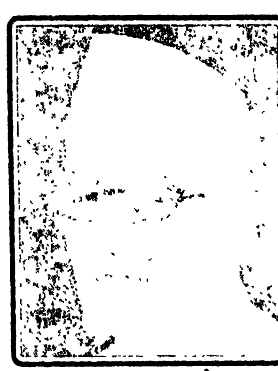


गोकुल भाई भट्ट

आपका जन्म सिरोही रियासत के हाथल गाँव में हुआ था। अपनी युवा अवस्था में आप सिरोही से बाहर कांग्रेस का प्रचार करने में लगे थे। गाँधीजी के बार-बार सम्पर्क में आने के कारण आप पर गाँधीवादी विचारों का काफी प्रभाव पड़ा। हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन के बाद आप सिरोही आ गए और वहाँ प्रजामण्डल की स्थापना 23 जनवरी, 1938 ई. को आपके ही कर कमलों से हुई। कुछ दिनों बाद आपने सिरोही में प्रजामण्डल की ओर से एक सार्वजनिक सभा की। इसमें लाठी चार्ज हुआ जिसमें स्वयं भट्ट भी घायल हुए। अगस्त क्रान्ति में उत्साह से भाग लिया। कितनी बार जेल गए। स्वतंत्रता के बाद आप 1948 ई. में सिरोही राज्य के प्रधानमंत्री बने।

आपकी ख्याति सर्वोदय तथा गाँधीवादी विचारधारा के प्रसार के कारण न केवल राजस्थान में वरन् समस्त भारत में फैली हुई है। वृद्धावस्था में भी गो सेवा तथा मद्य-निषेध जैसे रचनात्मक कार्यों में संलग्न रहते हुए आपने देह त्यागी। आपकी सेवा के प्रति सभी कृतज्ञ हैं।

सागरमल गोपा :



सागरमल गोपा

जैसलमेर में रावल के अत्याचारों का भारी आतंक था। फिर भी कुछ युवकों ने वहाँ जागृति की लहर फैलाने का अथक् प्रयास किया। इनमें सागरमल गोपा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपको जैसलमेर में गुण्डाराज नामक पुस्तक लिखने के आरोप में 25 मई, 1945 को ही जेल में डाल दिया गया और वहाँ अनेक नारकीय यातनाएँ दी जाने लगी। मारवाड़ लोक परिषद के अध्यक्ष जयनारायण व्यास ने इसके लिए पोलिटिकल एजेन्ट को एक कड़ा विरोध पत्र भेजा, परन्तु इससे पहले ही पुलिस ने उन पर तेल छिड़क कर आग लगा दी, परन्तु शहर में पुलिस ने यह अफवाह फैला दी कि गोपा ने स्वयं तेल छिड़ककर आत्महत्या का प्रयास किया है। इस पर सारा शहर उन्हें देखने के लिए उमड़ पड़ा, परन्तु किसी को भी नहीं मिलने दिया। आपके इलाज का भी कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। इस वेदना की हालत में ही गोपाजी ने 4 अप्रेल, 1946 को अपने प्राण त्याग दिए। सारा शहर 'सागरमल गोपा जिन्दाबाद' के नारों से गूँज उठा।

पण्डित नेहरू ने गोपा की मृत्यु को एक जघन्य काण्ड बताते हुए कहा "इसे आत्महत्या कहना एक शरारत है। यह एक ऐसी बात है, जो केवल जैसलमेर के लिए ही नहीं वरन् दूसरे राजाओं के लिए भी शर्म की बात है।"

स्वतंत्रता व मानवाधिकारों के लिए गोपाजी का बलिदान स्वतंत्रता संग्राम में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। ऐसे बलिदानों से ही रियासतों के शर्मनाक शासन का पर्दाफाश हुआ।

कोटा में जन क्रान्ति :

राजस्थान में कोटा अगस्त क्रान्ति में सबसे अग्रणी रहा। इसका श्रेय राज्य प्रजामण्डल के नेता अभिन्न हरि को है। उन्हें बम्बई से लौटते ही पकड़ लिया गया। प्रजामण्डल के अध्यक्ष मोतीलाल जैन ने महारावल को नोटिस दे दिया कि "वे ब्रिटिश शासन से सम्बन्ध तोड़ कर अपने यहाँ उत्तरदायो शासन की घोषणा करें।" इस पर पजामण्डल के कार्यकर्त्ता हीरालाल जैन बन्दी बना लिए गए। इसके बाद नाथूलाल जैन ने आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में ली। उनके नेतृत्व में कोटा के युवकों ने पुलिस के मुख्यालयों पर अधिकार कर लिया और कोतवाली पर तिरंगा झण्डा फहरा दिया। जनता ने नगर का शासन अपने हाथ में ले लिया। लगभग दो सप्ताह तक वहाँ जनता राज कायम हो गया। फिर महारावल के इस अनुरोध पर ही शासन उन्हें सौंपा गया कि वे क्रान्तिकारियों पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करेंगे। सभी बन्दी रिहा किए गए।

अन्य देशी रियासतों में अगस्त क्रान्ति :

वास्तव में अगस्त क्रान्ति से ही देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन की माँग उठी। करीब-करीब सभी रियासतों में अगस्त क्रान्ति ने काफी जोर पकड़ा। इनमें अधिकतर योगदान छात्र-छात्राओं तथा मजदूरों का रहा।

कोचीन व ट्रावनकोर :

ये केरल की दो मुख्य रियासतें थीं। यहाँ पर अगस्त क्रान्ति में राजाओं को उत्तरदायी शासन कायम करने के नोटिस दिए गए। अनेक लोग गिरफ्तार हुए व पुलिस दमन के शिकार हुए।

कोल्हापुर :

यहाँ पर कोल्हापुर कान्फ्रेन्स क्रान्ति के लिए अग्रसर रही। यहाँ पर भारी तोड़-फोड़ हुई। 16 क्रान्तिकारी शहीद हुए।

मैसूर :

प्रजा परिषद ने उत्तरदायी शासन की माँग की। विशेषकर ब्रिटिश सरकार के लिए युद्ध सामग्री बनाने वाले कारखाने को काफी हानि पहुँचाई गई। मजदूरों का अच्छा सहयोग रहा। अन्त में यहाँ उत्तरदायी शासन की स्थापना हुई।

ग्वालियर :

यहाँ पर प्रजा परिषद ने क्रान्ति का बिगुल बजाया। सरकार ने दमन के लिए घोड़े दौड़ाए। उज्जैन में भी उग्र प्रदर्शन हुए।

भूपाल :

यहाँ पर प्रजा परिषद के नेता इत्ताफ मजदानी थे। नवाब को चेतावनी दी कि वे ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध तोड़ लें। इस पर मजदानी साहब को जेल में डाल दिया गया। यहाँ पर साम्प्रदायिक एकता अच्छी रही। अगस्त क्रान्ति काफी तेज रही।

इन्दौर :

प्रजापरिषद ने अगस्त क्रान्ति में लोगों का नेतृत्व किया। अनेक लोग पकड़े गए और उन्हें मण्डलेश्वर जेल में रखा गया, परन्तु बहुत से लोग जेल तोड़ कर भागने में सफल हो गए। बाद में समझौते से राजनीतिक कैदी छोड़ दिए गए।

मिरज :

यहाँ भारूदत पाटिल के नेतृत्व में क्रान्ति की आग भड़क उठी। राजा को उत्तरदायी शासन कायम करने के लिए नोटिस दिया गया। आन्दोलन काफी तेज रहा। शिकारे पाटिल आदि नेता बन्दी बनाए गए। बाद में राजा अपने यहाँ उत्तरदायी शासन कायम करने के लिए राजी हो गया।

रियासती आन्दोलन का मूल्याँकन :

आजादी की लड़ाई में रियासती जनता का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। अनेक क्रान्तिवीर शहीद हुए। राजा महाराजा भारत में ब्रिटिश शासन के हाथ पैर थे। अत: इनको तोड़ना बहुत जरूरी था। इससे भारत स्वतंत्रता अधिनियम से राजाओं को स्वतंत्र रहने के अधिकार का भी नशा उतर गया। विदेशी शासन ने तो भारत में राष्ट्रीय एकता को नष्ट करने के लिए अनेक नाटक रचे। भारत को अनेक टुकड़ों में बाँट कर रखा, परन्तु अगस्त क्रान्ति ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत एक है। दुनियाँ की कोई ताकत भारतीयों को एक दूसरे से अलग नहीं कर सकती।

काफी कष्ट व यातनाएँ उठाकर भी रियासती जनता भारत की एकता व स्वतंत्रता के लिए ब्रिटिश भारत की जनता से किसी तरह पीछे नहीं रही। अशिक्षा में डूबी जनता ने जो शौर्य प्रदर्शन किया, वह हमारे स्वतंत्रता के इतिहास में निश्चित रूप से उल्लेखनीय है। पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी क्रान्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। संक्षिप्त आलेख में रियासती जनता के शौर्य को बाँटना कठिन है। इसके लिए तो एक स्वतंत्र पुस्तक भी कम रहेगी।

रियासतों का विलीनीकरण :

स्वतंत्रता के बाद अनेक रियासतों ने प्रसन्नता से भारतीय संघ में मिलना स्वीकार कर लिया। 15 अगस्त, 1947 ई. के स्वतंत्रता के सुप्रभात में ही 136 बड़ी रियासतें भारत में मिल गईं। अनेक रियासतों के विलीनीकरण एवं उन्हें भारत राष्ट्र में समावेश करने में तत्कालीन गृह एवं उप-प्रधान मंत्री सरदार पटेल ने जिस कुशलता का परिचय दिया, उसकी प्रशंसा गवर्नर जनरल लॉर्ड माउन्टबेटन भी किए बिना न रहे। उन्होंने कहा "दूरदर्शी राजनीतिज्ञ सरदार पटेल ने सफलता के साथ इस समस्या को सुलझाया है।"

रियासतों का विलीनीकरण



कई छोटी मोटी रियासतों के विलीनीकरण से बनने वाले भारत के प्रमुख राजस्थान के उद्‌घाटन समारोह पर राज प्रमुख को शपथ दिलाते हुए लौहपुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल।

स्वतंत्रता के साथ ही रियासतों का लोकतंत्रीय-भारत में विलय इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। इस रक्तहीन राज्य क्रान्ति का श्रेय सरदार पटेल को है। भारत के एकीकरण व राष्ट्र निर्माण में उनका वही स्थान है, जो जर्मनी के एकीकरण व राष्ट्र निर्माण में प्रिंस बिस्मार्क का है।

□□□